प्रकाशक :—
चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक:—
महाभारत प्रकाशक मण्डल
दिल्ली ।



मुद्रक:—
डॉ० प्यारेलाल गुप्त L. M. P.
संस्कृत यन्त्रालय,
शामली, जिला मुजफ्फरनगर ।

महाभारत के चौदहवें भाग

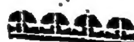
की

विषयानु-क्रमणिका

कर्णपर्व अ० ८० से शल्यपर्व अ० ४६ तक

कर्ण पर्व

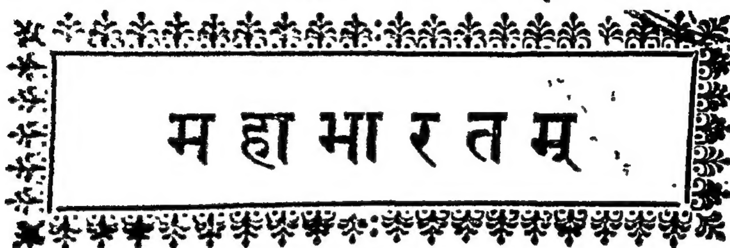
शल्यपर्व







॥ श्री मन्महर्षिव्यासप्रणीतम्



कर्ण पर्व

चौदहवां भाग



अस्सीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

राजन्कुरूणां प्रवरैर्वलैर्भीममभिद्रुतम् ॥
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनञ्जयः ॥१॥
विमृद्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान्धनञ्जयः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब कौरवों के उत्तम २ वीरों की सेना ने भीम पर आक्रमण किया-तो कुन्ती पुत्र भीमसेन, उनमें

फंस गये । हे भरत! उस समय उसका उद्धार करने के निमित्त अर्जुन ने अपने बाण समूह से सूत पुत्र कर्ण की सेना के उत्तम २ वीरों को छेद २ कर मृत्युलोक भेज दिया ॥१-२॥

ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः ।
अदृश्यन्त तथान्ये च निजघ्नुस्तव वाहिनीम् ॥३॥

इस समय अर्जुन के बाण जाल, आकाश में पहुंच कर भिन्न २ रूप में छाये हुए दिखाई दिए । अन्य पाण्डव वीरों ने भी तुम्हारी सेना को मारना आरम्भ किया ॥३॥

स पक्षिसङ्घाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः ।
धनञ्जयो महाबाहुः कुरूणामन्तकोऽभवत् ॥४॥

जिस आकाश में पक्षी उड़ते हैं, उसे बाणों से भर कर महाबाहु अर्जुन, कौरवों के अन्तक दिखाई देने लगे ॥४॥

ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि ।
गात्राणि प्राच्छिनत्पार्थः शिरांसि च चकर्त ह ॥५॥

अब अर्जुन ने मस्तक, क्षुरप्र, तीक्ष्ण नाराच संज्ञक बाणों से कौरव वीरों के शरीर छेद डाले और उनके शिर काट गिराए॥५॥

छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः ।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत्समावृता ॥६॥

बहुत से वीरों के अङ्ग प्रत्यङ्ग कटगए, बहुतों के कवच फट गए और बहुतों के शिर ही उड़गए। इस तरह रणाङ्गण में सब ओर गिरे हुए या गिरते हुए वीरों से सारी भूमि भरगई ॥६॥

धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वनरद्विपैः ।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता ॥७॥
सुदुर्गमा सुविषमा घोरात्यर्थं सुदुर्दृशा ।
रणभूमिरभूद्राजन्महावैतरणी यथा ॥८॥

हे राजन् ! अर्जुन के शर के आघात से छिन्न भिन्न और विध्वस्त तथा अङ्ग-भङ्ग हुए, रथ, अश्व, नर और हाथियों के गण से सारी रण भूमि भर गई । यह अत्यन्त दुर्गम, विषम और दुर्देश हो गई-जैसे महा भयङ्कर वैतरणी नदी हो ॥७-८॥

ईषाचक्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम् ।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैः स्तीर्णाभवन्मही ॥९॥

ईषा (रथ का अग्र भाग) चक्र, धुरे, भल्ल, आदि साधनों से अश्व रहित या अश्व सहित लड़ने वाले वीरों से सारी रण भूमि व्याप्त थी । बहुत से रथ, सारथिहीन या सारथि सहित रण भूमि में बिखरे पड़े थे ॥९॥

सुवर्णवर्णसन्नाहैर्योधैः कनकभूषणैः ।
आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ॥१०॥

सुवर्ण के उज्ज्वल कवचधारी, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, वीरों के साथ उत्तम २ कवच धारण किये हुए, मदस्रावी उत्तम २ हाथी वहां मर कर पड़े हैं ॥१०॥

क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः ।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना ॥११॥

क्रूर महावतों द्वारा पैर की एडी या अंगूठे से प्रेरित किए हुए क्रोधातुर चारसौ हाथी, अर्जुन द्वारा मारे हुए रण भूमि में गिर गये ॥११॥

पर्यस्तानीव शृङ्गाणि समृद्धानि महागिरेः ।
धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥१२॥

किसी विशाल पर्वत के बिखरे हुए शिखरों के सदृश, धनञ्जय अर्जुन के बाण से हत हुए बड़े २ हाथियों से सारी रण भूमि व्याप्त हो गई ॥१२॥

समन्ताज्जलदप्रख्यान्वारणान्मदवर्षिणः ।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान्भिन्दन्निवांशुमान् ॥१३॥

मदस्रावी मेघोपम सब ओर से घेरा डाले हुए हाथियों को चीर कर अर्जुन का रथ इस तरह बाहर निकल आया, जैसे-बादलों को चीरता हुआ सूर्य निकला हो ॥१३॥

हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः ।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥१४॥
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत्फाल्गुनेन वै ।

अर्जुन द्वारा मारे हुए हाथी, मनुष्य और अश्व तथा छिन्न भिन्न हुए बहुत से रथ, विशिष्ट (खास) शस्त्र यन्त्र और कवच धारी युद्ध, कुशल, प्राणहीन, खण्डित शस्त्र वाले वीरों से सारा रणाङ्गण व्याप्त हो गया ॥१४॥

व्यस्फारयद्वै गाण्डीवं सुमहद्भैरवारवम् ॥१५॥
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे ।

अर्जुन ने अपना भीषण घोषणा करने वाला, विशाल गाण्डीव धनुष, पूर्ण शक्ति के साथ खैंच रखा था, जिसकी वज्र के समान ध्वनि हो रही थी मानो आकाश में मेघ गर्जना कर रहा हो ॥१५॥

ततः प्रादीर्यत चमूर्धनञ्जयशराहता ॥१६॥
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे ।

अर्जुन के बाण से आहत, कौरवों की विशाल सेना इस तरह डग मगा गई-जैसे महावत आंधी से धकेली हुई-बड़ी नौका समुद्र में चक्कर लगाती है ॥१६॥

नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः ॥१७॥
अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन् ।

हे भारत ! गाण्डीव से फैंके हुए, प्राणहारक, अनेक रूपधारी अलात (पलीते) उल्का (मशाल) और बिजली के समान चमकीले बाण, तुम्हारी सेना को दग्ध करने लगे ॥१७॥

महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ॥१८॥
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम् ।

इन बाणों से तुम्हारी महा सेना इस तरह पीड़ित हो गई-जैसे किसी बांसों के विशाल वन में रात में आग लग गई हो ॥१८॥

सम्पिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना ॥१९॥
कृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः ।

किरीटधारी अर्जुन ने तुम्हारी सेना को पीस डाली, दग्ध कर दी और नष्ट कर डाली। यह सेना अर्जुन के बाणों से क्षत विक्षत या आहत होकर सब दिशाओं को भाग निकली ॥१६॥

महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा ॥२०॥
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना ।

जिस तरह किसी महा वन में दावाग्नि से मृग गण व्याकुल हो उठते हैं, उसी तरह अर्जुन द्वारा दग्ध हुए कौरव वीर बिल्कुल विकल हो गए ॥२०॥

उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे ॥२१॥
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ।

अब सारी कौरव सेना, रण में महाबाहु भीमसेन को छोड़ कर युद्ध से विमुख हो गई। वह इस समय बड़ी ही उद्विग्न हो रही थी ॥२१॥

ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥२२॥
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत ।

जब कौरव वीर भाग गए तो विजयी अर्जुन थोड़ी देर तक भीमसेन के समीप ठहरे ॥२२॥

समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः ॥२३॥
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम् ।
भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद्धनञ्जयः ॥२४॥
नादयन्रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत ।

हे भारत ! धनञ्जय अर्जुन, भीमसेन से मिलकर और कुछ मन्त्रणा करके-उनसे आज्ञा लेकर अपने रथ घोष से रण भूमि और आकाश को शब्दायमान करता हुआ वहां से चल दिया। इसने भीमसेन को राजा युधिष्ठिर के समाचार सुनाए, कि उनके बाण निकाल दिये गए और अब वे स्वस्थ हैं ॥२३-२४॥

ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥२५॥
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनञ्जयः ।
ते तमभ्यर्दयन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥२६॥
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत ।

हे भरतर्षभ ! अब अर्जुन को दु.शासन से छोटे दश तुम्हारे महावीर पुत्रों ने घेर लिया। उन्होंने अपने बाणों से अर्जुन को इस तरह पीड़ित किया, जैसे उल्काओं से किसी साथी को किया जाता है। ये अपने धनुष खैंचकर रणाङ्गण में नाच सा करने लगे ॥२५-२६॥

अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥२७॥
नियुक्तान्हि स तान्मेने यमायाशु किरीटिना ।

अब मधुसदन श्रीकृष्ण ने इनको अपने रथ से दांयी ओर किया। इन्होंने यह समझ लिया कि बस ? किरीटधारी अर्जुनने इन्हें यमराज के अधीन ही कर दिया है ॥२७॥

ततस्ते प्राद्रवञ्शूराः पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥२८॥
तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥२९॥

इसी समय में वे वीर, अर्जुन के रथ से विमुख होकर भाग निकले। भागते हुए उन वीरों की ध्वजा, अश्व, धनुष और बाण अर्जुन ने अपने नाराच और अर्धचन्द्र आदि बाणों से काट गिराये ॥२८-२६॥

अथान्यैर्दशभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत् ।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ॥३०॥
तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः ।

अब अर्जुन ने दश भल्ल संज्ञक बाण छोड़े-जिनसे उनके मस्तक काट कर गिरा दिए। रोष से लाल नेत्र और ओष्ठ काटते हुए ये मुख, ऐसे दिखाई पड़े, जैसे रण भूमि में बहुत से कमल बिखरे पड़े हों ॥३०॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश कौरवान् ॥३१॥
रुक्माङ्गदान्रुक्मपुङ्खैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ॥३२॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

सुवर्ण मूलधारी महा वेग शाली दश भल्ल संज्ञक बाणों से सुवर्ण के अङ्गदधारी इन दश कौरव वंश श्रेष्ठ, वीरों को मार कर शत्रुनाशक अर्जुन रणाङ्गण में आगे बढ़ा ॥३१-३२॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अर्जुन द्वारा धृतराष्ट्र के दश पुत्रों के वध का अस्सीवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



इक्यासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम् ।
युद्धायाभ्यद्रवन्वीराः कुरूणां नवती रथाः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरत श्रेष्ठ ! इसके बाद अपने वेगशाली अश्वों से कपिध्वज अर्जुन को आगे बढ़ते देखकर कौरव के नव्वे महारथी वीर, युद्ध के लिए आगे बढ़े ॥१॥

कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥२॥

इन नव्वे नर व्याघ्र संशप्तक वीरों ने परलोक सम्बन्धी घोर शपथ ली और रण में नर श्रेष्ठ अर्जुन को जा घेरा ॥२॥

कृष्णः श्वेतान्महावेगानश्वान्काञ्चनभूषणान् ।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान्प्रैषीत्कर्णरथं प्रति ॥३॥

श्रीकृष्ण ने भी श्वेत कर्णधारी, महावेगशाली, सुवर्ण के भूषणों से विभूषित, मोतियों की मालाओं से व्याप्त, अश्वों को कर्ण के रथ की ओर तीव्र वेग से चलाया ॥३॥

ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनञ्जयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥४॥

जब अर्जुन का रथ, कर्ण के रथ की ओर बढ़रहा था, तो उस समय शत्रुनाशक, धनञ्जय पर बाण वर्षा से प्रहार करते हुए संशप्तक वीर, बड़े वेग से झपटे ॥४॥

त्वरमाणांस्तु तान्सर्वान्ससूतेष्वसनध्वजान् ।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥५॥

जब उन्होंने बहुत ही शीघ्रता दिखाई-तो अर्जुन ने भी सारथि और धनुष बाण के सहित इन नव्वे संशप्तक वीरों को अपने तीक्ष्ण बाणों से एक दम मार डाला ॥५॥

तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात्पुण्यक्षये तथा ॥६॥

किरीट धारी अर्जुन द्वारा हत होकर वे अनेक रूपधारी संशप्तक महारथी, इस तरह गिरगए-जैसे विमानों सहित सिद्ध पुण्य क्षय होने पर स्वर्ग से गिर पड़ते हैं ॥६॥

ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फाल्गुनम् ॥७॥

इसके अनन्तर रथ, हाथी और अश्वों की सेना लेकर कौरव वीर, बड़ी निर्भयता से भरत वंशश्रेष्ठ, कुरुवंशोत्तम अर्जुन पर वेग से झपटे ॥७॥

तदायस्तमनुष्याश्वमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महासैन्यं समरौत्सीद्धनञ्जयम् ॥८॥

इस समय वीर मनुष्य, और अश्वारोही बड़ी त्वरा में दिखाई दे रहे थे और उनके उत्तम २ हाथी उद्धत थे। इस तरह तुम्हारे पुत्रों की एक विशाल सेना की टुकड़ी ने अर्जुन को बुरी तरह घेर लिया ॥८॥

शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन्महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥९॥

अब महाधनुर्धर कौरव वीरों ने पाण्डु पुत्र अर्जुन को शक्ति ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, खड्ग और बाणों से अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥९॥

तामन्तरिक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः ।
व्यधमत्पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥१०॥

इन कौरव वीरों की शस्त्र वृष्टि सब ओर आकाश में छा रही थी, तो पाण्डु पुत्र अर्जुन ने, अपने बाणों से उसे इस तरह नष्ट कर डाला, जैसे सूर्य अपनी किरणों से अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है ॥१०॥

ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः ।
पार्श्वतो व्यहनन्पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥११॥

अब तेरह सौ मदोन्मत्त हाथी लेकर म्लेच्छ वीर उपस्थित हुए और इन्होंने तुम्हारे पुत्र की आज्ञानुसार अर्जुन पर अगल बगल से आक्रमण किया ॥११॥

कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः ।
मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥१२॥

ये म्लेच्छ वीर, कर्णि, नालीक, नाराच, तोमर, प्रास, शक्ति, मुसल, और भिन्दिपाल आदि से रथ स्थित अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥१२॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥१३॥

उन म्लेच्छ गजारोही वीरों की छोड़ी हुई इस अतुल, शस्त्र वृष्टि को अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण भल्ल और अर्धचन्द्र बाणों से वहीं काट गिराया ॥१३॥

अथ तान्द्विरदान्सर्वान्नानालिङ्गैः शरोत्तमैः ।
सपताकध्वजारोहान्गिरीन्वज्रैरिवाहनत् ॥१४॥

अर्जुन ने अनेक आकारधारी उत्तम २ बाणों से पताका ध्वजा और गजारोही वीरों सहित, उन गजों को इस तरह मार गिराया, जैसे वज्र से पर्वत गिरा दिए गए हों ॥१४॥

ते हेमपुङ्खैरिषुभिरर्दिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥१५॥

वे सुवर्ण मूलधारी, बाणों से अर्दित, सुवर्ण माला युक्त, बड़े गज अर्जुन द्वारा मारे जाकर इस तरह पड़े हैं, जैसे अग्नि की ज्वाला से युक्त ज्वालामुखी पर्वत के शिखर पड़े हों ॥१५॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद्विशाम्पते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥१६॥

हे विशाम्पते ! इस समय गाण्डीव धनुष की महान् ध्वनि सर्वत्र छारही थी और मनुष्य, गज और अश्वों की ध्वनि और चीत्कार से भी बड़ा कोलाहल उठ रहा था ॥१६॥

कुञ्जराश्च हता राजन्दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥१७॥

हे राजन् ! अर्जुन से आहत हुए ये म्लेच्छों के हाथी सब ओर भाग निकले और अपने सवारों से रहित हुए अश्व भी दशों दिशाओं को भाग गए ॥१७॥

रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा ।
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥१८॥

हे महाराज ! रथी, और अश्वों से हीन सहस्रों गन्धर्वनगर के समान विशाल आकारधारी रथ, रणभूमि दिखाई देने लगे ॥१८॥

अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः ॥१९॥

हे महाराज ! अश्वारोही वीर, अर्जुन के बाणों से आहत हुए, जिधर देखो-उधर ही भागते दिखाई देते थे ॥१९॥

तस्मिन्क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यत्सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद्युधि ॥२०॥

इस क्षण में पाण्डु पुत्र अर्जुन के बल का वैभव देखा गया जो वह अकेला ही इन अश्वारोही, गजारोही और रथी वीरों से युद्ध करके इनको जीतता रहा ॥२०॥

ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन्भीमसेनः किरीटिनम् ॥२१॥
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्कतिचिद्रथान् ।
जवेनाभ्यद्रवद्राजन्धनञ्जयरथं प्रति ॥२२॥
ततस्तत्प्राद्रवत्सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम् ।
दृष्ट्वार्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥२३॥

हे भरतषभ ! इस समय अश्व, हाथी और रथ इन तीनों प्रकार की सेना से घिरे हुए किरीटधारी अर्जुन को जब भीमसेन ने देखा, तो-हे राजन् ! मारने से बचे हुए, तुम्हारे कुछ रथों को छोड़ कर बड़े वेग से धनञ्जय अर्जुन के रथ की ओर दौड़ा कौरव सेना का अधिकांश भाग मर चुका था। वह बहुत व्याकुल थी, इस से एक दम भाग निकली। इस तरह भागी हुई कौरव सेना को देख कर भीमसेन, अपने भ्राता अर्जुन के पास पहुँचे ॥२१-२३॥

हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान् ।
भीमो व्यधमदश्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥२४॥

जो बहुत से महाबली अश्वारोही वीर अर्जुन के मारने से बचे हुए थे, उनको गदाधारी, थकान रहित इस भीम ने जाकर मार २ कर बिछा दिया ॥२४॥

कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम् ।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥२५॥
ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत् ।

मनुष्य, हाथी और अश्वों का भोजन कर जाने वाली, प्राकार अटारी, पुर, द्वार, आदि के चीर देने वाली. अत्यन्त दारुण काल रात्रि के समान अत्यन्त उग्र, गदा को मनुष्य, हाथी और अश्वों पर भीम छोड़ने लगा ॥२५॥

सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥२६॥
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नरानश्वांश्च पाण्डवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन्हताः ॥२७॥
दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः ।

हे आर्य ! अब पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने बहुत से अश्व अश्वारोही तथा दृढ़ लोह के कवचधारी, वीर और अश्वारोहियों को मार २ कर रण भूमि में सुला दिया । उन सबको भीमसेन ने अपनी गदा से चकनाचूर कर डाला । वे चीत्कार करते हुये रण भूमि में गिर गए । ये दांतों से ओठ चाब रहे थे और रक्त में भीगे हुए भूमि में पड़े थे ॥२७॥

भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः ॥२८॥
असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता गदा ।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीवदुर्दशा ॥२९॥

इस गदा ने बहुतोंके मस्तक, हड्डी और चरण चकनाचूर कर डाले,जो मांसभोजी जीवोंके गणोंके भोजन बनते थे। रक्त, मांस और चर्बी के भोजन से भीमसेन की गदा बहुत ही तृप्त हो गई यह गदा तो हड्डियों को भी चाबती हुई काल रात्रि के समान भयकंर दिखाई दे रही थी ॥२८-२६॥

सहस्राणि दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसः ।
भीमोऽभ्यधावत्संक्रुद्धो गदापाणिरितस्ततः ॥३०॥

हे भारत ! क्रोधातुर भीमसेन ने दश हजार अश्व और बहुत से पैदल सैनिक मारकर तथा गदा हाथ में लेकर इधर उधर घूमना आरम्भ किया ॥३०॥

गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः ।
मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥३१॥

हे भारत ! जब तुम्हारे पक्ष के वीरों ने गदाधारी भीमसेन को देखा-तो उन्होंने उसे काल दण्डधारी यमराज ही समझा ॥३१॥

स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः ।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥३२॥

हे राजन् ! पाण्डुनन्दन, भीमसेन मत्त हाथी की तरह क्रोध में भरा हुआ था। वह गज सेना में इस तरह घुस गया जैसे मकर समुद्र में घुस जाता है ॥३२॥

विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥३३॥

भीमसेन अपनी विशाल गदा लेकर और गज सेना में घुस कर इतना क्रोधाविष्ट हुआ, कि उसने क्षण भर में उस सेना को यमराज के घर भेज दिया ॥३३॥

गजान्सकङ्कटान्मत्तान्सारोहान्सपताकिनः ।
पततः समपश्याम सपक्षान्पर्वतानिव ॥३४॥

हे राजन् ! इस समय हमने हाथी, सवार और पताकाओं सहित गजों को रण भूमि में इस तरह लुढ़कते देखा-जैसे पक्षों वाले पर्वत गिर रहे हों ॥३४॥

हत्वा तु तद्गजानीकं भीमसेनो महाबलः ।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥३५॥

महाबली भीमसेन उस गज सेना को मारकर और फिर रथ में चढ़कर अर्जुन के पीछे २ चल दिया ॥३५॥

हतं पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं परं बलम् ।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥३६॥

हे महाराज ! जब कौरव सेना युद्ध से विमुख होकर अत्यन्त निरुत्साही हो गई-तो वह शस्त्रों से वेष्टित हुई लटके खाने लगी ॥३६॥

विलम्बमानं तत्सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम् ।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद्बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥३७॥

बिना कुछ बातें किए हुए, स्थित लटके खाती हुई कौरव सेना को देख कर अर्जुन ने प्राणतापकारी बाणों से उसका आच्छादन करना आरम्भ किया ॥३७॥

नराश्वरथमातङ्गा युधि गाण्डीवधन्वना ।
शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥३८॥

नर, अश्व, रथ और हाथी, इस युद्ध में गाण्डीव धनुष द्वारा छोड़े हुए बाण समूह से इस तरह व्याप्त हुए ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे केसरों से कदम्ब वृक्ष दिखाई देता है ॥३८॥

ततः कुरूणामभवदार्तनादो महान्नृप ।
नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥३९॥

हे नृप ! अब नर, अश्व, हाथी आदि के प्राणों के अपहारक अर्जुन के बाणों से मारे जाते हुए, कौरव वीरों का महान् आर्तनाद रणाङ्गण में छा गया ॥३९॥

हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम् ।
अलातचक्रवत्सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥४०॥

इस समय कौरव सेना में महान् हाहाकार मच गया । वीर गण बड़े भयभीत हुए एक दूसरे में छुपने लगे । अब तो तुम्हारी सेना अलात चक्र की भाँति घूमने लगी ॥४०॥

ततस्तद्युद्धमभवत्कुरूणां सुमहद्बलैः ।
न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥४१॥

अब कौरव की विशाल सेना के साथ घोर युद्ध होने लगा। इस युद्ध में कोई रथी, घुड़सवार, अश्व या हाथी, बिना बाण से बिंधे दिखाई नहीं देता था ॥४१॥

आदीप्तमिव तत्सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
आसीत्सुशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ॥४२॥

बाणों से सारी सेना के वीरों के कवच कट गए और सेना सन्दीप्त हो उठी। ये रक्त में भीगे हुए विकसित अशोक वन के समान प्रतीत होने लगे। ४२॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम् ।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥४३॥

इस प्रकार पराक्रम परायण सव्यसाची अर्जुन को देख कर कौरव गण कर्ण के जीवन में निराश हो गए ॥४३॥

अविषह्यं तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे ।
मत्वा न्यवर्तन्कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥४४॥

हे राजन्! रण में अर्जुन के बाणों का आघात किसी से भी नहीं सहा जा सकता-ऐसा मानकर गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन से विजित हुए कौरव युद्ध भूमि से भाग निकले ॥४४॥

ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः ।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥४५॥

अर्जुन के बाणों से आहत कौरव सैनिक, रणाङ्गण में कर्ण को छोड़ कर भयातुर हुए सारी दिशाओं को भाग निकले और रक्षा के लिए सूतपुत्र कर्ण को पुकारने लगे ॥४५॥

अभ्यद्रवत तान्पार्थः किरञ्शरशतान्बहून् ।
हर्षयन्पाण्डवान्योधान्भीमसेनपुरोगमान् ॥४६॥

बहुत से बाणों की झड़ी लगा कर अपने पक्ष के पाण्डव योद्धाओं के हर्ष को बढ़ाते हुए अर्जुन ने कौरवों पर आक्रमण किया ॥४६॥

पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति ।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णो भवत्तदा ॥४७॥

हे महाराज ! अब तुम्हारे पुत्र कर्ण के रथ की ओर चले ये इस समय अगाध रण समूह में डूब रहे थे । इनका द्वीपवत रक्षक महारथी कर्ण ही था ॥४७॥

कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव ।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद्गाण्डीवधन्वनः ॥४८॥
यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष ।
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि योनि च ॥४९॥

हे महाराज ! इस समय कौरव गण, गाण्डीव धारी अर्जुन के भय से विष रहित सर्प की भांति होकर इस तरह कर्ण के समीप छुपने लगे जैसे कुकर्म परायण मृत्यु से भयभीत प्राणी धर्म की शरण में जाते हैं ॥४८-४९॥

तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप ।
उपालीयन्त सन्त्रासात्पाण्डवस्य महात्मनः ॥५०॥

हे नराधिप ! पाण्डु पुत्र महारथी अर्जुन के त्रास से डरे हुए तुम्हारे पुत्र, महाधनुर्धर कर्ण, के समीप घुसने लगे ॥५०॥

ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान्विपमस्थाञ्शरातुरान् ।
मा भैष्टेत्यब्रवीत्कर्णो ह्यभीतो मामितेति च ॥५१॥

रक्त में भीगे हुए, संकटापन्न, बाणों से व्याकुल, इन तुम्हारे पुत्रों से कर्ण ने कहा—तुम डरो मत-निडर होकर मेरे पास चले आओ ॥५१॥

सम्भग्नं हि वलं दृष्ट्वा बलात्पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन्कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ॥५२॥

अब कर्ण ने अर्जुन द्वारा तुम्हारी सेना को तितर बितर देख कर शत्रुभूत अर्जुन के वध की अभिलाषा से अपने धनुष को वेग से खैंचा ॥५२॥

तान्प्रद्रुतान्कुरून्दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
सञ्चिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन् ॥५३॥

शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण ने उन कौरव वीरों को भागा हुआ देखकर व त कुछ सोच विचार के अनन्तर श्वास मार कर अर्जुन के मारने की ओर मन लगाया ॥५३॥

विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः ।
पञ्चालान्पुनराधावत्पश्यतः सव्यसाचिनः ॥५४॥

अधिरथ पुत्र कर्ण ने अपने विशाल धनुष को खोलकर अर्जुन के देखते २ पञ्चालों पर आक्रमण किया ॥५४॥

ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥५५॥

क्षत के समान विशाल और लाल नेत्रधारी पञ्चाल वीर राजा, इस तरह कर्ण पर बाण वर्षा करने लगे-जैसे- मेघ, पर्वत पर झड़ी लगा देता है ॥५५॥

ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पञ्चालान्प्राणैः प्राणभृतां वर ॥५६॥

हे आर्य नरश्रेष्ठ ! अब कर्ण ने सहस्रों बाण छोड़े-जिनसे पञ्चाल वीरों के प्राण शरीर से पृथक हो गए ॥५६॥

तत्र शब्दो महानासीत्पञ्चालानां महामते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

हे महामते ! इस समय अपने मित्र राजा दुर्योधन के हित में तत्पर कर्ण द्वारा अपने मित्र के कार्य बनाने के लिए मारे जाते हुए पञ्चालों का महान् कोलाहल रणभूमि में छागया ॥५७॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में भीमसेन के युद्ध वर्णन का इक्यासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।



बयासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु वरूथिना श्वेतहयेन राजन्।
पाञ्चालपुत्रान्व्यधमत्सूतपुत्रो महेषुभिर्वात इवाभ्रसङ्घान् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! कौरव के भाग जाने पर भी श्वेत अश्वों वाले अपने रथ के द्वारा दौड़कर सूत-पुत्र कर्ण ने बड़े २ वाणों से पाण्डु-पुत्रों को इस प्रकार छिन्न भिन्न कर दिया, जैसे वायु मेघ समूह को छिन्न भिन्न कर देता है ॥१॥

सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लैरवाकिरद्धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥२॥

महारथी कर्ण ने अञ्जलिक नामक बाणों से राजपुत्र जनमेजय के सारथि को रथ से गिराकर उसके अश्वों को मार डाला तथा भल्ल नामक बाणों से शतानीक और सुतसोम को आच्छादित करके उनके धनुषों को काट गिराया ॥२॥

धृष्टद्युम्नं निर्विभेदाथ षड्भिर्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये।
हत्वा चाश्वान्सात्यकेः सूतपुत्रः कैकेयपुत्रं न्यवधीद्विशोकम् ॥

इसी तरह अङ्गराज कर्ण ने रण में बड़े वेग के साथ बढ़कर सेनापति धृष्टद्युम्न के शरीर में छः बाण मारे और उसके अश्वों को भी मार डाला। इसके अनन्तर सात्यकि के अश्वों को मार कर कर्ण ने कैकय राजपुत्र विशोक का वध कर दिया ॥३॥

तमभ्यधावन्निहते कुमारे कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा ।
शरैर्विधुन्वन्भृशमुग्रवेगैः कर्णात्मजं चाप्यहनत्प्रसेनम् ॥४॥

जब कैकय राजकुमार मारा गया-तो उनका बड़ा उग्र कर्म करने वाला कैकय-सेनापति बड़े वेग से दौड़ा और उसने भी उग्र वेग वाले बाणों के साथ धनुष को खैंचकर कर्ण-पुत्र प्रसेन को क्षत-विक्षत कर दिया ॥४॥

तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद्गामगमद्गतासुः परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥५॥

अब कर्णने भी बल-पूर्वक तीन अर्ध चन्द्र बाण छोड़े, जिसने उनके दो बाहु और एक शिर को काट डाला। वह परशु से काटे हुए शाल वृक्ष के सदृश प्राणहीन होकर रथ से नीचे पृथिवी पर गिर गया ॥५॥

हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।
प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥६॥

अश्वहीन सात्यकि पर कर्ण पुत्र प्रसेन ने सीधे जाने वाले अपने तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगादी। यह रण भूमि में नृत्यसा कर रहा था, कि सात्यकि के बाण से घायल होकर भूमि में गिर गया ॥६॥

पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः ।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन्स व्यवासृजद्बाणममित्रसाहम् ॥७॥

जब पुत्र मारा गया-तो कर्ण क्रोध से उबल उठा और उसने शिनि वंश श्रेष्ठ सात्यकि को मार देना चाहा। हे सात्यकि ! ले तू मारा गया-इस तरह कह कर शत्र से असह्य बाण को कर्ण ने सात्यकि पर छोड़ा ॥७॥

तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी,
त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् ।
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च,
छित्वा क्षुराभ्यां न्यपतत्सुजातः ॥८॥

कर्ण के इस बाण को महारथी शिखण्डी ने तीन बाणों से बीच में ही छेद डाला और तीन बाण मार कर उलटे कर्ण को घायल कर दिया। शिखण्डी के धनुष और ध्वजा को अपने क्षुरोपम बाणों से काट कर महावीर कर्ण वेग से झपटा ॥८॥

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त
तथाभिनत्सुसोतमं शरेण सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥९॥

इस उग्रकर्मा कर्ण ने, छः बाण मार कर शिखण्डी को बींध दिया और धृष्टद्युम्न पुत्र का शिर काट डाला। अधीरथ पुत्र महात्मा कर्ण ने अपने अत्यन्त तीखे बाण से सुतसोम को भी बींध दिया ॥९॥

अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः ।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ कर्णं जहीत्यब्रवीद्राजसिंह ॥१०

हे भारत ! जब इस प्रकार घोर युद्ध चल रहा था, और धृष्टद्युम्न पुत्र मारा गया-तो श्रीकृष्ण बोले—हे राजसिंह ? कर्ण आज

सारे पाञ्चालों का विध्वंस करके रहेगा-तुम शीघ्रता से आगे बढ़ कर कर्ण का वध करो ॥१०॥

ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो रथं रथेनाधिरथेर्जगाम ।
भये तेषां त्राणमिच्छन्सुबाहुरभ्याहतानां रथयूथपेन ॥११॥

रथों के यूथपति कर्ण द्वारा आहत हुए पञ्चाल वीरों की भय से रक्षा करने का अभिलाषी सुन्दर बाहुधारी नर प्रवीर अर्जुन अपने रथ के द्वारा अधिरथ पुत्र कर्ण के रथ की ओर वेग से चला ॥११॥

विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं ज्यया समाहत्य तले भृशं च
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा जघान नागाश्वरथध्वजांश्च ॥१२

अब अर्जुन ने अपने उग्र ध्वनि करने वाले गाण्डीव धनुष को खैंचा और उसकी प्रत्यञ्चा को कई वार अपने करतल से बजाया। इसके द्वारा अर्जुन ने बाण छोड़ कर रण भूमि में अन्धकार कर दिया। और बहुत से हाथी, अश्व, रथी और ध्वजा नष्ट भ्रष्ट कर डाले ॥१२॥

प्रतिश्रुतः प्राहरदन्तरिक्षे गुहा गिरीणामपतन्वयांसि ।
यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यपतत्किरीटी ॥

सर्व श्रेष्ठ वीर अर्जुन ने अपने बाणों के इस तरह प्रहार किए, कि जिनसे अन्तरिक्ष छागया। पक्षी गण, पर्वतों की गुफाओं में जा छुपे। मण्डलाकार गाण्डीव धनुष से वृद्धि को प्राप्त

हुए किरीटधारी अर्जुन इस भयानक घड़ी में वेग से कर्ण पर झपटे ॥१३॥

तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन पृष्ठे रक्षन्पाण्डवमेकवीरः ।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां कर्णाय यातावरिभिर्विषक्तौ ॥

इस समय अकेला भीमसेन अर्जुन की रक्षा को अपने रथ के द्वारा उसके पीछे २ चल दिया । वे दोनों राजपूत, भीमार्जुन अपने २ रथों से वेग के साथ महावीर कर्ण पर झपटे । अब इन पर शत्रुवीर भी बड़ा प्रहार कर रहे थे ॥१४॥

तत्रान्तरे सुमहान्सूतपुत्रश्चक्रे युद्धं सोमकान्सम्प्रगृह्य ।
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥१५॥

इस समय महाबली सूत-पुत्र सोमक वीरों को घेर कर उनसे युद्ध कर रहे थे । इसने सोमकों के रथ, अश्व और गजों के समूह मार २ कर बिछा दिए । इसने अपने बाण समूह से सारी दिशाएँ आच्छादित कर दी ॥१५॥

तमुत्तमौजा जनमेजयश्च क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च ।
कर्णं विभेदुः सहिताः पृषत्कैः सन्नर्दमानाः सह पार्षतेन ॥

अब पाञ्चाल वीर उत्तमौजा और जनमेजय, युधामन्यु और शिखण्डी इकट्ठे ही धृष्टद्युम्न के सहित गर्जना करते हुए अपने बाणों से महावीर कर्ण को बींधने लगे ॥१६॥

ते पञ्च पञ्चालरथप्रवीरा वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद्रथाच्च्यावयितुं न शेकुर्धैर्यात्कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः

इस समय पञ्चाल सेना के ये पूर्वोक्त पांचों महारथी सूर्यपुत्र कर्ण पर प्रहार कर रहे थे, परन्तु पांचों शब्दादि विषय जिस तरह किसी जितेन्द्रिय को धैर्य से विचलित नहीं कर सकते हैं, उसी तरह कर्ण को ये रथ से विचलित करने में समर्थ नहीं हो सके ॥१७॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतांस्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः।
तान्पञ्चभिस्त्वभ्यहनत्पृषत्कैः कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥

-हे राजन ! कर्ण ने इन पाञ्चाल महारथियों के धनुष, ध्वजा अश्व और सारथि मार कर पांच बाणों से इन पांचों को घायल कर दिया और फिर सिंह की भांति गर्जना की ॥१८॥

तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णेत्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत्

उन पांचों महारथियों पर बाण फैंकते हुए धनुष बाण धारी कर्ण के धनुष के शब्द से जनता को यही प्रतीत हो रहा था, कि बस ? अब पर्वत और वृक्षों के सहित, पृथिवी अभी फटी जाती है। इस विचार से जनता बहुत ही भयभीत हो रही थी ॥१९॥

स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना भृशायतेनाधिरथिः शरान्सृजन्
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥

इन्द्र धनुष के समान उत्तम प्रबल शक्ति के साथ खैंचे हुए धनुष से बाण वर्षा करता हुआ अधिरथ पुत्र कर्ण, ऐसा प्रतीत

होता था, जैसे-मण्डल धारी, किरण समूह से देदीप्यमान सूर्य रण में चमक रहा हो ॥२०॥

शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिर्नाच्छितैः,
शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगैस्त्रिभिस्त्रिभिः,
सोमकपार्षतात्मजौ ॥२१॥

महावीर कर्ण ने शिखण्डी को बारह, उत्तमौजा को छः युधामन्यु को तीन, तथा सोमक पुत्र जनमेजय और पर्षत वंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न को तीन २ बाणों से घायल कर दिया ॥२१॥

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे ।
उद्दध्निरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान्

हे आर्य गुण सम्पन्न, राजन् ! इस प्रकार सूत् पुत्र कर्ण ने इन पांचों महारथियों को इस महारण में पराजित कर दिया। ये इस समय कर्णरूपी समुद्र में इस तरह डूब रहे थे, जैसे—नौका टूटने पर समुद्र में व्यापारी डूबने लगता है। इस समय नौकाओं से समुद्र से उद्धार करने के तुल्य द्रौपदी पुत्रों ने अपने मातुलों को सुसज्जित रथों द्वारा बचा लिया ॥२२-२३॥

ततः शिनीनामृषभः शितैः शरैर्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून्
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयैस्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः

इसके बाद शिनिवंशश्रेष्ठ ! सात्यकि ने, अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के बहुत से बाणों को काट गिराया। तथा लोहमय तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को घायल करके तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को भी आठ बाणों से बींध दिया ॥२४॥

कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा,
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत्।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो,
दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥२५॥

कृपाचार्य, भोजराज कृतवर्मा, तुम्हारा पुत्र स्वयं राजा दुर्योधन और कर्ण, अपने २ तीखे बाणों से सात्यकि पर प्रहार करने लगे यदुवंशश्रेष्ठ, सात्यकि भी, इन चारों वीरों से इस तरह लड़ रहा था, जैसे चारों दिशाओं के पति इन्द्रादि से कोई दैत्यराज लड़ रहा हो ॥२५॥

समाततेनेष्वसनेन कूजता भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः शरन्नभीमध्यगतो यथा रविः

इस समय फैले हुए सात्यकि के धनुष से बड़ी उग्र ध्वनि निकल रही थी। प्रकृष्ट बल के साथ खैंचे हुए और अपरिमित बाण छोड़ने वाले धनुष से सात्यकि इतना भीषण होरहा था,

जैसे शरद्काल में मध्यान्ह काल का प्रचण्ड सूर्य सन्तप्त हो रहा हो ॥२६॥

पुनः समास्थाय रथान्सुदंशिताःशिनिप्रवीरं जुगुपुः परन्तपाः
समेत्य पञ्चालमहारथा रणे मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥

इसके अनन्तर शत्रुतापी वे पांचों पञ्चाल महारथी, सुसज्जित होकर अपने २ रथों के द्वारा रण में शिनिवंश प्रवीर सात्यकि की इस तरह रक्षा करने लगे-जैसे शत्रु के निग्रह में देवगण इन्द्र की कर रहे हों ॥२७॥

ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा यथा सुराणामसुरैः पुराभवत् ॥

हे भरतर्षभ ! अब तुम्हारे शत्रुओं के साथ तुम्हारे सैनिकों का बहुत ही दारुण युद्ध हुआ । जिस में रथ, अश्व, हाथी आदि का बहुत ही विध्वंस हुआ । यह युद्ध तो पूर्वकाल के देवासुर संग्राम के समान भीषण था ॥२८॥

रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलुर्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा ॥

रथी, गजारोही, अश्वरोही और पैदल, सैनिक, अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित थे । वे एक दूसरे पर आक्रमण करते, पीछे हटे, गर्जना करते तथा आर्तनाद करते हुए प्राणहीन होकर भूमि में गिर जाते थे ॥२९॥

तथागतं भीममभीस्तवात्मजः ससार राजावरजः किरञ्शरैः
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान्

भीमसेन को आक्रमण करता देखकर राजा दुर्योधन का छोटा भ्राता तुम्हारा पुत्र दुःशासन, निर्भीक भाव से बाणवर्षा करता हुआ उस पर झपटा। वृकोदर भीमसेन भी दुःशासन पर इस तरह लपका, जैसे बड़े हरिण पर कोई सिंह झपटता हो ॥३०॥

ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः।
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयोरुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥३१॥

अब इन दोनों का महाशक्तिशाली शम्बरासुर और इन्द्र के समान महा घोर युद्ध होने लगा। इन दोनों को परस्पर बड़ा ही क्रोध आरहा था। इन्होंने इस समय इस युद्धरूपी जुआ के खेल में प्राणों की बाजी लगाई थी ॥३१॥

शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनैर्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम्।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ

शरीर को चीर देने वाले अत्यन्त तीखे शरों से ये बुरी तरह एक दूसरे पर इस तरह प्रहार करने लगे-जैसे लगातार मदस्राव करने वाले दो महागज, गर्भ धारण को आई हुई हथिनी के निमित्त आतुर होकर भिड़ पड़ते हैं ॥३२॥

तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्धनुःक्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥

अब वृकोदर भीम ने शीघ्रता करके तुम्हारे पुत्र दुःशासन के धनुष और ध्वजा को अपने क्षुरोपम दो बाणों से काट गिराया। एक बाण ऐसा मारा, जिससे इसका मस्तक बिंध गया और सारथि का तो शिर तीक्ष्ण शर से शरीर से पृथक कर दिया ॥३३॥

स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं,
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः,
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥३४॥

अब राज पुत्र दुःशासन ने दूसरा धनुष उठाया और उससे बारह बाण छोड़ कर भीमसेन को अच्छी तरह छेद दिया। इस समय सारथि के न होने से दुःशासन स्वयं अश्वों को चला रहा था और भीमसेन पर सीधे जाने वाले बाणों की झड़ी लगा रहा था ॥३४॥

ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम् ।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् ।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥

अब दुःशासन ने सूर्य किरण के तुल्य देदीप्यमान, सुवर्ण, हीरे रत्न आदि से विभूषित, इन्द्र के वज्र के आघात के समान

भीषण, भीमसेन के शरीर को विदारण करने में समर्थ बाण के सावधानी से छोड़ा इस बाण से वृकोदर भीमसेन का शरीर विंध गया और मृतक कीतरह शिथिल होकर गिर गया। जब थोड़ी ही देर में इसको चेत हुआ-तो यह भुजा फैला कर उठा और अपने रथ में बैठ गया-तथा बहुत उच्च स्वर से गर्जना करने लगा ॥२५-२६॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में दुःशासन और भीमसेन के युद्ध का बयासीवां अध्याय समाप्त हुआ।



तिरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तत्राकरोद्दुष्करं राजपुत्रो दुःशासनस्तुमुलं युद्धयमानः।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण षष्ट्या शरैः सारथिमप्यविध्यत्

सञ्जय बोले—हे भरत श्रेष्ठ! इस समय घोर युद्ध में परायण राज पुत्र दुःशासन ने बड़ा ही दुष्कर कर्म दिखाया। उसने एक बाण से भीमसेन का धनुष काट दिया और साठ बाण छोड़ कर भीमसेन के सारथि को अत्यन्त क्षत विक्षत कर डाला ॥१॥

स तत्कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः
ततोऽभिनद्बहुभिः क्षिप्रमेव वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा ॥२॥

इतना करने के अनन्तर महावेगशाली दुःशासन ने नौ बाण मार कर भीमसेन को घायल कर दिया इसके बाद भी महावीर दुःशासन लगातार बाण छोड़ता रहा और उसने अपने उत्तम २ बहुत से बाणों से भीमसेन का शरीर बींध २ कर छलनी बना दिया ॥२॥

ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी,
शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत्ते सुताय।
तामापतन्तीं सहसातिघोरां दृष्ट्वा,
सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम् ॥३॥

अब अपरिमित वेग शाली भीमसेन, क्रोध से उबल उठा और उसने तुम्हारे पुत्र दुःशासन पर बड़ी उग्र शक्ति छोड़ी। तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने जलती हुई उल्का के समान उस अत्यन्त घोर शक्ति को एक दम अपने ऊपर गिरती देखा ॥३॥

आकर्णपूर्णैं रिपुभिर्महात्मा चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः।
दृष्ट्वा तु तत्कर्म कृतं सुदुष्करं प्रापूजयन्सर्वयोधाः प्रहृष्टाः

हे भारत! महावीर दुःशासन ने कान तक धनुष खेंच कर बड़े तीक्ष्ण दश बाणों से उसे मार्ग में ही काट डाला। दुःशासन के इस दुष्कर वीर कर्म को देखकर सारे योद्धा बड़े प्रसन्न हुए और वे दुःशासन की प्रशंसा करने लगे ॥४॥

अथाशु भीमं च शरेण भूयो गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः
चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै भृशं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य

हे राजन् ! अब तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने अपने बाण से भीमसेन को बहुत ही अधिक बींध दिया, भीमसेन उस पर अब फिर क्रोध से उबल उठा और क्रोधपूर्वक दृष्टि से उस की ओर देखने लगा ॥५॥

विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम्
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो जग्राह तां भीमगदां वधाय

भीमसेन ने कहा—हे वीर ! दुःशासन ! तूने मुझे बहुत ही घायल कर दिया है, परन्तु अब तू मेरे इस गदा के प्रहार को सम्हाल, इस प्रकार कह कर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने दुःशासन के वध के निमित्त बड़ी भीषण गदा उठाई और कहा—हे दुरात्मन् ! आज मैं तेरे रक्त को रण के मध्य में पीकर छोड़ूंगा ॥६॥

उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन्पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये
अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां शक्तिं वेगात्प्राहिणोन्मृत्युरूपाम्

हे राजन् ! जब भीमसेन ने इतना कहा—तो तुम्हारे पुत्र भीमसेन ने, मृत्युरूप उग्र शक्ति भीमसेन पर छोड़ी। रोष से भरे हुए भीमसेन ने भी दारुण गदा उठा कर उस पर प्रहार किया ॥७॥

आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः
सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि

हे नराधिप ! वह गदा तुम्हारे पुत्र की शक्ति से टकरा कर एक दम तुम्हारे पुत्र दुःशासन के मस्तक में जाकर लगी। इस

प्रकार से दुःशासन के शरीर से इस तरह रक्त बहने लगा-जैसे गज के शरीर से मद धारा वहती है। इस के बाद इस घमसान युद्ध में भीमसेन ने फिर गदा चलाई ॥८॥

स विद्वरन्नाग इव प्रभिन्नो गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद्वै।
तयाहरद्दश धन्वन्तराणि दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ॥९॥
तया हतः पतितो वेपमानो दुःशासनो गदया वेगवत्या।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रक् विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः ॥१०॥

भीमसेन ने अपने इस गदा के आघात से दुःशासन को दश धनुष पीछे फैंक दिया। इस वेगवारिणी गदा से आहत हुए दुःशासन कांपने लगा और वह भूमि में गिर गया। इसके कवच, आभूषण, वस्त्र, माला आदि छिन्न भिन्न होगए और यह अत्यन्त वेदना से युक्त होकर तड़फड़ाने लगा। हे नरेन्द्र इस गदा ने गिरते ही, सारथि सहित दुःशासन के अश्व और रथ को बिल्कुल चकनाचूर कर दिया ॥९-१०॥

हयाःससूता निहता नरेन्द्र चूर्णीकृतश्चास्यरथः पतन्त्या।
दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन्

पाण्डव वीर और पञ्चाल योद्धा, दुःशासन को इस अवस्था में देखकर बड़े प्रसन्न हुए और सिंह नाद करने लगे। दुःशासन को गिरा कर बड़े उल्लास में भीमसेन ने सिंहनाद किया, जिस से सारी दिशाएँ गूंज उठी ॥११॥

तं पातयित्वाथ वृकोदरोऽथ जगर्ज हर्षेण विनादयन्दिशः ।
नादेन तेनाखिलपार्श्ववर्तिनो मूर्च्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ

हे अजमीढ वंशोत्पन्न, धृतराष्ट्र ! भीमसेन के इस सिंहनाद को सुन कर समीपवर्ती शत्रुवीर मूर्च्छित होकर गिर गए। भीमसेन भी वेग से रथ से उतर कर बड़ी शीघ्रता से दुःशासन पर झपटा ॥१२॥

भीमोऽपि वेगादवतीर्य यानाद्दुःशासनं वेगवानभ्यधावत् ।
ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी सापत्नकं यत्प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥
तस्मिन्सुघोरे तुमुले वर्तमाने प्रधानभूयिष्ठतरैः समन्तात् ।
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥
स्मृत्वाऽथ केशग्रहणं च देव्या वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य

हे राजन् ! अब भीमसेन को उस शत्रु भाव की स्मृति आई जो तुम्हारे पुत्रों ने उसके साथ पूर्वकाल में शत्रुभाव दिखाया था इस अत्यन्त दारुण युद्ध में-सब ओर प्रधान २ वीर खड़े थे। महाबाहु, अद्भुत कर्म कर दिखाने वाले भीमसेन ने अपने सन्मुख दुःशासन को देखा। द्रौपदी के बाल ग्रहण तथा रजस्वला के वस्त्रापहरण का स्मरण तथा पतियों की ओर देख भी नहीं सकने वाली निरपराध द्रौपदी को दिये हुए क्लेशों का चिन्तन किया। इन सब कारणों से भीमसेन क्रोध से इतना जल उठा, जैसे घृत डालने से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥१३-१५॥

जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः
तत्राह कर्णं च सुयोधनं च कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥१६॥

हे राजसन्तप! अब भीमसेन ने महारथी कर्ण, राजा दुर्योधन कृपाचार्य, अश्वत्थामा, और कृतवर्मा, से कहा—कि आज मैं पापी दुःशासन का वध करता हूँ, यदि तुम में शक्ति हैं, तो तुम सारे योद्धा मिल कर इसकी रक्षा कर लो ॥१६॥

निहन्मि दुःशासनमद्य पापं संरक्ष्यतामद्य समस्तयोधाः ।
इत्येवमुक्त्वा सहसाभ्यधावन्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥१७

हे भारत! इतना कह कर अत्यन्त वेग शाली महाबली भीमसेन, अपना पराक्रम दिखाता हुआ दुःशासन के वध के निमित्त एक दम इस तरह दौड़ा, जैसे कोई सिंह महागज पर दौड़ता है ॥१७॥

तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो महागजं केसरिको यथैव ।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥१८
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ यत्नेन तस्मिन्प्रणिधाय चक्षुः ।
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं कण्ठे पदाक्रम्य च वेपमानम्
उवाच तद्गौरिति यद् ब्रुवाणो हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम्

भीमसेन ने रथ से उतर कर दुःशासन पर आंखें गड़ाई तथा अधिरथ पुत्र कर्ण और राजा दुर्योधन के देखते २ अकेले भीमसेन ने, दुःशासन को पकड़ लिया। भीमसेन ने तीक्ष्ण धारवाली

चमकती हुई तलवार निकाली और कांपते हुए दुःशासन की छाती पर पैरों से चढ़ कर इस तलवार को उसके कण्ठ पर रख दिया। और कहा—कि जब तूने उस समय गौ (बैल) कहकर सम्बोधित किया था। अब तू फिर कर्ण और सुयोधन को उसी तरह कहे ॥१८-१९॥

ये राजसूयावभृथे पवित्रा जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन्
ते पाणिना कतरेणावकृष्टास्तद् ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः

हे दुरात्मन्! जो द्रौपदी के बाल राजसूययज्ञ में अभिषेक के कारण पवित्र हुए थे, उन पवित्र बालों को तूने किस हाथ से छुआ बता—आज तुझ से युद्ध में भीमसेन पूछ रहा है ॥२०॥

श्रुत्वा तु तद्भीमवचः सुघोरं दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य
जज्वाल भीमं स तदा स्मयेन संशृण्वतां कौरवसोमकानाम्।
उक्तस्तदाजौ स तथा सरोषं जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥२२॥

भीमसेन के ये घोर वचन सुनकर दुःशासन ने भीमसेन की ओर देखा—उसने कौरव और सोमकों के सुनते २ अपने उद्धत वचन अहंकार पूर्ण वचन से भीमसेन को और भी प्रज्वलित कर दिया। इसने क्रोध से आंखें बदल कर रणाङ्गण में भी उसी तरह कटु वचन कहे ॥२१-२२॥

अयं करिकराकरः पीनस्तनविमर्दनः।
गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रियान्तकरः करः ॥२३॥

अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः ।
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम् ॥२४॥

अरे भीम ! मेरा यही तो हाथी की सूंड के आकार वाला, पीनस्तन मर्दन परायण, सहस्रों गौओं का दाता, क्षत्रियों का नाशकारी हाथ है, जिसने तुम्हारे और सारे कुरुवीरों के देखते २ सभा में द्रौपदी के बालों को खैंचा था ॥२३-२४॥

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः ।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्यामुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान्
उवाच यस्यास्ति बलं स रक्षत्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः ।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्तमाक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः
एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण उत्पाटयामास भुजं महात्मा ।

हे राजन् ! जब भीमसेन ने रण में राजसुत दुःशासन को इस तरह कहते सुना-तो वह उसकी छाती पर चढ़ गया । भीमसेन ने बलपूर्वक अपनी भुजाओं से उसको पकड़ लिया और सारे कौरव योद्धाओं से ऊंचे सिंहनाद पूर्वक कहा-हे वीर ! आज जिस में बल हो, वह दुःशासन की रक्षा करले-मैं अभी इसकी भुजा उखाड़ता हूँ । महाबली महात्मा भीमसेन ने दुःशासन के प्राण निकालने के समय अपने तेज से सारे कौरव योद्धाओं को इस तरह अपमानित करके अपने हाथ से क्रोध-पूर्वक दुःशासन की एक भुजा उखाड़ली ॥२५-२६॥

दुःशासनं तेन स वीरमध्ये जघान वज्राशनिसन्निभेन ॥२७॥
उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमावथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम्

हे राजन् ! वज्राशनि तुल्य इस भुजा से ही, वीरों के मध्य में दुःशासन को भीमसेन ने मारना आरम्भ किया। पृथिवी में पड़े हुए दुःशासन की छाती को भीमसेन ने चीर डाला और उस से निकलते हुए कुछ उष्ण रक्त को सब के देखते २ पीगया ॥२७॥

ततो निपात्यास्यास्य शिरोऽपकृत्य,
तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥२८॥
सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान्प्रतिज्ञां,
भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।

हे राजन् ! अब भीमसेन ने अपनी तलवार से तुम्हारे पुत्र दुःशासन का शिर काट कर दूर फैंक दिया। रणकर्म में बुद्धिमान् भीमसेन ने अपनी प्रतीज्ञा पूर्ण करने के निमित्त सचमुच दुःशासन की छाती के गर्मागर्म, रक्त का पान किया ॥२८॥

आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः,
क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम् ॥२६॥
स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा,
माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य,
पानात्पयोदधिभ्यां मथिताच मुख्यात् ॥३०॥

अन्यानि पानानि च यानि लोके सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं ममाद्य चास्याहितलोहितस्य

हे नराधिप ! भीमसेन, दुःशासन के रक्त को आस्वादन पूर्वक चाट २ कर सब ओर क्रोध पूर्वक देखने लगा। अब वह दुःशासन से बोला—कि माता के स्तन के दूध, मधु, घृत, या सत्कार पूर्ण, द्राक्षारस अथवा, दिव्य जल, दूध और दही को मिला कर मथे हुए तथा अन्य सुधा के समान आस्वाद युक्त पानों से अधिक इस रक्त के पान में आस्वाद आया है ॥२६-३१॥

अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः ।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि

इसके अनन्तर क्रोध से परीपूर्ण चित्त वाला उग्रकर्मा भीमसेन फिर मृतक दुःशासन को देखकर बोला—कि अब क्या करूं तेरी मृत्यु ने ही रक्षा कर दी ॥३२॥

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्तमास्वाद्यमानं तमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥

इस प्रकार कहते हुए और बहते हुए रुधिर के आस्वाद को लेते हुए अत्यन्त प्रसन्न भीमसेन को जिन्होंने देखा-वे भी उस समय भय से बड़े ही व्यथित होकर भूमि में गिर पड़े ॥३३॥

ये चापि नासन्व्यथिता मनुष्यास्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम्
भयाच्च संचुक्रुशुरस्वरैस्ते निमीलिताक्षा ददृशुः समन्ततः ॥३४।

जिनके शस्त्र आदि की कोई चोट नहीं थी उन वीरों के हाथ से भी शस्त्र गिर पड़े, वे भद्दे स्वर में चिल्लाने और आंख मींच कर सब ओर देखने लगे ॥३४॥

तं तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्दौःशासनं तद्रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना न वै मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः

दुःशासन के रक्त को पीते हुए भीमसेन को जिन्होंने देखा-वे भयातुर होकर यह कहते हुए भाग गए कि भीमसेन मनुष्य नहीं-राक्षस है ॥३५॥

तस्मिन्कृते भीमसेनेन रूपे दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम्
सम्प्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥

भीमसेन के बनाए हुए इस भीषण रूप और उसे रक्तपान करते हुए देखकर अनेक कौरव वीर यह कहते हुए राजा चित्रसेन के साथ भाग गए कि भीमसेन तो सचमुच राक्षस निकला ॥

युधामन्युः प्रद्रुतं चित्रसेनं सहानीकस्त्वभ्यगाद्राजपुत्रः ।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कैर्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः ॥

हे भारत! भागते हुए राजा चित्रसेन के पीछे राजपुत्र युधामन्यु, सेना सहित दौड़ा। निर्भीक भाव से युक्त युधामन्यु ने, शीघ्रता-पूर्वक सात तीखे बाण छोड़कर उसे बींध दिया ॥३७॥

संक्रान्त भोग इव लेलिहानो महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः ।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्यत्त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भि

जिस तरह फन कुचला जाने पर महासर्प क्रोधपूर्वक लपलपाती जिह्वा से तीव्र विष छोड़ना चाहता है, उसी तरह लौट कर चित्रसेन ने पाञ्चाल वीर युधामन्यु पर तीन और उसके सारथि पर छः बाणों से प्रहार किया ॥३८॥

ततः सुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन सुसंशिताग्रेणशरेण शूरः।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन युधामन्युस्तस्य शिरो जहार ॥३६

अब शूरवीर युधामन्यु ने उत्तम मूलधारी, यन्त्र पर चढ़ाये हुए, तीक्ष्ण नोक वाले कान तक खैंचकर ध्यान पूर्वक छोड़े हुए बाण से राजा चित्रसेन का शिर काट डाला ॥३६॥

तस्मिन्हते भ्रातरि चित्रसेने क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः।
व्यद्रावयत्पाण्डवानामनीकं प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः ॥

अपने भ्राता चित्रसेन के मारे जाने पर कर्ण क्रोध में भर गया और अपना पुरुषार्थ दिखाने को तत्पर हुआ। यह पाण्डवों की सेना घायल करके भगाने लगा तो इस समय इसके सन्मुख अत्यन्त तेजस्वी नकुल आया ॥४०॥

भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम्।
पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः ॥४१॥
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत्।
एष ते रुधिरं कण्ठात्पिबामि पुरुषाधम ॥४२॥

अहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति ।
ये तदास्मान्प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति ॥४३॥
तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ।

अत्यन्त असहिष्णु दुःशासन को उग्र गर्जना करने वाले भीमसेन ने मार कर फिर उसके रक्त से अपनी अञ्जलि भर ली और संसार के वीरों के सुनते २ यह वचन कहा—हे पुरुषाधम ! ले ? मैं तेरा रक्त कण्ठ तक भर कर पीऊंगा अब तू आनन्द भर कर फिर पूर्ववत् गौ गौ-इस शब्द का उच्चारण करना। उस समय जिन्होंने गौ गौ (बैल-बैल) कह कर हमारी ओर व्यङ्गभाव से नृत्य किया था, आज हम उनकी ओर गौ गौ-ऐसा कह कर नांच कर रहे हैं ॥४१-४३॥

प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ॥४४॥
दंशनं चाहिभिः कृष्णैर्दाहं च जतुवेश्मनि ।
द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ॥४५॥
द्रौपद्याः केशपक्षस्य ग्रहणं च सुदारुणम् ।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि ॥४६॥
विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः ।
शकुनेर्धार्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ॥४७॥
अनुभूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि ।

प्रमाण कोटि में शयन (विश्वास स्थान) और फिर कालकूट का भोजन वाले सर्पों से दंशन और लाचागृह में दाह, द्यूतपूर्वक

राज्यापहरण और वन में निवास, द्रौपदी के केशों का दारुण ग्रहण, संग्राम में बाणों का प्रयोग, घर में दुःखदायी साधनों का प्रापण, विराट के घर पर भिन्न २ प्रकार के कष्ट, शकुनि, राजा दुर्योधन और राधा पुत्र कर्ण की मन्त्रणा, तथा इनसे जो दुःखों का अनुभव किया, इन सब का दुःशासन! तूही तो कारण था ॥४४-४७॥

दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन ।
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात्सपुत्रस्य सदा वयम् ॥४८॥

हमने तो सर्वदा ये दुःख ही देखे-सुख कभी नहीं देखा । यह सब कुछ पुत्र-सहित राजा धृतराष्ट्र का दुरात्मापन ही था ॥४८॥

इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः ।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ॥४९॥

हे महाराज! इतना वचन कह कर और विजय प्राप्त करके फिर मुसकुराता हुआ वृकोदर भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुन से बोला ॥४९॥

असृग्दिग्धो विस्रवल्लोहितास्यः क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी
दुःशासने यद्रणे संश्रुतं मे तद्वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ ॥५०॥

हे वीरो! मैं रक्त में भीग रहा हूँ! दुःशासन के बहते हुए रक्त से मेरा मुख लाल होरहा है। मैं अत्यन्त क्रोधी भीमसेन आज क्रोध में भर रहा हूं। मैंने जो दुःशासन के विषय में प्रतिज्ञा की थी, आज उसे कृत्य करके दिखा दिया है ॥५०॥

अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं,
दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः,
शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम् ॥५१॥

अब मैं इस युद्ध यज्ञ में दुर्योधन को दूसरा बलिदान का पशु बना कर हवन करूंगा। जब मैं इस दुरात्मा का शिर अपने पैरों से सारे कौरवों के समक्ष कुचल दूंगा, तभी मुझे शान्ति प्राप्त होगी ॥५१॥

एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः।
ननर्द चैवातिबलो महात्मा वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि दुःशासनवधे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

हे राजन्! इतना कहकर रुधिर से भीगे शरीर वाला, महाबली महात्मा भीमसेन, बड़ी प्रसन्नता से गर्जना करने लगा वह इस तरह गरजा, जैसे वृत्रासुर को मार कर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र गरजते थे ॥५२॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में दुःशासन के वध
का तिरासीवां अध्याय समाप्त हुआ

चौरासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः ।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः ॥१॥
दश राजन्महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्शरैः ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन के मारे जाने पर अन्य तुम्हारे महारथी क्रोधरूपी विष भरे हुए युद्ध में पीठ नहीं दिखाने वाले, महापराक्रमी दश पुत्रों ने भीमसेन को घेर कर बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥१॥

निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्धरः ॥२॥
अलोलुपः सहः षण्ढो वातवेगसुवर्चसौ ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥३॥
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन् ।

निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधर, धनुर्धर, अलोलुप, सह, षण्ढ, वातवेग, और सुवर्चा ये दश तुम्हारे पुत्र, अपने भ्राता दुःशासन के वध से दुःखी हुए इकट्ठे ही भीमसेन पर टूट पड़े और इन्होंने महाबाहु भीमसेन को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥२-३॥

स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात्तैर्महारथैः ॥४॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ ।

हे नृप ! जब इन महारथियों ने सब ओर से बाण चला कर भीमसेन को रोक दिया-तो भीमसेन की आंखें क्रोध से लाल हो उठी और वह क्रोधातुर काल के सदृश प्रतीत होने लगा ॥४॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारतान् ॥५॥
रुक्माङ्गदान्रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम् ।

अब भीमसेन ने महावेगशाली सुवर्णमूलधारी भल्ल संज्ञक दश बाण छोड़े-जिन से भरतवंशश्रेष्ठ सुवर्ण के आभूषण धारी इन दशों वीरों को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥५॥

हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव ॥६॥
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम् ।

जब एक ही झटके में भीमसेन ने इन दशों वीरों को मार गिराया-तो तुम्हारी सारी सेना सूतपुत्र कर्ण के देखते २ भीमसेन से भयभीत होकर भाग निकली ॥६॥

ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद्भयम् ॥७॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव ।

हे महाराज ! अब चित्त में, प्रजामें अन्तक की तरह भीमसेन के पराक्रम को देख कर महारथी कर्ण के चित्त में भी भय का सञ्चार होने लगा ॥७॥

तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः ॥८॥
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिन्दमम् ।
मा व्यथां कुरु राधेय नैव त्वय्युपपद्यते ॥९॥

मद्रराज युद्ध दुर्मद शल्य कर्ण के आकार और भाव को जान गया-वह इस समय के अनुसार शत्रुमर्दन करने वाले कर्ण से इस प्रकार कहने लगा। हे राधेय! तुम कुछ चिन्ता न करो! यह बात तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप नहीं है ॥८-९॥

एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः ।
दुर्योधनश्च संमूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥१०॥
दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना ।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥११॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः ।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः ॥१२॥

हे दुर्मद! भीमसेन के भय से डरे हुए ये राजा लोग भाग रहे हैं। और भ्राताओं के मारेजाने से राजा दुर्योधन बड़े व्याकुल होरहे हैं। जब महावीर भीमसेन ने दुःशासन का रुधिर पीया-तो उसी समय से राजा दुर्योधन का चित्त बहुत दब गया है और वह शोक से बहुत ही दुःखी है। इस समय मरने से बचे हुए शेष भ्राता और कृपाचार्य आदि वीर सब ओर से घेर कर राजा दुर्योधन के समीप खड़े हैं ॥१०-१२॥

पाण्डवा लब्धलक्षाश्च धनञ्जयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः ॥१३॥

अर्जुन आदि पाण्डव वीर भी अपने २ लक्ष्यों को बींध २ कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए तुम्हारी ओर ही आरहे हैं ॥१३॥

स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥१४॥

हे पुरुष शार्दूल ! अब तुम भी अपने पराक्रम का अवलम्बन ग्रहण करो और क्षत्रिय धर्म को प्रधान मान कर धनञ्जय पर आक्रमण करो ॥१४॥

भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः ।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ॥१५॥

धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन ने सारा भार तुम पर ही रख छोड़ा है । हे महाबाहो ! उस भार को अपनी शक्ति और बल के अनुसार अच्छी तरह सहन करो ॥१५॥

जये स्याद्विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये ।
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तेनयस्तव ॥१६॥
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति ।

यदि तुम्हारी विजय होगई-तो बड़ी कीर्ति होगी और युद्ध में मृत्यु होगई-तो निश्चय स्वर्गकीप्राप्ति होगी । हे कर्ण ! इस समय तो तुम्हारा पुत्र वृषसेन भी बड़ा कुपित होरहा है । वह तुमको

किंकर्तव्य विमूढ़ देखकर स्वयं पाण्डवों पर आक्रमण करने की इच्छा कर रहा है ॥१६॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः ॥
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम् ॥१७॥

हे राजन् ! इस प्रकार अत्यन्त तेजस्वी मद्रराज शल्य के वचन सुन कर युद्ध के निमित्त बड़े दृढ़भाव महारथी कर्ण के हृदय में जागृत हो उठे ॥१७॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधावदवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम् ।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान् ॥

इसके अनन्तर क्रोध में भरा हुआ कर्ण पुत्र वृषसेन, सन्मुख स्थित गदा हाथ में लेकर तुम्हारे वीरों से युद्ध करते हुए, दण्डधारी काल के तुल्य भीषण, पाण्डु पुत्र वृकोदर भीम पर वेग से झपटा ॥१८॥

तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो रोषादमित्रं प्रतुदन्पृषत्कैः ।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम्

वीर श्रेष्ठ नकुल, रोष में भर कर अपने बाणों से युद्ध में उत्साहित कर्ण पुत्र वृषसेन को व्यथित करता हुआ इस तरह उस पर झपटा-जैसे पूर्व काल में जम्भासुर पर इन्द्र झपटा था ॥१९॥

ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकञ्चुकं चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम् ॥

अब नकुल ने अपने क्षुरोपम बाण से ध्वजा का विचित्र कवच काट कर ध्वजा को भी काट गिराया तथा सुवर्ण के पत्र से जटित कर्ण-पुत्र वृषसेन के विचित्र धनुष को भी अपने भल्ल संज्ञक बाण से काट डाला ॥२०॥

अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत्
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥

अब कर्ण-पुत्र वृषसेन ने शीघ्रता के साथ दूसरा धनुष उठाया और उससे पाण्डु-पुत्र नकुल को बींध डाला तथा अस्त्र विद्या में कुशल वृषसेन ने दिव्य अस्त्रों से भी उसपर बाण वर्षा की झड़ी लगादी ॥२१॥

शराभिघाताच्च रुषा च राजन्स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च ।
जज्वाल कर्णस्यसुतोऽतिमात्रमिद्धो यथाज्याहुतिभिर्हुताशः

हे राजन् ! शर के अभिघात, क्रोध, अपने तेज और अस्त्रों के प्रभाव से कर्ण-सुत वृषसेन इस भांति अत्यन्त प्रदीप्त हो उठा जैसे-घृत से प्रदीप्त अग्नि प्रज्वलित हो उठता है ॥२२॥

कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः ।
वनायुजान्वै नकुलस्य शुभ्रानुदग्रगान्हेमजालानवद्धान् ॥२३॥

हे राजन् ! इस समय कर्ण के पुत्र वृषसेन ने अपने उत्तम अस्त्रों से सारे अश्वों को क्षीण कर दिया। नकुल के ये अश्व बड़े शुभ्र, तीव्र गति वाले और सुवर्ण की माला से सुशोभित पारस देश के उत्पन्न हुए थे ॥२३॥

ततो हताश्वादवरुह्य यानादादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम् ।
आकाशसङ्काशमसिं प्रगृह्य दोधूयमानः खगवच्चचार ॥२४॥

अब नकुल अश्वविहीन रथ से कूद पड़ा और उसने सुवर्ण के निर्मल चन्द्रों से युक्त ढ़ाल और आकाश के समान नीली तलवार को ग्रहण किया । इन ढ़ाल तलवारों को फिराता हुआ वह रण भूमि में पक्षी की तरह उछटने लगा ॥२४॥

ततोऽन्तरिक्षे च रथाश्वनागं चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी ।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥

विचित्र प्रकार से युद्ध करने में कुशल नकुल ने आकाश में कूद २ कर अनेक रथ अश्व और हाथियों को काट डाला । वे तलवार से छिन्न भिन्न होकर इस तरह रण में गिरने लगे, जैसे शमित्रा द्वारा अश्वमेध में पशु काट २ कर गिरा दिए जाते हैं ॥२५॥

द्विसाहस्राः पातिता युद्धशौण्डा नानादेश्याः सुभृताः सत्यसन्धाः
एकेन सङ्ख्ये नकुलेन कृत्ता जयेप्सुनानुत्तमचन्दनाङ्गा ॥२६॥

विजयेच्छुक अकेले नकुल ने अनेक देशों में उत्पन्न, शस्त्रों से सुसज्जित, सत्यप्रतिज्ञ, उत्तम २ चन्दन से चर्चित अङ्ग वाले युद्ध में दुर्मद दो सहस्र कुरुपक्ष वीरों को काट २ कर रणभूमि में बिछा दिया ॥२६॥

तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य समन्ततः सायकैः प्रत्यविध्यत्
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कैर्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥

इस प्रकार झपटते हुए नकुल पर आक्रमण करके वृषसेन ने भी उसे सब ओर से छेद डाला। इस प्रकार छेदे हुए नकुल ने भी बाण वर्षा करके वृषसेन को छेद डाला-इस तरह छिदने से वृषसेन क्रोध से उबल उठा ॥२७॥

महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा भ्रात्रा भीमेनाकरोत्तत्र भीमम्
तं कर्णपुत्रो ऽव्यधमन्तमेकं नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥२८॥
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कैर्विव्याध वीरं नकुलं सरोषः।

इस महाभयङ्कर युद्ध में महावीर नकुल की सहायता को भीमसेन आपहुंचा। उसकी छाया में नकुल ने बड़ा ही भीम कर्म करके दिखाया। कर्ण पुत्र वृषसेन ने भी अकेले लड़ते हुए बहुत से नर, अश्व, हाथी और रथों को भी वींधते हुए, रण में क्रीड़ा करने वाले वीर श्रेष्ठ नकुल को क्रोध के साथ अट्ठारह वाणों से बींध डाला ॥२८॥

स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥२९॥
क्रुद्धेन धावन्समरे जिघांसुः कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः।

हे राजन्! कर्ण पुत्र वृषसेन द्वारा महासमर में अत्यन्त विद्ध हुए महावेगशाली नरप्रवीर, पाण्डु पुत्र नकुल कर्ण पुत्र वृषसेन के मार देने को रणाङ्गण में क्रोध के साथ घूमने लगे ॥२९॥

वितत्य पक्षौ सहसापतन्तं श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥३०॥
अवाकिरद्वृषसेनस्ततस्तं शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम्।

अब कर्ण पुत्र वृषसेन ने, मांस लोलुप पंख फैला कर झपटने वाले श्येनपक्षी की तरह रणाङ्गण में झपटते हुए महापराक्रमी नकुल को अपने तीक्ष्ण बाणों से बहुत ही व्याकुल कर दिया ।।३०।।

स तान्मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघाञ्चचार मार्गान्नकुलश्चित्ररूपान्
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य ।
महेषुभिर्व्यधमत्कर्णपुत्रो महाहवे चर्म सहस्रतारम् ॥३२॥
तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम् ।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोरमाधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥३३॥
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाहश्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः ।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविद्धयत्

हे नरेन्द्र ! महारथी नकुल वृषसेन के बाण समूह को निष्फल बनाता हुआ आप भी अनेक विचित्र प्रकार के तलवार के हाथ दिखाने लगा। जब यह नकुल, खड्ग लेकर बड़ी शीघ्रता से उछल रहा था, तो उसी समय महाघोर युद्ध में शत्रुतापी कर्ण पुत्र वृषसेन ने अपने बाणों से सहस्रों तारों से युक्त ढाल और युद्ध के गुरु भार के सहने में समर्थ, महाउग्र, तीक्ष्ण धार वाली चमकती हुई शत्रु के शरीर की नाशक, अत्यन्त घोर सर्प के समान उग्ररूपधारी, तलवार को चलाने वाले नकुल की इस भीषण करवाल (तलवार) को अपने छः बाणों से काट गिराया इसके बाद फिर वृषसेन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से नकुल की छाती में गाढ़ा प्रहार किया ।।३१-३४।।

कृत्वा तु तद्दुष्करमार्यजुष्टमन्यैर्नरैः कर्म रणे महात्मा ।
ययौ रथं भीमसेनस्य राजञ्शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥

अन्य पुरुषों से दुष्कर आर्य वीरों के योग्य, वीरकर्म को रण में महावीर, शीघ्र कर्मकारी नकुल करके वृषसेन के बाणों से सन्तप्त हुआ, वेग से भीमसेन के रथ पर जा चढ़ा ॥३५॥

स भीमसेनस्य रथं हताश्वो माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः ।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं सम्प्रेक्ष्यमाणस्य धनञ्जयस्य ॥

हे राजन्! कर्ण सुत वृषसेन के बाण से क्षत विक्षत, अश्व विहीन माद्री पुत्र नकुल, भीमसेन के रथ पर इस ढंग से चढ़गया जैसे पर्वत के शिखर पर सिंह चढ़ जाता है, इस घटना को दूर से अर्जुन देख रहा था ॥३६॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा ववर्ष ताविषुजालेन वीरः ।
महारथावेकरथे समेतौ शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥३७॥

अब महावीर नरश्रेष्ठ वृषसेन ने क्रोध में भर कर बाण जाल छोड़ना आरम्भ किया। ये दोनों महारथी भीम और नकुल इकट्ठे ही एक रथ पर बैठे हुए थे। इस समय पाण्डु पुत्र भीम और नकुल को वृषसेन ने बहुत ही बींध डाला ॥३७॥

तस्मिन्रथे निहते पाण्डवस्य क्षिप्रं च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते ।
अन्ये च संहत्य कुरुप्रवीरास्ततो न्यघ्नञ्शरवर्षैरुपेत्य ॥३८॥

जब पाण्डु पुत्र नकुल घायल होगया और बाणों से उसका खड्ग काट डाला गया-तो फिर सारे कौरव वीर भी आडटे, और वहां पहुंच कर अपनी बाणवर्षा से उनको आहत करने लगे ॥३८॥

तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्संहूयमानाविव हव्यवाहौ ।
भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥३६॥

हे नृप ! सब ओर से घेर कर इकट्ठे हुए कौरव वीरों तथा कर्ण पुत्र वृषसेन पर पाण्डु पुत्र भीमसेन और अर्जुन, क्रोध के साथ घोर बाणों की झड़ी लगाने लगे। ये इस समय घृत से सन्तर्पित अग्नि के तुल्य देदीप्यमान हो रहे थे ॥३६॥

अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम्
अयं च नो बाधते कर्णपुत्रस्तस्माद्भवान्प्रत्युपयातु कार्णिम्

इसके अनन्तर वायु पुत्र भीमसेन ने अर्जुन से कहा—तुम अत्यन्त पीड़ित नकुल की ओर देखो। यह कर्ण पुत्र वृषसेन हम को अपने बाणों से पीड़ित कर रहा है, इससे अब तुम इस कर्ण पुत्र पर आक्रमण करके दिखाओ ॥४०॥

स तन्निशम्यैव वचः किरीटी रथं समासाद्य वृकोदरस्य ।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीरमुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥४१

किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन के वचन सुन कर उनके रथ में चढ़ गया। और वहां नकुल को घायल अवस्था में देखा। महावीर अर्जुन को देखकर नकुल ने कहा—हे वीर ! तुम प्रथम इस महारथी वृषसेन का अन्त करो ॥४१॥

इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये ।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि वृषसेनयुद्धे नकुलपराजये चतुरशीतितमोऽध्यायः

हे राजन्! जब रण में सब के सन्मुख अपने भ्राता नकुल ने यह बात किरीटधारी अर्जुन से कही-तो महापराक्रमी अर्जुन ने श्रीकृष्ण से युक्त, कपिध्वजधारी अपने रथ को महारथी वृषसेन की ओर मोड़ दिया ॥४२॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में वृषसेन के युद्ध और नकुल के पराजय के वर्णन का चौरासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पिच्चासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं,
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम् ।
पवनधुतपताकाह्रादिनो वल्गिताश्वा,
वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमीयुः ॥१॥

द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा,
द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः ।
द्विरदरथनराश्वान्सूदयन्तस्त्वदीयान्भुज,
गपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब-राजा द्रुपद के पांचों महारथी पुत्र, छठे सात्यकि और शत्रुतापी, पांचों द्रौपदी पुत्रों ने नकुल को देखा, कि उनके धनुष और खड्ग कट चुके, वे रथ हीन होगए और कर्ण पुत्र वृषसेन के अस्त्र से भयभीत होकर भाग निकले उनको शत्र के बाण से बड़ी वेदना होरही है, तो वे शस्त्र लेकर अपनी २ ध्वजाओं को उड़ाते और अश्वों को नचाते हुए श्रीकृष्ण से प्रेरित हुए अपने २ रथों से उस रणाङ्गण में शीघ्रता से पहुंचे ये सर्प के तुल्य, बाणों से तुम्हारी सेना के हाथी, रथ, वीर और अश्वों का विध्वंस करते जारहे थे ॥१-२॥

अथ तत्र रथमुख्यास्तान्प्रतीयुस्त्वरन्तः,
कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च ।
शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च,
द्विरदजलजघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च ॥३॥

हे जनाधिप ! अब तुम्हारे मुख्य २ महारथी, कृपाचार्य, हृदिक पुत्र कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि के पुत्र उलूक, वृक,

क्राथ और देवावृध, आदि वीर, हाथी और शंखों की ध्वनि तथा रथ और धनुषों के सहित बड़े वेग से अपने शत्रुओं पर झपटे ॥३॥

तव नृप रथिवीरास्तान्दशैकं च ।
वीरान्नृवरशरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन् ।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयुर्गिरि,
शिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः ॥४॥

हे नृप ! इन तुम्हारे महारथियों ने पूर्वोक्त पाण्डवों के ग्यारह महारथी वीरों को उत्तम २ वीर और वाणों से दबा कर वेग से उनको रोक दिया। कुलिन्द वीरों ने भी पर्वत के समान भीषण आकार और वेगधारी, नवीन मेघों के तुल्य रूप वाले, हाथियों से कौरवों पर आक्रमण किया ॥४॥

सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा रणाभिकामैः कृतिभिःसमास्थिताः
सुवर्णजालैर्वितता बभुर्गजास्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः

सुवर्ण के आभूषणों से अच्छी तरह सजाए हुए मद से उत्कट रण के अभिलाषी वीरों से समारोहित, सुवर्णजाल से सुशोभित बड़े २ हाथी, इस तरह रणभूमि में लपके जैसे आकाश में बिजली वाले मेघ दौड़ते हैं ॥५॥

कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः कृपं ससूताश्वमपीडयद्भृशम् ।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः सहैव नागेन पपात भूतले ॥६॥

इसके अनन्तर कुलिन्द पुत्र ने अपने दश लोहमय वाण छोड़ कर सारथि और अश्वों के सहित कृपाचार्य को बहुत ही वींध

डाला, परन्तु शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने भी अपने बाणों से उसे इस तरह छेदा, कि वह अपने हाथी सहित पृथिवी पर गिर गया ॥६॥

कुलिन्दपुत्रावरजस्तु,
तोमरैर्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दतस्ततोऽस्य,
गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥७॥

अब कुलिन्द पुत्र के छोड़े भाई ने सूर्य के समान चमकीले लोह निर्मित तोमर शस्त्र से गर्जना करते हुए शकुनि पर आक्रमण किया, परन्तु गान्धार (पति) शकुनि ने उसका भी अपने शर से शिर का अपहरण कर दिया ॥७॥

ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः ।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवा न्परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः

जब बहुत से कुलिन्द वीर मारे गए तो तुम्हारे महारथी, बहुत ही प्रसन्न हुए। और वे अपने बड़े २ समुद्रोत्पन्न शंखों को बजाते हुए धनुष ले २ कर पाण्डव वीरों पर टूट पड़े ॥८॥

अथाभवद्युद्धमतीव दारुणं पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधैर्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् ॥६॥

हे राजसन्तप ! अब पाण्डव और सृञ्जय वीरों के साथ, कौरवों का अत्यन्त दारुण युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध, बाण , खड्ग,

शक्ति, ऋष्टि, गदा, परश्वध, आदि शस्त्रों द्वारा, वीर अश्व और हाथियों के प्राणों का अपहरण होने से बहुत ही भीषण हो रहा था ॥९॥

रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः परस्परं विप्रहताः पतन्त्यितौ ।
यथा सविद्यु त्स्तनिता वलाहकाःसमाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः

हे राजन्! जिस तरह बिजली से युक्त, मेघ, प्रचण्ड वायु-द्वारा आहत हुए प्रत्येक दिशासे गिरते हैं, उसी तरह रथी, अश्वारोही गजारोही और पैदल परस्पर एक दूसरे के द्वारा आहत होकर रणभूमि में गिरने लगे ॥१०॥

ततः शतानीकमतान्महागजांस्तथा रथान्पत्तिगणांश्च तान्बहून्
जघान भोजस्तु हयानथापतन्वणाद्विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः

हे राजेन्द्र! अब शतानीक के माने हुए उत्तम उत्तम हाथी, रथी, और बहुत से पैदलों को भोजराज कृतवर्मा ने मार डाला वे महारथी कृतवर्मा के वाणों से कट २ कर पृथिवी में गिरगए॥११॥

अथापरे द्रौणिहता महाद्विपास्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः ।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातितास्तथा यथा वज्रहता महाचलाः

इसके बाद, सारे आयुध, योद्धा और झण्डों से सुसज्जित, तीन महागज, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा मारे हुए प्राणहीन होकर भूमि में इस तरह गिर पड़े–जैसे वज्र से आहत होकर बड़े २ पर्वत गिर गए हों ॥१२॥

कुलिन्दराजावरजादनन्तरः,
स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् ।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः,
शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम् ॥१३॥

हे राजन् ! अब कुलिन्द राज के छोटे पुत्र से छोटे तीसरे पुत्र ने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के वक्षस्थल में तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया। राजा दुर्योधन ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके शरीर और उसके उस महागज पर प्रहार किया ॥१३॥

स नागराजः सह राजसूनुना पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन्
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥

कुलिन्द राज पुत्र का वह महागज राजपुत्र दुर्योधन द्वारा आहत हुआ, बहुत सा रक्त बहाता हुआ भूमि पर इस तरह गिर गया-जैसे इन्द्र के वज्र से आहत, गैरिक आदि धातुओं से युक्त कोई पर्वत वर्षाकाल में जल प्रवाह करता हुआ गिर गया हो ॥१४॥

कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः क्राथं ससूताश्वरथं व्यपोथयत् ।
ततोऽपतत्क्राथशराभिघातितः सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः

अब कुलिन्द पुत्र द्वारा प्रेरित किया हुआ दूसरा हाथी राजा क्राथ के समीप पहुंचा और उसने उसके सारथि और अश्वों के सहित रथ को नष्टभ्रष्ट कर डाला। अब राजा क्राथ ने भी अपना बाण छोड़ा, जिससे आहत होकर वह अपने सवार कुलिन्द राज

पुत्र के साथ इस भांति से गिर गया-जैसे वज्राहत कोई पर्वत गिर गया हो ॥१५॥

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः क्राथाधिपः पर्वतजेनदुर्जयः।
सवाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥

इसी समय एक पर्वत प्रान्तवासी गजारोही झपटा और उसने रथ में स्थित महादुर्जय, राजा क्राथ को अपने बाणों से छेद डाला कि वह अश्व, सारथि, धनुष और ध्वजा के साथ इस तरह गिर गया, जैसे महावायु से आहत कोई विशाल वृक्ष गिरजाता है ॥१६॥

वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत्
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥१७

इस पर्वत वासी गजारोही वीर पर राजा वृक ने अब अत्यन्त तीखे बारह बाणों का प्रहार किया। इसी समय उस भयङ्कर हाथी ने अश्वरथ सहित राजावृक का अपने चरणों से कुचल कर चूरन कर डाला ॥१७॥

स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम् ।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥१८

अब राजा बभ्रु के सुत के बाणों से अत्यन्त क्षतविक्षत होकर उस पर्वत वासी महावीर के साथ वह हाथी गिर गया। इसके अनन्तर राजा देवावृध का पुत्र बाणों से बहुत घायल हो गया और वह सहदेव पुत्र द्वारा मारा जाकर रणभूमि में गिरगया ॥१८॥

विषाणगात्रावरयोधपातिना गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः ।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्

इसके बाद, अन्य महावीर कुलिन्द पुत्र अपने दांत और पैरों से योद्धाओं को कुचलने वाले हाथी के द्वारा शकुनि, को मार देने को उसे आहत करता हुआ उस पर वेग से झपटा, तो गान्धार पति शकुनि ने, उसका शिर काट डाला ॥१६॥

ततः शतानीक हता महागजा हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः
सुपर्णवातप्रहता यथोरगास्तथा गता गां विवशा विचूर्णिताः

एक ओर नकुल पुत्र शतानीक ने तुम्हारे पक्ष के बड़े २ हाथी, अश्व, रथी और पैदल, इस तरह मार २ कर बिछा दिए जैसे गरुड़ की झपेट में आए हुए सर्प चूर्णित होकर परवश भूमि में गिर जाते हैं ॥२०॥

ततोऽभ्यविद्धयद्बहुभिः शितैः शरैः,
कलिङ्गपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन् ।
ततोऽस्य कोपाद्विचकर्त नाकुलिः,
शिरः क्षुरेणाम्बुजसन्निभाननम् ॥२१॥

अब कुछ मुसकुराते हुए कलिङ्ग पुत्र ने अपने बहुत से तीक्ष्ण बाणों से नकुल पुत्र शतानीक को बींध डाला। अब शतानीक ने भी कोप करके उसके कमल के समान सुन्दर मस्तक को अपने क्षुरके सदृश बाण से काट कर नीचे गिरा दिया ॥२१॥

ततः शतानीकमविध्यदायसैस्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभिर्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः

अब कर्ण पुत्र वृषसेन ने तीन लोहमय बाणों से शतानीक और तीन बाणों से अर्जुन को बींध दिया। इसी तरह उसने तीन से भीमसेन, सात से नकुल और बारह बाणों से जनार्दन कृष्ण को बींध डाला ॥२२॥

तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन्
पराक्रमज्ञास्तु धनञ्जयस्य ये हुतोऽयमग्नाविति ते तु मेनिरे ॥२३

मनुष्यातिशायी इस वीर कर्म को देख कर कौरव वीर बड़े प्रसन्न हुए और वे कर्ण पुत्र की बड़ी प्रशंसा करने लगे, परन्तु जो वीर अर्जुन के पराक्रम को जानते थे, उन्होंने तो अब इस कर्ण पुत्र को अग्नि में हुत हो गया ही समझा ॥२३॥

ततः किरीटी परवीरघाती हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः ।
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥
समभ्यधावद्वृषसेनमाहवे स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा ।

किरीटधारी शत्रुनाशक, पुरुषप्रवीर अर्जुन, जब रण के मध्य में माद्री पुत्र नकुल को अश्व रहित और श्रीकृष्ण को भी बहुत ही क्षतविक्षत देखा-तो उन्होंने सूत पुत्र कर्ण के पुत्र वृषसेन पर बड़े वेग से आक्रमण किया तथा वे उसके सन्मुख जाकर डट गए ॥२४॥

तमापतन्तं नरवीरमुग्रं महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ॥२५॥
अभ्यापतत्कर्णसुतो महारथं यथा महेन्द्रं नमुचिः पुराः तथा

नर व्याघ्र, उग्र वीर सहस्रों बाण धारी, अर्जुन को इस महारण में अपने ऊपर झपटता देख कर कर्ण सुत वृषसेन ने भी अर्जुन पर इस वेग से आक्रमण किया। जैसे-पूर्वकाल में नमुचि दैत्य ने इन्द्र पर आक्रमण किया था ॥२५॥

ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं शितेन विध्वा युधि कर्णपुत्रः ॥
ननाद नादं सुमहानुभावो विध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ।

अब जैसे वीर नमुचि ने इन्द्र को वींध कर गर्जना की थी, उसी तरह महाबली कर्ण पुत्र ने भी एक तीक्ष्ण बाण से अर्जुन को वींध कर रणाङ्गण में बड़ी तीव्र गर्जना की ॥२६॥

पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रैर्बाणैरविद्धयद्भुजमूले तु सव्ये ॥
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्पुनश्च पार्थं दशभिर्जघान ।

इसके अनन्तर भी वृषसेन ने अर्जुन कीबांयी भुजाके मूल में उग्र बाणों से प्रहार किया। इस के बाद नौ बाणों से अर्जुन को उसने बड़ा ही व्यथित किया ॥२७॥

पूर्वं यथा वृषसेनप्रयुक्तैरभ्याहतः श्वेतहयः शरैस्तैः ॥२८॥
संरम्भमीषद्गमितो वधाय कर्णात्मजस्याथ मनः प्रदध्रे ।

जब वृषसेन के छोड़े हुए बाणों से श्वेत अश्वधारी अर्जुन घायल हो चुके-तो उन्होंने कुछ क्रोध किया और कर्ण पुत्र वृषसेन के मारने की मन में चेष्टा की ॥२८॥

ततः किरीटी रणमूर्ध्निकोपात्कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे
मुमोच तूर्णं विशिखान्महात्मा वधे धृतः कर्णसुतस्य सङ्ख्ये

अब किरीटधारी महात्मा अर्जुन ने रणाङ्गण में क्रोध करके अपने मस्तक में त्रिवली धारण की। इसने इस युद्ध में कर्ण पुत्र के वध के निमित्त बाणों की झड़ी सी लगा दी ॥२६॥

आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वानहं रणे वृषसेनं तमुग्रम् ।
सम्पश्यतः कर्ण तवाद्य सङ्ख्ये नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः
ऊनं च तावद्धि जना वदन्ति सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ ।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥
संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽयमहं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् ।
पश्चाद्वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढमहं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥

अब बड़े उद्धत स्वभाव वाले अन्तक के समान शत्रु के नाश करने में समर्थ, अर्जुन ने अत्यन्त लाल नेत्र करके राजा दुर्योधन अश्वत्थामा आदि सारे कौरव वीरों के समक्ष कहा—हे कर्ण ! मैं तुम्हारे इस प्रचण्ड वीर वृषसेन को तुम्हारे देखते २ अब अपने तीक्ष्ण बाणों से यम लोक भेजता हूँ। तुम सब लोग पीछे मेरी निन्दा करोगे कि इसने मेरे पुत्र को मार डाला। वह तरस्वी वीर अकेला था और मैं उसके पास नहीं था-तुम ऐसा नहीं कह सकोगे मैं तुम लोगों के सन्मुख ही तुम्हारे इस वीर वृषसेन का वध

करता हूँ, तुम रथ में स्थित वीर इसकी रक्षा कर सको-तो इसे बचालो। इसके पीछे मैं अर्जुन तुझ कर्ण का भी रण के मध्य में वध करूंगा, उस समय तुम बहुत ही किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाओगे ॥३०-३३॥

तमद्य मूलं कलहस्य सङ्ख्ये दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ।
त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः
दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य यस्यानयादेष महान्क्षयोऽभवत् ।

हे कर्ण! तुम दुर्योधन के आश्रय से बड़े मदोन्मत्त हो रहेहो इससे इस सारे कलह के मूल तुमही हो। अब मैं बल पूर्वक तुझे मार कर रहूंगा और शीघ्र ही भीमसेन युद्ध में दुर्योधन को मारने वाला है। अधम पुरुष दुर्योधन की ही नीचता से यह क्षत्रियों का महान् विनाश हो गया है ॥३४॥

स एवमुक्त्वा विनमृज्य चापं लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ
ससर्ज बाणान्विशिखान्महात्मा वधाय राजन्कर्णसुतस्य सङ्ख्ये

हे राजन्! अर्जुन ने इतना कह कर अपने धनुष को खैंचा और रण में वृषसेन को अपना लक्ष्य बनाया। इसने कर्ण पुत्र वृषसेन के वध के लिए तीक्ष्ण नोक वाले बाणों का छोड़ना आरम्भ किया ॥३५॥

विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कैर्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन्किरीटी ॥३६॥
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च ।

अब हंसते २ किरीटधारी अर्जुन ने, दश बाण मार कर इस के मर्म स्थानों में प्रहार किया। इसके बाद चार तीक्ष्ण क्षुरोपम और बाण छोड़े, जिनसे इसकी दो भुजा एक धनुष और एक शिर को काट गिराया ॥३६॥

स पार्थबाणाभिहतः पपात रथाद्द्विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥
सुपुष्पितो वृक्षवरोऽतिकायो वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् ।

अर्जुन के बाण से वृषसेन घायल होगया। इसकी भुजा और शिर इसके शरीर से पृथक होगए। यह भूमि में इस तरह गिर पड़ा-जैसे पुष्पों से भरा हुआ, विशाल सुन्दर शाल का वृक्ष, पर्वत के शिखर से वायु द्वारा गिरा दिया गया हो ॥३७॥

सम्प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं रथात्सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥
रथं रथेनाशु जगाम रोषात्किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ।

जब सूत पुत्र कर्ण ने बाण से आहत होकर गिरते हुए अपने पुत्र को देखा-तो वह पुत्र के शोक से व्याकुल हो उठा। यह शीघ्र गामी कर्ण क्रोध में भर कर बड़े वेग से अपने रथ द्वारा किरीट-धारी अर्जुन के रथ पर झपटा ॥३८॥

ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य कर्णो हतं श्वेतहयेन सङ्ख्ये ।
संरम्भमागम्य परं महात्मा कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि वृषसेनवधे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

जब महारथी कर्ण ने अपने सन्मुख ही रण में श्वेत अश्वा वाले अर्जुन द्वारा अपने पुत्र का मारा जाना देखा-तो महावीर बड़ा क्रोधाविष्ट हुआ और उसने बड़े वेग से श्रीकृष्ण और अर्जुन पर आक्रमण कर दिया ॥३९॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में वृषसेन वध का
पिच्चासीवां अध्याय समाप्त हुआ



छियासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥१॥
अर्जुनं प्राह दाशार्हः प्रहस्य पुरुषर्षभः ।
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथिः ॥२॥
येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनञ्जय ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! बेला को तोड़ कर समुद्र की तरह उमड़ते हुए, देवों से भी दुर्वार, महाकायधारी, सिंह नाद करते हुए कर्ण को झपटते देखकर दशार्हवंशश्रेष्ठ, पुरुषश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण, हंस कर अर्जुन से बोले—हे धनञ्जय ! शल्य को सारथि बना कर श्वेत अश्वोंसे युक्त रथ पर स्थित महारथी कर्ण आ रहा

है, जिस के साथ तुम को युद्ध करना है अब तुम सावधान हो-जाओ ॥१-२॥

पश्य चैनं समायुक्तं रथं कर्णस्य पाण्डव ॥२॥
श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन च ।
नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम् ॥४॥
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ।

हे अर्जुन ! राधासुत कर्ण से सुशोभित, श्वेत अश्वों से युक्त तुम इस कर्ण के रथ को आंख भर कर देखो तो सही। इस रथ में अनेक पताकाएँ लग रही हैं। किङ्किणियों के जाल से यह बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। यह तो इन श्वेत अश्वों से ऐसा प्रतीत होता है, मानो यह आकाश में उड़ रहा हो ॥३-४॥

ध्वजं च पश्य कर्णस्य नागकक्षं महात्मनः ॥५॥
आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।

हे कौन्तेय ! तुम इस महावीर कर्ण की हाथी की शृङ्खला के चिन्ह से युक्त ध्वजा को तो देखो, जो आकाश को व्याप्त करती हुई इन्द्र के धनुष के समान रंगबिरङ्गी दिखाई देरही है ॥५॥

पश्य कर्णं समायान्तं धार्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ॥६॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ।

धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन के हित में तत्पर हुआ कर्ण वेग से बढ़ा चला आता है, जो बाणधारा को इस तरह छोड़ रहा है, जैसे मेघ, जलधारा छोड़ता हो-तुम इस को जरा ध्यान से देखो ॥६॥

एष मद्रेश्वरो राजा रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥७॥
नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौजसः ।

रथके अग्रभाग पर यह मद्रेश्वर राजा शल्य है। इस अत्यन्त ओजस्वी राधापुत्र कर्ण के अश्वों का यही सञ्चालन कर रहा है ॥७॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दं च दारुणम् ॥८॥
सिंहनादांश्च विविधाञ्शृणु पाण्डव सर्वतः ।

हे पाण्डव ! तुम इस दुन्दुभि की ध्वनि दारुण शङ्ख शब्द तथा अनेक प्रकार से सब ओर होने वाले, इस सिंह नाद को तो सुनो ॥८॥

अन्तर्धाय महाशब्दान्कर्णेनामिततेजसा ॥९॥
दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम् ।

अत्यन्त तेजस्वी कर्ण ने अपने धनुष की ध्वनि से अन्य सारे शब्द फीके बना दिए हैं। अब तुम धनुष के कंपन से उठने वाली कर्ण के धनुष की ध्वनि को तो सुनो ॥९॥

एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः ॥१०॥
दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने ।

हे अर्जुन ! कर्ण को देखते ही पञ्चालों के महारथी इस तरह भाग निकले, जैसे-क्रोधातुर सिंह को देखकर महावन में वन के जन्तु भाग निकलते हैं ॥१०॥

सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥११॥

नहि कर्णशरानन्यः सोढुमुत्सहते नरः ।

हे कौन्तेय ! अब तुम सारा बल लगा कर इस सूतपुत्र कर्ण का वध कर डालो । अन्य कोई भी वीर कर्ण के बाणों के सहने में समर्थ नहीं है ॥११॥

सदेवासुरगन्धर्वांस्त्रीँल्लोकान्सचराचरान् ॥१२॥

त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम ।

मैं यह जानता हूं, कि तुम, देव, असुर, गन्धर्वों से युक्त तीनों चराचर लोकों के जीतने में समर्थ हो-इसमें सन्देह नहीं है ॥१२॥

भीममुग्रं महात्मानं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् ॥१३॥

न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम् ।

त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः ॥१४॥

युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव ।

अत्यन्त भयङ्कर महावीर, तीन नेत्रधारी, उग्र शक्ति सम्पन्न कल्याणकारी, कपर्दी सर्वशक्तिमान भगवान् शङ्कर को कोई दृष्टि उठा कर देख भी नहीं सकता है, फिर उनसे युद्ध करने को तो चर्चा ही क्या है। परन्तु तुमने सब भूतों के कल्याणकारी शिवस्वरूप साक्षात् महादेव को युद्ध से सन्तुष्ट किया है तथा सारे देवों ने तुमको वरदान देरखे हैं ॥१३-१४॥

तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः ॥१५॥
जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा ।
श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि ॥१६॥

हे महाबाहो ! देवों के देव शूलधारी । उनही भगवान शङ्कर के अनुग्रह से तुम वृत्रासुर को इन्द्र की तरह इस कर्ण को मार गिराओ। हे पार्थ ! इसी में तुम्हारा कल्याण है, कि तुम युद्ध में विजय प्राप्त करो ॥१५-१६॥

अर्जुन उवाच—

ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः ।
सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन ॥१७॥

अर्जुन ने कहा—हे मधुसूदन ! कृष्ण ! मेरी अवश्य विजय होगी-इस में सन्देह नहीं है, जो सारे लोकों के गुरु आप मुझ पर सन्तुष्ट हो रहे हैं ॥१७॥

चोदयाश्वान्हृषीकेश रथं मम महारथ ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥१८॥

हे महावीर ! कृष्ण ! अब तुम मेरे अश्वों को हांको और रथ को आगे वढ़ाओ । आज विना कर्ण का वध किए अर्जुन समराङ्गण से नहीं लौटेगा ॥१८॥

अद्य कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम् ।
मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहतं शरैः ॥१९॥

हे गोविन्द ! आज मैं अपने बाणों से कर्ण के टुकड़े २ उड़ादूंगा जिससे तुम कर्णको मृतक देख सकोगे। यदि यह नहीं कर सका-तो तुम कर्ण के बाणों से मुझे रणभूमि में पड़ा हुआ देखोगे ॥१६॥

उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम् ।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥२०॥

आज त्रिलोकी को मोहित कर देने वाला यह घोर युद्ध उपस्थित हुआ है। लोग-जब तक भूमि रहेगी-तब तक इस युद्ध का वर्णन करते रहेंगे ॥२०॥

एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रति गजो यथा ॥२१॥

हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण से वार्तालाप करते हुए अर्जुन अपने रथ से वेग के साथ कर्ण पर इस तरह झपटे-जैसे एक गज दूसरे गज पर झपटता है ॥२१॥

पुनरप्याह तेजस्वी पार्थः कृष्णमरिन्दम ।
चोदयाश्वान्हृषीकेश कालोऽयमतिवर्तते ॥२२॥

हे अरिमर्दन ! धृतराष्ट्र ! अब फिर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे हृषीकेश ! तुम शीघ्र अश्वों को चलाओ-अब व्यर्थ समय निकला जारहा है ॥२२॥

एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना।
जयेन संपूज्य स पाण्डवं तदा प्रचोदयामास हयान्मनोजवान्
स पाण्डुपुत्रस्य रथो मनोजवः क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोऽभवत्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे वासुदेववाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः

हे राजसत्तम ! जब महावीर अर्जुन ने इतना कहा—तो श्रीकृष्ण ने जयाशीर्वाद के साथ अर्जुन की प्रशंसा करके मन के समान वेगधारी अश्वों को तीव्रगति से आगे बढ़ाया। मन के समान वेगधारी वह अर्जुन का रथ भी क्षण भर में ही महारथी कर्ण के रथ के सन्मुख पहुंच कर स्थित होगया ॥२३॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण-अर्जुन के सामने डट जाने के वर्णन का छियासीवां अध्याय समाप्त हुआ



सत्तासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! महारथी कर्ण, अपने पुत्र वृषसेन को मृतक देख कर शोक और क्रोध में भर गये । इस की आंखों में पुत्र के शोक से आंसूओं की धारा वह निकली ॥१॥

रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनञ्जयम् ॥२॥

कर्ण की आंखें आवेश से लाल होरही थीं । वह तेजस्वी कर्ण, शत्रुभूत धनञ्जय को ललकार कर उसके सन्मुख युद्ध के लिए पहुंचा ॥२॥

तौ रथौ सूर्यसङ्काशौ वैयाघ्रपरिवारितौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥३॥

इन दोनों वीरों के सूर्य के सदृश चमकने वाले और सिंह बने चर्म से आवृत थे । दोनों ओर की सेना ने इन दोनों रथों को इकट्ठे उदय हुए दो सूर्यों के सदृश देखा ॥३॥

श्वेताश्वौ पुरुषौ दिव्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि ॥४॥

इन दोनों वीरों के रथ में श्वेत ही अश्व जुड़े हुए थे। अब ये अरिमर्दन दोनों दिव्य पुरुष कर्ण और अर्जुन, युद्ध के लिए अपने सामने स्थित हुए ये महात्मा, आकाश में सूर्य और चन्द्रमा की तरह रणाङ्गण में शोभा पारहे थे ॥४॥

तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वसैन्यानि मारिष।
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥५॥

हे आर्य! इन दोनों को देखकर सारी सेना विस्मय करने लगी ये तो बड़े प्रयत्न से त्रिलोकी को विजय करने को उद्यत इन्द्र और विरोचन पुत्र बलि दैत्य की भांति प्रतीत होते थे ॥५॥

रथज्यातलनिह्रादैर्बाणसिंहरवैस्तथा।
तौ रथावभ्यधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम् ॥६॥

ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत।
हस्तिकक्षं च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः ॥७॥

रथ, धनुष की प्रत्यञ्चा, करतल आदि की ध्वनि बाणों की सनसनाहट, और सिंहनादों से युक्त दोनों रथों को दौड़ते तथा कर्ण की हाथी की शृङ्खला के चिन्ह से युक्त और अर्जुन की कपि चिन्ह युक्त ध्वजा को देखकर सारे राजाओं को बड़ा ही विस्मय उत्पन्न हुआ ॥६-७॥

तौ रथौ सम्प्रसक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥८॥

हे भारत ! इस तरह दोनों सेनाओं के राजा, उन रथों को सन्मुख उपस्थित देखकर बहुतसा सिंहनाद और साधुवाद (प्रशंसा) करने लगे ॥८॥

दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः ।
चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैवावधूननम् ॥६॥

इस समय कर्ण और अर्जुन का द्वैरथ (सामुख्य) देखकर सहस्रों योद्धा, अपनी भुजाओं को फटकार कर ताल ठोकने लगे और आनन्द चिन्ह सूचक वस्त्र उड़ाने लगे ॥६॥

आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः ।
कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शङ्खान्दध्मुश्च सर्वशः ॥१०॥

अब कौरवों ने सब ओर से बाजे बजाए, उन्होंने कर्ण को उत्साहित करते हुए सब ओर से शङ्ख बजाए ॥१०॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनञ्जयम् ।
तूर्यशङ्खनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥११॥

इसी तरह धनञ्जय अर्जुन को तूर्य और शङ्खों की ध्वनि से हर्षित करते हुए पाण्डव वीरों ने सारी दिशाएँ शब्दायमान करदी ॥११॥

क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ।
बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥१२॥

हे राजन्! इस कर्ण और अर्जुन के युद्ध में सिंह गर्जना, जंघाताल फटकारों की ध्वनि, ऊंचे कलकलाहट शूरवीरों के बाहुओं के शब्दों से सब ओर बड़ा ही कोलाहल मच गया ॥१२॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ ।
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥१३॥
वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शङ्खशोभितौ ।
तूणीरवरसम्पन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥१४॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ गोवृषाविव ।
चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शास्त्रसम्पत्तियोधिनौ ॥१५॥
चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ ।
कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥१६॥
सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ ।
सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ ॥
अन्योन्यवधमिच्छन्तावन्योन्यजयकांक्षिणौ ॥१७॥
अन्योन्यमभिधावन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ ॥१८॥
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ।
इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्यचन्द्रसमप्रभौ ॥१९॥
महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ ।
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ॥२०॥

यदृच्छया समायातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ युधि ॥२१॥
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ ।
बभूव परमो हर्षस्तावकानां विशाम्पते ॥२२॥
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनञ्जयौ ॥२३॥

हे विशाम्पते! ये दोनों वीर, रथ में स्थित, महाधनुर्धर, बाण शक्ति ध्वजा आदि से सुसज्जित, कवचधारी, खड्गयुक्त, श्वेताश्वों और शङ्खों से सुशोभित थे। इन्होंने उत्तम २ तूणीर कस रखे थे, जिनसे ये बड़े ही सुन्दर दिखाई देते थे। इनके शरीर लाल चन्दन से चर्चित मदोन्मत्त सांडों की तरह दिखाई देते थे ये बिजली की तरह चमकने वाले धनुष और ध्वजाओं से युक्त तथा दिव्य अस्त्रों से युद्ध करने को सन्नद्ध चँवर और पंखों से युक्त, श्वेत छत्रधारी थे। कर्ण का सारथि शल्य और अर्जुन के श्रीकृष्ण थे। जिनसे इन दोनों महारथियों की समानता प्रतीत होती थी। इनके सिंह के सदृश स्कन्ध, दीर्घ भुजाएँ, रक्त नेत्र थे इन्होंने सुवर्ण की माला पहन रखी थी। इनके सारे शरीर ही सिंह के सदृश दिखाई देते थे। इन महाबलियों की छाती बहुत ही दृढ़ और विशाल थी। ये एक दूसरे के जीतने के इच्छुक ही क्या? एक दूसरे को मार देना चाहते थे। गोष्ठ में एक वृषभ पर झपटने वाले दूसरे वृषभ की भांति ये भी रणाङ्गण में एक

दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। आवेश में भरे हुए पर्वत के सदृश मदस्रावी दो हाथियों के तुल्य इनके आकार दिखाई देरहे थे ये आशी विष सर्प के बच्चों के समान भीषण और यम तथा काल के तुल्य भयङ्कर थे। ये इन्द्र और वृत्रासुर के सदृश क्रोध में भरे हुए थे और सूर्य तथा चन्द्रमा के सदृश इनकी कान्ति थी। ये महाग्रह केतु की भांति कुपित होकर प्रलय करने को उद्यत से दिखाई देते थे। ये देवों की सी सन्तान, देवों के तुल्य, यज्ञी और देवों के तुल्य ही सुन्दर थे। ये तो अचानक युद्धभूमि में उपस्थित सूर्य चन्द्र से दिखाई देते थे। ये दोनों बड़े बलवान्, युद्धोद्धत और अनेक शस्त्र धारी थे। सिंह के समान डटे हुए इन दोनों पुरुष प्रवीर पुरुष रत्नों को देखकर तुम्हारे और पाण्डवों के वीर बड़े ही प्रहर्षित होरहे थे। इस समय पुरुष श्रेष्ठ कर्ण और अर्जुन को रण में सन्मुख देखकर सारे वीरों को अपने २ पक्ष के विजय में अत्यन्त सन्देह होरहा था ॥१३-२३॥

उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम् ॥२४॥

दोनों वीर कर्ण और अर्जुन ने उत्तम २ शस्त्रास्त्र धारण कर रखे थे और दोनों का रण का अभ्यास बहुत ही बढ़ा हुआ था। इन दोनों ने अपने २ बाहु फटकार कर नभस्थल को शब्दायमान कर दिया ॥२४॥

उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥२५॥

यह दोनों वीर अपने पुरुषार्थ और पराक्रम से संसार में बड़ी २ प्रसिद्धि पाये हुए हैं। ये दोनों शम्बर दैत्य और इन्द्र की भांति रण में समान ही पराक्रमी हैं॥२५॥

कार्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ।
विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि॥२६॥

कार्तवीर्य अर्जुन तथा दशरथ पुत्र राम के सदृश ये दोनों ही वीर बली थे और विष्णु के समान पराक्रमी और शंकर के सदृश युद्ध करने वाले थे॥२६॥

उभौ श्वेतहयौ राजन्रथप्रवरवाहिनौ।
सारथीप्रवरौ चैव तयोरास्तां महारणे॥२७॥

हे राजन्! इन दोनों के बहुत ही सुन्दर श्वेत अश्व थे। और ये दोनों ही उत्तम २ रथों पर सवार थे। इस घोर युद्ध में दोनों के ही बड़े कुशल श्रीकृष्ण और शल्य सारथि थे॥२७॥

ततो दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः समपद्यत॥२८॥

हे महाराज! अत्यन्त सुशोभित इन दोनों महारथियों को देख कर सिद्धचारण आदि देवों को भी विस्मय होने लगा॥२८॥

तव पुत्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम्॥२९॥
तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि॥३०॥

हे भरतर्षभ ! युद्ध में शोभा पाने वाले, महावीर कर्ण को तुम्हारे महाबली पुत्रों ने घेर रखा था और इसी तरह धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवों ने युद्ध में अनुपम वीर अर्जुन को घेर लिया था ॥२६-३०॥

तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद्विशाम्पते ।
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत्तदा ॥३१॥

हे विशाम्पते ! इस युद्ध में तुम्हारी ओर से एक पर कर्ण थे, और पाण्डवों की ओर से युद्ध-द्यूत में अर्जुन दाव पर रख दिया गया था ॥३७॥

त एव सभ्यास्तत्रासन्प्रेक्षकाश्चाभवन्स्म ते ।
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥३२॥

अब पाण्डवों के वीर और हमारी ओर के वीर, प्रेक्षक के रूप में स्थित होगए । आज इन के इस युद्धद्यूत में अवश्य जय और पराजय का निर्णय होना है ॥३२॥

ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय च ।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि ॥३३॥

हे राजन् ! हमारे पक्ष के वीर और पाण्डव वीर तो रण में चुप चाप खड़े थे और इन दोनों कर्णार्जुन का विजय और पराजय के निमित्त युद्ध का खेल होने लगा ॥३३॥

तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ ।
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥३४॥

हे महाराज! युद्ध में शोभा पाने वाले कर्णार्जुन, एक दूसरे पर क्रोधातुर हुए, एक दूसरे के वध की आकांक्षा से आमने सामने युद्ध के निमित्त उठकर खड़े होगए ॥३४॥

तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो ।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥३५॥

हे प्रभो! इन्द्र और वृत्रासुर के तुल्य ये दोनों वीर एक दूसरे पर प्रहार करने की इच्छा कर रहे थे। इस समय दोनों वीरों का धूमकेतु ग्रहों के सदृश महाभयङ्कर रूप प्रतीत होता था ॥३५॥

ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ ।
मिथोभेदाश्च भूतानामासन्कर्णार्जुनान्तरे ॥३६॥

हे भरतर्षभ! इन दोनों को देखकर आकाश में देवों में आक्षेप पूर्वक विवाद खड़ा होगया इसी तरह कर्ण और अर्जुन की विजय को पक्ष बना कर प्रत्येक प्राणी में मतभेद हो गया ॥३३॥

व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः सर्वलोकास्तु मारिष ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥३७॥

हे आर्य! इस विषय में तो देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, उरग राक्षस इन सारे ही प्राणियों का परस्पर भेद खड़ा होगया। इन में कोई कर्ण को और अर्जुन को विजयी बताने लगा ॥३७॥

प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे ।
द्यौरासीत्सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥३८॥

भूमिर्धनञ्जयस्यासीन्मातेव जयकांक्षिणी ।
गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजलास्तथा ॥३९॥
वृक्षाश्चोपधयश्चैव व्याश्रयन्त परस्परम् ।

कर्ण और अर्जुन के इस भीषण संग्राम में प्रत्येक का पक्ष प्रति पक्ष खड़ा हो गया। द्यौ, (द्युलोक) माता की तरह स्थित हो कर कर्ण के पक्ष में होगई और माता की भांति विजयाभिलाषिणी भूमि अर्जुन के पक्ष में हुई। पर्वत, समुद्र, जलपूर्ण नदी, वृक्ष, ओपधि, ये सारे ही परस्पर झगड़ने लगे ॥३८-३९॥

असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परन्तप ॥४०॥
ते कर्णं समपद्यन्त हृष्टरूपाः समन्ततः ।

हे परन्तप ! असुर, यातुधान, गुह्यक, सब दिशाओं में बड़े प्रसन्न दिखाई देते थे और वे कर्ण के पक्ष में विवाद कर रहे थे ॥४०॥

मुनयश्चारणाः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥४१॥
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः ।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥४२॥
वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिकस्तथा ।
सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ॥४३॥
विषवन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोऽभवन् ।

हे महाराज ! मुनि, चारण, सिद्ध, वैनतेय संज्ञक पक्षी, रत्न, निधि, रहस्य और संग्रह सहित सारे वेद, इतिहास आदि ग्रन्थ,

उपवेद, उपनिषद्, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक मणिक आदि सारे सर्प कुल सहित सारी कद्रू की सन्तान एवं अन्य विषधारी नाग, अर्जुन के पक्ष में थे ॥४१-४३॥

ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः ॥४४॥

एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पाश्च कर्णतः ।

ऐरावत हाथी के कुल में उत्पन्न हाथी, सुरभि गौ के वंश में उत्पन्न सारे वृषभ, बड़ी जाति के सर्प अर्जुन के पक्ष में थे और क्षुद्र सर्प कर्ण की ओर थे ॥४४॥

ईहामृगा व्यालमृगा माङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ॥४५॥

पार्थस्य विजये राजन्सर्व एवाभिसंस्थिताः ।

हे राजन ! भेड़िए, सिंह व्याघ्र, माङ्गलिक मृग और पक्षी, अर्जुन की विजय के निमित्त निकल २ पड़ते थे ॥४५॥

वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा ॥४६॥

अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो दश ।

धनञ्जयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोऽभवन् ॥४७॥

वसु, मरुत, साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, सोम, पवन, दशों दिशा, आदि अर्जुन के पक्ष में थे और अदिति पुत्र आदित्य संज्ञक देव कर्ण की ओर थे ॥४६-४७॥

विशः शूद्राश्च सूताश्च ये च सङ्करजातयः ।

सर्वशस्ते महाराज राधेयमभजंस्तदा ॥४८॥

हे महाराज ! वैश्य, शूद्र और सूत आदि सङ्कर जातियां-ये सारी सब तरह से कर्ण के पक्ष में थी ॥४८॥

देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणाः सपदानुगाः ।
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥४९॥
ब्रह्म क्षत्रं च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः ।

पितर, अपने गण और अनुचरों के सहित सारे देव, यमराज कुबेर, और वरुण, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, यज्ञ, और दक्षिणा अर्जुन के पक्ष में स्थित थे ॥४९॥

प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः ॥५०॥
राक्षसाः सह यादोभिः श्वसृगालाश्च कर्णतः ।

प्रेत पिशाच, मांसभोजी, वेनैले जन्तु और पक्षी, राक्षस, जल-जन्तु, कुत्ते और गीदड़ कर्ण के पक्ष में हुए ॥५०॥

देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ॥५१॥
तुम्बुरुप्रमुखा राजन्गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः ।
राधेयाः सहमौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥५२॥

देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षिगण, और तुम्बरु प्रभृति गन्धर्व, अर्जुन की ओर थे । मौनेय जाति के देव और अप्सराओं के गण, राधा पुत्र कर्ण की ओर थे ॥५१-५२॥

ईहामृगाः पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः ।
उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ॥५३॥

दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम् ।
देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्रिणः ॥५४॥
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः ।
तपो विद्यास्तथौषध्यो नानारूपबलान्विताः ॥५५॥
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे ।

भेड़िये आदि जन्तु, पक्षिगण, हाथी, अश्व, रथी और पैदल सैनिक, वायु से उड़ाए हुए मेघ और मनीषीगण, कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखने को वहां आपहुंचे । हे महाराज ! देव, दानव गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेद के ज्ञाता, महर्षि, स्वधाभुज पितर, तप, विद्या, नानारूप और शक्ति सम्पन्न ओषधियां ये सब आकाश में कोलाहल करते हुए स्थित हुए ॥५३-५५॥

ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ॥५६॥
भवश्चैव स्थितो याने दिव्यं तं देशमागमत् ।

ब्रह्मर्षि और प्रजापतियों को साथ लेकर ब्रह्मा और भगवान् शङ्कर दिव्य यानों में बैठ कर उसी दिव्य रणस्थल में पहुंच गए ॥५६॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ॥५७॥
अर्जुनो जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत्तदा ।
जयतामर्जुनं कर्ण इति सूर्योऽभ्यभाषत ॥५८॥
हत्वार्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे ।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनञ्जयः ॥५९॥

इति सूर्यस्य चैवासीद्विवादो वासवस्य च ।

पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोर्विबुधसिंहयोः ।

द्वैपक्ष्यमासीद्देवानामसुराणां च भारत ॥६०॥

जब इन्द्र ने, कर्ण और अर्जुन-इन दोनों महावीरों को युद्ध में सन्मुख स्थित देखा-तो उसने कहा—कि किसी प्रकार अर्जुन कर्ण को जीत लेवे और सूर्य ने कहा—किसी प्रकार कर्ण की जय होवे । अर्जुन को मार कर मेरा पुत्र कर्ण विजयी होवे या कर्ण को मार कर मेरा पुत्र अर्जुन, विजयी होवे-इस प्रकार सूर्य और इन्द्र में विवाद होने लगा । हे भारत ! जब इस तरह देव-श्रेष्ठ इन्द्र और सूर्य में पक्ष प्रति पक्ष बन गया-तो देव और असुरों में भी इनके साथ दो पक्ष होगए ॥५७-६०॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ।

अकम्पन्त त्रयो लोकाः सहदेवर्षिचारणाः ॥६१॥

सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च ।

यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः ॥६२॥

महाबली कर्ण और अर्जुन को युद्ध में प्रति द्वन्द्व में देखकर देव ऋषि और चारण आदि देव और तीनों लोक, सारे देवगण तथा सारे अन्य प्राणी भी कांपने लगे । जिस ओर अर्जुन थे उधर देव और जिधर कर्ण थे उधर असुर इकट्ठे होरहे थे ॥६१-६२॥

रथयूथपयोः पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः ।
दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयम्भुवमचोदयन् ॥६३॥

कौरव पाण्डव वीरों तथा रथ और यूथपतियों के पक्षों को देखकर सारे देव, स्वयम्भू ब्रह्मा से कहने लगे ॥६३॥

कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः ।
समोऽस्तु विजयो देव एतयोर्नरसिंहयोः ॥६४॥
कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत् ।
स्वयम्भो ब्रूहि नस्तथ्यमेतयोर्विजयं प्रभो ॥६५॥
स्वयम्भो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः ।

हे देव ! इन कौरव और पाण्डव महारथी कर्ण और अर्जुन में कौन विजयी होगा । इन दोनों पुरुष प्रवीरों में तो समान रूप से विजय दिखाई देती है । कर्ण और अर्जुन के विवाद में सारे जगत् को संशय होरहा है । हे स्वयम्भू ! प्रभो ! इनके विजय का बताने वाला वाक्य आप सत्य २ कहिए । हे भगवन् ! आप ही यह बता सकते हैं, अन्यथा इनका विजय पराजय का तो हमको भी अनुमान नहीं होता है ॥६४-६५॥

तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ॥६६॥
व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतां वरः ।
पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥६७॥
तत्तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन्मम ।

ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ॥६८॥
विजयो ध्रुवमेवास्य विजयस्य महात्मनः ।
खाण्डवेये हुतभुक्तोपितः सव्यसाचिना ॥६९॥
स्वर्गं च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम् ।

देवों के ये वचन सुनकर महाबुद्धिमान् इन्द्र ने प्रणाम-पूर्वक पितामह देवेश्वर ब्रह्मा से कहा—हे भगवन् ! आपने पूर्वकाल में कहा था, कि श्रीकृष्ण और अर्जुन की विजय होगी। हे देवेश ! अब वैसा ही होना चाहिए आपको नमस्कार है। आप कृपा कीजिए। ये वचन सुनकर ब्रह्मा और विष्णु इन्द्र से ये वचन बोले—हे इन्द्र ! अवश्यमेव महावीर अर्जुन की ही विजय होगी। अर्जुन ने खाण्डव वनमें अग्नि में हवन करके उसको तृप्त किया। और वहां निवास किया है। हे शक्र ! फिर स्वर्ग में अर्जुन आये और वहां-तुम्हारी सहायता की ॥६६-६९॥

कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥७०॥
एवं कृते भवेत्कार्यं देवानामेव निश्चितम् ।
आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥७१॥

यह कर्ण, दानव पक्ष में स्थित है-इससे इसका पराजय करना ही चाहिए। जब इसका—पराजय होगा-तभी तो देव कार्य सम्पन्न होंगे। हे त्रिदशेश्वर ! सब कार्यों की अपेक्षा अपना कार्य प्रथम करना चाहिए ॥७०-७१॥

महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा ।
विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥७२॥

महावीर अर्जुन, सत्यधर्म में परायण हैं। इस कारण से उनकी अवश्यमेव विजय होगी इसमें संशय न समझो ॥७२॥

तोषितो भगवान्येन महात्मा वृषभध्वजः ।
कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥७३॥

हे शतलोचन! जिसने युद्ध में महात्मा भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट किया—भला उनकी विजय कैसे न होगी ॥७३॥

यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः ।
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रोऽथ तपोधनः ॥७४॥
बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः ।
पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥७५॥

जिसके चक्र में स्वयं भगवान् विष्णु और सारथि में जगत्प्रभु श्रीकृष्ण हैं। अर्जुन बड़ा मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्र-विद्या में कुशल और तपोधन है। यह महातेजस्वी, सारे धनुर्वेद में पारङ्गत हैं। अर्जुन सब गुणों से युक्त है, अतएव इससे ही देवकार्य का सम्पादन होगा ॥७४-७५॥

क्लिश्यन्ते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशम् ।
सम्पन्नस्तपसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥७६॥

वनवासों के क्लेशों से पाण्डव, अत्यन्त दुःखी हैं। इसी कारण, यह पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन, तप से सम्पन्न है ॥७६॥

अतिक्रमेच्च माहात्म्याद्दिष्टमप्यर्थपर्ययम् ।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतं भवेत् ॥७७॥

यदि इसके कार्य के विपरीत दैव भी हो—तो भी यह उसको उलट देता है यदि यह बिगड़ बैठे-तो लोकों का विनाश ही हो जावे ॥७७॥

न विद्यते व्यवस्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित् ।
स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरुषर्षभौ ॥७८॥
नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात्परन्तपौ ॥७९॥

इन पुरुष सिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन के बिगड़ने से ठिकाना नहीं है। ये दोनों ही महानुभाव, जगत् के रचने वाले हैं। नर नारायण नामक ये प्राचीन ऋषि हैं इनका कोई नियमन नहीं कर सकता है। ये दोनों शत्रुतापी सबका नियमन (शासन) करने वाले हैं ॥७८-७९॥

नैतयोस्तु समः कश्चिद्दिवि वा मानुषेषु वा ।
अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ॥८०॥
सर्वदेवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च ।
अनयोस्तु प्रभावेन वर्तते निखिलं जगत् ॥८१॥

स्वर्गलोक और मृत्युलोक इन दोनों लोकों में इनके समान बली नहीं है। ये देवर्षि और चारणों के साथ तीनों लोकों में

घूम सकते हैं। सारे देवगण, सारे भूतप्राणी और सारा जगत् इनके ही प्रभाव में आया हुआ है॥८०-८१॥

कर्णो लोकानयं मुख्यानाप्नोतु पुरुषर्षभः ।
कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ॥८२॥
वसूनां समलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् ।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोकमवाप्नुयात् ॥८३॥

पुरुष श्रेष्ठ सूर्यपुत्र कर्ण भी महाबली हैं, वे अब उत्तम लोकों को प्राप्त हों। वे वसु या मरुतों के किसी भी लोक में अपनी इच्छानुसार जा सकते हैं यदि इच्छा हो तो वे द्रोण और भीष्म के साथ स्वर्गलोग में स्थित रह सकते हैं, परन्तु विजय तो कृष्णार्जुन की ही होगी ॥८२-८३॥

इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद्वचः ।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ॥८४॥
श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् ।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥८५॥

जब देवों के देव ब्रह्मा और शिव ने इतना कहा—तो सहस्र नेत्रधारी इन्द्र सारे प्राणियों को सम्बोधित करके ये वचन बोले हे महाभागो ! तुम लोगों ने ब्रह्मा और शंकर की आज्ञा सुन ली इन ऐश्वर्यशाली देवों ने जगत् के हित को ध्यान में रखकर जो कहा—इसे आप ने समझ लिया होगा। यह इसी तरह होगा यह

विपरीत नहीं हो सकता-तुम चिन्ता छोड़ कर आनन्द युक्त हो जाओ ॥८४-८५॥

इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष।
विस्मितान्यभवन्नान्पूजयाञ्चक्रिरे तदा ॥८६॥

हे आर्यगुण सम्पन्न ! राजन ! इन्द्र के ये वचन सारे प्राणी सुन कर विस्मय को प्राप्त हुए और उन की पूजा करने लगे ॥८६॥

व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः।
नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥८७॥

अब देव गण हर्षित होकर अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्प बरसाने लगे तथा अनेक प्रकार की देवों ने दुन्दुभियां बजाई ॥८७॥

दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः।
देवदानवगन्धर्वाः सर्व एवावतस्थिरे ॥८८॥

उन नर सिंहों का अद्भुत युद्ध देखने को सारे देव गन्धर्व और दानव, वहीं स्थित होगए ॥८८॥

रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनोः।
यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन्प्रहृष्टौ व्यवतिष्ठताम् ॥८९॥

हे राजन्! जिस दिव्य रथों में बड़े उत्साह-पूर्वक कर्ण और अर्जुन बैठे थे-उन दोनों ही रथों में श्वेत अश्व जुड़े हुए थे। इन दोनों वीरों के वे दिव्य रथ थे ॥८९॥

समागता लोकवीराः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ कर्णशल्यौ च भारत ॥६०॥

अब सारे संसार के छटे २ वीर वहां आपहुंचे और पृथक् २ अपने २ शङ्ख बजाने लगे । हे भारत ! वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा राजा शल्य और कर्ण भी शङ्ख बजाने लगे ॥६०॥

तद्भीरुसन्त्रासकरं युद्धं समभवत्तदा ।
अन्योन्यस्पर्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥६१॥

हे राजन् ! एक दूसरे से स्पर्धा करने वाले इन दोनों वीर कर्णार्जुन का इन्द्र और शम्बरासुर की भांति घोर युद्ध होनेलगा। जिस को देखकर कायर मनुष्य बड़े ही भयभीत होते थे ॥६१॥

तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ ।
राहुकेतू यथाकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥६२॥

इन दोनों वीरों की ध्वजा बड़ी उज्जवल थी, जो रथ पर फड़ फड़ाती हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थी । ये तो दोनों जगत् के क्षय को उदित हुए राहु केतु नामक ग्रहों के तुल्य प्रतीत होते थे ॥६२॥

कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा ।
पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या विराजते ॥६३॥

सर्प के तुल्य आकार वाली, उत्तम रत्नों से कल्पित, इन्द्र ध्वजा के तुल्य हाथी की कक्ष्या (शृङ्खला) के चिन्ह को धारण करने वाली कर्ण की दिव्य ध्वजा थी ॥६३॥

कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः ।
दंष्ट्राभिर्भीपयन्भाभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥६४॥

अर्जुन की ध्वजा में एक भयङ्कर वानर का चिन्ह था। जिसने काल की भांति मुख खोल रखा था। यह अपने दांतों की कांति से सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य होकर सबको भयभीत कर रहा था ॥६४॥

युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।
कर्णध्वजमुपातिष्ठत्स्वस्थानाद्वेगवान्कपिः ॥६५॥
उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा ।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥६६॥

गाण्डीवधारी अर्जुन की ध्वजा, युद्ध की अभिलाषा करके कर्ण की ध्वजा पर झपटी। इस समय वेगवान् कपि, अपने स्थान से विचलित होगया। महावेगशाली, कपि उछटा, और अपने हाथी की कक्ष्या के चिन्ह पर हाथ मारा। नख और दांतों से उसे इस तरह विशीर्ण कर दिया, जैसे गरुड़, सर्प को कर देता है ॥६५-६६॥

सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमायसी ।
अभ्यद्रवत्सुसंरब्धा हस्तिकक्ष्याथ तं कपिम् ॥६७॥

सुवर्ण के घुंघरूओं से युक्त, कालपाश के समान आकारवाली लोहमयी, हाथी की कक्ष्या भी आवेश से वानर ध्वजा पर झपटी ॥६७॥

तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते ।
प्राकुर्वतां ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥९८॥

जब इन दोनों महावीरों का आमना सामना होरहा था-और युद्ध-द्यूत उठरहा था, तो सबसे पूर्व इन ध्वजाओं का ही उत्कृष्ट-तर युद्ध होने लगा ॥९८॥

हया हयानभ्यहेषन्स्पर्धमानाः परस्परम् ।
अविध्यत्पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ॥९९॥

शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत ।
तत्राजयद्वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥१००॥

कर्णं चाप्यजयद् दृष्ट्या कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।

इसी तरह परस्पर स्पर्धा करते हुए अश्वों ने अश्वों पर हिन-हिनाते हुए आक्रमण किया। तथा कमललोचन श्रीकृष्ण ने अपने नेत्रशरों से मद्रराज शल्य को बींध लिया। राजा शल्य ने भी कमललोचन श्रीकृष्ण को उसी प्रकार तीखी दृष्टि से देखा, परन्तु श्रीकृष्ण के नयनशरों ने शल्य के नेत्रों के तेज को फीका कर दिया। कुन्ती पुत्र अर्जुन ने भी अपनी दृष्टि के तेज से कर्ण की दृष्टि के तेज को जीत लिया ॥९९-१००॥

अथाब्रवीत्सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ॥१०१॥
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित् ।
किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यताम् ॥१०२॥

अब मुसकुराते हुए शल्य से सूतपुत्र कर्ण ने कहा—हे शल्य यदि किसी प्रकार अर्जुन ने आज मुझे युद्ध में मार लिया-तो तुम सत्य बताओ-संग्राम में क्या करोगे ॥१०१-१०२॥

शल्य उवाच—

यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः ।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥१०३॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! यदि आज श्वेत वाहन धारी अर्जुन तुम्हें रण में मार लेगा-तो मैं सत्य कहता हूं- मैं अकेला ही आज इन दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन को रण में मारगिराऊंगा ॥१०३॥

सञ्जय उवाच—

एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत ।
तं प्रहस्याब्रवीत्कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः ॥१०४॥
पतेद्दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः ।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां हन्यात्कर्णो धनञ्जय ॥१०५॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इसी तरह अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा—परन्तु श्रीकृष्ण ने हंसकर उत्तर दिया-हे अर्जुन यह सत्य वचन कह रहाहूँ । सूर्य अपने स्थान से गिर सकता है, समुद्र सूख सकता है । अग्नि शीतल होसकता है, परन्तु कर्ण तुमको नहीं मार सकता ॥१०४-१०५॥

यदि चैतत्कथञ्चित्स्याल्लोकपर्यासनं भवेत ।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥१०६॥

यदि ऐसा कभी हो भी गया-तो लोक में उलट पलट मच जावेगी और मैं रण में अपनी भुजाओं से ही कर्ण और शल्य दोनों को अकेला ही मारलूंगा ॥१०६॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन्कपिकेतनः ।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥१०७॥

हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचन सुनकर कपिध्वजा धारी अर्जुन हंसने लगा । और उत्तम कर्म करने में परायण श्रीकृष्ण से ये बचन बोला ॥१०७॥

मम तावदपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन ।
सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥१०८॥
सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम् ।
द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥१०९॥
अद्यैव सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम् ।
संचूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥११०॥

हे जनार्दन ! कृष्ण ! कर्ण और शल्य ये दोनों मिलकर भी मेरे मारने में समर्थ नहीं है । मैं आज पताका ध्वजा, शल्य, रथ अश्व, छत्र, कवच, शक्ति, धनुष, बाण आदि सारे साधनों से सम्पन्न कर्ण को अनेक प्रकार से क्षत-विक्षत करके बाणों से मार गिराऊंगा । और तुम लोग इस कौतुक (तमाशा) को खड़े २

देखते रहोगे। मैं आज ही रथ, अश्व, शक्ति और कवचों के साथ कर्ण का इस तरह विनाश करदूंगा जैसे महावन में हाथी वृक्ष को चकनाचूर कर देता है ॥१०८-११०॥

अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम् ।
ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥१११॥
द्रष्टासि ध्रुवमद्यैव विधवाः कर्णयोषितः ।
नहि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा कृतम् ॥११२॥

हे माधव ! आज राधा पुत्र की भार्याओं को विधवापन प्राप्त होगा। आज उन्होंने अवश्य ही रात में बुरे स्वप्न देखेहोंगे। कर्ण की विधवा स्त्रियां आज अवश्य देखेंगी-कि कर्ण के पूर्ण दुर्व्यवहारों से उठा हुआ मेरा कोप शान्त नहीं होता दिखाई देरहा है ॥१११-११२॥

कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना ।
अस्मांस्तथावहसता क्षिपता च पुनः पुनः ॥११३॥
अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया ।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥११४॥

जब द्रौपदी सभा में लाई गई-तो उसे देखकर इस अदूरदर्शी मूर्ख कर्ण ने हम लोगों का बड़ा उपहास किया और हमपर बार २ आक्षेप किये। हे गोविन्द ! आज तुम उसी कर्ण को मुझसे इस

तरह नष्ट भ्रष्ट हुआ देखोगे जैसे मदोन्मत्त हाथी पुष्पों से भरे हुए वृक्ष को उखाड़ फेंकता है। ११३-११४॥

अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधुसूदन।
दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते ॥११५॥

हे मधुसूदन! आज कर्ण के रणभूमि में गिरादेने पर वीरलोग आ २ कर तुमको यह मधुर वाणी सुनावेंगे, कि हे कृष्ण! तुम विजयी हुए यह बड़े हर्ष की बात है ॥११५॥

अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि।
कुन्तीं पितृष्वसारं च प्रहृष्टः सज्जनार्दन ॥११६॥
अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव।
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं च पाण्डवम् ॥११७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमें द्वैरथे सप्ताशीतितमोऽध्यायः

हे जनार्दन! आज तुम प्रसन्न होकर अभिमन्यु की माता अपनी बहन सुभद्रा और अपने पिता की भगिनी कुन्ती को सच्ची सान्त्वना दे सकोगे। हे माधव! आज ही कर्ण के मारे जाने पर तुम रोती हुई द्रौपदी को सत्य आश्वासन देने में समर्थ होगे; और इसी तरह अमृत के समान वाणियों से आज पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर को शान्ति देसकोगे ॥११६-११७॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और अर्जुन के
युद्ध में समस्त होने के वर्णन का सत्तासीवां
अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तद्देवनागासुरसिद्धयक्षैर्गन्धर्वरक्षोऽप्सरसां च सङ्घैः।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं बभौ वियद्विस्मयनीयरूपम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! इस समय देव, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, रक्ष, अप्सराओं के संघ, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और सुवर्ण आदि दिव्य योनियों से भर कर आकाश बहुत ही अद्भुत दिखाई देरहा था ॥१॥

नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञैर्वादित्रगीतस्तुतिनृत्यहासैः।
सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः स्वस्थाश्च तद्विस्मयनीयरूपम् ॥

इस समय अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के सुन्दर बाजे बज रहे थे तथा बाजों के साथ, गीत स्तुति नांच और हास विलास होरहा था। सारे मनुष्योंने अन्तरिक्ष को यह दशा देखी और आकाश स्थित इन देवों ने भी युद्ध का यह विस्मयकारी रूप देखा ॥२॥

ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा वादित्रशङ्खस्वनसिंहनादैः।
विनादयन्तो वसुधां दिशश्च स्वनेन सर्वान्द्विषतो निजघ्नुः ॥

इस समय कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्ष के वीर इन बाजे शङ्खों की ध्वनि और सिंह नादों से आनन्दित होरहे थे। इन्होंने इस कोलाहल से सारी पृथिवी और दिशाएँ शब्दायमान करदी और सारे शत्रुओं पर परस्पर प्रहार करने लगे ॥३॥

नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम् ॥
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं रणाजिरं लोहितमाबभौ तदा ॥४॥

इस समय यह रणाङ्गण, नर, अश्व, हाथी और रथियों से व्याप्त था। शर, शक्ति, ऋष्टि आदि शस्त्रों के आघात से दुःसह था। वीर पुरुषों के सेवन के योग्य, मृत देहों से व्याप्त सारा रणाङ्गण लाल ही लाल दिखाई देरहा था ॥४॥

बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां यथा सुराणामसुरैः सहाभवत् ।
तथा प्रवृत्ते तुमुले सुदारुणे धनञ्जयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥
दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितैः
ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः कृतेऽन्धकारे ददृशुर्न किञ्चन

अब कौरव पाण्डवों का वैसा ही घोर युद्ध प्रवृत्त होगया-जैसे पूर्व में कभी देव और असुरों का हुआ था। अब पाण्डु-पुत्र अर्जुन और अधिरथ पुत्र कर्ण का अत्यन्त दारुण घोर युद्ध चल पड़ा। अत्यन्त तीक्ष्ण सीधे जाने वाले नुकीले बाणों से सारी दिशा और सारी सेना परस्पर व्याप्त होगई। अब तुम्हारे और शत्रुपक्ष के वीर, बाणों के अन्धकार में कुछ भी नहीं देखसके ॥५-६॥

भयातुरा एकरथौ समाश्रयंस्ततोऽभवत्त्वद्भुतमेव सर्वतः ।
ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परं तौ विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥

अब भयातुर वीर इकट्ठे ही एक रथ पर चढ़गए-इसके बाद सब ओर बड़ा अदृश्य अद्भुत उपस्थित होगया अब एक दूसरे के अस्त्र, परस्पर एक दूसरे के अस्त्रों से इस तरह टकराने लगे-जैसे पूर्व और पश्चिम का वायु टकरा-रहा हो ॥७॥

घनान्धकारे वितते तमोनुदौ यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ।
न चाभिसर्तव्यमिति प्रचोदिताः परे त्वदीयाश्च तथावतस्थिरे

गाढ़ अन्धकार के फैल जाने पर जैसे अन्धकार नाशक दो सूर्य निकल आएहों-उसी तरह कर्ण और अर्जुन दिखाई देने लगे अब सारे वीरों को यह आज्ञा होगई तुम कोई आगे न बढ़ना, इससे तुम्हारे और शत्रु पक्ष के वीर वहीं चुपचाप खड़े रहे ॥८॥

महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः सुरासुराः शम्बरवासवाविव ।
मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैः ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥६॥

दोनों पक्ष के वीरों ने इन दोनों महारथियों को इस तरह घेर लिया, जसे सुर और असुरों ने शम्बर और इन्द्र को घेर लिया था । मृदङ्ग, भेरी, पणव, और आनक आदि बाजों के शब्द और सिंह नादों से सारे वीर इन दोनों महावीरों को बड़ा ही उत्साहित करने लगे ॥६॥

शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनैर्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा ।
महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ सुवर्चसौ बाणसहस्रदीधिती ॥

ये दोनों पुरुष प्रवीर चन्द्रमा और सूर्य की भांति बड़े ही प्रदीप्त होरहे थे। ये दोनों अपने २ महाधनुषों के मण्डल में चक्कर लगा रहे थे। ये सहस्रों बाणों की किरणों से अत्यन्त ही चमचमा रहे थे ॥१०॥

दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद्युगान्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ।
उभावजेयावहितान्तकावुभावुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ॥

ये दोनों महावीर, चराचर जगत को दग्ध करने वाले दुःसह प्रलयकाल में सूर्य से प्रतीत होते थे, ये दोनों ही अजेय और शत्रु-नाशक थे, तथा दोनों ही एक दूसर के नाश के इच्छुक और युद्ध विद्या में कुशल थे ॥११॥

महाहवे वीतभयौ समीयतुर्महेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ।
ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ॥

इस घोर युद्ध में भय रहित होकर इन्द्र और जम्भासुर की भांति कर्ण और अर्जुन आगे बढ़े। अब भयानक बाणों के साथ ये दोनों महा धनुर्धर अपने २ महान अस्त्रों को छोड़ने लगे ॥१२॥

नराश्वनागानमितान्निजघ्नतुः परस्परं चापि महारथौ नृप ।
ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः
सनागपत्त्यश्वरथा दिशो दश तथा यथा सिंहहता वनौकसः

हे नृप ! इन दोनों महारथियों ने परस्पर एक दूसरे के अगणित नर अश्व और हाथी मार गिराए। इन दोनों वीरों के द्वारा धकेले हुए हाथी, पैदल, अश्व और रथों के सहित कौरव पाण्डव पक्ष के वीर सिंह से आहत हए वनचर जीवों की भांति दशों दिशाओं को पीछे धकेल दिए गए ॥१३॥

ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः कृपेण शारद्वतिसूनुना सह ॥
महारथाः पञ्च धनञ्जयाच्युतौ शरैः शरीरार्तिकरैरताडयन् ।

इसके अनन्तर कृपाचार्य और अश्वत्थामा के साथ राजा दुर्योधन, कृतवर्मा और शकुनि-ये पांचों कौरव महारथी, शरीर को पीड़ा पहुँचाने वाले शरों से श्रीकृष्ण और अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥१४॥

धनूंषि तेषामिषुधीन्ध्वजान्हयान्रथांश्च सूतांश्च धनञ्जयः शरैः
समं प्रमथ्याशु परान्समन्ततः शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ॥
अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः

हे राजर्षभ ! अब अर्जुन ने भी अपने शरों से उन शत्रुओं के धनुष, तूणीर, ध्वजा, अश्व, रथ और सारथियों को एक साथ अच्छी तरह छेद डाला और फिर नुकीले बारह बाणों से सूत-पुत्र कर्ण को भी बींध दिया। इस के बाद बड़े वेग से सौ रथ और सौ हाथी बुरी तरह घातक अर्जुन पर झपटे ॥१५-१६॥

शकास्तुपारा यवनाश्वसादिनः सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः
वरायुधान्पाणिगतैः शरैः सह क्षुरैर्न्यकृन्तन्प्रपतञ्शिरांसि च

अब शक, तुषार यवन, अश्वारोही और काम्बोज देश के प्रधान २ वीर हनन की इच्छा से हाथ में लिए क्षुर संज्ञक बाणों के साथ उत्तम उत्तम अस्त्र लेकर काटने लगे जिनसे अनेक वीरों के शिर कट २ कर गिर गए ॥१७॥

हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो धनञ्जयः शत्रुगणान्निनो क्षितौत्
ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिःस्वनाः ससाधुवादाहृपितैः समीरिताः
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शुभाः ।
तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं समीक्ष्य भूतानि विसिस्मियुस्तदा
तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ

अब अश्व, रथ, हाथी आदि की उत्तम सेना को लेकर युद्ध करने वाले शत्रु भूत कौरव वीरों को अर्जुन मार २ कर रण भूमि में गिराने लगा। यह देख कर प्रशंसा के साथ आनन्द में भरे हुए देव गण आकाश में अपने तूर्यों के शब्द करने लगे। इस समय आकाश से उत्तम गन्धधारी वायु प्रेरित, सुन्दर उत्तम पुष्पों की वृष्टि होने लगी। देव और मनुष्यों से दर्शनीय इस अद्भुत युद्ध को देख कर सारे प्राणी बड़े ही आश्चर्य में भर गये। हे भारत! इस समय तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन और सूत पुत्र कर्ण को न तो कोई व्यथा हुई और न उनको कोई अचम्भा ही हुआ क्योंकि वे तो युद्ध का एक मात्र निश्चय किये हुए थे ॥१८-१९॥

अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन्
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्

इसी समय तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के हाथ को पकड़ कर समझाता हुआ द्रोण सुत अश्वत्थामा कहने लगा—हे दुर्योधन! तुम प्रसन्न हो जाओ और विरोध को छोड़ कर पाण्डवों से संधि करलो। इस युद्ध को धिक्कार देकर बन्द करो ॥२०॥

हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्तथैव,
भीष्मप्रमुखा महारथाः ॥२१॥
अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः,
प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम्।

ब्रह्म के समान वर्चस्वी अस्त्र विद्या में कुशल गुरु द्रोणाचार्य मारे जा चुके। भीष्म आदि अनेक महारथी भी मारे गये। मैं और मेरे मातुल कृपाचार्य किसी से भी नहीं मारे जा सकते। अब तुम पाण्डवों से मिलकर चिरकाल तक शासन करो ॥२१॥

धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया, जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति
युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ।२२

यदि मैं रोकूंगा-तो अर्जुन अवश्य शान्त हो जावेगा। जनार्दन कृष्ण भी विरोध बढ़ाना अच्छा नहीं मानते। राजा युधिष्ठिर तो सारे प्राणियों के कल्याण में रत ही है और वृकोदर भीम तथा नकुल और सहदेव सारे धर्मराज की आज्ञा में चलने वाले हैं ॥२२॥

त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव
व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः

हे राजन्! यदि तुमने पाण्डवों के साथ समझौता कर लिया तो तुम्हारी इच्छा के साथ सारी प्रजा को कल्याण प्राप्ति हो जावेगी। तुम्हारे बन्धु भूत शेष राजा अपने २ घर को जावें और ये सारे सैनिक भी युद्ध से निवृत हो जावें ॥२३॥

न चेद्वचः श्रोष्यसि मे नराधिप ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि
इदं च दृष्टं जगता सह त्वया कृतं यदेकेन किरीटमालिना।
यथा न कुर्याद्बलभिन्न चान्तको न चापि धाता भगवान्न यक्षराट्
अतोऽपि भूयान्स्वगुणैर्धनञ्जयो न चातिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम्
तवानुयात्रां च सदा करिष्यति प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि

हे नराधिप! यदि तुमने मेरे कथन पर ध्यान नहीं दिया-तो तुम युद्ध में शत्रुओं द्वारा मारे जाते हुए अवश्य पश्चाताप करोगे यह तो तुमने और सारे जगत् ने देख लिया कि अकेले किरीट धारी अर्जुन ने रणाङ्गण में क्या कर दिखाया है। यह अवस्था बलासुर नाशक इन्द्र, यमराज, विधाता या भगवान् यक्षराट् कुबेर भी नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार अनेक गुणों से महान् भी अर्जुन मेरे ज्यों के त्यों बचनों को मान लेगा। वह कभी उनका अतिक्रमण नहीं करेगा। हे राजेन्द्र! अर्जुन तो सदा तुम्हारे कथन के पीछे २ चल सकता है। तुम अनुग्रह करो और सन्धि के लिए तय्यार हो जाओ ॥२५-२६॥

ममापि मानः परमः सदा त्वयि,
ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदाच्च ।
निवारयिष्यामि च कर्णमप्यहं,
यदा भवान्सप्रणयो भविष्यति ॥२७॥

हे दुर्योधन ! मैं तुम्हारा सदा से बड़ा मान करता आया हूं मैं बड़े मित्र भाव के कारण तुमसे ऐसा कहता हूं। यदि तुम इस सन्धि को तय्यार हो गये-तो मैं कर्ण को भी युद्ध से निवृत्त कर दूंगा ॥२७॥

वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणास्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम्
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु ॥२८॥

विद्वानों ने सहज, सन्धि, धन से अर्जित और प्रताप से वशी किये हुए चार प्रकार के मित्र माने हैं। पाण्डवों से तुम्हारा चारों प्रकार का मित्र सम्बन्ध है ॥२८॥

निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां गते हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयातुलम्

हे वीर ! जिनको ईश्वर ने तुम्हारा बन्धु बनाया-उनको तुम भी सन्धि द्वारा अपना बन्धु बनाओ। यदि तुम प्रसन्न हो गए और उनसे मित्रता स्थापित करली तो मानो तुमने संसार का बहुत ही अधिक उपकार कर दिया ॥२९॥

स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं,
विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाऽब्रवीत् ।
यथा भवानाह सखे तथैव तन्ममापि,
विज्ञापयतो वचः शृणु ॥३०॥

जब अपने सुहृद् भूत अश्वत्थामा ने यह हितकारी वचन कहा—तो राजा दुर्योधन ने कुछ सोचा और वह बहुत ही उदासी के साथ कहने लगा-हे सखे ! जो तुम कह रहे हो-यह ठीक है परन्तु जो कुछ मैं कहता हूँ- तुम उसको ध्यान से सुनो ॥३०॥

निहत्य दुःशासनमुक्तवान्वचः प्रसह्य शार्दूलवदेप दुर्मतिः ।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं न तत्परोक्षं भवतः कुत शमः ॥

हे अश्वत्थामा ! जब सिंह की तरह झपटकर दुष्ट भीमसेन ने बल पूर्वक दुःशासन को मारा और उस समय जो उसने वचन कहे-वे मेरे हृदय में शल्य की तरह गड़े हुए हैं। यह कोई आप के पीछे की बात नहीं है। इस दशा में कैसे सन्धि हो सकती है ॥२१॥

न चापि कर्णं प्रसहेद्रणेऽर्जुनो महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः ।
न चाश्वसिष्यन्ति पृथात्मजा मयि प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य

अर्जुन, रण में इस तरह कर्ण की टक्कर को नहीं सह सकता है, जैसे उग्र वायु भी मेरु महा पर्वत को नहीं उखाड़ सकता है। कुन्ती पुत्र धर्मराज आदि पाण्डव मुझ से सन्धि भी नहीं कर

सकते-क्योंकि उनको मेरे साथ हुए वैर का वार २ स्मरण आता रहेगा ॥३२॥

न चापि कर्णं गुरुपुत्रसंयुगादुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत ।

श्रमेण युक्तो महताद्य फाल्गुनस्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति

हे गुरु पुत्र !अच्युत ! इस समय तुमको कर्ण से यह कहना भी नहीं चाहिए, कि तुम युद्ध से निवृत हो जाओ । आज अर्जुन अत्यन्त श्रम से थका हुआ है । कर्ण इसे अभी मार लेता है ॥३३॥

तमेवमुक्त्वाप्यनुनीय चासकृत्तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान्

समाहिताभिद्रवताहितान्मम सवाणहस्ताः किमु जोषमासत ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां

कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अश्वत्थामा से इतना कहकर और उसकी बार २ विनय करके तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, सैनिकों को शिक्षा देने लगा । तुम लोग सावधान होकर मेरे शत्रुओं पर आक्रमण करो । धनुष बाण उठालो-कैसे चुपचाप खड़े तमाशा देख रहेहो ॥३४॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अश्वत्थामा के वाक्य का अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुआ



नवासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ ।

वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! अब शङ्ख भेरी आदि युद्ध के बाजों की ध्वनि होने लगी । नरश्रेष्ठ, श्वेत अश्व वाले, सूर्य पुत्र कर्ण और अर्जुन, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की दुर्मन्त्रणा से उत्पन्न किए हुए युद्ध में आगे बढ़े ॥१॥

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे ।

तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ धनञ्जयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥२॥

जिस तरह गर्भधारण को आई हुई हथिनी पर मदस्रावी, बड़े २ दांतों वाले हिमालय पर्वतोत्पन्न हाथी लड़ते हैं, उसी तरह उग्र पराक्रमी, महावीर, अर्जुन और अधिरथ पुत्र कर्ण, युद्ध के निमित्त खड़े होगए ॥२॥

बलाहकेनेव महाबलाहको यदृच्छया वा गिरिणा यथा गिरिः

तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिःस्वनैः समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥

जैसे एक महामेघ से दूसरा महामेघ और जैसे एक पर्वत से दूसरा पर्वत टकरा रहा हो इसी तरह बाणवर्षा बरसाने वाले कर्ण और अर्जुन, धनुष, प्रत्यञ्चा, करतल त्राण और रथ की नेमि की ध्वनि से युक्त हुए भिड़गए ॥३॥

प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोषधी प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ ।
यथाचलावाचलितौ महाबलौ तथा महास्त्रैरितरेतरं हतः ॥

बड़े २ शिखर वृक्ष, लता ओषधि आदि से युक्त, विस्तार को प्राप्त अनेक झरनों के स्थान, पर्वतों की भांति ये दोनों महाबली युद्ध में एक दूसरे की ओर आगे बढ़े। और महान् अस्त्रों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥४॥

स सन्निपातस्तु तयोर्महानभूत्सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा ।
शरैर्विभुन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः

इन दोनों का यह महान संघर्ष, इन्द्र और विरोचन पुत्र बलि के सदृश होने लगा। इसमें बाणों से दोनों के सारथि और अश्व लोहूलुहान थे। तथा कटुरक्त की धारा बह रही थी। जिस को अन्य कोई सह नहीं सकता था ॥५॥

प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ ।
सुसन्निकृष्टावनिलोद्धतौ यथा तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः

जिस तरह बहुत से कमल, उत्पल, मत्स्य और कच्छप आदि से व्याप्त, पक्षिगण से आवृत, दो महा-ह्रद, वायु से उमड़ाये हुए टकराते हैं, उसी तरह ये ध्वजा धारी दोनों वीर कर्णार्जुन परस्पर टकराने लगे ॥६॥

उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमावुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकैर्महेन्द्रवृत्राविव सम्प्रजघ्नतुः ॥७॥

ये दोनों महारथी इन्द्र के समान पराक्रमी और दोनों ही इन्द्र के तुल्य कान्तिधारी थे। ये इन्द्र के वज्र के समान बाण लेकर इन्द्र और वृत्रासुर की तरह युद्ध करने लगे ॥७॥

सनागपत्त्यश्वरथे शुभे बले विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे ।
चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे ॥८॥

हे राजन्! अर्जुन और कर्ण के इस युद्ध में हाथी, पैदल, अश्व, और रथों से युक्त, विचित्र कवच आभूषण, वस्त्र और शस्त्रधारी, आश्चर्यकारक रूप वाली दोनों ओर की सेना तथा आकाश गत, देवगण भी, काँपने लगे ॥८॥

भुजाः सवस्त्रांगुलयः समुच्छ्रिताः ससिंहनादैर्हृषितैर्दिदृक्षुभिः
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया

जिस समय अधिरथ पुत्र कर्ण के मारने की इच्छा से एक हाथी पर दूसरे मदोन्मत्त हाथी की भांति अर्जुन ने आक्रमण किया-तो उस समय देखने के लिए खड़े हुए वीर, वस्त्र (दस्तानों) समेत उठी हुई सिंह के पञ्जे की तरह भुजा करके सिंह की भांति गर्जना करने लगे ॥६॥

उदक्रोशन्सोमकास्तत्र पार्थं पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण श्रद्धां च राज्याद्धृतराष्ट्रसूनोः

इसी समय सब से आगे चलने वाले सोमक वीरों ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! तुम कर्ण को चीर डालो और शीघ्रता के

साथ इसके मस्तक को काट दो जिससे धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को अपने राज्य प्राप्ति की आशा भङ्ग होजावे ॥१०॥

तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन्
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः

हे नृप ! इसी तरह हमारी ओर के बहुत से योद्धा कर्ण से बोले-कि तुम अर्जुन पर आक्रमण करो। हे कर्ण ! अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से अब अर्जुन को मार लो, जिससे चिरकाल के लिए पाण्डव फिर वन को चलेजावें ॥११॥

तथा कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं महेषुभिर्दशभिः सम्प्रविध्यत् ॥
परस्परं तौ विशिखैः सुपुङ्खैस्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च ।
परस्परं तौ विभिदुर्विमर्दे सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ ॥१३॥

हे राजन् ! अब सब से प्रथम कर्ण ने अर्जुन पर दश बाण छोड़ कर उसे आहत किया। इसके बाद सूतपुत्र कर्ण और अर्जुन अपने उत्तम मूलधारी बाणों से परस्पर एक दूसरे को छेदने लगे इस युद्ध में एक दूसरे पर आघात करते हुए प्रसन्नता के साथ बड़ी भयानकता से आक्रमण करने लगे ॥१२-१३॥

ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य ।
नाराचनालीकवराहकर्णान्क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान् ॥

अपनी भुजा और धनुष को फटकार कर उग्रधनुषधारी अर्जुन, नाराच, नालीक, वराह कर्ण, अञ्जलिक और अर्धचन्द्र आदि अनेक बाणों को छोड़ने लगे ॥१४॥

ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः ।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम्

हे राजसत्तम ! अब अर्जुन के बाण सब ओर फैलगए और वे कर्ण के रथ में इस तरह घुसने लगे-जैसे सायङ्काल में नीचे को मुख किये हुए पक्षी निवास के लिए अपने वृक्षों की ओर दौड़ते हैं ॥१५॥

यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः ।
तान्सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः क्षिप्तान्क्षिप्तान्पाण्डवस्याशु सङ्घान्

अपनी भ्रकुटी और कटाक्ष को क्रोध से टेढ़ी करके शत्रु विजयी अर्जुन जिन बाणों को छोड़ता था, छोड़े हुए उन २ बाणों के समूह को अपने बाणों से सूतपुत्र कर्ण नष्ट कर डालता था ॥१६॥

ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः ।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं प्रवृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः
योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः ॥
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥

अब इन्द्र सुत अर्जुन ने शत्रुनाशक आग्नेय अस्त्र कर्ण पर छोड़ा। इस अस्त्र से भूमि अन्तरिक्ष, दिशाएँ और सूर्य के मार्ग रुक गए, जिस से कर्ण की देह प्रदीप्त हो उठी। कर्ण के साथी, योद्धाओं के वस्त्र जलने लगे। वे लोग, जलते वस्त्रों सहित ही

इधर उधर वेग से भागते दिखाई दिए। वन में जिस तरह बांसों के जलने से चटचटा शब्द होता है, उसी तरह अत्यन्त घोर शब्द होने लगा ॥१७-१८॥

तद्वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं सवारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे।
समुत्सृजन्सूतसुतः प्रतापवान्स तेन वह्निं शमयाम्बभूव ॥

जब कर्ण ने इस आग्नेयास्त्र को देखा-तो रणाङ्गण में उसके शान्त करने को महाप्रतापी सूतसुत कर्ण ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया जिससे उसने उस अग्नि को शान्त कर दिया ॥१९॥

वलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥

इस समय बड़ा वेगशील पर्वत के समान आकारधारी मेघ-समूह आगया जिसने सारी दिशा अन्धकार से व्याप्त करदी। इसने इतना जल बरसाया, कि सब ओर जल ही जल आगया॥२०॥

तैश्चातिवेगात्स तथाविधोऽपि नीतः शमं वह्निरतिप्रचण्डः
वलाहकैरेव दिगन्तराणि व्याप्तानि सर्वाणि यथा नभश्च ॥

ये मेघ बड़े वेग से आए और उन्होंने वह प्रचण्ड अग्नि, बिलकुल शान्त करदी। इन मेघों ने सारा आकाश और सारी दिशाएँ सब ओर से आच्छादित करदी ॥२१॥

तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किञ्चित्
अथापोवाह्याभ्रसङ्घान्समस्तान्वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात्

इस समय मेघों ने सारी दिशा ढकदी, जिससे इतना अन्धकार हुआ, कि कुछ भी दिखाई नहीं दिया। कर्ण के द्वारा जगाए हुए वरुणास्त्र से उमड़ते हुए मेघों के सारे समूह को वायव्यास्त्र से अर्जुन ने उड़ादिया ॥२२॥

ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम् ।
गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमन्त्र्य धनञ्जयः शत्रुसिरप्रधृष्यः ॥
ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रा नालीकनाराचवराहकर्णाः ।
गाण्डीवतः प्रादुरासन्सुतीक्ष्णाः सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥
ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः सुतेजना गार्ध्र पत्राः सुवेगाः ।
गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥२५॥
निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णास्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते

इसके बाद शत्रुओं से दुर्जय, अर्जुन ने इन्द्र प्रिय, अत्यन्त प्रभाव शाली, वज्र का आविर्भाव किया । इसने गाण्डीव धनुष और बाणों का अभिमन्त्रण करके उसे छोड़ा। इस समय गाण्डीव धनुष से अत्यन्त तीक्ष्ण, वज्र के समान वेगशाली, महाप्रभाव के धारण करने वाले, नुकीले, गृध पक्षी के पंख से युक्त, वेग सम्पन्न, सहस्रों बाण निकल पड़े। वे तीक्ष्ण बाण, कर्ण के समीप पहुंच कर उसके शरीर, सारे अश्व, धनुष, रथ के दोनों पहिए ध्वजा आदि को बींध कर इस तरह भूमि में घुस गए-जैसे गरुड़ पक्षी से डरे हुए सर्प बिल में घुस जाते हैं ॥२३-२५॥

शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥२६॥
दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा ।

कर्ण के सारे शरीरमें बाण व्याप्त होरहे थे। उसके शरीर से रुधिर की धारा बह निकली, क्रोध के कारण कर्ण की आंखें बदल गईं। अब महात्मा कर्ण ने समुद्र के समान घोष करने वाले, दृढ़ प्रत्यञ्चा से युक्त भार्गवास्त्र का प्रादुर्भाव किया ॥२६॥

महेन्द्रशस्त्राभिमुखान्विमुक्तांश्छित्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसङ्घान्
तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ जघान सङ्ख्ये रथनागपत्तीन् ।

महेन्द्र के अस्त्र द्वारा छोड़े हुए अर्जुन के बाणजाल को काट कर और अपने अस्त्र से अर्जुन के अस्त्र को फीका करके महारथी कर्ण रण में रथ, हाथी और पैदलों को मार कर गिराने लगा ॥२७॥

अमृष्यमाणश्च महेन्द्रकर्मा महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात् ॥२८॥
पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान्क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी ।
बाणैर्विव्याधाहवे सुप्रमुक्तैः शिलाशितै रुक्मपुङ्खैः प्रसह्य ॥२९॥
तत्पञ्चालाः सोमकाश्चापि राजन्कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः
क्रोधाविष्टा विव्यधुस्तं समन्तात्तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥

हे राजन ! क्रोध में भरे हुए, अत्यन्त वेगशाली, रण में किसी के आक्रमण को नहीं सहने वाले इन्द्र के समान पराक्रमी सूतपुत्र कर्ण ने अपने भार्गवास्त्र के प्रताप से युक्त शिला पर तीक्ष्ण किए हुए सुवर्ण मूलधारी, कुशलता से छोड़े हुए, बाणों से

रण में पञ्चालों के उत्तम २ योद्धाओं को बींधना आरम्भ किया कर्ण के बाण समूहसे रणमें पीड़ित हुए, पञ्चाल और सोमकवीरों ने भी क्रोधातुर होकर सब ओर से एक दम सूतपुत्र कर्ण को अपने तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया ॥२८-३०॥

तान्सूतपुत्रो निजघान बाणैः पञ्चालानां रथनागाश्वसङ्घान् ।
अभ्यर्दयद्बाणगणैः प्रसह्य विध्वा हर्षात्सङ्गरे सूतपुत्रः ॥३१॥

अब पञ्चाल वीरों के रथ, हाथी, और अश्व समूह को सूतपुत्र कर्णने मार २ कर बिछा दिया। बाणों के जाल से सूतपुत्र कर्ण ने रण में आनन्दित होकर बल-पूर्वक पञ्चाल सेना का बड़ा ही विध्वंस किया ॥३१॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ।
क्रुद्धेन सिंहेन यथेभयूथा महावने भीमबलेन तद्वत् ॥३२॥

कर्ण के बाणों से सब की देह छिन्न भिन्न होगई। वे चीत्कार मारते हुए प्राण विहीन होकर रणभूमि में गिरने लगे। भयानक बलधारी कर्ण ने अनेक पञ्चाल वीरों को इस तरह गिरा दिया जैसे-महावन में सिंह हाथियों के समूह को मार गिराता है ॥३२॥

पञ्चालानां प्रवरान्संनिहत्य प्रसह्य योधानखिलानदीनः ।
ततःस राजन्विरराज कर्णो यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः ॥३३॥

हे राजन्! उद्धतस्वभावधारी, कर्ण ने, पञ्चालों के उत्तम २ अनेक महारथी वीर बल के साथ मार २ कर गिराए। यह इस

समय आकाश में उग्रकिरण धारी, सूर्य की भांति चमक रहा था ॥३३॥

कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयाः परां मुदं सिंहनादांश्च चक्रुः।
सर्वे ह्यमन्यन्त भृशाहतौ च कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥३४॥

हे कौरवों! जब तुम्हारे पक्ष के वीरों नें कर्ण की विजय देखी, तो वे बड़े आनन्दित हुए और सिंहनाद करने लगे। सबने यही समझा कि महारथी कर्ण ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को बहुत ही क्षत विक्षत कर दिया ॥३४॥

तत्तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम्।
दृष्ट्वा च कर्णेन धनञ्जयस्य तथाजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥३५॥
ततस्त्वमर्षी क्रोधसन्दीप्तनेत्रो वातात्मजः पाणिना पाणिमाच्छ्र्व्
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धममर्षितो निःश्वसञ्जातमन्युः ॥३६॥

महारथी कर्ण के ऐसे भीषण, शत्रु से असह्य पराक्रम को तथा रण के मध्य में कर्ण द्वारा अर्जुन के अस्त्र को निहत देखकर वायु सुत भीमसेन, क्रोध में भर गया और उसकी आंखें-क्रोध से जल उठी। वह हाथ मलने लगा। यह आवेश में भर कर श्वास लेता हुआ शोक पूर्वक अर्जुन से इस प्रकार कहने लगा ॥३६॥

कथं नु पापोऽयमपेतधर्मः सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य।
पञ्चालानां योधमुख्याननेकान्निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम् ॥

हे अर्जुन ! यह धर्महीन पापी सूत पुत्र कर्ण, आज युद्ध में किस तरह तुम्हारे सन्मुख ही पञ्चालों के मुख्य २ अनेक योद्धाओं को मार २ कर बिछा रहा है ॥३७॥

पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः साक्षात्स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य ।
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटिन्नथेषुभिर्दशभिः प्रागविध्यत् ॥

हे किरीटिन् ! देवों से अजेय कालकेय राक्षसों को तुमने जीता तथा महादेव से बाहु युद्ध में स्पर्श प्राप्त किया फिर भी तुमको दश बाणों से कैसे कर्ण ने बींध लिया। इसके अतिरिक्त तुम्हारे छोड़े हुए बाणों को इसने काट गिराया-जिसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥३८॥

त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद्बाणसङ्घानाश्चर्यमेतत्प्रतिभाति मेऽद्य ।
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं यथाब्रवीत्षण्ढतिलान्स्म वाचः ॥
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पापं जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन्

द्रौपदी के क्लेश और हम लोगों को कहे हुए षण्ढतिल आदि दुर्वचनों की ओर तो जरा दृष्टि दो। हे सव्यसाचिन् ! इस पाप बुद्धि निर्भिक दुरात्मा सूत पुत्र कर्ण ने वे कैसी रूक्ष और तीखी वाणी कही थी। तुम उन सारी कटु वाणियों का स्मरण करकेइस पापी कर्ण का शीघ्र युद्ध में नाश करो ॥३९-४०॥

कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटिन्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः ।
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषीर्ग्रासं ददत्खाण्डवे पावकाय ॥
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्वमहं चैनं गदया पोथयिष्ये ।

हे किरीटधारी अर्जुन! तुम कैसे उपेक्षा (लापरवाही) कर रहे हो। यह समय उपेक्षा का नहीं है। जिस बल के धारण से तुमने खाण्डव वन में सब प्राणियों को जीता और अग्नि को भोजन देकर तृप्त किया-उसी धैर्य से तुम आज इस कर्ण को मारो। यदि तुम ऐसा करने में असमर्थ हो तो-लो मैं इसको अपनी गदा से चूर्ण करदेता हूँ ॥४१॥

अथाब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थं दृष्ट्वा रथेषून्प्रतिहन्यमानान् ॥
अमीमृदत्सर्वथाद्य कर्णो ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन्
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से नदन्त्येते कुरवः सम्प्रहृष्टाः ॥४२॥
कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे त्वदास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम् ।

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण ने भी रथ की रस्सी छिन्न भिन्न देखकर अर्जुन से कहा—हे किरीटिन्! इस घोर युद्ध में कर्ण ने तुम्हारे अस्त्र को अपने अस्त्रों से बिल्कुल निस्तेज कर दिया है। हे वीर! तुम कैसे मोह में स्थित हुए कुछ ध्यान नहीं दे रहे हो ये कौरव वीर आनन्द में भरे हुए गर्जना कर रहे हैं। इन्होंने कर्ण को आगे करके कर्ण के अस्त्रों से तुम्हारे अस्त्रों को नष्ट होते हुए स्पष्ट देखा है ॥४२-४३॥

यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः ॥
दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य ।

जिस बल के प्रभाव से तुमने राक्षसों के तामसास्त्र का नाश किया और घोर राक्षस भी मार गिराये तथा दम्भोद्भव आदि अन्य भी अनेक महाबली राक्षस मार दिए-तुम आज उसी पराक्रम का अवलम्बन करके कर्ण को मारो ॥४४॥

अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य सञ्छिन्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य ॥४५।
मया विसृष्टेन सुदर्शनेन वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः ।

हे अर्जुन ! अब तुम क्षुर के समान तीक्ष्ण और नेमि के समान पुष्ट बाणसे अपने इस शत्रु का इस तरह मस्तक काट डालो-जैसे-मेरा फैंका हुआ सुदर्शन चक्र|या इन्द्र का वज्र नमुचि दैत्य का शिर काट देता है ॥४५॥

किरातरूपी भगवान्सुधृत्या त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत् ॥
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् ।

तुमने किरात रूपधारी महाबली भगवान् शङ्कर को युद्ध में सन्तुष्ट किया है । हे वीर ! आज तुम उसी पराक्रम को धारण करके सेना सहित इस सूत पुत्र कर्ण का भी वध कर डालो ॥४६॥

ततो महीं सागरमेखलां त्वं सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसङ्घां यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम् ।

हे पार्थ ! कर्ण के मारते ही समुद्र की मेखला से सुंदर, नगर ग्राम संयुक्त समृद्धशालिनी सारी पृथिवी को धर्मराज के लिए सौंपी

ही समझो। तुम्हारे सारे शत्रु मारे जा चुकेंगे जिससे तुम्हें बड़े ही यश की प्राप्ति होगी ॥४७॥

स एवमुक्तोऽतिबलो महात्मा चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥
स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां स्मृत्वा तथात्मानमवेक्ष्य सर्वम्
इहात्मनश्चागमने विदित्वा प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥४९॥

जब भीम और श्रीकृष्ण ने इतना कहा—तो महारथी अर्जुन ने सूत पुत्र कर्ण के वध के निमित्त ध्यान लगाया। इसने भीम और जनार्दन कृष्ण की प्रेरणा से सब कुछ याद किया और अपने स्वरूप की ओर देखा तथा अपने अवतार लेने के प्रयोजन को समझ कर वह श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥४८-४९॥

प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः ।
तन्मेऽनुजानातु भवान्सुराश्च ब्रह्मा भवो वेदविदश्च सर्वे ॥५०॥

अब मैं लोक कल्याण और सूत पुत्र कर्ण के वध के लिए इस उग्र अस्त्र का प्रयोग करता हूं। अब आप सारे देव ब्रह्मा शिव और वेदज्ञाता ब्राह्मण मुझे आज्ञा देवे ॥५०॥

इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची नमस्कृत्वा ब्रह्मणे सोऽमितात्मा
तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं प्रादुश्चक्रे मनसा यद्विधेयम् ॥५१॥

इतना कहकर श्रीकृष्ण से अपरिमित बलशाली सव्यसाची अर्जुन ने ब्रह्मा को नमस्कार की और इसके अनन्तर शत्रु से असह्य ब्रह्मास्त्र का मन से ध्यान लगाकर प्रादुर्भाव किया ॥५१॥

तदस्य हत्वा विरराज कर्णो मुक्त्वा शरान्मेघ इवाम्बुधाराः
समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु तथाजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥
ततोमर्षी बलवान्क्रोधदीप्तो भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धम् ।

अब कर्ण भी जैसे मेघ, जलधारा छोड़ता है उसी तरह बाण धारा छोड़ कर रण भूमि में चमकने लगा। जब बलवान् भीमसेन ने कर्ण द्वारा रण के मध्य में अर्जुन का यह ब्रह्मास्त्र भी निहत देखा-तो वह बड़े आवेश और क्रोध में भर कर सत्य प्रतिज्ञ अर्जुन से कहने लगा ॥५२॥

ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं ब्राह्मं विधेयं परमं जनास्तत्
तस्मादन्यधोजय सव्यसाचिन्निति स्मोक्तोऽयोजयत्सव्यसाची ॥
ततो दिशः प्रदिशश्चापि सर्वाः समावृणोत्सायकैर्भूरितेजाः
गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रैर्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ।

हे सव्यसाचिन् ! हम लोग तो समझते थे, कि तुम परमशक्तिशाली महान् ब्रह्मास्त्र का अच्छा प्रयोग जानते थे-परन्तु वह व्यर्थ गया। अब तुम दूसरे अस्त्र का प्रयोग करो जब भीम ने इतना कहा—तो सव्यसाची अर्जुन ने दूसरे महान् अस्त्र का प्रयोग किया। इस अस्त्र से अत्यन्त तेजस्वी, अर्जुन ने बाणधारा छोड़ कर दिशा और प्रदिशा आच्छादित करदी। ये गाण्डीव से छोड़े हुए बाण, सर्पों की भांति उग्र और सूर्य की किरणों के तुल्य, प्रदीप्त हो रहे थे॥५३-५४॥

सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण शतं शतानीव सुवर्णपुङ्खाः ॥५५॥
प्राच्छादयन्कर्णरथं क्षणेन युगान्तवन्ह्यर्ककरप्रकाशाः।

भरतवंशश्रेष्ठ अर्जुन ने सुवर्ण मूलधारी सहस्रों बाण फैंके, जो प्रलय काल के अग्नि और सूर्य की किरणों के समान प्रज्वलित थे। उन्होंने क्षण भर में कर्ण के रथ को आच्छादित कर दिया॥५५॥

ततश्च शूलानि परश्वधानि चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥
निश्चक्रमुर्घोरतराणि योधास्ततो ह्यहन्यन्त समन्ततोऽपि।

इस महास्त्र से शूल, परश्वध, चक्र, सैंकड़ों अत्यन्त घोर नाराच बाण निकल पड़े जिनसे सब ओर अनेक योधा मारे गए॥५६॥

छिन्नं शिरः कस्यचिदाजिमध्ये पपात योधस्य परस्य कायात्
भयेन सोऽप्याशु पपात भूमावन्यः प्रणष्टः पतितं विलोक्य

किसी शत्रुवीर का रण के मध्य में शिर कट गया और वह शरीर से पृथक होकर रणभूमि में गिर गया। इस प्रकार अपने साथी का शिर पृथिवी पर गिरता हुआ देखकर साथी दूसरा वीर भी भय से पृथिवी में गिरगया और नष्ट होगया ॥५७॥

अन्यस्य सासिर्निपपात कृत्तो योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः
अन्यस्य सव्यः सह वर्मणा च क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम्

हाथी की सूंड के तुल्य सुन्दर, खड्ग सहित किसी योद्धा का हाथ कटकर गिर गया। दूसरे वीर का बांया हाथ, कवच के सहित क्षुर बाण से कटकर पृथिवी पर गिर गया ॥५८॥

एवं समस्तानपि योधमुख्यान्विध्वंसयामास किरीटमाली ॥
शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरैर्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव ।

हे राजन् ! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुन ने बहुत से मुख्य २ योद्धाओं को विध्वंस कर दिया। तथा शरीर का अन्त कर देने वाले घोर बाणों से राजा दुर्योधन की सेना बहुत सी नष्ट कर डाली ॥५९॥

वैकर्तनेनापि तथाजिमध्ये सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥
ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः ।

सूर्य पुत्र कर्ण ने भी रणाङ्गण में बहुत से बाण छोड़े। वे बाण सनसनाते हुए पाण्डु पुत्र अर्जुन पर गिरने लगे। इस तरह कर्ण ने मेघ से छुटी हुई जलधारा के तुल्य बाणों की झड़ी लगादी ॥६०॥

ततः सकृष्णं च किरीटिनं च वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य ननाद घोरं महता स्वरेण ।

अपरिमित प्रभाव शाली, महाबली, कर्ण ने, श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेन को तीन २ बाणों से बींध कर बड़े उच्चस्वर में गर्जना की ॥६१॥

सकर्णबाणाभिहतः किरीटी भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ॥
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः शरान्दशाष्टौ च समुद्धबर्ह ।

कर्ण के बाणों से आहत किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन और जनार्दन कृष्ण को आहत देखकर क्रोध से उबल उठा और उसने अब, दश और आठ अट्ठारह बाण तूणीर से निकाले ॥६२॥

स केतुमेकेन शरेण विध्वा शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ॥
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम् ।

अर्जुन ने एक बाण से कर्ण की ध्वजा, चार से सारथि मद्रराज शल्य तथा तीन बाणों से कर्ण को बींध लिया। एवं दश बाणों से सुवर्ण कवच धारी राजकुमार सभापति के शरीर को बींध दिया ॥६३॥

स राजपुत्रो त्रिशिरा विबाहुर्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ॥
हतो रथाग्रादपतत्स रुग्णः परश्वधैः शाल इवावकृत्तः ।

इन दश बाणों से राजपुत्र सभापति का शिर, दो भुजा, चार अश्व, सारथि, धनुष और ध्वजा कट कर गिरगई। जिस तरह कुल्हाड़ी से काटा हुआ, शाल का वृक्ष कटकर गिर जाता है, उसी तरह मृतक हुआ वह घायल राज पुत्र रथ के अग्रभाग से नीचे गिर गया ॥६४॥

पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विध्वा ॥
चतुःशतान्द्विरदान्सायुधान्वै हत्वा रथानष्टशताञ्जघान ।

अब अर्जुन ने तीन फिर, आठ, दो, चार, दश बाण कर्ण के शरीर में मारे। इसी तरह इसने शस्त्रधारी चारसौ हाथी और आठसौ रथी वीर मार गिराए ॥६५॥

सहस्रशोऽश्वांश्च पुनः ससादीनष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान्
कर्णं ससूतं सरथं सकेतुमदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे ।

इसी तरह महारथी अर्जुन ने अश्वारोहियों सहित सहस्रों अश्व और आठ सहस्र पैदल सैनिक मार गिराए और कर्ण को भी सीधी गति वाले बाणों से रथ और ध्वजा के साथ, सब ओर से अदृश्य कर दिया ॥६६॥

अथाक्रोशन्कुरवो वध्यमाना धनञ्जयेनाधिरथिं समन्तात् ॥
मुञ्चाभिविध्यार्जुनमाशु कर्ण बाणैः पुरा हन्ति कुरून्समग्रान्

जब धनञ्जय अर्जुन द्वारा कौरव वीर इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट किए गए-तो वे अधिरथ पुत्र कर्ण के चारों ओर आकर पुकारने लगे, कि हे कर्ण ! तुम शीघ्र २ बाणों को छोड़ो और अर्जुन को बींध लो-देखते नहीं हो-तुम्हारे सन्मुख ही वह अपने बाणों से सारे कौरव दल को नष्ट कर रहा है ॥६७॥

स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो मुमोच बाणान्सुबहूनभीक्ष्णम् ॥
ते पाण्डुपञ्चालगणान्निजघ्नुर्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धा ।

जब उन वीरों ने पुकार की-तो कर्ण भी बड़े प्रयत्न से लगातार बहुत से बाण छोड़ने लगा। इन रक्त की कीचड़ में सने

हुए मर्मच्छेदी बाणों ने पाण्डव और पञ्चाल वीरों के समूहों को मार २ कर बिछा दिया ॥६८॥

तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥६९॥
निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्रमन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः ।

ते दोनों वीर सारे धनुर्धरों में उत्तम और महाबली थे तथा अपने २ शत्रु के प्रहार के सहने में समर्थ थे । ये दोनों कर्णार्जुन अपने महास्त्रों से उग्र शत्र सेना को मारने लगे क्योंकि ये दोनों ही अस्त्र विद्या में बड़े कुशल थे ॥६६॥

अथोपयातस्त्वरितो दिदृक्षुर्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः ॥
वृत्तः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठैर्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा ।

मन्त्र और औषधियों द्वारा शस्त्र रहित हुए सुवर्ण कवचधारी राजा युधिष्टिर भी अपने हितेच्छु उत्तम २ वैद्यों के साथ इस युद्ध के देखने को वहां उपस्थित हुए ॥७०॥

तथोपयातं युधि धर्मराजं दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥
राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव ।

धर्मराज युधिष्ठिर को इस दशा में भी वहां उपस्थित देखकर सारे प्राणी बड़े आनन्दित हुए । इस समय उनका स्वरूप राहु से विमुक्त उदय को प्राप्त हुए निर्मल चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहा था ॥७१॥

दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ॥
कर्णं च पार्थं च विलोकयन्तः खस्था महीस्थाश्च जनाऽवतस्थुः

इन दोनों मुख्य योद्धा शत्रु नाशक, शूरवीर कर्ण और अर्जुन को युद्ध करता देखकर आकाश और पृथिवी पर सारे प्राणी ज्यों के त्यों खड़े हो गये ॥७२॥

स कार्मुकज्यातलसंनिपातः सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव ॥
घ्नतोस्तथान्योन्यमिषुप्रवेकैर्धनञ्जयस्याधिरथेश्च तत्र ।

इस समय धनुष की डोरी, करतलत्राण का शब्द, सुन्दर रीति से छोड़े हुए बाणों की सनसनाहट से और भी बढ़ गया ये अर्जुन और अधिरथ पुत्र कर्ण दोनों के ही बाण प्रहारों से एक दूसरे के मारने पर यह परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी ॥७३॥

ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा सुघोषमच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥
तस्मिन्क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः समाचिनोत्क्षुद्रकाणां शतेन ।

अब अत्यन्त वेग से खैंची हुई पाण्डु पुत्र अर्जुन के धनुष की डोरी स्वयं बड़ा भारी शब्द करके टूट गई। इसी समय सूत पुत्र कर्ण ने सैंकड़ों क्षुद्रक बाण छोड़ कर पाण्डु पुत्र अर्जुन को व्याप्त कर दिया ॥७४॥

निर्मुक्तसर्पप्रतिमैरभीक्ष्णं तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ॥७५॥
षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेवमनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च ।

अब कर्ण ने, छोड़े हुए सर्पों के समान भीषण, तेल से चमकाए हुए, पक्षियों के पत्रों से युक्त साठ बाण छोड़कर वसु देव पुत्र श्रीकृष्ण को बींध दिया। और इसके अनन्तर आठ बाण से अर्जुन को भी जा बींधा ॥७५॥

पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद मरुत्सुतं चायुतशः शराग्र्यैः
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च पार्थानुजान्सोमकान्पातयंश्च

इस समय सूर्य पुत्र कर्ण ने दशों हजार बाणों से इन्द्र पुत्र अर्जुन को वींध दिया। श्रीकृष्ण, अर्जुन, उसकी ध्वजा, अर्जुन के छोटे भ्राता और सोमक वीरों को भी वींध दिया और बहुतों को रण भूमि में गिरा दिया ॥७६॥

आच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कैर्जीमूतसङ्घा नभसीव सूर्यम् ॥
आगच्छतस्तान्विशिखैरनेकैर्व्यष्टम्भयत्सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।

इन्होंने भी तीक्ष्ण नुकीले बाणों से कर्ण को इस तरह आच्छादित कर दिया-जैसे मेघ समूह आकाश में सूर्य को आच्छादित कर देता है। जब वे वेग से आगे बढ़े चले आए तो अस्त्र विद्या में कुशल सूत पुत्र ने अनेकों बाणों से उनको वहीं रोक दिया ॥७७॥

तैरस्तमस्त्रं विनिहत्य सर्वं जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राजन्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः ।

हे राजन्! अब सूतपुत्र कर्ण ने उन वीरों के फेंके हुए सारे बाण काट कर उनके रथ, अश्व, हाथी तथा उत्तम २ सैनिक वीरों को अपने बाणों से मार २ कर बिछा दिया ॥७८॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ॥
सिंहेन क्रुद्धेन यथा श्वयूथ्या महाबला भीमबलेन तद्वत् ।

कर्ण के बाणों से छिन्न भिन्न देह होकर चीत्कार मारते हुए अनेक हाथी आदि प्राणी, रणभूमि में गिर गए। महा बली कुत्तों के यूथ को जैसे भयानक बलधारी क्रोधाविष्ट सिंह कुचल डालता है यही दशा वहां महारथी कर्ण ने कर डाली ॥७६॥

पुनश्च पञ्चालवरास्तथान्ये तदन्तरे कर्णधनञ्जयाभ्याम् ॥८०
प्रस्कन्दन्तो बलिना साधुमुक्तैः कर्णेन बाणैर्निहताः प्रसह्य

अब गर्जना करती हुई पञ्चाल सेना तथा अन्य भी पाण्डव वीर अर्जुन और कर्ण के रथ के मध्य में घुस गए। उन आक्रान्ताओं को अच्छी तरह छोड़े हुए बाणों से बल पूर्वक कर्ण ने मार २ कर बिछा दिया ॥८०॥

जयं मत्वा विपुलं वै त्वदीयास्तलान्निजघ्नुः सिंहनादांश्च नेदुः
सर्वे ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे ।

इस समय तुम्हारे पक्ष के वीरों ने अपनी बड़ी विजय समझी और वे ताल फटकार कर सिंहनाद करने लगे। अब तो इस युद्ध में उन सबने यही समझ लिया कि कर्ण ने श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को दबा लिया है ॥८१॥

ततो धनुर्ज्यामवनाम्य शीघ्रं शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ॥
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो रणे पार्थः कौरवान्प्रत्यगृह्णात् ।

इसके अनन्तर अर्जुन ने शीघ्र धनुष की डोरी खैंची और अधिरथ पुत्र कर्ण के फैंके हुये बाणों को काट गिराया। अब कर्ण

के वाणों से क्षत विक्षत हुआ भी अर्जुन क्रोध में भर कर रण में कौरव वीरों को आड़े हाथ लेने लगा ॥८२॥

ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत्तलत्रे वाणान्धकारं सहसा च चक्रे
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्बाणैरविध्यत्प्रसभं किरीटी ।

इसने धनुष की डोरी खैंच कर करतलत्राण पर फटकारी और एक दम वाणों का अन्धकार मचा दिया । इस समय किरीट धारी अर्जुन ने वल पूर्वक कर्ण, शल्य और अनेक कौरव वीरों को भी वाणों से अत्यन्त वींध डाला ॥८३॥

न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥
वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसङ्घैरुवाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् ।

इस समय महास्त्रों द्वारा अन्धकार करदेने पर आकाश में पक्षी भी नहीं घूम सकते थे तथा आकाशचारी देव आदि प्राणियों के संघ से प्रेरित वायु वहां बड़ी सुगन्धि के साथ चल रहा था ॥८४॥

शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कैर्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ॥
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तैर्विध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविद्धयत्

अव अर्जुन ने मुसकुराकर राजा शल्य के कवच में दश वाण मारे तथा वारह बाण अच्छी तरह मार कर फिर सात बाण से कर्ण को छेद दिया ॥८५॥

स पार्थबाणासनवेगमुक्तैर्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥८६॥
विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ।
प्रक्रीडमानोऽथ श्मशानमध्ये रौद्रे मुहूर्ते रुधिरार्द्रगात्रः ॥

अर्जुन के शरासन से वेग के साथ छुटे हुए उग्र, वेगधारी बाणों से अत्यन्त आहत रुधिर में क्लिन्त, क्षत विक्षत शरीर धारी कर्ण, धनुषधारी भीषण समय में शमशान के मध्य में क्रीड़ा करता तथा रुधिर धारा वहाता हुआ रुद्र सा प्रतीत होने लगा ॥८६-८७॥

ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं शरैर्बिभेदाधिरथिर्धनञ्जयम् ।
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्प्रवेशयामास जिघांसयाच्युतम्
ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य सुवर्णचित्रा न्यपतन्सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशु ः सुवेगाः स्नात्वा च कर्णाद्विमुखाः प्रतीयुः
तान्पञ्चभल्लैर्दशभिः सुमुक्तैस्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनञ्जयास्त्रैर्न्यपतन्पृथिव्यां महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥९०॥

इसके अनन्तर अधिरथ-पुत्र-कर्ण ने इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन को तीन बाणों से बींध लिया तथा श्रीकृष्ण के मार देने के लिए देदीप्यमान सर्पोंके तुल्य पांच बाण छोड़े। वे सुवर्ण मूलधारी उत्तम रीति से छोड़े हुए बाण, पुरुषोत्तम कृष्ण के कवच को बींध कर वेग के साथ पृथिवी में घुस गए और वहां जल में स्नान करके कर्ण से विमुख होकर चलपड़े। उन तक्षक पुत्र महान्

सर्पों के आकारधारी बाणों के अर्जुन ने अच्छी तरह छोड़े हुए अपने पन्द्रह बाणों से तीन २ टुकड़े कर डाले। वे अर्जुन के महास्त्र कटकर पृथिवी में गिरगए ॥८८-९०॥

ततः प्रजज्वाल किरीटमाली क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः।
तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः॥
स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः।
मर्मस्वविद्ध्यत्स चचाल दुःखाद्दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः॥

अब किरीटधारी अर्जुन क्रोध से उबल उठा और वह कक्ष (बागर) को जलाते हुए अग्नि के तुल्य, सबको भस्म करने लगा अर्जुन ने जब कर्ण की भुजा से छोड़े हुए, उत्तम बाणों से श्रीकृष्ण को क्षतविक्षत देखा—तो शरीर के अन्त करने वाले, जाज्वल्यमान बाण कर्ण तक खैंचे और कर्ण के मर्मस्थान में प्रहार किया। उनकी चोट से कर्ण, चक्कर खागया-परन्तु जैसे-तैसे-धैर्य रखकर ईश्वर की कृपा से वह रणभूमि में खड़ा रह सका ॥९१-९२॥

ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च रवेः प्रभा कर्णरथश्च राजन्।
अदृश्यमासीत्कुपिते धनञ्जये तुषारनीहारवृतं यथा नभः॥

हे राजन्! इस समय अर्जुन के कुपित होकर छोड़े हुए बाण समूह से दिशा, प्रदिशा, सूर्य प्रभा और कर्ण का रथ इस तरह बिल्कुल आच्छादित होगया-जैसे तुषार के कुहरे से आकाश ढक जाता है ॥९३॥

स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्पुरःसरान्पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः समुद्यतान्सरथान्सारभूतान् ॥९४॥
द्विसाहस्रान्समरे सव्यसाची कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम् ।
क्षणेन सर्वान्सरथाश्वसूतान्निनाय राजन्क्षयमेकवीरः ॥९५॥

हे राजन्! कुरुवंश श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, अकेले सव्यसाची महारथी अर्जुन ने कर्ण के चक्र रक्षक, पादरक्षक, आगे चलने वाले, पीछे रक्षा करने वाले राजा दुर्योधन की आज्ञा से सावधानी से उद्यत उत्तम २ रथी दो सहस्र वीरों को क्षण भर में नष्ट कर डाला। इनके साथ अन्य भी बहुत से रथी, अश्वारोही और सारथि मार दिए ॥९४-९५॥

ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं तवात्मजाः कुरवो येऽत्रशिष्टाः ।
हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च लालप्यमानांस्तनयान्पितॄंश्च ॥९६॥

यह दशा देखकर तुम्हारे पुत्र और शेष कौरव वीर मरे हुए या बाणों से घायल, चिल्लाते हुए अपने पुत्र और पिताओं को छोड़ २ कर वेग से भाग खड़े हुए ॥९६॥

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥९७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

हे भारत ! अब कर्ण ने भय से भागे हुए कौरवों से रहित अपने को अकेला देखा और अपनीसारी दिशाओं को भी वीरों से खाली देखा, इतने पर भी कर्ण विचलित न हुआ और वह और भी उत्साह से अर्जुन पर झपटा ॥६७॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण अर्जुन के भीषण युद्ध का नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ



नब्बेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः प्रयाताः शरपातमात्रमवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः ।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्धनञ्जयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! बिखरी हुई कौरव सेना के वीर भाग कर वहां स्थित होगए-जितनी दूरी पर अर्जुन का बाण नहीं पहुंच सकता था जब अर्जुन ने अपना अस्त्र चलाया तो उसके चारों ओर बिजली का सा प्रकाश दिखाई देने लगा ॥१॥

तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत् ।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं वधाय कर्णस्य महाविमर्दे ॥२॥
उदीर्यमाणं स्म कुरून्दहन्तं सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैर्ममर्द ।
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान्

इस महाघोर युद्ध में जिस महान् अस्त्र को अर्जुन छोड़ते, आकाश में पहुंचते ही उसे कर्ण अपने अत्यन्त घोर बाणों से काट गिराते। इस तरह क्रोधातुर अर्जुन ने लगातार कर्ण के वध के निमित्त अस्त्र छोड़ना आरम्भ किया। जब अर्जुन का अस्त्र छूटते ही कौरवों को दग्ध करने लगता-तो महारथी कर्ण, अपने दृढ़ प्रत्यञ्चा वाले, सफल धनुप को खैंचकर और बाण जाल छोड़कर अपने सुवर्ण मूलधारी बाणों से उसे नष्ट भ्रष्ट कर डालता ॥२-३॥

रामादुपात्तेन महामहिम्ना ह्याथवर्णेनारिविनाशनेन।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद्दहन्तं कर्णस्तु बाणैर्निशितैर्महात्मा ॥

महावीर कर्ण को महामहिमा वाले, अथर्ववेद से निकाले हुए, परशुराम से ग्रहण किये हुए शत्रुनाशक अस्त्र द्वारा तीक्ष्ण बाणों की तीव्र वर्षा करके कौरव सेना को दग्ध करते हुए अर्जुन के अस्त्र को नष्ट करदेते थे ॥४॥

ततो विमर्दः सुमहान्बभूव तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन्।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कैर्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥

हे राजन्! इस प्रकार अधिरथ पुत्र कर्ण और महारथी अर्जुन का महाघोर युद्ध प्रवृत्त हुआ। ये अपने २ दांतों से प्रहार करने वाले, उग्रबलधारी दो हाथियों की भांति एक दूसरे पर चोट करने लगे ॥५॥

तत्रास्त्रसङ्घातसमावृतं तदा बभूव राजंस्तुमुलं स्म सर्वतः ।
तत्कर्णपार्थौ शरवृष्टिसङ्घैर्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥६॥

हे राजन् ! अस्त्र समूह से व्याप्त रणाङ्गण इस समय सब ओर बड़ा ही भीषण दिखाई देरहा था। इन अस्त्रों के द्वारा कर्ण और अर्जुन दोनों ही वीर अपनी २ बाण वर्षा से आकाश को अवकाशहीन बना रहे थे ॥६॥

ततो जालं बाणमयं महान्तं सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यं च भूतं ददृशुस्तदा ते बाणान्धकारे तुमुलेऽथ किञ्चित्

अब कौरव और सोमक दोनों पक्ष के वीरों ने रणभूमि के ऊपर बाणों का छत्ता छाया हुआ देखकर बाणों के इस घोर अन्धकार में वे किसी अन्य प्राणी को देख भी नहीं पाते थे ॥७॥

तौ सन्दधानावनिशं च राजन्समस्यन्तौ चापि शराननेकान्
सन्दर्शयेतां युधि मार्गान्विचित्रान्धनुर्धरौतौ विविधैः कृतास्त्रैः

हे राजन ! ये दोनों महारथी, लगातार धनुष पर अनेक बाण चढ़ा रहे थे और छोड़ रहे थे। इन दोनों धनुर्धर कर्णार्जुन ने अपने २ उत्तम अस्त्रों से युद्ध में अनेक विचित्र मार्ग (पैंतरें) प्रदर्शित किए ॥८॥

तयोरेवं युध्यतोराजिमध्ये सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित् ।
पार्थः कदाचित्त्वधिकः किरीटी वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥

जब ये दोनों वीर युद्ध कर रहे थे, तो कभी तो महारथी कर्ण, रणाङ्गण में अधिक दिखाई देने लगते और कभी विक्रम-

अस्त्रमाया, बल और पुरुषार्थ में किरीटधारी अर्जुन अधिक समझा जाता था ॥९॥

दृष्ट्वा तयोस्तं युधि सम्प्रहारं परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यैर्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् ॥

हे भारत ! परस्पर एक दूसरे का छिद्र देखते हुए युद्ध में इनके घोर घात प्रत्याघात होरहे थे-जिसको अन्य कोई वीर सह भी नहीं सकता था, यह देखकर सारे योद्धा आश्चर्य करनेलगे ॥१०॥

ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि तौ कर्णपार्थौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र
भोः कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति वियत्सु वाणी श्रूयते सर्वतोऽपि

हे नरेन्द्र ! इस समय आकाश स्थित प्राणी, कर्ण और अर्जुन दोनों की ही प्रशंसा कररहे थे। हे कर्ण ! तुम बड़े अच्छे वीर हो हे अर्जुन ! तुम बड़े उत्तम महारथी हो-इस तरह की वाणी आकाश में सब ओर सुनाई देने लगी ॥११॥

तस्मिन्विमर्दे रथवाजिनागैस्तदाभिघातैर्दलिते हि भूतले ।
ततस्तु पातालतले शयानो नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥
राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो विवेश कोपाद्वसुधातले यः ।
अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन सन्दृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥
अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै पार्थस्य वैरप्रतियातनाय ।
सञ्चिन्त्य तूर्णं प्रविवेश चैवं कर्णस्य राजञ्शररूपधारी ॥

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में रथ, अश्व और गजों के अभिघात से भूतल चकना चूर होगया। अर्जुन ने जब खाण्डव वन का दाह किया था, तो उस समय छुटकारा पाकर कोपाविष्ट तक्षक पुत्र अश्वसेन पृथ्वीतल में नीचे घुस गया था। वह अर्जुन से वैर मानता था। वह पाताल में जाकर सोरहा था। इस घोर पृथिवी के मर्दन से उसकी नींद टूट गई-और वह वेग से ऊपर की ओर उछटा। उसने कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध देखा। उसने समझा कि दुरात्मा अर्जुन से बदला लेने का यही समय अच्छा है—हे राजन् ! यह विचार कर वह अश्वसेन, कर्ण के तूणीर में बाण बन कर घुस गया ॥१२-१४॥

ततोऽस्त्रसङ्घातसमाकुलं तदा बभूव जन्यं विततांशुजालम् ।
तत्कर्णपार्थौ शरसङ्घवृष्टिभिर्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा॥१५॥

तद्बाणजालैकमयं महान्तं सर्वेऽत्रसन्कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यत्किञ्चिद्ददृशुः सम्पतद्वै बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम्

अब युद्ध में बहुत से अस्त्रसमूह छुटने लगे। सारे युद्ध स्थल में बाणों की किरणें फैलगई। अब कर्ण और अर्जुन ने बाण समूह की वर्षा करके आकाश को अवकाश हीन बना दिया। इस महान् बाण जाल से व्याप्त युद्ध प्रदेश को देखकर सारे कौरव और सोमक वीर बड़े ही भयभीत हुए। इस समय जब बाणों का घोर अन्धकार छारहा था, तो आकाश से गिरता हुआ कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥१५-१६॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रममुपागतौ ॥
समुत्क्षेपैर्वीज्यमानौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ॥१७॥
सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः ।
शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ ॥१८॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर सारे जगत् में श्रेष्ठ धनुर्धर, दोनों पुरुष प्रवीर वीर श्रेष्ठ कर्णार्जुन, रण में प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध कर रहे थे-इस समय दोनों ही युद्ध के श्रम से आतुर होगए चन्दन के जल से चर्चित, उठाने से दिखाई देने वाली भुजाओं में छोटे २ पंखे और चंवर लेकर आकाशचारी दिव्य अप्सरागण इनकी सेवा करने लगे। इन्द्र और सूर्य भी अपनी २ किरण और कमलों से इनके मुखों को शुद्ध करके तेजयुक्त बनारहे थे॥१७-१८॥

कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद्यदा भृशं च पार्थेन शराभितप्तः
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥

जब अर्जुन के बाण से आहत होकर कर्ण, कुछ भी अपनी विशेषता नहीं दिखा सके तो वे क्रोध से भरगए यद्यपि कर्ण का शरीर शरों से क्षतविक्षित था, तो भी उसने अर्जुन को अकेला सुलादेने में मन लगाया ॥१९॥

ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः सुसञ्चितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं सन्नतमुग्रधौतं पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥२०॥

अब कर्ण ने, सर्प के मुख के समान जलते हुए, अत्यन्त तीक्ष्ण शत्रुनाशक बाण को धनुष पर चढ़ाया। यह बाण बड़ा ही भीषण नुकीला, उग्र चमक धारी था। जिस को अर्जुन पर छोड़ने के लिए कर्ण ने चिरकाल से सुरक्षित रख छोड़ा था ॥२०॥

सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम्।
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः पार्थोन्मुखः सन्दधे चोत्तमौजाः
प्रदीप्तमैरावतवंशसम्भवं शिरो जिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः
ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः

यह इसकी सदा पूजा करता और इसे चन्दन के चूरे में रखता था। यह सदा सुवर्ण के तूणीर में सुरक्षित था। इससे बड़ी २ चमकीली किरणें निकल रहीं थी। अब अत्यन्त ओजस्वी कर्ण ने, कर्ण तक धनुष खैंचकर अर्जुन की ओर ऐरावत नाग-कुल में उत्पन्न अश्वसेन सहित प्रदीप्त बाण का अनुसन्धान किया यह इस बाण से युद्ध में सव्यसाची अर्जुन का शिर काट लेना चाहता था। अब सारी दिशा और आकाश जलउठे तथा सैंकड़ों घोर उल्कापात होने लगे ॥२१-२२॥

तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः
न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम्

जब कर्ण ने, उस नागराज को धनुष पर चढ़ाया-तो इन्द्र सहित सारे लोक पाल, हाहाकार करने लगे। योगबल से बाण

में घुसे हुए नागराज का सूतपुत्र कर्ण को कुछ भी पता नहीं था ॥२३॥

दशशतनयनोऽहिं दृश्य बाणे प्रविष्टं,
निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव।
जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा,
त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः ॥२४॥

सहस्र नेत्र धारी इन्द्र ने जब देखा कि कर्ण के बाण में नाग राज अश्वेसन घुस रहा है, अब तो मेरा पुत्र अर्जुन मारा जावेगा यह सोचकर इन्द्र का शरीर बड़ा शिथिल हो गया। श्रेष्ठ भावों का धारण करने वाला जितेन्द्रिय, कमल योनि, ब्रह्मा देवराज इन्द्र से कहने लगा-हे इन्द्र! तुम चिन्ता न करो-विजय तो अर्जुन ही की होगा ॥२४॥

ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषु तमुग्रम्
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते समीक्ष्य सन्धत्स्व शरं शिरोघ्नम्

अब महात्मा मद्रराज शल्य, उस उग्र बाण को धनुष पर चढ़ाता देखकर कर्ण से बोले। हे कर्ण! यह बाण अर्जुन की ग्रीवाका ठीक २ स्पर्श नहीं करेगा-तुम अर्जुन की ग्रीवा का ठीक लक्ष्य बनाकर इस बाण का प्रयोग करो ॥२५॥

अथाब्रवीत्क्रोधसंरक्तनेत्रो मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी।
न सन्धत्ते द्विःशरं शल्य कर्णो न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति

अब क्रोध से लाल आंख करके अत्यन्त तेजस्वी कर्ण मद्राधिपति शल्य से बोला। हे शल्य! कर्ण दुबारा बाण नहीं चढ़ाया करता। मुझ जैसा अनुकरणीय वीर, छल पूर्ण युद्ध नहीं कर सकता ॥२६॥

इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम्
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिपन्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितांवृषः

हे राजन्! इतना कहकर वर्षों से अभिपूजित उस बाण को कर्ण ने बड़े प्रयत्न से छोड़ा, और अर्जुन! अब तू मारा गया इस तरह कर्ण ने वड़े उच्चस्वर में यह बड़ी तीव्र वाणी कही ॥२७॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः।
गुणच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥

हे राजन्! कर्ण की भुजा से निकला हुआ अग्नि और सूर्य के सदृश कर्ण के धनुष की प्रत्यञ्चा से युक्त वह बाण आकाश में चमकने लगा ॥२८॥

तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु त्वरान्वितं स त्वरयैव लीलया
पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स प्रावेशयत्पृथिवीं किञ्चिदेव ॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण ने जब उस प्रदीप्त । को युद्ध में वेग से आता देखा तो इन्होंने भी बड़ी शीघ्र गति से अपने पैर से अश्वों को दबाकर अपने रथ को सुकेड़ दिया। उस रथ का बहुत सा भाग पृथिवी में घुस गया और थोड़ा ही बाहर बचा रह गया ॥२९॥

क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः
ततोऽन्तरिक्षे सुमहान्निनादः सम्पूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥३०

अर्जुन के रथ के अश्वों ने अपने जानु (गोड़े) पृथिवी में गड़ा दिए। ये अश्व, सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित और चन्द्रमा की किरणों के तुल्य, उज्ज्वल थे। इस रथ सञ्चालन के चातुर्य को देखकर आकाश स्थित देवगण बड़े उच्चस्वर से मधुसूदन कृष्ण की प्रशंसा के जयकारे लगाने लगे ॥३०॥

दिव्याश्च वाचः सहसा बभूवुर्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥३१॥

भगवान् श्रीकृष्ण के कौशल से ज्योंही रथ पृथिवी में निमग्न हुआ, त्यों ही देवता, दिव्य वाणी बोलकर दिव्य पुष्प बरसाने और उच्चस्वर से सिंहनाद करने लगे ॥३१॥

ततः शरः सोऽभ्यहनत्किरीटं तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः
अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥

कर्ण के छोड़े हुए बाण ने महा बुद्धिमान् अर्जुन के किरीट को बींध दिया। यह किरीट, इन्द्र ने अर्पित किया था और बड़ा दृढ़ अर्जुन के शरीर की बहुत ही शोभा बढ़ाने वाला पृथिवी आकाश अन्तरिक्ष और जल प्रदेशों में प्रसिद्ध आभूषण था ॥३२॥

व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः
दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥

सूतपुत्र कर्ण ने व्यालास्त्र नामक उत्तम अस्त्रसे वड़े प्रयत्न और क्रोध से छोड़े हुए वाण से सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि की दीप्ति के तुल्य, सुवर्ण, मुक्ता, अग्नि और वज्र आदि से आभूषित किरीट को काटकर अर्जुन के मस्तक से दूर गिरा दिया ॥३३॥

पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्विभुना स्वयम्भुवा
महार्हरूपं द्विषतां भयङ्करं विभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥

स्वयम्भू ब्रह्मा ने वड़े तप और प्रयत्न से इस किरीट को इन्द्र के निमित्त बनाया था। यह बहुत मूल्य से संयुक्त, शत्रुओं को भयङ्कर धारण करने वाले की शोभा और सुख का बढ़ाने वाला अत्यन्त सुगन्धित किरीट था ॥३४॥

जिघांसते देवरिपून्सुरेश्वरः स्वयं ददौ यत्सुमनाः किरीटिने
हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः
सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं प्रसह्य नागेन जहार यद्वृषः ।

जिस समय देवों के शत्रु असुरों को अर्जुन मारने को उद्यत हुआ तो प्रसन्न होकर स्वयं इन्द्र ने इस किरीट को अर्जुन के लिए प्रदान किया, जिससे वह किरीट कहाया। जिस किरीट को महादेव अपने पिनाक, वरुण अपनी पाश, इन्द्र अपने वज्र और कुवेर अपने उत्तम वाणों से नहीं काट सकते थे। इन देव श्रेष्ठ शिव आदि से भी जिसका अर्दन करना असह्य था, उसी किरीटको धर्मात्मा कर्ण ने अपने नागास्त्र से बल पूर्वक काट गिराया ॥३५॥

स दुष्टभावो वितथप्रतिज्ञः किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥३६॥
नागो महार्हं तपनीयचित्रं पार्थोत्तमाङ्गात्प्रहरत्तरस्वी ।
तद्धेमजालावततं सुघोषं जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ ॥

नागराज अश्वसेन दुष्ट भाव से बाण के भीतर प्रविष्ट हुआ था। तो भी उसकी अर्जुन के मार देने की प्रतिज्ञा अब व्यर्थ हो गई। इस अत्यन्त वेगशाली नागराज ने, बहुत मूल्यधारी सुवर्ण चित्रित, अर्जुन के अद्भुत किरीट को उसके मस्तक से दूर गिरा दिया। सुवर्ण के जाल से व्याप्त, वह जाज्वल्यमान् किरीट कुछ शब्द करता हुआ भूमि में गिर गया ॥३६-३७॥

तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम्
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः

उत्तम नाग बाण की विषाग्नि से दग्ध होकर, प्रदीप्त कान्तिमान् अत्यन्त प्रिय, वह अर्जुन का उत्तम किरीट इस तरह भूमि में गिरा-जैसे रक्त मण्डलधारी सूर्य, अस्ताचल से गिर गया हो ॥३८॥

स वै किरीटं बहुरत्न भूषितं जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात्
गिरेः सुजाताङ्कुरपुष्पितद्रुमं महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥

इस नागास्त्र ने, बहुत रत्नों से विभूषित, उस किरीट को अर्जुन के मस्तक से इस तरह उड़ा दिया-जैसे इन्द्र का वज्र, शाखा परशाखाओं से सुन्दर पुष्पों से भरे हुए वृक्षों से युक्त, पर्वत के उत्तम शिखर को छिन्न भिन्न कर देता है ॥३९॥

महीवियद्द्यौः सलिलं च वायुना प्रसह्यमुग्रं विनिघूर्णितं यथा
अतीव शब्दो भुवनेषु वै तदा जनाऽध्यवस्यन्व्यथिताश्चचस्खलुः
विना किरीटं शुशुभे स पार्थः श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः

पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष और जल प्रबल आंधी से जैसे डांवाडोल हो उठते हैं, उसी प्रकार का घोर शब्द भुवनों में छा गया। मनुष्यों ने जब उस शब्द को सुना-तो बड़े घबराये और व्यथित होकर भाग निकले। श्यामवर्ण धारी तरुण अर्जुन, इस किरीट से रहित होकर शिखरहीन, नील पर्वत की तरह सुशोभित होने लगा ॥४०॥

ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा स्वमूर्धजानव्यथितस्तदार्जुनः
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥

इस समय अर्जुन ने अपने बालों को एक श्वेत वस्त्र से बांध लिया और आप व्यथा रहित रथ में स्थित हुआ। यह अपने शिर के बालों से ऐसा सुशोभित होने लगा-जैसे सूर्य की किरणों से उदय पर्वत सुशोभित होता है ॥४१॥

गोकर्णा सुमुखी कृतेन इषुणा गोपुत्रसम्प्रेषिता।
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम् ॥
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै।
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम् ॥४२॥

गौ नाम चक्षु तद्रूप कानों वाली सुन्दरी सर्पिणी अर्जुन ने खाण्डव वन में दग्ध करदी थी। वह अपने पुत्र अश्वसेन के आकार में कर्ण के बाण में प्रविष्ट हो गई। गौ (किरण) धारी सूर्य के पुत्र से प्रेषित, उस सर्पिणी ने गौ (पृथिवी) के पुत्र इन्द्र के भूषणभूत सुनिर्मित चमकीली गौओं (किरणों) से देदीप्यमान् गौओं (किरणों) से युक्त सूर्य के तुल्य कान्ति वाले गौ नामक अश्वरश्मियों से समीप से अभिलक्षित, अर्जुन के मुकुट को लक्ष्य बनाकर काट गिराया, परन्तु उस बाण वने हुए गौ (चक्षु) कर्ण धारी सर्प के मर्दन करने वाले अर्जुन उस बाण के लगने से मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए ॥४२॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः ।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥४३।

कर्ण की भुजा से निकले हुए अग्नि और सूर्यवत जाज्वल्यमान अत्यन्त मूलधारी बाणभूत, वैर में लिपटा हुआ वह महा नाग अर्जुन के किरीट को काट कर बाण से निकल गया ॥४३॥

तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य ।
इयेष गन्तुं पुनरेव तूणं दृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीत्तम् ॥४४॥

हे राजन ! सुवर्णोज्ज्वल अर्जुन के उस किरीट को अर्जुन के मस्तक से खैंच कर और उसे दग्ध करके उस सर्पराज ने तूणीर में घुसना चाहा। इस समय उसे कर्ण ने देख लिया तो उस ने कर्ण से कहा ॥४४॥

मुक्तस्त्वयाहं त्वसमीक्ष्य कर्णेन शिरो हृतं यन्न मयार्जुनस्य
समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु हन्तास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च

हे कर्ण ! तुमने बिना लक्ष्य (निशाना) बनाए मुझे छोड़ दिया जिस से मैं अर्जुन के मस्तक को नहीं छेद सका। अब तुम ठीक लक्ष्य बनाकर मुझे छोड़ो। मैं तुम्हारे और अपने शत्रु अर्जुन का अभी वध कर देता हूँ ॥४५॥

स एवमुक्तो युधि सूतपुत्रस्तमब्रवीत्को भवानुग्ररूपः।
नागोऽब्रवीद्विद्धि कृतागसं मां पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥
यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता तथापि याता पितृराजवेश्मनि

जब उसने सूत पुत्र कर्ण से इतना कहा तो उसने पूछा-इतने उग्र रूपधारी तुम कौन हो। नागराज ने कहा-मैं तुम्हारा एक बार का अपराधी अश्वसेन नागराज हूं। अर्जुन का शिर एक बार में ही न काट लेना, मेरा अपराध बन चुका है अर्जुनने खाण्डव दाह में मेरी माता का वध कर दिया था-तब से मैं अर्जुन से वैर मानता चला आया हूं। अब दुबारा यदि इसका वज्रधर इन्द्र भी रक्षक होगा तो भी इसको यमराज की नगरी में जाना होगा ॥४६॥

कर्ण उवाच—

न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य बलं समास्थाय जयं बुभूषेत्
न सन्दध्यां द्विः शरं चैव नाग यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम्

कर्ण बोले—हे नागराज ! क्या, किसी दूसरे की सहायता लेकर रण में विजयी नहीं होना चाहता । मैं व्यर्थ गए बाणों को कभी दुबारा धनुष पर नहीं चढ़ाऊँगा-चाहे मुझे सैंकड़ों अर्जुनों को ही क्यों न मारना हो ॥४७॥

तमाह कर्णः पुनरेव नागं तदाजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥४८॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिर्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम्

इस घोर रणक्षेत्र में सूर्यपुत्र महाबली कर्ण ने फिर उसी नागराज अश्वसेन से कहा—हे नागराज ! आप कष्ट न करें-सुख से वापिस पधारें-मैं तो क्रोधपूर्वक अपने कालास्त्र के प्रयोग और प्रयत्न से स्वयं अर्जुन को मारलूंगा ॥४८॥

इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम्
स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन्कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः ।

हे राजन ! जब कर्ण ने नागराज से इतना कहा—तो वह रोष में भर गया और महारथी कर्ण के वाक्य को सह नहीं सका वह महाभयङ्कर और उग्रस्वरूप धारण करके अर्जुन के वध के लिए स्वयं वेग से झपटा ॥४६॥

ततः कृष्णः पार्थमुवाच सङ्ख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम्
स एवमुक्तो मधुसूदनेन गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः ।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः स्वयं य आयाद्गरुडस्य वक्त्रम्

अब श्रीकृष्ण ने रणक्षेत्र में अर्जुन से कहा—हे अर्जुन ! यह अश्वसेन तुम्हारा परमशत्रु है, तुम इस उग्र वैरी सर्पराज का वध करदो। जब मधुसूदन कृष्ण ने इतना कहा—तो शत्रु के पराक्रम को रोकदेने वाले गाण्डीव धारी अर्जुन ने कहा—यह कौन नाग मेरे बाणरूपी गरुड़ के मुख में स्वयं चला आया है ॥५०-५१॥

कृष्ण उवाच—

योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं सन्तर्पयाणेन धनुर्धरेण
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥५२॥
स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! जब तुम धनुषधारी, खाण्डव वन के दाह के समय अग्नि को तृप्त कररहे थे-तब यह नागराज अपनी माता के सहित आकाश में उड़गया। माता इसकी रक्षा में इससे चिपटी हुई थी तुमने एक ही नाग समझ कर इसकी माता का वध करदिया था। यह उसी वैर का स्मरण करता हुआ आज अपने वध के निमित्त यहा चला आया है। और तुम्हें ललकार रहा है। हे शत्रुनाशक ! यह देखो ! आकाश से गिरती हुई प्रज्वलित उल्का के तुल्य यह किस वेग से आक्रमण कररहा है ॥५३॥

ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषाच्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं स च्छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! इतना सुनते ही विजयशील अर्जुन ने रोष से मुख मोड़ा और तेजधार वाले तीक्ष्ण छः बाण आकाश में उलट पलट मारते हुई नागराज पर छोड़े। उन बाणों से उसका शरीर कट गया और भूमि में गिर पड़ा ॥५४॥

गते च तस्मिन्भुजगे किरीटिना स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥

हे नृपते ! जब इस तरह अर्जुन ने उस नागराज को मार गिराया-तो पुरुषप्रवीर स्वयं श्रीकृष्ण रथ से नीचे उतरे और उन्हों ने भूमि में लचके हुए अपने रथ को स्वयं अपनी भुजाओं से ऊपर उठाया ॥५५॥

तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः ।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो धनञ्जयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥५६॥

उस अवसर पर पुरुषप्रवीर कर्ण ने तीखी दृष्टि से लक्ष्य (निशाना) बांध कर शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, मयूर पक्षके साथ लपलपाते-हुए दश बाणों, से अर्जुन को वींध दिया ॥५६॥

ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तैर्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य ।
नाराचमाशीविषतुल्यवेगमाकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥५७॥
स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य प्राणान्निरस्यन्निव साधु मुक्तः ।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥

अब अर्जुन ने भी बारह वराह वर्ण संज्ञक तीक्ष्ण बाण और कान तक खेंचकर एक आशीविष सर्पके तुल्य नाराच संज्ञक बाण छोड़ा। वह बाण, कर्ण के विचित्र कवच को वींध कर और कर्ण के शरीर का रुधिर पीकर पृथिवी में घुस गया। इसके पंख कर्ण के रुधिर में भीग रहे थे इस बाण को तो कर्ण के प्राण हरण करने को ही मानो अर्जुन ने छोड़ा था ॥५७-५८॥

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो महोरगो दण्डविघट्टितो यथा
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम्

हे राजन्! दण्ड से कुचले हुए सर्प के तुल्य धर्मात्मा कर्ण, इस बाण के प्रहार से क्रोधातुर होउठे। अब वह भी इस तरह बाणों की झड़ी लगाने लगा-जैसे महाविषधारी सर्प, भीषण विष उगलने लगता है ॥५९॥

जनार्दनं द्वादशभिः पराभिनन्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम्
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च

कर्ण न बारह बाणों से जनार्दन कृष्ण और निन्यानवें बाणों से अर्जुन को वींध दिया। इसके अनन्तर एक घोर बाण छोड़कर पाण्डु पुत्र अर्जुन को क्षतविक्षत कर डाला। अब कर्ण उच्चस्वर से गर्जना करके हंसने लगा ॥६०॥

तमस्य हर्षमसृपे न पाण्डवो बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित्
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥

कर्ण के इस अट्टहास को अर्जुन नहीं सहसका। मर्मस्थान में प्रहार करने के प्रकार के ज्ञाता अर्जुन ने कर्ण के मर्मस्थानों में प्रहार किया। इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन ने सैंकड़ों से भी अधिक बाण, कर्ण पर इस तरह छोड़े-जैसे इन्द्र ने रण में पराक्रम पूर्वक बलासुर पर बाण छोड़ेहों ॥६१॥

ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम्
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः

अब अर्जुन ने यमराज के दण्ड के तुल्य, नव्वे बाण, कर्ण पर छोड़े। उन बाणों से कर्ण का शरीर छिन्न भिन्न होगया और वह इस तरह व्याकुल होउठा जैसे वज्र से विदारित पर्वत हिल जाता है ॥६२॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलं कृतंचास्य वराङ्गभूषणम्।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभिर्धनञ्जयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥

उत्तम सुवर्ण निर्मित, मणि और हीरे आदिसे जटित, मस्तकका विभूषित करने वाला, सुन्दर कर्ण का मुकुट खण्डित होकर भूमि में गिरगया। अर्जुन ने उसके सुन्दर कुण्डल भी काट गिराए ॥६३

महाधर्मं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः कृतं पदस्योत्तमवर्म भारम्।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत्

जिस कवच को बड़े २ कारीगरों ने बड़े प्रयत्न के साथ कई आंच देकर लम्बे समय में बनाया था, उसी भारी कवच को

पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने क्षण भर में अपने बहुत से बाणों से छिन्न भिन्न कर दिया ॥६४॥

सतं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत्
सविव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः

अब अर्जुन क्रोध में भरे हुए थे। उन्होंने चार तीक्ष्ण बाणों से कवचहीन कर्ण को बींध दिया। कर्ण उस बाण से पित्त कफ और वायु के कुपित होने पर अत्यन्त सन्निपात ज्वर से पीड़ित रोगी की भांति व्याकुल हो उठा ॥६५॥

महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमैर्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥

अब अर्जुन शीघ्र २ अपने महान धनुष के मण्डल से तीक्ष्ण बाण, बड़े प्रयत्न और क्रिया कौशल के अनुसार छोड़ने लगा। उन बाणों से अर्जुन ने कर्ण के सारे मर्म स्थल छलनी बना दिए ॥६६॥

दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः क्षरन्प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥६७॥

अर्जुन ने उग्र वेगधारी बहुत से तीक्ष्ण बाणों से उसे गाढ़ी तरह बींध डाला। इस समय कर्ण, इस तरह सुशोभित होने लगा जैसे गेरु आदि लाल धातुओं से युक्त पर्वत, लाल जलके झरने छोड़ता हुआ दिखाई देता है ॥६७॥

ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः सुवर्णपुङ्खैः सुदृढैरयस्मयैः ।
यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे पराभिनत्क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥

इसके अनन्तर जिस तरह अग्नि पुत्र कार्तिकेय ने क्रौंच-पर्वत को चीर डाला-उसी तरह अर्जुन ने सीधे जाने वाले सुवर्ण मूल से सुशोभित दृढ़ लोहमय यम दण्ड और अग्नि के तुल्य भीषण नौ बाणों से कर्ण का वक्षस्थल चीर दिया ॥६८॥

ततः शरावापमपास्य सूतजो धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम् ।
ततो रथस्थः स मुमोह च स्खलन्प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो

हे प्रभो ! अब सूत पुत्र कर्ण ने अपना कटा हुआ कवच और इन्द्र के धनुष के तुल्य भीषण अपने धनुप को फेंक दिया इस प्रहार से अत्यन्त आहत हुए कर्ण की धनुष पर से मुट्ठी खुल गई और वह रथ में मूर्छित होकर गिर गया ॥६६॥

न चार्जुनस्तं व्यसने तदेषिवान्निहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः
ततस्तमिन्द्रावरजः सुसम्भ्रमादुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे

अर्जुन आर्यव्रत में स्थित वीर पुरुष था। उसने मूर्छित दशा में कर्ण का बध करना उचित न समझा। इसी समय बड़ी शीघ्रता से श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तुम क्या प्रमाद (गलती) कर रहे हो ॥७०॥

नैवाहितानां सततं विपश्चितः क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम्
विशेषतोऽरीन्व्यसनेषु पण्डितो निहत्य धर्मं च यशश्च विन्दते

हे अर्जुन! समझदार वीर दुर्बल शत्रु के मार देने में भी कभी समय का व्यर्थ यापन नही करते। इसपर जो विशेष (खास) शत्रु हों और विपत्ति में फंसा हो तो कभी उसे न छोड़े। इस तरह शत्रु का वध कर देने वाला, पण्डित, धर्म और यश को पाता है ॥७॥

तदेकवीरं तव चाहितं सदा त्वरस्व कर्णं सहसाभिमर्दितुम्
पुरा समर्थः समुपैति सूतजो भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः

यह कर्ण सर्व श्रेष्ठ वीर और तुम्हारा शत्रु है। अब तुम कर्ण को मर्दन करने में विलम्ब न करो। यदि ऐसा नहीं किया-तो यह सूत-पुत्र कर्ण फिर बड़ी शक्ति के साथ आक्रमण करेगा। इन्द्र ने जैसे नमुचि का वध कर दिया-वैसे ही तुम भी कर्ण का वध कर डालो ॥७ ॥

ततस्तदेवेत्यभिपूज्य सत्वरं जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः।
शरोत्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरंस्तथा यथा शम्बरहा पुरा बलिम्

श्रीकृष्ण के इतना कहने पर अर्जुन ने कहा—अच्छी बात है अर्जुन ने जनार्दन कृष्ण का आदर प्रदर्शित करके कर्ण को बींधना आरम्भ किया। कुरु वंश श्रेष्ठ अर्जुन ने उत्तम २ बाणों से बड़ी शीघ्रता से इस तरह प्रहार किया-जैसे शम्बर शत्रु इन्द्र ने बलि पर प्रहार किया था ॥७३॥

साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी समाचिनोद्भारत वत्सदन्तैः।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुङ्खैः ॥

हे भारत ! अब किरीटधारी अर्जुन ने, अश्व और रथ सहित कर्ण को अपने वत्सदन्त नामक बाणों से बींधना आरम्भ किया। अर्जुन ने बड़ा भारी प्रयत्न करके सुवर्ण पुङ्खधारी बाणों से सारी दिशाएँ आच्छादित करदी ॥७४॥

स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति ।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलिर्यथाचलश्चन्दनकाननायुतः ॥

विशाल और पुष्ट वक्षस्थलधारी अधिरथ पुत्र महारथी कर्ण उन वत्सदन्तों से व्याप्त होकर इस तरह सुशोभित होने लगा-जैसे चन्दन के वन से युक्त, खिले हुए अशोक पलाश और शाल्मलि वृक्ष से सुन्दर कोई पर्वत सुशोभित होरहा हो ॥७५॥

शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितैर्विभाति कर्णः समरे विशाम्पते
महीरुहैराचितसानुकन्दरो यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान्

हे विशाम्पते ! जिस प्रकार खिली कनेर से युक्त तथा भिन्न २ प्रकार के वृक्षों से सुन्दर शिखर धारी कोई पर्वत हो-उसी तरह शरीर में लगे हुए बहुत से बाणों से कर्ण रण में सुन्दर प्रतीत होने लगे ॥७६॥

स बाणसङ्घान्बहुधा व्यवासृजन्विभाति कर्णः शरजालरश्मिवान्
स लोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो दिवाकरोऽस्ताभिमुखो यथा तथा

महारथी कर्ण का छोड़ा हुआ बाणजाल, किरणों के समान प्रतीत होता था। जिससे कर्ण, ऐसे प्रतीत होते थे जैसे लाल

किरणों के मण्डल वाला, लाल सूर्य, अस्ताचल शिखर पर पहुंच रहा हो ॥७७॥

बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान्बाणान्महाहीनिव दीप्यमानान् ।
व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः शराः समासाद्य दिशः शिताग्राः

अधिरथ पुत्र कर्ण की भुजा के मध्य से निकले हुए, सर्प के समान देदीप्यमान बाणों को अर्जुनकी भुजा से निकले हुए नुकीले बाणों ने दिशाओं में पहुंच कर (अन्तरिक्ष) अधर ही में काट गिराया ॥७८॥

ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं,
बाणान्विमुञ्चन्कुपिताहिकल्पान् ।
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः कृष्णं,
च षड्भिः कुपिताहिकल्पान् ॥७९॥

अब कर्ण ने धैर्यधारण करके फिर कुपित हुए सर्प के समान बाण छोड़ना आरम्भ किया। इसने दश नुकीले बाणों से कुन्ती पुत्र अर्जुन और छः बाणों से कृष्ण को बींध दिया। उन कुपित हुए सर्प के समान बाणों को कर्ण ने बड़ी शीघ्रता से छोड़ा ॥७९॥

ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं महाशरं सर्पविषानलोपमम् ।
अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसंभृतं महाहवे क्षेप्तुमना महामतिः ॥

अब किरीटधारी महामति अर्जुन ने भी उग्रशब्द करने वाले सर्प विष और अग्नि के तुल्य भीषण, लोह निर्मित रौद्रास्त्र पर चढ़ा हुए महाबाण को छोड़ना चाहा ॥८०॥

कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपान्निदर्शयन्कर्णवधं ब्रुवाणः ।
भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोचत्कर्णस्य तस्मिन्वधकाल आगते

हे नृप ! इस समय अदृश्य रूप से काल वहां आया और ब्राह्मण के शाप को सच्चा सिद्ध करता हुआ कर्ण के वध को ध्यान में रखकर कर्ण के उस वध काल में उससे कहने लगा—हे कर्ण ! तुम्हारे रथ के चक्रों को पृथिवी ने ग्रस लिया है ॥८१॥

ततस्तदस्त्रं मनसः प्रनष्टं यद्भार्गवोऽस्मै प्रददौ महात्मा ।
चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य प्राप्ते तस्मिन्वधकाले नृवीर

महात्मा परशुराम ने इसे जो भार्गवास्त्र सिखाया था, कर्ण उसे इस समय भूलगया । हे नृवीर ! जब कर्ण का वधकाल उपस्थित हुआ-तो भूमि ने उसके बांयें-चक्र को ग्रस लिया ॥८२॥

ततो रथो घूर्णितवान्नरेन्द्र शापात्तदा ब्राह्मणसत्तमस्य ।
ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ स विह्वलः समरे सूतपुत्रः ॥८३॥

हे नरेन्द्र ! अब कर्ण का रथ, ब्राह्मण श्रेष्ठ के शाप से एक ही स्थान में घुसने लगा । उसका चक्र भूमि में धस गया जिसको देखकर कर्ण बहुत ही विह्वल होगए ॥८३॥

स वेदिकश्चैत्य इवातिमात्रः सुपुष्पितो भूमितले निमग्नः ।
घूर्णे रथे ब्राह्मणस्याभिशापाद्रामादुपात्ते त्वविभाति चास्त्रे

भूमितलमें धसाहुआ चक्र, अत्यन्त खिलेहुए चैत्य (देवोपवन) को वेदी सा प्रतीत होने लगा । ब्राह्मण के अभिशाप से उसका

रथ घूमने लगा और परशुराम से जो अस्त्र प्राप्त हुए थे उनका कुछ भी स्मरण न हुआ ॥८४॥

छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे पार्थेन तस्मिन्विषसाद कर्णः ।
अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि हस्तौ विधुन्वन्स विगर्हमाणः

जब अर्जुन ने सर्प मुख के समान घोर बाण को काट डाला तो कर्ण बहुत ही विषाद युक्त होगया। इन सारी विपत्तियों का वह मुक़ाबिला करने में असमर्थ था-इससे हाथ मलते हुए उसने दैव की बहुत ही निन्दा की; ॥८५॥

धर्मप्रधानं किल पाति धर्म इत्यब्रुवन्धर्मविदः सदैव ।
वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च ॥
स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्मन्ये न नित्यं परिपाति धर्मः

धर्मात्मा लोग सदा यही कहते हैं, कि जो व्यक्ति धर्म को प्रधान मानता है, उसकी धर्म रक्षा करता है। हमने तो यथा शक्ति और यथा ज्ञान सर्वदा धर्म के आचरण करने का ही प्रयत्न किया, परन्तु यह धर्म भी धर्मात्मा व्यक्ति को ही मारता है-रक्षा नहीं करता। मेरी समझ में तो धर्म सदा रक्षा नहीं करता है ॥८६

एवं ब्रुवन्प्रस्खलिताश्वसूतो विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः ॥
मर्माभिघाताच्छिथिलः क्रियासु पुनः पुनर्धर्ममसौ जगर्ह ॥

हे राजन्! कर्ण इस प्रकार धर्म को कोस रहा था, कि अर्जुन के बाणों से उसके अश्व और सारथी व्याकुल हो उठे। इसके

मर्मों पर भारी आघात पहुंच चुके थे, यह इस समय भी बार २ धर्म की ही निन्दा करता रहा ॥८७॥

ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत्त्रिभिराहवे ।
हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः ॥८८॥

अब कर्ण ने फिर रणक्षेत्र में भयानक तीन बाण छोड़े जिन से उसने श्रीकृष्ण के हाथ को बींध दिया। फिर उसने सात बाण छोड़ कर अर्जुन को आहत किया ॥८८॥

ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान् ।
इन्द्राशनिसमान्घोरानसृजत्पावकोपमान् ॥८९॥

अब अर्जुन ने भी तीखे वेग वाले सरलता से जाने वाले, इन्द्र के वज्र के तुल्य भीषण अग्नि के तुल्य घोर बाणों को छोड़ा ॥८९॥

निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन्पृथिवीतले ।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत् ॥९०॥

उन भीम वेगधारी अर्जुन के बाणों ने कर्ण को बींध दिया और फिर वे पृथिवी में गिर गए। कर्ण इन बाणों से कांप उठा तो भी अपनी शक्ति के अनुसार वीर चेष्टा करता रहा ॥९०॥

बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत् ।
ऐन्द्रं ततोऽर्जुनस्यापि तं दृष्ट्वाभ्युपमन्त्रयत् ॥९१॥

उसने अपना बल लगा कर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र को देखकर ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया ॥९१॥

गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोऽनुमन्त्र्य परन्तपः ।
न्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥६२॥

परन्तप अर्जुन ने गाण्डीव धनुष उसकी प्रत्यञ्चा, और बाणों को भी अभिमन्त्रित किया। अब इसने अपने बाणों की इस तरह की झड़ी लगादी जैसे इन्द्र वर्षा की झड़ी लगा देता है ॥६२॥

ततस्तेजोमया बाणा रथात्पार्थस्य निःसृताः ।
प्रादुरासन्महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात् ॥६३॥

अब बड़े तेजयुक्त बाण अर्जुन के रथ से निकलने लगे और महाशक्ति शाली बाण कर्ण के रथ के समीप मँडराने लगे ॥६३॥

तान्कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान्मोघांश्चके महारथः ।
ततोऽब्रवीद्वृष्णिवीरस्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ॥६४॥

महारथी कर्ण ने जब उनको अपने सन्मुख देखा-तो उन सब को निष्फल कर दिया। जब अर्जुन का ऐन्द्रास्त्र भी कर्ण ने व्यर्थ कर दिया—तो वृष्णि वीर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले ॥६४॥

विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान् ।
ततो ब्रह्मास्त्रमत्युग्रं संमन्त्र्य समयोजयत् ॥६५॥
छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः ।

हे पार्थ! अब तुम कोई अमोघअस्त्र का प्रयोग करो-राधा पुत्र कर्ण तो तुम्हारे सारे बाणों को नष्ट कर देता है। अब अर्जुन ने

भी अत्यन्त उग्र अपने ब्रह्मास्त्र का अभिमन्त्रण करके उसका प्रयोग किया। अर्जुन ने उस अस्त्र को अपने बाणों से अच्छादित करके उसे कर्ण पर फैंका ॥६५॥

ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः ॥६६॥
द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा,
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाष्टमीम् ॥६७॥
नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः।
ज्याशतं शतसन्धानः स कर्णो नावबुध्यते ॥६८॥

अब धर्मात्मा कर्ण ने भी अपने अत्यन्त तीक्ष्ण चमकीले बाण छोड़कर अर्जुन की पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवी, छठी, सातवीं, आठवीं नवमीं, दशवीं, और ग्यारहवीं डोरी भी काट डाली। कर्ण ने इस तरह अर्जुन की सौ डोरी सौ बार अपना धनुष चढ़ा कर काट डाली परन्तु उसे पता न लगा, कि अर्जुन के धनुष में कितनी डोरी हैं ॥६६-६८॥

ततो ज्यां विनिधायान्यामभिमन्त्र्य च पाण्डवः।
शरैरवाकिरत्कर्णं दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥६९॥

अब पाण्डु पुत्र अर्जुन ने अन्य डोरी चढ़ाई और उसे अस्त्रों से अभिमन्त्रित किया। इसके बाद सर्प के तुल्य देदीप्यमान बाणों से उसने कर्ण को बहुत ही आच्छादित कर दिया ॥६९॥

तस्य ज्याच्छेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे ।
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१००॥

इस समय युद्ध में अर्जुन का धनुप पर डोरी चढ़ाना और कर्ण का उसे काट देना—इतनी शीघ्रता से होरहा था। कि कोई भी उसके समय को नहीं देख पाता था यह बड़ी ही अद्भुत बात थी ॥१००॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन्सव्यसाचिनः ।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात्स्ववीर्यमतिदर्शयन् ॥१०१॥

सव्यसाची अर्जुन के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से रोक २ कर काटते हुए कर्ण ने अर्जुन से अधिक अपने पराक्रम का परिचय दिया ॥१०१॥

ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम् ।
अभ्यसेत्यब्रवीत्पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥१०२॥

कर्ण के अस्त्रों से व्यथित अर्जुन को देखकर श्रीकृष्ण बोले। हे अर्जुन! तुम बाण फैंकते रहो। अस्त्र का प्रयोग करते हुए आगे बढ़ते चलो ॥१०२॥

ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम् ।
अश्मसारमयं दिव्यमभिमन्त्र्य परन्तप ॥१०३॥

रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान् ।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप ॥१०४॥

हे परन्तप ! अब अग्नि के सदृश घोर सर्प के विष के तुल्य भीषण, लोहमय दिव्य बाण को अभिमन्त्रित करके तथा उसे रौद्रास्त्र पर चढ़ाकर किरीटधारी ने फैंकना चाहा। हे नृप ! इसी समय राधा पुत्र कर्ण के चक्रों को पृथिवी ने पकड़ लिया ॥१०३-१०४॥

ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः ।
चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः ॥१०५॥

हे राजन् ! इस समय तत्काल ही राधा पुत्र कर्ण रथ से कूद पड़े और अपनी भुजाओं से पकड़ कर अपने रथ के पहिये को कीचड़ से निकाल लेना चाहा ॥१०५॥

सप्तद्वीपा वसुमति सशैलवनकानना ।
गीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरंगुलम् ॥१०६॥

सात द्वीप, पर्वत, वन और काननो सहित ग्रसित चक्र वाली सारी पृथिवी को चक्र खैंचते हुए कर्ण ने अपने स्थान से चार अंगुली ऊंची उठा लिया ॥१०६॥

ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत् ।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०७॥

अपने चक्र को पृथिवी में घुसा हुआ देखकर राधा पुत्र कर्ण क्रोध के अश्रु छोड़ने लगा। वह अर्जुन को आवेश में देखकर कर यह वचन बोला ॥१०७॥

भो भो पार्थ महेष्वास मूहूर्तं परिपालय ।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥१०८॥

हे महाधनुर्धर ! अर्जुन ! जबतक मैं पृथिवी से इस चक्र को निकालूं-तब तक तुम थोड़ी देर ठहरो ॥१०८॥

सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम ।
पार्थ कापुरुषाचोर्णमभिसन्धि विसर्जय ॥१०९॥
न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि ।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥११०॥
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव ।

हे पार्थ ! मेरा बांया चक्र पृथिवी में धंस गया है तुम इस दैवी घटना पर विचार करो और इस समय कायर पुरुषों की भांति बाण छोड़ना बन्द करो। हे कौन्तेय ! तुम एक प्रसिद्ध वीर हो और रण कर्म वीरता में एक विशिष्ट (खास) पद रखते हो। हे पाण्डव ! इस समय बाण छोड़ना बन्द करके और विशेषता दिखाओ-तुम्हारे स्वरूप के यही अनुरूप है ॥१०९-११०॥

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ ॥१११॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन ।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥११२॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः ।

हे अर्जुन ! वीरव्रत में स्थित, आये वीर, खुले बाल वाले, रणविमुख, ब्राह्मण, हाथ जोड़ कर आए हुए पुरुष, शरणागत, शस्त्रत्यागी, प्राण भिक्षा मांगने वाले, बाण रहित, कवचहीन शस्त्र या धनुष रहित मनुष्य पर प्रहार नहीं किया करते ॥१११-११२॥

त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥११३॥
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः ।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि ॥११४॥

हे पाण्डव ! तुम तो बड़े शूरवीर और सदाचारी हो तथा युद्ध धर्म के ज्ञाता और वेद सिद्धान्त के यज्ञ में स्नान किए हुए हो । तुम अपरिमित बलशाली दिव्य अस्त्रों के जानने वाले कार्तवीर्य अर्जुन के तुल्य, युद्ध में पराक्रम दिखा सकते हो ॥११३-११४॥

यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज ।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि ॥११५॥

हे महाभुज ! पृथिवी में ग्रस्त इस चक्र को मैं जब तक निकालता हूँ-तब तक भूमि में स्थित रथ के चक्र के निकालने में व्यग्र-मुझ पर प्रहार न करो । तुम रथ में स्थित और मैं नीचे खड़ा हूँ ॥११५॥

न वासुदेवात्त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम् ।
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः ॥
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥११६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णरथग्रसने नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

हे अर्जुन ! मैं वसुदेव पुत्र कृष्ण या तुमसे कोई डरता नहीं हूँ। हे अर्जुन ! तुम क्षत्रियकुलोत्पन्न और महाकुल की कीर्ति बढ़ाने वाले हो। मैं तुमको इसी लिए कहता हूँ-तुम थोड़ी देर को चुप हो जाओ ॥११६॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण-रथ के पृथिवी में घुस जाने के वर्णनका नब्बेवां अध्याय समाप्त हुआ



इक्यानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तमब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मं ।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इतना सुनकर रथ में स्थित श्रीकृष्ण बोले। हे राधेय ! आज बड़े हर्ष की बात है, जो तुमने धर्म की दुहाई दी है। जो नीच अपने कर्मों के अनुसार विपत्ति में फँसते हैं, वे प्रायः दैव की निन्दा करते हैं, अपने कुकर्म की ओर नहीं देखते ॥१॥

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च ।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः

हे कर्ण ! जब तुम, राजा दुर्योधन, दुःशासन और सुबल पुत्र शकुनि ने एक वस्त्रा द्रौपदी को सभा में बुलवायी, तो उस समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया था तब तुम्हें धर्म क्यों नहीं सूझ पड़ा ॥२॥

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम् ।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात्क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥३॥

जुआ खेलना नहीं जानने वाले धर्मराज को जब राजसभा में सुबल पुत्र शकुनि ने अपने जुआ के दाव पेंचों से जीत लिया-तो उस समय तुम्हारी यह धर्म की दुहाई कहां चली गई थी ॥३॥

वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे ।
न प्रयच्छसि यद्राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥४॥

हे कर्ण ! जब तेरह वर्ष व्यतीत हो गए और पाण्डव वन से लौटे-तो तुमने उनका राज्य उनको नहीं दिया-तब तुम्हारा धर्म कहां चला गया था ॥४॥

यद्भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः ।
आचरस्त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥५॥

हे कर्ण ! तुम्हारी सम्मति से जब राजा दुर्योधन ने भीमसेन को सर्पों से कटवाया या विष युक्त भोजन दिया उस समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया था ॥५॥

यद्वारणावते पार्थान्सुप्ताञ्जतुगृहे तदा ।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥६॥

हे राधेय ! वारणावत नगर में लाक्षा गृह में पाण्डवों को सुलवा कर आग लगा देने पर भी तुम्हारा धर्म कहां बचा रह गया ॥६॥

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम् ।

सभायां प्राहसः कर्ण क ते धर्मस्तदा गतः ॥७॥

हे कर्ण ! द्रौपदी रजस्वला थी और दुःशासन इसे खैंच रहा था, उस समय सभा में तू ही हंसा था । कर्ण ! बताओ तब तुम्हारी धर्म की दुहाई कहां रफू चक्कर हो गई थी ॥७॥

यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम् ।

उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥८॥

हे राधा पुत्र ! जब अनार्थ पुरुषों ने निरपराध द्रौपदी को सभा में क्लेशित किया और तुम इसकी उपेक्षा करते रहे उस समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया ॥८॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ।

पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम् ।

उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥९॥

हे कृष्णे ! पाण्डव अब नष्ट हो चुके । वे सदा को दुर्गति में फंस गए । अब तुम अन्य पति का वरण करलो-इस तरह गज गामनी द्रौपदी से कहते हुए तुमने उसकी उपेक्षा की-बताओ-तब तुम्हारा यह धर्म कहां था ॥९॥

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान् ।
यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥१०॥

हे कर्ण ! राज्य के लोभ से तुमने पाण्डवों को जुआ खेलने बुलाया और शकुनि को उसका मुखिया स्वीकार किया-बताओ-तब तुम्हारा धर्म का यह ढोंग कहां था ॥१०॥

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः ॥
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥११॥

जब तुम बहुत से महारथियों ने मिलकर अकेले बालक अभिमन्यु को घेर कर मार लिया तो उस उस समय तुम्हारा धर्म कहां था ॥११॥

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि किं सर्वथा तालुविशोषणेन ॥
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत तथापि जीवन्न धिमोच्यसे हि
नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् ॥
प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहुवीर्यात्सर्वैः समेताः परिवृत्तलोभाः

आज तो धर्म है और उस दिन धर्म नहीं था-इस तरह की बकवाद सिवा मुख सुखानेके और क्या प्रयोजन रख सकती है। हे सूत ! अब तुम धर्म की दुहाई दिया करो, आज तुमको विना मारे नही छोड़ा जासकेगा। जुआ में नल को उसके भाई पुष्कर ने जीत लिया था, परन्तु उसन अपने पराक्रम द्वारा फिर राज्य प्राप्त कर लिया, इसी तरह राज्य की प्राप्ति के अभिलाषी

सारे इकट्ठे ही पाण्डवों ने अपने बाहुवीर्य से फिर राज्य पाने की तय्यारी की है ॥१२-१३॥

निहत्य शत्रून्समरे प्रवृद्धान्सोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते ॥१४॥
तथा गता धार्तराष्ट्रा विनाशं धर्माभिगुप्तैः सततं नृसिंहैः ।

आज पाण्डवों ने रणक्षेत्र में बड़े २ शत्रु मार लिए हैं और सोमक वीरों के साथ वे राज्य पाने ही वाले हैं। धृतराष्ट्र पुत्र सेना सहित धर्म से रहित पुरुष प्रवीर पाण्डवों द्वारा नष्ट किए जारहे हैं ॥१४॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत ॥१५॥
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ।

सञ्जय बोले—हे भारत ! वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने जब इतना कहा—तो कर्ण ने लज्जा से शिर नीचा कर लिया और उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥१५॥

क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठो धनुरुद्यम्य भारत॥१६॥
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ।

हे भारत ! इतना सुनकर उसके क्रोध से ओष्ठ फड़क उठे और उसने धनुष उठा लिया। वह महावेग के साथ पराक्रम दिखाता हुआ, अर्जुन से युद्ध करने लगा ॥१६॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ॥१७॥
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ।

अब श्रीकृष्ण ने पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन से कहा—हे महाबली ! तुम दिव्य अस्त्र से इसे बींध कर नीचे गिराओ ॥१७॥

एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः ॥१८॥
मन्युमभ्याविशद्घोरं स्मृत्वा तत्तु धनञ्जयः ।

जब श्रीकृष्ण ने इतना कहा—तो अर्जुन को तीव्र क्रोध हो आया। धनञ्जय ने उन पूर्व की घटनाओं का स्मरण किया जिस से उसे बहुत ही आवेश आगया ॥१८॥

तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ॥१९॥
प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

जब अर्जुन कुपित हुआ-तो उसके स्रोतों से तेज की लपटें निकलने लगी-हे राजन् यह एक बड़ा ही अद्भुत चमत्कार देखा गया ॥१९॥

तत्समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनञ्जयम् ॥२०॥
अभ्यवर्षत्पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ।

जब यह दशा देखी-तो कर्ण ने अर्जुन पर चलाने को फिर ब्रह्मास्त्र का अनुसन्धान करके उससे बाणों की झड़ी लगादी और अपने रथ के चक्र के निकाल लेने का यत्न करने लगा ॥२०॥

ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥२१॥
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ।

इधर अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र सम्हाला और उससे बाणों की झड़ी लगादी। अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र से कर्ण के ब्रह्मास्त्र का खण्डन कर दिया ॥२१॥

ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः ॥२२॥

मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत्प्रजज्वाल तेजसा।

अब अर्जुन ने अग्नि के प्रिय दूसरे आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर्ण को लक्ष्य बना कर किया। वह अस्त्र अपने दिव्य तेज से जाज्वल्यमान हो उठा ॥२२॥

वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् ॥२३॥

जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः।

कर्ण ने भी अपना वारुणास्त्र छोड़ कर उस अग्नि क शान्त किया। कर्ण ने मेघों से सारी दिशाएँ आच्छादित करके अन्धेरे से दुर्दिन बना दिया ॥२३॥

पाण्डवेयस्त्वसम्भ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ॥२४॥

अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः।

वीर्यवान् अर्जुन ने भी बिना किसी घबराहट के वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। राधापुत्र कर्ण देखता रहा और अर्जुन ने उन सारे मेघों को उड़ा दिया ॥२४॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥२५॥

आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया।

अब सूतपुत्र कर्ण ने अर्जुन के वध की इच्छा से अग्नि के समान प्रदीप्त एक महा घोर बाण को ग्रहण किया ॥२५॥

योज्यमाने ततस्तस्मिन्बाणे धनुषि पूजिते ॥२६॥
चचाल पृथिवी राजन्सशैलवनकानना।
ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसावृताः ॥२७॥

हे राजन्! जब कर्ण ने उसे अपने उत्तम धनुष पर चढ़ाया तो शैल, वन और काननों सहित, सारी पृथिवी चल पड़ी, वायु मिट्टी धुलि बरसाने लगा-जिससे सारी दिशाएँ रज से आवृत होगईं। हे भारत! अब स्वर्ग में देवों में हाहाकार मचगया ॥२६-२७॥

हाहाकारश्च संजज्ञे सुराणां दिवि भारत।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ॥२८॥
विषादं परमं जग्मुः पाण्डवा दीनचेतसः।

हे आर्य! सूत पुत्र द्वारा धनुष पर चढ़ाए हुए इस महा घोर बाण को देखकर सारे पाण्डव, बड़े व्याकुल हुए और वे बहुत ही उदास हो गए ॥२८॥

स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः ॥
भुजान्तरं प्राप्य धनञ्जयस्य विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः।

हे भरतर्षभ! कर्ण की भुजाओं से छुटा हुआ तीक्ष्ण नोकसे युक्त, इन्द्र के वज्र के तुल्य कान्तिधारी वह बाण अर्जुन की भुजा में इस तरह घुस गया-जैसे वल्मीक में सर्प घुस जाता है ॥२९॥

स गाढविद्धः समरे महात्मा विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः

इस बाण का इतना गाढ़ा प्रहार हुआ कि महात्मा अर्जुन चक्कर खा गया। उसके हाथ से गाण्डीव धनुष ढीला पड़ गया। इस समय शत्रुमर्दन अर्जुन इस तरह कांप उठा, जैसे पृथिवी के हिलनेपर सारा पर्वत कांप उठता है ॥३०॥

तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो रथाङ्गमुर्वीगतमुज्जिहीर्षुः ॥३१
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां शशाक दैवान्न महाबलोऽपि

महारथी कर्ण को इस समय कुछ अवकाश मिल गया-उसने पृथिवी में फंसे हुए अपने रथ के पहिए को निकालना चाहा। वह रथ से कूद पड़ा और दोनों भुजाओं से पकड़कर उसे खैंचने लगा। यद्यपि कर्ण महाबली था, तो भी वह पृथिवी में से पहिया नहीं निकाल सका ॥३१॥

ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम् ॥
ततोऽर्जुनं प्राञ्जलिकं महात्मा ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थम्

जब किरीटधारी अर्जुन को चेत आया-तो उसने यम दण्ड के तुल्य भीषण बाण ग्रहण किया। अब हाथ जोड़ कर स्थित कुन्ती पुत्र अर्जुन से श्रीकृष्ण ने यह वचन कहा ॥३२॥

छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण न यावदारोहति वै रथं वृषः॥
तथैव सम्पूज्य स तद्वचः प्रभोस्ततः शरं प्रज्वलितं प्रगृह्य
जघान कक्षाममलार्कवर्णां महारथे रथचक्रे विमग्ने ॥३४॥

हे अर्जुन! जब तक कर्ण रथ में चढ़ जावे तब तक तुम अपने बाण से इस शत्रुभूत कर्ण का मस्तक काट डालो। शक्तिशाली भगवान् कृष्ण के वचनों को मानकर अर्जुन ने प्रज्वलित बाण उठाया। चमकते हुए सूर्य के समान दिव्य कान्तिधारिणी, पृथिवी में घुसे हुए महारथ पर लगी हुई हाथी की शृङ्खला के चिन्ह वाली कर्ण की ध्वजा को काट गिराया ॥३३-३४॥

तं हस्तिकक्षाप्रवरं च केतुं सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम् ।
ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥३५॥
जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्यममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् ।
विख्यातमादित्यसमं स्म लोके त्विषा समं पावकभानुचन्द्रैः

सुवर्ण मुक्ता मणि और हीरों से जटित उत्तम २ ज्ञानी शिल्पियों द्वारा बनाई हुई सुन्दर, तप्त सुवर्ण से उज्ज्वल कर्ण की हाथी की शृङ्खला के चिन्ह वाली ध्वजा बड़ी ही विचित्र थी। यह ध्वजा तुम्हारी सेना के जीतने की स्थान मानी जाती थी। जिसको देखकर शत्रु डर जाते थे। यह बड़ी ही पूजित थी। इसकी आदित्य के समान कान्ति प्रसिद्ध थी। पावक भानु और चन्द्रमा के तुल्य इससे ज्योति निकलती थी॥३५-३६॥

ततः क्षुरप्रेण सुसंशितेन सुवर्णपुङ्खेन हुताग्निवर्चसा ।
श्रिया ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ महारथस्याधिरथेः किरीटी ॥

किरीटधारी अर्जुन ने क्षुर के समान उज्ज्वल कान्तिधारी सुवर्णमूल से सुशोभित प्रदीप्त अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान कांति

से सुन्दर बाण से अधिरथ पुत्र महारथी कर्ण की ध्वजा को काट गिराया ॥३७॥

यशश्च दर्पश्च तथा प्रियाणि सर्वाणि कार्याणि च तेन केतुना
साकं कुरूणां हृदयानि चापतन्बभूव हाहेति च निःस्वनो महान्
दृष्ट्वा ध्वजं पातितमाशुकारिणा कुरुप्रवीरेण निकृत्तमाहवे
नाशंसिरे सूतपुत्रस्य सर्वे जयं तदा भारत ये त्वदीयाः ॥

इस ध्वजा के गिरने के साथ २ ही कौरव के यश, दर्प, सारे प्रिय कार्य और कौरवों के हृदय भी गिर गए। इस समग्र कौरव सेना में महान् हाहाकार मच गया। हे भारत! कुरु वंश प्रवीर शीघ्रकारी अर्जुन द्वारा रण क्षेत्र में काट गिराई हुई ध्वजा को देखकर सारे तुम्हारे पक्ष के योद्धाओं ने सूत पुत्र के विजय की आशा छोड़ दी ॥३८-३९॥

अथ त्वरन्कर्णवधाय पार्थो महेन्द्रवज्रानलदण्डसन्निभम् ।
आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गात्सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम् ॥
मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम् ।
नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्नि षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम् ॥४१॥
सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यं कालानलं व्यात्तमिवातिघोरम् ।
पिनाकनारायणचक्रसन्निभं भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम् ॥
जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो यो देवसङ्घैरपि दुर्निवार्यः ।

अब अर्जुन ने कर्ण के वध के लिए इन्द्र के वज्र, अनल और यमराज के दण्ड के समान भीषण तूणीर से अञ्जलिक नामक बाण निकाला, जो सहस्र रश्मि सूर्य के तुल्य था। यह बाण मर्मस्थानों का छेदन करदेने वाला, रक्त मांस में सना हुआ, अग्नि और सूर्य के तुल्य महामूल्य धारी, नर, अश्व, हाथी आदि के प्राण हरने में समर्थ, तीन अरत्नि (तीन हाथ से कुछ कम) छः पंखों से सुशोभित, सीधा जाने वाला, उग्रवेगधारी, इन्द्रके वज्रके समान पराक्रमी, प्रलयकालके लिए मुख खोले हुए अतिघोर अग्नि के सदृश भीषण, शिव के पिनाक और नारायण चक्र के तुल्य भयङ्कर प्राणधारियों को विनष्ट कर देने में समर्थ, भयङ्कर बाण को प्रसन्नता के साथ अर्जुन ने उठाया जिसको देव समूह भी निवृत्त नहीं कर सकते थे ॥४०-४२॥

सम्पूजितो यः सततं महात्मा देवासुरान्यो विजयन्महेषुः ॥
तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे चचाल सर्वं सचराचरं जगत् ।

जिस महात्मा को सब लोग पूजते रहे हैं और जो धनुर्धर, देव और असुरोंके जीतने में भी समर्थ है, उसी अर्जुन को युद्ध में सन्नद्ध देखकर सारा चराचर जगत् चञ्चल होउठा ॥४३॥

स्वस्ति जगतस्यादृषयः प्रचुक्रुशुस्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम् ॥
ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं गाण्डीवधन्वा धनुषि व्ययोजयत् ।

बड़े २ युद्धों में बाण चलाने वाले अर्जुन को उद्यत देखकर जगत् का कल्याण हो-इस प्रकार ऋषि लोग चिल्लाने लगे, अब

गाण्डीव धारी अर्जुन ने निष्फल नहीं जाने वाले बाण को अपने धनुष पर चढ़ाया ॥४४॥

युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम्
अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः ।
तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा
अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः सुसंश्रितः कर्णमरिं ममोर्जितम्

अपने महान् ब्रह्मास्त्र से युक्त करके और गाण्डीव धनुष को वेग से खैंचकर अर्जुन कहने लगा—यह महास्त्र द्वारा प्रेरित शरीर को छेद कर प्राण हर लेने वाला बड़ा कठिन मेरा महा बाण है। यदि मैंने कोई तप किया हो, पूज्य वर्ग की सेवा की हो या मैंने अपने सुहृदों के उचित वचनों पर ध्यान दिया हो-तो इन सारे सत्य के बल से मेरा धनुष पर चढ़ाया हुआ यह बाण मेरे उद्धत शत्रु कर्ण का वध कर डाले ॥४५-४६॥

इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं धनञ्जयः कर्णवधाय घोरम् ॥
कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि ।

हे राजन् ! इतना कहकर अर्जुन ने कर्ण के वध के निमित्त युद्ध में मृत्यु से भी असह्य अथर्व वेद के मन्त्रों से प्रादुर्भूत उग्र, प्रदीप्त, कृत्या देवी की तरह अपना यह घोर बाण छोड़ा ॥४७॥

ब्रुवन्किरीटी तमतिप्रहृष्टो ह्ययं शरो मे विजयावहोऽस्तु ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः कर्णं मयास्तो नयतां यमाय ।

किरीटधारी कर्ण के मारने का अभिलाषी अर्जुन बड़ा ही प्रसन्न था, कि यह बाण मेरी विजय का कर्ता हो जावेगा। सूर्य और चन्द्र के समान जाज्वल्यमान, घातक मेरा फैंका हुआ बाण आज कर्ण को यम लोक में भेज कर रहेगा ॥४८॥

तेनेषुवर्येण किरीटमाली प्रहृष्टरूपो विजयावहेन ॥ ४६ ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण चक्रे विपक्तं रिपुमाततायी ।

उल्लास में भरे हुए किरीटधारी अर्जुन अपने इस विजय कारक सूर्य चन्द्र के तुल्य चमकीले बाण से कर्ण का हनन कर देना चाहता था। अब घातक अर्जुन ने अपने शत्रु पर उस बाण को छोड़ दिया ॥४६॥

तथा विमुक्तो बलिनार्कतेजाः प्रज्वालयामास दिशो नभश्च ।
ततोऽर्जुनस्तस्य शिरो जहार वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः ॥

महाबली अर्जुन द्वारा छोड़े हुए सूर्य समान तेजस्वी इस बाण से सारी दिशा और आकाश प्रज्वलित हो उठा। जिस तरह इन्द्र ने वृत्रासुर का शिर काट डाला था उसी तरह अर्जुनने भी कर्णका शिर काट गिराया ॥५०॥

शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजंस्तदा महास्त्रप्रतिमंत्रितेन ।
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥५१॥

हे राजन्! महान् महास्त्र से अभिमन्त्रित अञ्जलिक नामक बाण से इन्द्र सुत अर्जुनने सूर्य पुत्र कर्णका शिर दोपहर के बाद काट डाला ॥५१॥

तत्प्रापतच्चाञ्जलिकेन छिन्नमपास्य कायो निपपात पश्चात्।
तदुद्यतादित्यसमानतेजसं शरन्नभोमध्यगभास्करोपमम् ॥

अञ्जलिक बाण से कटकर उसका शिर गिर गया और शिर से पृथक् हुआ कर्ण का शरीर भी पीछे रणभूमि में गिर गया। यह मस्तक उदित होते हुए तथा शरद् ऋतु के आकाशचारी प्रचण्ड सूर्य की प्रदीप्त था ॥५२॥

वराङ्गमुर्व्यामपतच्चमूमुखे दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः।
ततोऽस्य देहं सततं सुखोचितं सुरूपमत्यर्थमुदारकर्मणः ॥
परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यजद्गृहं महार्द्धीव सुसङ्गमीश्वरः।
शरैर्विभिन्नं व्यसु तत्सुवर्चसः पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम्

कर्ण का मस्तक सेना के मध्य में रणस्थल में इस तरह गिर गया जैसे रक्त मण्डलधारी सूर्य अस्ताचल से गिर जाता है। इसके बाद सदा से सुख के भोगने वाले अत्यन्त सुन्दर उदार कर्ण के शरीर को उसके शिर ने, बड़ी कठिनाई से इस तरह छोड़ा-जैसे कोई घर का स्वामी (राज्य दण्ड से) बड़ी कठिनाई से समृद्धशाली घर को छोड़ता है। बाणों से छिदा हुआ प्राण विहीन, अत्यन्त तेजस्वी कर्ण का विशाल शरीर अन्त में रणभूमि में गिर ही गया ॥५३-५४॥

स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः।
देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य तेजः सूर्यं खं वितत्याविवेश ॥

गेरु आदि धातुओं से मिश्रित जल प्रवाह की भांति कर्ण के देह से रुधिर धारा बह निकली उसका विशाल शिर इस तरह गिर गया जैसे वज्र से आहत पर्वत का शिखर गिरता है। अब गिरे हुए कर्ण की देह से एक तेज निकला जो आकाश में फैल कर सूर्य में प्रविष्ट हो गया ॥५५॥

तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः सन्दृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे ।
ततः शङ्खान्पाण्डवा दध्मुरुच्चैर्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन

कर्ण के मारने के अद्भुत वीर कर्म को सारे वीरों ने देखा। जब अर्जुन द्वारा कर्ण मारा जाकर भूमि में गिर गया-तो पाण्डवों ने उच्च स्वर में शङ्ख बजाए ॥५६॥

तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ ।
तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं सैन्यैः सार्धं सिंहनादान्प्रचक्रुः

अब श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा प्रसन्नतामें भरे हुए नकुल और सहदेव ने भी अपने २ शंख बजाए। जब सोमक वीरों ने कर्ण को मृतक देखा तो वे अपनी सेना के साथ बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे ॥५७॥

तूर्याणि सञ्जघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ।
संवर्धयन्तश्च नरेन्द्रयोधा पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टा ॥५८॥

अब पाण्डव सैनिक अत्यन्त प्रसन्न होकर तूर्य आदि बाजे बजाने और वस्त्र तथा भुजा ऊपर उछालने और उठाने लगे।

अब बड़े उल्लास में भरे हुए वीर श्रेष्ठ पाण्डव पक्ष के राजा लोग वृद्धि का धन्यवाद देने को अर्जुन के पास पहुँचे ॥५८॥

बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्यन्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि वा विपन्नं कृत्तं रथात्सायकैरर्जुनस्य॥

कहीं बलवान् वीर नाचने और कहीं पर आपस में लिपटकर गर्जना करने लगे। यह सब कुछ कर्ण को अर्जुन के बाण से छिन्न भिन्न होकर रणाङ्गणमें गिर जानेपर राजाओं ने किया ॥५९॥

महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम्।
रराज कर्णस्य शिरो निकृत्तमस्तङ्गतं भास्करस्येव बिम्बम् ॥

बड़े भारी वायु से बिखरे हुए पर्वत शिखर या यज्ञ के समाप्त होने पर प्रशान्त अग्नि की भांति तथा अस्त होते हुए सूर्य के मण्डल की तरह कर्ण का शिर कटकर नीचे गिर गया ॥६०॥

शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥६१॥

हे भारत! बाणों से व्याप्त रक्त प्रवाह से परिप्लुत महारथी कर्ण का शरीर अपनी किरणों से प्रदीप्त सूर्य की भांति प्रतीत होता था ॥६१॥

प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः शरगभस्तिभिः।
बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ॥६२॥

अपने प्रदीप्त शर रूपी किरणों से शत्रु सेना रूपी प्रजा को सन्तप्त करके अर्जुन रूपी बलवान् काल ने कर्ण रूपी सूर्य को अस्त कर दिया ॥६२॥

अस्तं गच्छन्यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति ।
तथा जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम सः ।
अपराह्णेऽपराह्णेऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष ॥६३॥
छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः ।

अस्त होता हुआ सूर्य अपनी प्रभा को लेकर जैसे चल देता है उसी तरह अर्जुन का बाण, कर्ण के प्राणों को लेकर चलता बना। हे आर्य ! अपराह्ण (दोपहर) के भी पिछले पहर में अर्थात् दिन के चतुर्थ प्रहर में अर्जुन ने अपने अञ्जलिक नामक बाण से रण में सूत पुत्र कर्ण का शिर काट गिराया। वह शिर उछल कर रण भूमि में गिर गया ॥६३॥

उपर्युपरि सैन्यानामस्य शत्रोस्तदञ्जसा ।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽप्यहरद् द्रुतम् ॥६४॥

अर्जुन का बाण, अर्जुन के शत्रु कर्ण के उन्नत शिर को सारी सेना के ऊपर से गुजर कर बड़े वेग से ले उड़ा ॥६४॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजश्छिन्नध्वजेनाथ ययौ रथेन ॥

शूरवीर, बाणों से व्याप्त, रक्त से लिपटे हुए शरीर को रण क्षेत्र में पड़ा हुआ देखकर मद्रराज शल्य, ध्वजा विहीन रथ वापिस लौट चला ॥६५॥

हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त भयार्दिता गाढविद्धाश्च सङ्ख्ये ।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ॥

हे भरतर्षभ ! इस घोर युद्ध में कर्ण के मार लेने पर अत्यन्त घिघे हुए कौरव सैनिक भयातुर होकर और वार २ मुड़ कर अत्यन्त जाज्वल्यमान अर्जुन की ध्वजा को देखते हुए भाग निकले ॥६६॥

सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम् ।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा तथापतत्कर्णशिरो वसुन्धराम् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णवधे एकनवतितमोऽध्यायः ॥६१॥

जिस तरह सहस्र किरणधारी सूर्य, सायङ्काल में गिरता है उसी तरह सहस्र नेत्रधारी इन्द्र के समान पराक्रमी कर्ण का सहस्र पत्रधारी कमलवत् सुन्दर मुख वाला मस्तक पृथिवी पर गिर गया ॥६७॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण के वध के
वर्णन का इक्यानवेवां अध्याय समाप्त हुआ



बानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः
ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजसत्तम ! मद्रराज शल्य ने जब कर्ण और अर्जुन के संग्राम में अर्जुन के बाणों से सारी सेना मर्दित देखी और अनुचरों सहित अधिरथ पुत्र कर्ण मारा गया—तो वह नष्ट भ्रष्ट परिच्छद (सामान) वाले रथ के द्वारा अपने शिविर की ओर चला ॥१॥

निपातितस्यन्दनवाजिनागं बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् ।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः ॥२॥

जब राजा दुर्योधन ने रथ, हाथी, घोड़े और सेना के सहित सूतपुत्र कर्ण को मृत देखा, तो उसकी आंखों में अश्रुधारा बह निकली और वह बड़ा ही व्याकुल होकर दीनता के साथ बार २ श्वास लेने लगा ॥२॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः सम्परिवार्य तस्थुः ॥

अचानक पृथिवी पर आकर गिरे हुए सूर्य के तुल्य रक्त में लिप्त शरीर वाले, रणभूमि में पतित, कर्ण को देखने के इच्छुक वीर उसे घेर कर खड़े होगए ॥३॥

प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मितास्तथापरे शोकहता इवाभवन् ॥
परे त्वदीयाश्च परस्परेण यथा यथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥

कर्ण को रणभूमि में पड़ा देखकर कोई तो बड़े प्रसन्न कोई भयभीत कोई सन्न और कोई चकित होगए। कौरव वीर तो बड़े ही शोकातुर दिखाई देने लगे। हे राजन्! शत्रुवीर और तुम्हारे पक्ष के योद्धाओं में जैसी जिसकी प्रकृति थी, वे कर्ण के विषय में परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥४॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं धनञ्जयेनाभिहतं महौजसम् ।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवुर्हतर्षभा गाव इवाजने वने ॥

जब कौरव वीरों ने छिन्न-भिन्न कवच आभूषण, वस्त्र और आयुधधारी, अर्जुन द्वारा मारे हुए महा ओजस्वी कर्ण को देखा- तो वे निर्जन वन में अपने सांड के मारे जाने पर भागने वाली गौओं की तरह भाग निकले ॥५॥

भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन नादं कृत्वा रोदसी कम्पयानः ।
आस्फोटयन्वल्गते नृत्यते च हते कर्णे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ॥

इस समय भीमसेन ने इतना भयङ्कर सिंहनाद किया, कि सारा आकाश और पृथिवी कांपने लगे। कर्ण के मारे जाने पर धृतराष्ट्र पुत्रों को भयभीत करते हुए भीम, अपनी तालें फटकार कर तथा कूदकर नांचने लगा ॥६॥

तथैव राजन्सोमकाः सृञ्जयाश्च शङ्खान्दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥७॥

हे राजन्! इसी तरह सोमक सृञ्जयवीर भी शङ्ख बजाने और परस्पर आलिङ्गन करने लगे सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर तो पाण्डव पक्ष के अन्य राजा भी परस्पर बहुत ही उल्लास प्रकट करने लगे ॥७॥

कृत्वा विमर्दं महदर्जुनेन कर्णो हतः केसरिणेव नागः।
तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण वैरस्यान्तं गतवांश्चापि पार्थः ॥८॥

इस युद्ध में अर्जुन ने बहुत ही विध्वंस उड़ाया। उसने हाथी को सिंह की भांति कर्ण को मार गिराया। पुरुष प्रवीर कुन्ती-पुत्र अर्जुन, अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कर चुका और वह वैर के अन्त को भी कर्ण के मारते ही पार कर गया ॥८॥

मद्राधिपश्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्सबाष्पदुःखाद्वचनं बभाषे ॥९॥

हे राजन्! मद्राधिप शल्य किंकर्तव्य विमूढ़ हुआ, छिन्न-ध्वजावाले रथ को लेकर शीघ्रता से राजा दुर्योधन के समीप पहुंचा और दुःख के साथ रोते २ उसने यह वचन कहा ॥९॥

विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम्।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥१०॥

हे कुरुराज! यमराज के तुल्य, तुम्हारी सेना के हाथी, अश्व, रथ और वीर, शत्रु के वीर, अश्व और पर्वताकार गजों से परस्पर एक दूसरे के साथ भिड़कर नष्ट भ्रष्ट होगए ॥१०॥

नैतादृशं भारत युद्धमासीद्यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव ।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये॥

हे भारत ! हमने तो ऐसा युद्ध कहीं देखा या सुना नहीं, जैसा यह कर्ण और अर्जुन का संग्राम हुआ। कर्ण तो, एकदम श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों पर ही क्या-तुम्हारे अन्य जितने भी वहां शत्रुवीर खड़े थे, उन सब पर छा गए॥११॥

दैवं ध्रुवं पार्थवशात्प्रवृत्तं यत्पाण्डवान्पाति हिनस्ति चास्मान्।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः॥

आज हमको तो यही प्रतीत हुआ कि दैव—पाण्डवों के वश में होगया है जो पाण्डवों की रक्षा करता है और हमारा विनाश कर रहा है। तुम्हारे प्रयोजन के सिद्ध करने वाले वीर, दैव की प्रेरणा से तुम्हारे शत्रुओं ने चुन २ कर मार डाले॥१२॥

कुबेरवैवस्वतवासवानां तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः।
वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः
अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः।
तान्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्पर्याश्वस त्वं न सदास्ति सिद्धिः

हे नृपते ! जो वीर राजा, पराक्रम, शक्ति, ओज और तेज में कुबेर, यमराज, एवं इन्द्र के तुल्य प्रभावशाली थे। जो अन्य भी अनेक गुणों से युक्त थे। जिनको कोई भी मार नहीं सकता था। जो तुम्हारे कार्य की सिद्धि में प्राणपण से संलग्न थे,

युद्ध में उन सारे क्षत्रिय वीरों को पाण्डवों ने मार गिराया। हे भारत ! अब तुम इसकी चिन्ता न करो—शान्ति रखो—होनहार ऐसी ही प्रतीत होती है। एक मनुष्य को सर्वदा सिद्धि प्रायः नहीं देखी गई है ॥१४॥

एतद्वचो मद्रपतेर्निशम्य स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य ।
दुर्योधनो दीनमाना विसंज्ञः पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥१५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि शल्यप्रत्यागमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

मद्रपति शल्य के ये वचन सुनकर और अपने अन्याय पूर्ण व्यवहार को मन से विचार कर राजा दुर्योधन बड़ा ही उदास और अचेतसा होगया। वह व्याकुल होकर बाहर निःश्वास छोड़ने लगा ॥१५॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजा शल्य के रण से
आगमन का बानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



तिरानवेवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तस्मिंस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे दग्धस्य रौद्रेऽहनि विद्रुतस्य ।
बभूव रूपं कुरुसृञ्जयानां बलस्य बाणोन्मथितस्य कीदृक् ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! कर्ण और अर्जुन के युद्ध के भयानक दिन में घायल होकर तथा बाणों से छिदी हुई कौरव सृञ्जय सेना की क्या दशा रही-मुझे यह बताओ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महाक्षयः ।
घोरे मनुष्यदेहानामाजौ च गजवाजिनाम् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! इस घोर युद्ध में मनुष्य वीर, हाथी और घोड़ों का जैसा महान विनाश हुआ वह मैं सब तुमको सुनाता हूँ-तुम ध्यान से सुनते जाओ ॥२॥

यत्र कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ।
तदा तव सुतान्राजन्नाविवेश महद्भयम् ॥३॥

हे राजन् ! जब कर्ण मारा गया तो अर्जुन ने बड़ा तीव्र सिंह-नाद किया-जिसको सुनकर तुम्हारे पुत्रों के हृदय में बड़ा भय का संचार हुआ ॥३॥

न सन्धातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे ।
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कर्हिचित् ॥४॥

हे महाभाग ! इस समय कर्ण के मारे जाने पर सेना को इकट्ठी करने या शीघ्र पराक्रम दिखाने का साहस तुम्हारे पक्ष के किसी भी योद्धा में नहीं रह गया था ॥४॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ॥५॥

सूतपुत्रे हते राजन्वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः ।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहैरिवार्दिताः ॥६॥

अगाध समुद्र में नौका के टूटने पर उस अपार समुद्र का पार चाहने वाले व्यापारियों की सी दशा अर्जुन द्वारा कर्ण के मारे जाने पर अरक्षक हुए शस्त्रों से घायल, घबड़ाए हुए कौरव वीर इस प्रकार किसी रक्षक की खोज करने लगे-जैसे सिंह से आर्दित किए हुए वन के जन्तु रक्षक की खोज करते हैं ॥६॥

भग्नशृङ्गा वृषा यद्वद्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
प्रत्यपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ॥७॥

हे भरतर्षभ ! सव्यसाची अर्जुन द्वारा जीते हुए हम लोग सायंकाल में सींग टूटे हुए सांड और दांत टूटे हुए सर्पों की भाँति अपने शिविरों को लौटे ॥७॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ।
सूतपुत्रे हते राजन्पुत्रास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥८॥

हे राजन् ! तुम्हारे पक्ष के बहुत से वीर मारे गए और तीक्ष्ण बाणों से घायल हुए तुम्हारे पुत्र भी बड़े व्याकुल हो गए। सूत पुत्र कर्ण के मारे जाने पर भयातुर होकर सारे तुम्हारे शेष पुत्र भाग निकले ॥८॥

विस्रस्तयन्त्रकवचाः कान्दिग्भूता विचेतसः ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तो वीक्ष्यमाणा भयार्दिताः ॥९॥

मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ।

अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च सम्भ्रमात् ॥१०॥

उनके बाण फैंकने के यन्त्र और कवच छिन्न भिन्न हो गए वे अचेत से हुए इधर उधर भय से व्याकुल हुए एक दूसरे को कुचलते हुये किंकर्तव्य विमूढ़ होकर दिशाओं को भागने लगे। मेरे पीछे अर्जुन आ रहा है, मेरे पीछे वृकोदर भीम लपक रहा है, ऐसे मानते हुए घबराहट के साथ गिरते पड़ते उदास होते हुये भाग निकले ॥९-१०॥

हयानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।

आरुह्य जवसम्पन्नाः पदातीन्प्रजहुर्भयात् ॥११॥

बहुत से महारथी हाथी, अश्व और रथों पर चढ़े हुए थे-वे भयातुर होकर पैदलों को छोड़ छाड़ कर भाग निकले ॥११॥

कुञ्जरैः स्यन्दनाः क्षुण्णाः सादिनश्च महारथैः ।

पदातिसङ्घाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भयार्दितैः ॥१२॥

हे राजन ! भय से व्याकुल होकर भागते हुए गजों से रथ, बड़े २ रथों से अश्वारोही और अश्व समूह से पैदल कुचले गए ॥१२॥

व्यालतस्करसङ्कीर्णे सार्थहीना यथा वने ।

सूतपुत्रे हते राजंस्तव योधास्तथाभवन् ॥१३॥

हे राजन ! जिस तरह हिंस्र पशु और चोरों से भरे हुए वन में व्यापारी गण की दुर्दशा होती है, उसी तरह सूत पुत्र के मारे जाने पर तुम्हारे योद्धा छिन्न भिन्न हो गये ॥१३॥

हतारोहा यथा नागाश्छिन्नहस्ता यथा नराः ।
सर्वे पार्थमयं लोकं सम्पश्यन्तो भयार्दिताः ॥१४॥

अपने सवारों के मारे जाने पर जिस तरह हाथी और हाथ कटने पर जैसे मनुष्य निरर्थक हो जाते हैं, उसी तरह भयातुर सैनिकों की दुर्दशा हुई । वे सारे संसार को अर्जुन मय देखने लगे ॥१४॥

सम्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान्भीमसेनभयार्दितान् ।
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हाहाकृत्वेदमब्रवीत् ॥१५॥

भीमसेन के भय से व्याकुल सारे योद्धाओं को भागते देख कर राजा दुर्योधन, अपने सूतसे चिल्ला कर यह वचन बोला ॥१५॥

नातिक्रमेच्च मां पार्थो धनुष्पाणिमवस्थिम् ।
जघने सर्वसैन्यानां शनैरश्वान्प्रचोदय ॥१६॥

हे पारथे ! मैं जब धनुष लेकर रण में खड़ा होऊंगा-तो अर्जुन मुझे जीत नहीं सकेगा । तुम सारी सेना के पीछे मेरे रथ को धीरे धीरे चलाओ ॥१६॥

युध्यमानं हि कौन्तेयं हनिष्यामि न संशयः ।
नोत्सहेन्मामतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥१७॥

यदि अर्जुन ने मुझ से युद्ध किया-तो मैं आज उसे मारकर रहूँगा-इसमें संशय न समझो। वह मुझे वेला को समुद्र की भांति उलांघ नहीं सकता है ॥१७॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम्।
अन्याञ्शिष्टांस्तथा शत्रून्कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥१८॥

आज मैं अर्जुन, गोविन्द और बड़े घमण्डी भीमसेन एवं अन्य भी अच्छे २ पाण्डव वीरों को मार कर ऋण से उऋण होना चाहता हूं ॥१८॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः।
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥१९॥

हे राजन्! आर्य वंशोद्भव, शूरवीर के तुल्य कुरुराज दुर्योधन के वचन सुनकर सारथि ने सुवर्ण से सुशोभित अश्वों को धीरे धीरे चलाया ॥१९॥

रथाश्वनागहीनास्तु पादातास्तव मारिष।
पञ्चविंशतिसाहस्रा युद्धायैव व्यवस्थिताः ॥२०॥

हे आर्य! रथ, अश्व और हाथियों से हीन, राजा दुर्योधन के साथ केवल पच्चीस हजार सैनिक थे। यह इनको लेकर युद्ध के लिए उपस्थित हो गया ॥२०॥

तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
बलेन चतुरङ्गेण संवृत्याजघ्नतुः शरैः ॥२१॥

अब राजा दुर्योधन को, भीमसेन और धृष्टद्युम्न क्रोध पूर्वक अपनी चतुरङ्गिणी सेना से घेर कर बाणों से मारने लगे ॥२१॥

प्रत्ययुध्यन्त समरे भीमसेनं सपार्षतम् ।
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ॥२२॥

अब भीमसेन और पर्षत वंशोद्भव, धृष्टद्युम्न से दुर्योधन के वीर युद्ध करने लगे, भीमसेन और धृष्टद्युम्न का नाम ले ले कर कुछ वीर उन्हें ललकारने लगे ॥२२॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ॥२३॥

अब इस घोर युद्ध में उन कौरव वीरों को सन्मुख देख कर भीमसेन रथ से कूद पड़े और गदा हाथ में लेकर युद्ध में प्रवृत्त हुए ॥२३॥

न तान्रथस्थो भूमिष्ठान्धर्मापेक्षी वृकोदरः ।
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यव्यपाश्रयः ॥२४॥

भीमसेन रथ में स्थित था वह भूमि में स्थित वीरों से रथ में बैठे हुए युद्ध करना अधर्म समझता था । इस कारण से धर्मात्मा कुन्ती पुत्र भीम ने अपनी भुजाओं के पराक्रम का आश्रय लेकर युद्ध करना आरम्भ किया ॥२४॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्सर्वान्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥२५॥

इसने सुवर्ण-जटित अपनी विशाल गदा उठा कर दण्ड पाणि यमराज की भांति तुम्हारे सारे वीरों को मारने लगा ॥२५॥

पदातिनोऽपि सन्त्यक्त्वा प्रियं जीवितमात्मनः ।
भीममभ्यद्रवन्सङ्ख्ये पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥२६॥

पैदल वीर भी अपने प्रिय प्राणों का मोह छोड़ कर रणस्थल में भीमसेन पर इस तरह टूट पड़े-जैसे अग्नि पर पतंगे गिरते हैं ॥२६॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
विनेशुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ॥२७॥

ये वीर, भीमसेन के सन्मुख पहुँच कर इस तरह नष्ट होने लगे-जैसे काल के सन्मुख सारे प्राणी एक दम नष्ट होने लगते हैं ॥२७॥

श्येनवद्विचरन्भीमो गदाहस्तो महाबलः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानवपोथयत् ॥२८॥

महाबली भीमसेन, गदा हाथ में लेकर श्येन पक्षि की भांति रण में घूमने लगा। उसने तुम्हारे पच्चीस हजार वीर अपनी गदा से चकनाचूर कर डाले ॥२८॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य तस्थौ तत्र महाबलः ॥२९॥

महाबली सत्य पराक्रमी भीमसेन तुम्हारे वीरों की सेना का विध्वंस करके तथा धृष्टद्युम्न को सामने करके स्थित हो गया ॥२९॥

धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥३०॥
जवेनाभ्यपतन्हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ।

महावीर्यवान् अर्जुन और कौरवों की रथ सेना पर टूट पड़ा और माद्री पुत्र नकुल सहदेव और महारथी सात्यकि शकुनि पर बड़े वेग से झपटे, उन्होंने उत्साह में भर कर राजा दुर्योधन की सेना मार २ कर बिछा दी ॥३०॥

तस्याश्वसादीन्सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ॥३१॥
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत् ।

उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणों से बहुत से अश्वारोही मार डाले वे बड़े वेग में आक्रमण कररहे थे, इस समय बड़ा ही घोर युद्ध होने लगा ॥३१॥

धनञ्जयोऽपि चाभ्येत्य रथानीकं तव प्रभो ॥३२॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ।

हे प्रभो ! अर्जुन भी तुम्हारी रथ सेना में पहुंच कर अपने तीनों लोकों में प्रसिद्ध, गाण्डीव धनुष को खैंचने लगा ॥३२॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ॥३३॥
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ।

हे नृप ! श्रीकृष्ण को सारथि बनाये हुए, श्वेत अश्वों के वाहन वाले, महारथी वीर अर्जुन को देखकर तुम्हारे सैनिक, भागने लगे ॥३३॥

विप्रहीणरथाश्चैव शरैश्च परिकर्षिताः ॥३४॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः कालमार्छन्पदातयः ।

रथों से हीन, बाणों से घायल, पच्चीस हजार कौरव वीर अब वीरगति पा चुके थे ॥३४॥

हत्वा तान्पुरुषव्याघ्रः पञ्चालानां महारथः ॥३५॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥३६॥
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणतापनः ।

पञ्चालों में महारथी, पुरुषश्रेष्ठ, पाञ्चाल राज का पुत्र कान्तिमान्, महामनस्वी महाधनुर्धर, शत्रुनाशक, धृष्टद्युम्न, उन वीरों को मार कर और भीमसेन को साथ लेकर बड़ी शीघ्रता से वहां दिखाई पड़ा ॥३५-३६॥

पारावतसवर्णाश्वं कोविदारमयं ध्वजम् ॥३७॥
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ।

कबूतर के समान भूरे रङ्ग वाले अश्व, धृष्टद्युम्न के रथ में जुते थे और कचनार के वृक्ष के चिन्ह की ध्वजा थी। इस रूप में आगे आते हुए धृष्टद्युम्न को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर भाग निकले ॥३७॥

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ॥३८॥
न चिरात्प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ।

शीघ्र अस्त्र चलाने वाले गान्धार राज शकुनि पर आक्रमण करके महायशस्वी, माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव, उसी समय वहां दिखाई पड़े ॥३८॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ॥३९॥

हत्वा त्वदीयं सुमहत्सैन्यं शङ्खांस्तथाऽधमन् ।

हे आर्य ! चेकितान, शिखण्डी, और द्रौपदी पुत्र भी तुम्हारी विशाल सेना का विध्वंस करके अपने २ शङ्ख बजाने लगे ॥३९॥

ते सर्वे तावकान्प्रेक्ष्य द्रवतोऽपि पराङ्मुखान् ॥४०॥

अभ्यवर्तन्त संरब्धान्वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः ।

हे महीपते ! ये सारे पाण्डव महारथी, युद्ध से पराङ् मुख होकर भाग रहे थे, उन सबका पाण्डव वीरों ने इस तरह पीछा किया, जिस तरह भयातुर भागते हुए वृषों पर दूसरे लड़ने वाले वृष (सांड) भागते हैं ॥४०॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव सैन्यस्य पाण्डवः ॥४१॥

व्यवस्थितः सव्यसाची चुक्रोध बलवान्नृप ।

हे नृप ! तुम्हारी इस प्रकार बची हुई सन्नद्ध सेना को देखकर पाण्डु पुत्र, महावीर्यवान् अर्जुन, वहीं स्थित होगया और बड़े क्रोध में आविष्ट हुआ ॥४१॥

धनञ्जयो रथनीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥४२॥

विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।

वीर्य्यवान् अर्जुन ने रथ सेना का पीछा किया और तीनों लोकों में प्रसिद्ध अपने गाण्डीव धनुष को चढ़ाया ॥४२॥

तत एनाञ्शरव्रातैः सहसा समवाकिरत् ॥४३॥
तमसा संवृते नाथ न स्म किञ्चिदृश्यदृश्यत ।

हे स्वामिन्! अब अर्जुन ने इतना बाण जाल छोड़ा, कि जिनसे एक दम इन सबको आच्छादित कर दिया। इस समय इतना अन्धकार छागया, कि कुछ भी दिखाई नहीं देता था ॥४३॥

अन्धकारीकृते लोके रजोभूते महीतले ॥४४॥
योधाः सर्वे महाराज तावकाः प्राद्रवन्भयात् ।

हे महाराज! जब सब ओर अन्धकार छागया-पृथिवी पर मिट्टी ही मिट्टी दिखाई देने लगी-तो तुम्हारे सारे योद्धा, बड़ भयातुर हुए और वे भाग निकले ॥४४॥

सम्भज्यमाने सैन्ये तु कुरुराजो विशाम्पते ॥४५॥
परानभिमुखांश्चैव सुतस्ते समुपाद्रवत् ।

हे विशाम्पते! जब सारी सेना भाग खड़ी हुई और शत्रु सामने खड़े देखे तो तुम्हारे पुत्र कुरुराज दुर्योधन, ने उन पर आक्रमण किया ॥४५॥

ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ॥४६॥
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ।

हे भरत श्रेष्ठ ! अब राजा दुर्योधन ने युद्ध के निमित्त सारे पाण्डव वीरों को इस तरह ललकारा-जैसे पूर्वकाल में वलि ने देवों को ललकारा था ॥४६॥

त एनमभिगर्जन्तः सहिताः समुपाद्रवन् ॥४७॥

नानाशस्त्रभृतः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ।

राजा दुर्योधन की ललकार सुन कर गर्जना करते हुए पाण्डव महारथी, अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए तथा बार २ फटकारते हुए क्रोध के साथ इकट्ठे ही राजा दुर्योधन पर टूटपड़े ॥४७॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तान्रणे निशितैः शरैः ॥४८॥

तत्रावधीत्ततः क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इन सबके एक होकर किये गए आक्रमण को देखकर भी रण में राजा दुर्योधन घबड़ाया नहीं। उसने तीक्ष्ण बाणों से क्रोध-पूर्वक सैकड़ों हजारों की सङ्ख्या में पाण्डव वीर मार गिराए ॥४८॥

तत्सैन्यं पाण्डवेयानां योधयामास सर्वतः ॥४९॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।

यदेकः सहितान्सर्वान्रणेऽयुध्यत पाण्डवान् ॥५०॥

हे राजन ! पाण्डवों की उस विशाल सेना से सब ओर से राजा दुर्योधन युद्ध कर रहा था। तुम्हारे पुत्र के इस पराक्रम को

सारे वीरों ने बड़ा ही अद्भुत वीर कर्म समझा। कि वह अकेला ही सारे इकट्ठे पाण्डवों से टक्कर लेता रहा ॥४९-५०॥

ततोऽपश्यन्महात्मा स स्वसैन्यं भृशदुःखितम् ।
ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥५१॥
हर्षयन्निव तान्योधानिदं वचनमब्रवीत् ।

हे राजेन्द्र! महावीर तुम्हारे पुत्र महाबुद्धिमान् कुरुराज ने जब अपनी सेना को अत्यन्त दुःखी देखा-तो उसने अपने योद्धाओं को वहीं ठहराया और उन्हें हर्षित करते हुए यह वचन कहा ॥५१॥

न तं देशं प्रपश्यामि यत्र याता भयार्दिताः ॥५२॥
गतानां यत्र वै मोक्षः पाण्डवात्किं गतेन वः ।

हे वीरों! मुझे तो कोई ऐसा स्थान दिखाई नहीं देता है, जहां तुम भयातुर भाग कर बच निकलोगे, जब तुम भागने पर भी पाण्डवों से न बचोगे-तो फिर भागने में रखा ही क्या है ॥५२॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥५३॥
अद्य सर्वान्हनिष्यामि ध्रुवो हि विजयो भवेत् ।

अब इनकी सेना थोड़ी सी बच रही है कृष्ण तथा अर्जुन भी अत्यन्त क्षतविक्षत हो रहे हैं। मैं यदि आज इनको मारलूंगा तो अवश्य मेरी विजय होजावेगी ॥५३॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ॥५४॥
अनुसृत्य वधिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः ।

जब तुम बिखर कर भागोगे और तुम्हारी घबराहट रूपी पाप प्रकट होजावेगा—तो पाण्डव वीर, पीछा करके तुम्हें अवश्य मारलेंगे-इससे तो हम लोगोंका युद्ध में ही माराजाना अच्छा है ॥५४॥

सुखं सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥५५॥

मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।

जो क्षत्रिय धर्मानुसार युद्ध करने पर रण में मृत्यु प्राप्त हो-उसे धन्य समझना चाहिए, मरने पर दुःख का अनुभव तो होता नहीं है और मरने पर शुभ लोकों में बड़े सुख की प्राप्ति होती है ॥५५॥

शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः ॥५६॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तको यमः ।
को न मूढो न युध्येत मादृशः क्षत्रियव्रतः ॥५७॥

हे क्षत्रिय वीरो ! जितने तुम यहां उपस्थित हो-वे सब सुनलो जब सब का अन्त करने वाला काल शूरवीर और कायर सबको मार ही देता है तो फिर कौन मूर्ख होगा-जो युद्ध न करे । इसपर मुझ जैसा क्षत्रिय व्रत धारण करने वाला तो कैसे युद्ध से पीछे हट सकता है ॥५६-५७॥

द्विषतो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य वशमेष्यथ ।
पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥५८॥

अब तुम भागे-तो क्रोध में भरे हुए अपने शत्रु इस भीमसेन के पञ्जे में फंस जाओगे-इससे अपने पिता पितामहों से आचरित वीर कर्म को तुम्हें छोड़ना नहीं चाहिए ॥५८॥

नह्यधर्मोऽस्ति पापीयान्क्षत्रियस्य पलायनात् ।
न युद्धधर्माच्छ्रेयो हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥
अचिरेण हता लोकान्सद्यो योधाः समश्नुत ॥५९॥

युद्ध से मुख मोड़कर भाग जाने से अधिक क्षत्रिय को कोई पाप नहीं है : हे कौरव वीरो ! युद्ध धर्म से अधिक कल्याणकारी स्वर्ग का कोई अन्यमार्ग है भी नहीं । हे योद्धाओ ! यदि तुम मारे गए-तो तत्काल ही बहुत जल्दी शुभलोकों को प्राप्त करलोगे ॥५९॥

सञ्जय उवाच—

एवं ब्रुवति पुत्रे ते सैनिका भृशविक्षताः ।
अनवेक्ष्यैव तद्वाक्यं प्राद्रवन्सर्वतोदिशः ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कौरवसैन्यपलायने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र के इतना कहने पर भी अत्यन्त क्षत विक्षत हुए कौरव वीर कुरुराज के वचनों को कुछ न सुनते हुए सब ओर भागते ही रहे ॥६०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजा दुर्योधन की वीरता और कौरव सेना के भागने के वर्णन का तिरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ

चौरानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा तु सैन्यं परिवृत्यमानं पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम् ।
सन्त्रस्तरूपः परिमूढचेता दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! आपका पुत्र राजा दुर्योधन, तो युद्ध से विमुख होकर भागती हुई सेना को देख रहे थे, कि उसी समय घबराये हुए किंकर्तव्य विमूढ़ मद्रपति शल्य उनके पास पहुंचे और यह वचन बोले ॥१॥

शल्य उवाच—

पश्येदमुग्रं नरवाजिनागैरायोधनं वीरशतैः सुपूर्णम् ।
महीधराभैः पतितैश्च नागैः सकृत्प्रभिन्नैः शरभिन्नदेहैः
सविह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च प्रध्वस्तवर्मायुधचर्मखड्गैः ।
वज्रापविद्धैरिव चाचलोत्तमैर्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः
प्रविद्धघण्टांकुशतोमरध्वजैः सहेमजालै रुधिरौघसम्प्लुतैः

शल्य ने कहा—हे राजन ! आप मृत हुए सैंकड़ों राजा, नर, अश्व और हाथियों से व्याप्त इस युद्ध क्षेत्र को देखो-इसमें पर्वत समान आकारधारी लगातार मदस्रावी, शरों से छिदे हुए हाथी पड़े हैं। कवच, आयुध, ढ़ाल तलवार से रहित मृत प्राय: योद्धा उन गजों पर छट पटा रहे हैं। वज्र से विध्वस्त किए हुए नष्ट-भ्रष्ट पाषाण और वृक्ष लताधारी बड़े पर्वतों के समान ये रण भूमि में

पड़े हुए-हाथी प्रतीत होते हैं। इन गजों की घण्टा, अंकुश, तोमर और ध्वजा नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है। ये अपने आभूषणों को धारण किये हुए रुधिर प्रवाह में भीगे पड़े हैं ॥२-३॥

शरावभिन्नैः पतितैस्तुरङ्गमैः श्वसद्भिरार्तैः क्षतजं वमद्भिः

दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रैर्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः।

इसी तरह शरों से बिधे हुए अत्यन्त व्याकुल हांपते हुए और रक्त वमन करते हुए रणभूमि में पड़े अश्व दीनता के साथ कहरा रहे हैं। इनकी आंखें चढ़ गई हैं, जो पृथिवी पर मुंह मारते और दीनस्वर छोड़ते हुये दिखाई दे रहे हैं ॥४॥

तथापविद्धैर्गजवाजियोधैर्बलापविद्धैरथ वीरसङ्घैः ॥५॥

मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः।

मन्दांशुभिश्चैव मही महाहवे नूनं यथा वैतरणीव भाति ॥६॥

बाणों से बिंधे हुए हाथी, अश्व और योद्धा सारी सेना, वीरों के समूह रणभूमि में पड़े तड़फते हैं. किसी के प्राण निकलने को हैं और किसी के निकल चुके हैं। जिधर देखो-उधर ही रण स्थल में नर, अश्व, हाथी और चकनाचूर हुए पड़े दिखाई देते हैं। इन सब का तेज फीका पड़ चुका। आज तो इस रण क्षेत्र में वैतरणी नदी सी बहती दिखाई देती है ॥५-६॥

गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रैरुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम्।

विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः स्फुरद्भिरार्तैः करुणं नदद्भिः

गजों की सूंडे और शरीर छिन्न भिन्न हो रहे हैं। इनके दांत टूट चुके और इनके घावों से रक्त की धारा बह रही है। ये दीन स्वर से चिल्लाते हुए बड़ी व्याकुलता से तड़फ रहे हैं ॥७॥

निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्तृभिः प्रविद्धतूणीरपताककेतुभिः।
सुवर्णजालावततैर्भृशाहतैर्महारथौघैर्जलदैरिवावृता ॥८॥

रथों के चक्र, ईषा (अग्र भाग) जूड़ा और जोते कट चुके हैं तूणीर, पताका और केतु भी नष्ट-भ्रष्ट हो चुके। सुवर्ण के जालों से भरे हुये अत्यन्त चकनाचूर बड़े २ रथों से रणभूमि इस तरह भरी हुई दिखाई देती है, जैसे मेघों से आच्छादित हो रही हो ॥८॥

यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधैर्वृताप्रशान्तैरिव तावकैर्मही ॥९॥

हाथी, रथ, अश्व पर सवार होकर युद्ध करने वाले यशस्वी शत्रुओं से मारे हुये पैदल योद्धा, सामने ही पड़े हुए हैं। इनके कवच आभूषण वस्त्र और शस्त्र छिन्न भिन्न हो गये। अब तो इन तुम्हारे योद्धाओं से व्याप्त रण भूमि प्रशान्त पुरुषों से व्याप्त सी दिखाई देती है ॥९॥

शरप्रहाराभिहतैर्महाबलैरवेक्षमाणैः पतितैः सहस्रशः।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भिर्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥१०॥

बाणों के प्रहार से घायल सहस्रों महाबली वीर रण भूमि में पड़े हुए इधर उधर देख रहे हैं। रातमें निर्मलता से चमकने

वाले तारों से जैसे आकाश सुशोभित होता है। उसी तरह आकाश से गिरे हुए अत्यन्त दीप्त तारों से मानो रण भूमि भरी पड़ी है ॥१०॥

प्रनष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भिर्मही बभूवानुगतैरिवार्चिभिः ।
कर्णार्जुनाभ्यां शरभिन्नगात्रैर्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥११॥

प्रथम योद्धाओं को मूर्च्छा आ चुकी और फिर वे श्वास लेने लगे, जिससे यही मालूम होता था, कि इनमें प्राण की किरणें फिर मानो आ झलकी। यह दशा कर्ण और अर्जुन के बाणों से मारे हुये कौरव और सृञ्जय दोनों वीरों की हो रही है ॥११॥

शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान् ।
प्राणान्निरस्याशु महीं प्रतीयुर्महोरगा वासमिवाभिनम्राः ॥

अर्जुनकी भुजासे निकले हुए बाण, हाथी, अश्व और मनुष्यके देहों को चीर कर और उनके प्राणों को निकालकर पृथिवी में इस तरह घुस गये जैसे बड़े २ सर्प, नीचे होकर अपने बिल में घुस जाते हैं ॥१२॥

हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च सङ्ख्ये शरापविद्धैश्च रथैर्नरेन्द्र ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च मार्गणैरगम्यरूपा वसुधा बभूव ॥१३॥

हे नरेन्द्र ! अर्जुन और कर्ण के बाणों से मारे हुए या घायल मनुष्य, अश्व और हाथियों से रण भूमि भरी हुई बड़ी अगम्य हो रही थी ॥१३॥

रथैर्वरैरुन्मथितैः सुकल्पैः सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः ।
विशीर्णयोक्त्रैर्विनिकृत्य बन्धनैर्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः
विमुक्तशस्त्रैश्च तथा व्युपस्करैर्हतानुकर्षैर्विनिषङ्गबन्धनैः ।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेमभूषितैः स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः ॥

इन दोनों महारथियों ने उत्तम २ बाणों से बड़ी सुन्दरता से बनाये हुये रथ, नष्ट-भ्रष्ट कर डाले। इन रथों में बैठने वाले योद्धा शस्त्र उत्तम २ आयुध और ध्वजा भी नष्ट कर डाले गये-रथों के बन्धन काट दिये-जोते छिन्न हो गये और चक्र, अक्ष, जूड़े तथा तीनों वेणु (बांस) भी कट छूट गए। इनमें सुसज्जित सारे शस्त्र गिर चुके। रथ के नीचे की पेटी छिन्न भिन्न हो गई। ऊपर नीचे के काष्ठ खण्डित हो चुके और तूणीर बन्धन भी कहीं दिखाई नहीं देते। मणि और सुवर्ण से विभूषित, रथों की छतरियां भी चकनाचूर हो चुकी। इन रथों से व्याप्त पृथिवी रोती दिखाई देती है, जैसे शरद ऋतु के उज्ज्वल मेघों से आकाश सुशोभित हो रहा हो ॥१४-१५॥

विकृष्यमाणैर्जवनैस्तुरङ्गमैर्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः ।
मनुष्यमातङ्गरथाश्वराशिभिर्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः॥

अनेक राजाओं के सुन्दर बने हुए रथों को वेगशाली अश्व रण भूमि में वेग से इधर उधर लिए फिरते हैं। इनके रथी वीर मारे जा चुके। मनुष्य, हाथी, रथ और अश्व समूह से

टकरा २ कर ये शीघ्र भगाने वाले बहुत से रथ, प्राय: छिन्न भिन्न हो गये हैं ॥१६॥

सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः ॥

सुवर्ण के पत्र से युक्त परिघ, (घन) परश्वध, तीक्ष्ण, शूल मुसल, मुद्गर, चमकीले नंगे खड्ग और सुवर्ण पत्र से व्याप्त, गदा रण भूमि में सर्वत्र फैली हुई है ॥१७॥

चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः ।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासै
छत्राणि वालव्यजनानि शङ्खाश्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः
कुथाः पताकाम्बरभूषणानि किरीटमालामुकुटाश्च शुभ्राः ॥
प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन्प्रवालमुक्तातरलाश्च हाराः ।

हे राजन् ! धनुष, सुवर्ण के अङ्गद आदि आभूषण, सुवर्ण के विचित्र मूल वाले, बाले, ऋष्टि, विष में बुझाए हुए निर्मल नंगे भाले, सुवर्ण से चमकीले दण्ड, छत्र, छोटे २ पंखे, शङ्ख, छिन्न भिन्न विचित्र माला, हाथियों की झूलें पताका, वस्त्र, आभूषण, मुकुट माला, सुन्दर २ मुकुट प्रवाल और मुक्ताओं के हार, कहीं टूटे हुए बिखरे पड़े हैं और कहीं ज्यों के त्यों पड़े हैं ॥१८-१९॥

आपीडकेयूरवराङ्गदानि ग्रैवेयनिष्काः ससुवर्णसूत्राः ॥२०॥
मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि ।
गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि

शिर की माला, कान के कुण्डल उत्तम मणि, सुवर्ण में जड़े हुए हीरे तथा अच्छे २ रत्न, अत्यन्त सुखके योग्य शरीर, चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर मुख, जहां देखो उधर ही रणाङ्गण में बिखरे पड़े हैं ॥२०-२१॥

देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य व्याप्याशु लोकान्यशसा गतास्ते

ये वीर, अपनी देह, भोग वस्त्र आदि उत्तम सामान, सुन्दर सुखके साधन छोड़कर अपनी धर्म निष्ठा के आधार को धारण करके अपने यश से जगत् को भर कर उत्तम लोकों में जा पहुंचे हैं ॥२२॥

निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका व्रजस्व राजञ्शिबिराय मानद
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम्

हे राजन् ! दुर्योधन ! अब तुम लौटो और ये सैनिक भी वापिस चलें। हे मानदायी ! अब तो आप अपने शिबिर को चल दीजिये। हे प्रभो ! अब तो सूर्य भी छुपने को हो रहा है। हे नरेन्द्र ! मेरे वचन पर विचार करके अब जैसा आपको करना है-वह करें ॥२३॥

इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो दुर्योधनं शोकपरीतचेताः ।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणमार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥
तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥

इतना कहकर शोकातुर, राजा शल्य चुप हो गए। राजा दुर्योधन ! तो, हा!? कर्ण ! हा कर्ण ? इस तरह चिल्ला रहा था। वह बड़ा दुःखी और अत्यन्त अचेत सा हो रहा था। इसकी आंखें आंसुओं से भरी थी। इस समय धैर्य धारण करके अश्वत्थामा आदि वीर और अन्य राजा, एक के बाद दूसरा राजा दुर्योधन के समीप पहुँचने लगे। इस समय यश से देदीप्यमान् अर्जुन की ध्वजा वार २ इनकी दृष्टि गोचर हो रही थी ॥२४-२५॥

नराश्वमातङ्गशरीजेन रक्तेन सिक्तां च तथैव भूमिम् ।
रक्ताम्बरस्त्रक्तपनीययोगान्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम् ॥

नर, अश्व और गजों के शरीर से निकले हुए रक्त से सारी भूमि गीली हो गई। इस समय रण भूमि, लाल वस्त्र और माला धारण करने वाली सुवर्ण के आभूषणों से लदी हुई सर्व गम्य सुन्दर वेश्या स्त्री सी प्रतीत होती थी ॥२६॥

प्रच्छन्नरूपां रुधिरेण राजन्रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमाने ।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥

हे राजन् ! उस भयानक समय में रुधिर से ढ़की हुई बड़ी सुन्दर भूमि को देखने के लिए कोई भी घायल कौरव वीर समर्थ न हो सका और वे सारे ही स्वर्ग लोक जाने को उद्यत हो गये ॥२७॥

वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥

हे राजन्! कर्ण के वध से कौरव वीर बड़े दुःखी थे और वे हाय कर्ण! हाय कर्ण! ऐसा शब्द कर रहे थे। अब ये सब बड़ी शीघ्रता से अपने २ शिबिरों को चल दिए क्योंकि इस समय सूर्य लाल होकर अस्ताचल चूड़ावलम्बी हो चुके थे ॥२८॥

गाण्डीवमुक्तैस्तु सुवर्णपुङ्खैः शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः
शरैश्चिताङ्गो युधि भाति कर्णो हतोऽपि सन्सूर्य इवांशुमाली

गाण्डीव से छोड़े हुए सुवर्ण मूलधारी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, रक्त में भीगे हुए पंख वाले बाणों से व्याप्त हुआ मृत कर्ण, रणाङ्गण में किरणधारी सूर्य सा प्रतीत होता था ॥२९॥

कर्णस्य देहं रुधिरावसिक्तं भक्तानुकम्पी भगवान्विवस्वान्
स्पृष्ट्वांशुभिर्लोहितरक्तरूपः सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम्

कर्ण के रुधिर में भीगे हुए शरीर को अपनी किरणों से छू कर लोहित वर्णधारी, भक्तानुकम्पी भगवान् सूर्य मानो, स्नान करने को समुद्र में घुस गये हों ॥३०॥

इतीव सञ्चिन्त्य सुरर्षिसङ्घाः सम्प्रस्थिता यान्ति यथा निकेतनम्
सञ्चिन्तयित्वा जनता विसस्रुर्यथासुखं खं च महीतलं च ॥

इस प्रकार देवर्षि समूह और जनता सोच विचार कर अपने २ निवास स्थान आकाश और पृथिवी की ओर अपनी २ इच्छा के अनुसार चल दिए ॥३१॥

तदद्भुतं प्राणभृतां भयङ्करं निशम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः
धनञ्जयस्याधिरथेश्च विस्मिताः प्रशंसमानाः प्रययुस्तदा जनाः

इस तरह कुरुवीर अर्जुन और अधिरथ पुत्र कर्ण का भयङ्कर युद्ध देखकर दर्शक बड़े ही चकित हुए और वे कर्ण और अर्जुन की प्रशंसा करते हुए चलेगए ॥३२॥

शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् ।
गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥३३॥

यद्यपि राधा पुत्र कर्ण का कवच वाणों से छिद चुका है । उस के वस्त्र रक्त में भीगे हुए हैं । वह प्राण विहीन होगया-तो भी उसके मुख की कान्ति अभी फीकी नहीं पड़ी है ॥३३॥

तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसमप्रभम् ।
जीवन्तमिव तं शूरं सर्वभूतानि मेनिरे ॥३४॥

तप्त सुवर्ण के तुल्य कान्ति धारी, अग्नि और सूर्य के सदृश तेजस्वी, कर्ण को देखकर लोग, उसे अभी जीवित ही समझते थे ॥३४॥

हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥३५॥

हे महाराज ! यद्यपि सूतपुत्र कर्ण मर चुके थे, तो भी रण में पड़े हुए उसे देखकर शत्रुवीर, इस तरह भयभीत होजाते थे-जैसे मृतसिंह को देखकर बनैले जन्तु, भयभीत होकर भागजाते हैं ॥३५॥

हतोऽपि पुरुषव्याघ्र जीववानिव लक्ष्यते ।
नाभवद्विकृतिः काचिद्धतस्यापि महात्मनः ॥३६॥

हे पुरुष व्याघ्र ! यद्यपि कर्ण मारे जाचुके तो भी वे जीवित से ही दिखाई देते थे इस महावीर के मृतक होजाने पर भी इसके मुख की कान्ति फीकी नहीं पड़ी थी ॥३७॥

चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् ।
तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥३७॥

महावीर कर्ण का बड़ा ही सुन्दर वेष था और उसका मस्तक तथा ग्रीवा भी बड़ी सुन्दर थी। सूतपुत्र कर्ण का मुख इस समय भी पूर्ण चन्द्रमा के सदृश दिखाई देरहा था ॥३७॥

नानाभरणवान्राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदः ।
हतो वैकर्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥३८॥

हे राजन् ! कर्ण ने अनेक भांति के आभूषण धारण कररखे थे और तप्त सुवर्ण के अङ्गारों से वह सुशोभित था इस समय मृतक कर्ण, अंकुरधारी वृक्ष सा प्रतीत होता था ॥३८॥

कनकोत्तमसङ्काशो ज्वलन्निव विभावसुः ।
स शान्तः पुरुषव्याघ्रः पार्थसायकवारिणा ॥३९॥

सुवर्ण के समान उज्वल कान्तिवाला, अग्नि के समान जाज्वल्य मान था। यह पुरुष प्रवीर अर्जुन के बाणरूपी जल से अब बिल्कुल ठण्डा होचुका ॥३९॥

यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति ।
कर्णाग्निः समरे तद्वत्पार्थमेघेन शामितः ॥४०॥

जिस तरह जल के गिरने से प्रदीप्त अग्नि भी शान्त होजाता है, उसी तरह कर्ण रूपी अग्नि भी अर्जुन रूपी मेघ ने बिल्कुल शान्त कर दिया ॥४०॥

आतत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि ।
विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो दश ॥४१॥
सपुत्रः समरे कर्णः शान्तः पार्थतेजसा ।

इस पृथिवी पर उत्तम युद्ध द्वारा अपने दिव्य यश को फैला कर तथा बाणवर्षा से दशोंदिशाओं को सन्तप्त बनाकर आज रणभूमि में अर्जुन के तेज से पुत्र सहित कर्ण, बिल्कुल शान्त होचुका ॥४१॥

प्रताप्य पाण्डवान्सर्वान्पञ्चालांश्चास्त्रतेजसा ॥४२॥
वर्षित्वा शरवर्षेण प्रताप्य रिपुवाहिनीम् ।
श्रीमानिव सहस्रांशुर्जगत्सर्वं प्रताप्य च ॥४३॥
हतो वैकर्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः ।

कर्ण, सारे पाञ्चाल और पाण्डव वीरों को अपने अस्त्र के तेज से सन्तापित करके तथा बाणधारा छोड़कर शत्रु सेना को दग्ध करके सहस्र किरण धारी सूर्य की भांति सारे संसार को तपा कर अपनी सेना वाहन, और पुत्र के सहित सूर्यपुत्र कर्ण मारा गया ॥४२-४३॥

अर्थिनां पक्षिसङ्घस्य कल्पवृक्षो निपातितः ॥४४॥

ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः ।

सद्भिः सदा सत्पुरुषः स हतो द्वैरथे वृषः ॥४५॥

जिस तरह पक्षि समूह का कोई वृक्ष टूट जाता है, उसी तरह याचकों का कल्पवृक्ष कर्ण आज टूट कर गिर पड़ा । जब इससे अर्थी ने कुछ मांगा तो यही कहा, कि अभी देता हूँ यह कभी नहीं कहा, कि नहीं देता ! सज्जनों ने जिसे सदा श्रेष्ठ पुरुष माना वही कर्ण आज अर्जुन के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया ॥४४-४५॥

यस्य ब्राह्मणसात्सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः ।

नादेयं ब्राह्मणेष्वासीद्यस्य स्वमपि जीवितम् ॥४६॥

सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः ।

स वै पार्थास्त्रनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम् ॥४७॥

जिस महात्मा का सारा धन ब्राह्मणों का ही समझा जाता था, जिसको ब्राह्मणों के देने को अपना जीवन भी उपस्थित था, जो स्त्री जाति की उन्नति का प्रियकर्ता, दानी और महारथी था । वही कर्ण आज अर्जुन के अस्त्र से दग्ध होकर परमगति को प्राप्त होगया ॥४६-४७॥

यमाश्रित्याकरोद्वैरं पुत्रस्ते स गतो दिवम् ।

आदाय तव पुत्राणां जयाशां शर्म वर्म च ॥४८॥

जिसके आश्रय से तुम्हारे पुत्रों ने पाण्डवों से वैर किया—वही कर्ण तुम्हारे पुत्रों की विजय की अभिलाषा, कल्याण और रक्षा-भूत कवच को लेकर आज संसार से विदा होकर स्वर्ग जा पहुंचा है ॥४८॥

हते कर्णे सरितो न प्रसस्रु र्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः।
ग्रहश्च तिर्यग्ज्वलनार्कवर्णः सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक्

कर्ण के मारे जाने पर बहती २ नदियां रुकगईं। सर्वप्रकाशक सूर्य भी अस्त होगया। अग्नि और सूर्य के तुल्य तेज का धारण करके चन्द्रमा का पुत्र तेजस्वी बुधग्रह, बड़ी तीखी रीति से उदय हुआ ॥४९॥

नभः पफालेव ननाद चोर्वी ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः।
दिशो बभूवुर्ज्वलिताः सधूमा महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च॥

आकाशके फफोलेसे पड़गए, पृथिवी चीत्कार करने लगी, वायु कठोर और घोर रूप से चलपड़ा। दिशाएँ धूम वर्ण ही होकर जल उठी और समुद्र भी शब्द करते हुए क्षोभित होउठे ॥५०॥

सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे।
बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीं बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते

हे विशाम्पते ! वन सहित पर्वत कांप उठे और सारे प्राणी, बड़े ही व्यथित हुए बृहस्पति नामक ग्रह भी रोहिणी नामक नक्षत्र के समीप चन्द्र और सूर्य के तुल्य तेज को धारण करके उदित हुए ॥५१॥

हते तु कर्णे विदिशोऽपि जज्वलुस्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा निशाचराश्चाप्यभवन्प्रहृष्टाः ॥

कर्ण के मारे जाने पर विदिशाएँ भी जल उठी और आकाश तथा भूमि अन्धकार से आच्छादित होकर कांपने लगे। अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान उल्का गिरने लगी, तथा निशाचर बड़े ही प्रसन्न हुये ॥५२॥

शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत्
तदान्तरिक्षे सहसैव शब्दो बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥५३॥

हे राजन्! अर्जुन ने अपने क्षुरोपम वाण से ज्यों ही चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर कर्ण का मस्तक काट पृथिवी में गिराया-इसी समय आकाश में देवों का एक दम हा हा कार का शब्द खड़ा हो गया ॥५३॥

स देवगन्धर्वमनुष्यपूजितं निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः।
रराज राजन्परमेण वर्चसा यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः ॥५४॥

हे राजसत्तम! अर्जुन इस घोर युद्ध में देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित अपने शत्रु कर्ण का वध करके अत्यन्त तेज के साथ इस तरह प्रदीप्त हो उठे-जैसे वृत्रासुर के वध करने पर इन्द्र प्रकाशित हो उठा था ॥५४॥

ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा।
पताकिना भीमनिनादकेतुना हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना

महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमैरलंकृतावप्रतिमेन रंहसा ॥५६॥
नरोत्तमौ केशवपाण्डुनन्दनौ तदा हि तावग्निदिवाकराविव
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः समानयानाविव विष्णुवासवौ

हे भरतवंश श्रेष्ठ ! इन्द्र के समान पराक्रम दिखाने वाले, सुवर्ण, मुक्ता, मणि, हीरे और विद्रुम (मूंगे) आदि से अलंकृत नर श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण और अर्जुन मेघ समूह के समान गरजने वाले शरत्काल के आकाश के मध्यमें घूमने वाले सूर्य के तुल्य चमकीले पताकाधारी, भयानक शब्द कर्ता, हिम (बर्फ) इन्दु, शङ्ख, स्फटिक के समान उज्ज्वल, इन्द्र के रथ के तुल्य अद्भुत वेगशाली, अपने रथ के द्वारा रणाङ्गण में इस तरह निर्भिक भाव से घूमने लगे जैसे एक रथ पर बैठे हुये विष्णु और इन्द्र घूम रहे हों ॥५५-५७॥

ततो धनुर्ज्यातलबाणनिःस्वनैः प्रसह्य कृत्वा च रिपून्हतप्रभान्
सञ्छादयित्वा तु कुरूञ्शरोत्तमैः कपिध्वजः पन्निगध्वजश्च
हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ मनांस्यरीणामवदारयन्तौ ।
सुवर्णजालाततौ महास्वनौ हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः

इस के बाद, अपने धनुष की प्रत्यञ्चा और बाणों के शब्दों से शत्रुओं को कान्तिहीन बनाकर तथा उत्तम २ बाणों से कौरव वीरों को आच्छादित करके, कपिध्वज अर्जुन और गरुड़ध्वज

श्रीकृष्ण, बड़े ही प्रफुल्लित हो रहे थे। इनका अपरिमित प्रभाव सर्वत्र छा गया। ये दोनों शत्रुओं के मन को चीर सा रहे थे। अब इन्होंने सुवर्ण के तारों से मँढ़े हुए हिम के तुल्य उज्ज्वल महा स्वनकारी शंख हाथों में उठाये। इन दोनों वीरों ने एक दम शङ्खों को अपने २ मुख से चूमा और एक दम ही उच्च स्वर से बजाया ॥५९॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥६०॥

इस समय श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य और अर्जुन के देवदत्त शंख की ध्वनि ने पृथिवी, आकाश और दिशाओं को भी अनुनादित कर दिया ॥६०॥

वित्रस्ताश्चाभवन्सर्वे कौरवा राजसत्तम।
शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥६१॥

हे राजसत्तम ! श्रीकृष्ण और अर्जुन की इस शङ्ख की ध्वनि से सारे कौरव, बड़े ही व्याकुल हुए ॥६१॥

तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ वनानि शैलान्सरितो गुहाश्च।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥६२॥

इन दोनों सर्व श्रेष्ठ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन की शंख ध्वनि ने वन, पर्वत, नदी और गुफाएँ शब्दायमान कर डाली। जिसको सुनकर तुम्हारे पुत्रों की सेना भयभीत हो गई और युधिष्ठिर बड़ा ही आनन्दित हुआ ॥६२॥

ततः प्रयाताः कुरवो जवेन श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम् ।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥

हे भारत ! अब कौरव गण, शङ्ख ध्वनि को सुनते ही वेग से भाग निकले। मद्राधिपति शल्य और राजा दुर्योधन ये दोनों ही कौरव सेना में से वहां खड़े दिखाई दिये ॥६३॥

महाहवे तं बहु रोचमानं धनञ्जयं भूतगणाः समेताः ।
तदान्वमोदन्त जनार्दनं च दिवाकरावभ्युदितौ यथैव ॥

इस महा युद्ध में अत्यन्त चमकते हुये अर्जुन और श्रीकृष्ण की सारे प्राणियों ने बड़ी प्रशंसा की । वे उदय को प्राप्त हुये सूर्य के समान तेजस्वी माने गये ॥६४॥

समाचितौ कर्णशरैः परन्तपावुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ

कर्ण के बाणों से व्याप्त हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन इस समय रण में ऐसे सुशोभित दिखाई देते थे-जैसे अन्धकार का नाश करके किरणधारी निर्मल चन्द्रमा और सूर्य उदित हुये हों ॥६५॥

विहाय तान्बाणगणानथागतौ सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ सदस्यहूताविव विष्णुवासवौ।

वे दोनों महावीर अपने बाण गणों को वहीं पड़े छोड़कर चले आए। अद्भुत पराक्रमधारी दोनों को सारे सुहृदों ने आते ही घेर

लिया। यज्ञ में सदस्यों से आहुत इन्द्र और विष्णु की भाँति वे दोनों ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्णार्जुन शिविर में घुस गए ॥९६॥

तौ देवगन्धर्वमनुष्यचारणैर्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि ।
जयाभिवृद्धया परयाभिपूजितौ हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥

इस घोर युद्ध में कर्ण के मारे जाने पर देव, गन्धर्व, मनुष्य चारण, महर्षि, यक्ष, महोरग, आदि प्राणियों ने जय और अभिवृद्धि के आशीर्वाद से बहुत ही पूजा की ॥९७॥

यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः ।
ननन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णनं नामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

अपने प्रकट किये हुए गुण समूह से प्रशंसा को प्राप्त दोनों वीर श्रीकृष्णार्जुन की सारे प्राणियों ने यथा योग्य पूजा की। अपनी सेना को सान्त्वना देनेके अनन्तर जैसे इन्द्र और विष्णु सुशोभित होते हैं, उसी तरह मित्रगण के साथ वे दोनों बड़े ही प्रसन्न हुए ॥९८॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में रण भूमिवर्णन का
चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ



पिच्चानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते वैकर्तने राजन्कुरवो भयपीडिताः ।

वीक्षमाणा दिशः सर्वाः पर्यापेतुः सहस्रशः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन्! सूर्य पुत्र कर्ण के मारे जाने पर बहुत से कौरव बड़े ही भयभीत हुये। वे सारी दिशाओं को देखते हुए सहस्रों की संख्या में भाग निकले ॥१॥

कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे ।

भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावकाः क्षतविक्षताः ॥२॥

हे भारत! जब घोर संग्राम में शत्रुओं द्वारा कर्ण मारे हुए देख लिए तो तुम्हारे वीर क्षत विक्षत हुए दिशाओं को भय के साथ भाग गए ॥२॥

ततोऽवहारं चक्रुस्ते योधाः सर्वे समन्ततः ।

निवार्यमाणाश्चोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः ॥३॥

अब तुम्हारे पक्ष के सारे योद्धाओं ने सब ओर से युद्ध बन्द कर दिया। वे युद्ध से निवृत्त हुए, बड़े ही उद्विग्न और अत्यन्त दुःखी थे ॥३॥

तेषां तन्मतमाज्ञाय पुत्रो दुर्योधनस्तव ।

अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ॥४॥

हे नृप इन योद्धाओं के युद्ध बन्द करने की इच्छा देखकर राजा दुर्योधन ने मद्रराज शल्य से अनुमति लेकर युद्ध को बन्द करदिया ॥४॥

कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः।
नारायणावशेषैश्च शिबिरायैव दुद्रुवे ॥५॥

हे भारत! अब कृतवर्मा अपनी अवशिष्ट नारायणी सेना, और तुम्हारे पक्ष के रथों के साथ अपने शिविर की ओर चलदिया ॥५॥

गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः।
हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥६॥

गान्धारराज, शकुनि भी अधिरथ पुत्र कर्ण को मृतक देखकर अपने सहस्रों गान्धार वीरों के साथ अपने शिविर की ओर चलदिया ॥६॥

कृपः शारद्वतो राजन्नागानीकेन भारत।
महामेघनिभेनाशु शिबिरायैव दुद्रुवे ॥७॥

हे राजन्! शरद्वान् पुत्र, कृपाचार्य भी महामेघ के समान गजसेना को लेकर सेना संनिवेश की ओर चलदिया ॥७॥

अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य पुनः पुनः।
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥८॥

शूरवीर अश्वत्थामा भी पाण्डवों की विजय को देखकर वार २ श्वास मारता हुआ अपने शिविर की ओर चलदिया ॥८॥

संशप्तकावशिष्टेन बलेन महता वृतः ।

सुशर्मापि ययौ राजन्वीक्ष्यमाणो भयार्दितः ॥९॥

हे राजन्! संशप्तकों की बची हुई महान् सेना को लेकर भयातुर इधर उधर देखता हुआ राजा सुशर्मा भी अपने शिबिरों की ओर चला ॥९॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हतसर्वस्वबान्धवः ।

ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन्विमना बहु ॥१०॥

राजा दुर्योधन के सारे बान्धव, नष्ट होचुके, अतएव वह बहुत ही शोकाविष्ट, चिन्तातुर और उदास था । इसी स्थिति में वह भी अपने शिविर को चलदिया ॥१०॥

छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनां वरः ।

प्रययौ शिविरायैव वीक्ष्यमाणो दिशो दश ॥११॥

रथियों में श्रेष्ठ मद्रराज शल्य भी, दशों दिशाओं को देखता हुआ अपने शिविर को चलदिया ॥११॥

ततोऽपरे सुबहवो भारतानां महारथाः ।

प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः ॥१२॥

इसी तरह अन्य भी कौरव पक्ष के महारथी, भयातुर लज्जा युक्त, अचेत से हुए वेग से लौट पड़े ॥१२॥

अस्रक्त्रवन्तः सोद्विग्ना वेपमानास्तथातुराः ।
कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ॥१३॥

जब कौरव वीरों ने कर्ण को रण में पड़ा देखा था, तो वे बड़े ही आतुर और उद्विग्न होकर कांपते हुए भाग निकले। उनके शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी ॥१३॥

प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित्केचित्कर्णं महारथाः ।
व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम ॥१४॥

इस समय कोई महारथी, कर्ण की और कोई अर्जुन की प्रशंसा कररहे थे। हे कुरुसत्तम ! इस समय भी बहुत से कौरव वीर तो भयभीत हुए इधर उधर भागने में ही लगे थे ॥१४॥

तेषां योधसहस्राणां तावकानां महामृधे ।
नासीत्तत्र पुमान्कश्चिद्यो युद्धाय मनो दधे ॥१५॥

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में तुम्हारी सेना के सहस्रों वीरों में से एक भी ऐसा नहीं था जो अब भी युद्ध करने की इच्छा रखता था ॥१५॥

हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन् ।
जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च ॥१६॥

हे महाराज ! कर्ण के मारे जाने पर कौरव वीरों को अपने जीवन राज्य, स्त्री और धन की रक्षा में भी निराशा होगई ॥१६॥

तान्समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता विभुः ।
निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमन्वितः ॥१७॥

अब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन, उनको बड़े प्रयत्न से लेकर दुःख और शोक के साथ, अपने सेना निवेश की ओर चले ॥१७॥

तस्याज्ञां शिरसा योधाः परिगृह्य विशाम्पते ।
विवर्णवदना राजन्न्यविशन्त महारथाः ॥१८॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि शिविरप्रयाणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

हे विशाम्पते ! राजा दुर्योधन की आज्ञा को शिर पर धारण करके सारे वीर, महारथी, बड़ी उदासी के साथ, अपने २ शिबिरों को चलदिए ॥१८॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सेना के अपने २
शिविरों में लौट जानेके वर्णन का पिञ्चानवेवां
अध्याय समाप्त हुआ



छियानवेवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते ।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब कर्ण रणाङ्गण में गिरगया और कौरव सेना भाग निकली-तौ दशार्ह वंशश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण ने अर्जुन का आलिङ्गन करके हर्षपूर्वक यह वचन बोला ॥१॥

हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनञ्जय ।
वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः ॥२॥

हे धनञ्जय ! जिस तरह इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया-उसी तरह तुमने कर्ण को मार गिराया । भविष्य में मनुष्य, कर्ण के वध को वृत्र के वध के साथ मिलाकर कहा करेंगे ॥२॥

वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा ।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः ॥३॥

अत्यन्त तेज युक्त वज्र से जैसे वृत्रासुर मारा गया-उसी तरह तुमने भी अपने तीक्ष्ण धनुष बाणों से रणभूमि में कर्ण को मारगिराया ॥३॥

तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम् ।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ॥४॥

वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् ।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि ॥५॥

हे कौन्तेय ! तुम्हारे यश के करने वाले इस प्रख्यात पराक्रम को महाबुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिर को चलकर सुनाना चाहिए। वे चिरकालसे कर्णके वध की प्रतीक्षा में लगाए हुए थे। इस कथा को धर्मराज से कहकर तुम उनसे उऋण होजावोगे ॥४-५॥

वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः ।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः ॥६॥
भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत्स्थातुमाहवे ।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान्पुरुषर्षभः ॥७॥

जब तुम्हारा और कर्ण का घोर युद्ध चल रहा था, तो उस समय उस युद्ध को देखने के निमित्त धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिर आए थे। उनके शरीर में बड़े तीक्ष्ण घाव थे, इससे वे अधिक देर तक रणाङ्गण में ठहर नहीं सके वे पुरुषश्रेष्ठ, यहां से लौट कर अपने शिबिर में चलेगए ॥६-७॥

तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः ।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥८॥

यदुवंश श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा—अच्छी बात है। अब श्रीकृष्ण ने उत्तम महारथी अर्जुन के रथ को विना किसी विचार के वापिस लौटाया ॥८॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत् ।
परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ॥९॥

श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अर्जुन से कहकर अपने सैनिकोंसे कहा कि तुम लोग शत्रु के अभिमुख (मुक़ाबिले) पर ठहरे रहो—तुम्हारा इसी में कल्याण होवे ॥९॥

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् ।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥१०॥

अब श्रीकृष्ण ने, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, माद्रीपुत्र नकुल सहदेव भीमसेन, और युयुधान (सात्यकि) से यह वचन कहा ॥१०॥

यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै ।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः ॥११॥

हे वीरो ! हम तो जाकर राजा युधिष्ठिर से कर्ण के मारे जाने का शुभसमाचार सुनाते हैं, तब तक तुम राजा लोग, बड़ी सावधानी से यहां स्थित रहना ॥११॥

स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् ।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥१२॥
शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे ।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ ॥१३॥

वे उन शूरों से अच्छी बात है, यह उत्तर पाकर राज शिविर की ओर अर्जुन को लेकर चलदिए। वहां जाकर उन्होंने धर्मराज

को देखा। ये राजश्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर, सुवर्ण निर्मित पर्यङ्क पर सोते हुए दिखाई दिए। इन दोनों ने झुक कर आनन्द के साथ धर्मराज के चरणों को छुआ ॥१३॥

तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत् ।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥१४॥
उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिन्दमः ।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे ॥१५॥

धर्मराज ने जब इनका उल्लास देखा—तो वह हर्ष के आंसू छोड़ने लगा। राजा युधिष्ठिर ने यह समझ कर आज राधापुत्र कर्ण मारागया-वे खड़े होगए अब बार बार अरिमर्दन, महाबाहु धर्मराज ने आनन्द के शब्द कहे और प्रेम के साथ उन श्रीकृष्ण और अर्जुन का आलिङ्गन किया ॥१४-१५॥

तत्तस्मै तद्यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः ।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गवः ॥१६॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः ॥१७॥

अब यदुवंशश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ धर्मराज से क्रमबद्ध कर्ण के वध के समाचार सुनाए। अब हाथ जोड़ क हंसते हुए श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से शत्रु के मारे जाने का सारा वृत्तान्त सुनाया ॥१६-१७॥

दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
त्वं चापि कुशली राजन्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१८॥

हे राजन् ! यह बड़े आनन्द की बात है, कि गाण्डीवधारी, अर्जुन, पाण्डुपुत्र भीमसेन; आप धर्मराज और माद्री पुत्र नकुल और सहदेव सारे कुशलता से युक्त हैं ॥१८॥

मुक्ता वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव ॥१९॥

हे पाण्डव ! इस वीरों के क्षयकारी लोमहर्षक इस महायुद्ध में हमारे प्रिय बहुत से महारथी बचे हुए हैं। अब तुम जो आगे करना है, उसे शीघ्र करने को सन्नद्ध हो जाओ ॥१९॥

हतो वैकर्तनो राजन्सूतपुत्रो महारथः ।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत ॥२०॥

हे राजन् ! सूतपुत्र सूर्यसुत, महारथी कर्ण मारे गए। हे राजेन्द्र ! भरतवंशश्रेष्ठ ! धर्मराज ! तुम्हारी जय हो। तुम कल्याण से युक्त होकर वृद्धि को प्राप्त होरहे हो ॥२०॥

यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत्पुरुषाधमः ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥२१॥

जिस पुरुषाधम कर्ण ने द्यूत में जीती हुई द्रौपदी को देखकर बड़ी हंसी की थी आज उसी सूतपुत्र कर्ण के रक्त को भूमि चाट गई है ॥२१॥

शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव ।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः ॥२२॥

हे कुरुपुङ्गव ! आज तुम्हारा वह घोर शत्रु कर्ण, बाणों से व्याप्त होकर रणभूमि में पड़ा है। हे पुरुष व्याघ्र ! बहुत से बाणों से बिंधे पड़े हुए कर्ण को तुम देखना चाहो-तो देखलो ॥२२॥

हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज ।
यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुंक्ष्व भोगांश्च पुष्कलान् ॥२३॥

हे महाभुज ! अब तुम्हारे सारे शत्रु मारे जाचुके। अब तुम सावधान होकर हमारे साथ शत्रुहीन भूमि का शासन और पुष्कल भोगों का भोग करो ॥२३॥

सञ्जय उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥२४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर धर्मराज बड़े प्रसन्न हुए और वे दशार्ह वंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से यह वचन कहने लगे ॥२४॥

दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र वाक्यं चेदमुवाच ह ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ॥२५॥
त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम् ।
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम् ॥२६॥

हे राजेन्द्र! धर्मराज ने कहा—बड़ा अच्छा हुआ, बड़ा अच्छा हुआ। हे महाबाहो! देवकीनन्दन! आपको इनमें कौन सी बात कठिन है। तुम सारथि थे, तो तुमने प्रयत्न करके उसे मरवा डाला। हे महाबाहो! तुम्हारी बुद्धि के अनुग्रह को यह कुछ भी कठिन बात नहीं है ॥२५-२६॥

प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम्।
उवाच धर्मभृत्पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥२७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! अब अङ्गद से विभूषित श्रीकृष्ण, और अर्जुन की दांयी भुजा पकड़ कर धर्मराज कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर श्रीकृष्ण और अर्जुन से इस प्रकार बोले ॥२७॥

नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे।
धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥२८॥
असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम।
कथामेतां महाभाग कथयामास तत्त्ववित् ॥२९॥

हे महाभाग! मुझे तो नारद जी ने प्रथम बताया था, कि तुम नर नारायण नामक ऋषि हो। तुम बड़े धर्मात्मा महात्मा सनातन ऋषि हो, महाबुद्धिमान तत्ववेत्ता, कृष्ण द्वैपायन व्यास ने भी मुझ से यह कथा बार २ कही है ॥२८॥

तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनञ्जयः।
जिगायाभिमुखः शत्रुन्न चासीद्विमुखः क्वचित् ॥३०॥

हे कृष्ण ! आपके अनुग्रह से ही इस पाण्डव अर्जुन ने, शत्रुओं के सन्मुख टक्कर लेकर शत्रुओं को जीत लिया। यह कहीं भी विरुद्ध नहीं हुआ ॥३०॥

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः ।
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥३१॥

हमारी निश्चय विजय होगी-पराजय कभी नहीं होसकता है, क्योंकि आपने स्वयं युद्ध में अर्जुन का सारथि बनना स्वीकार कर रखा है ॥३१॥

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमः कृपः ।
अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ॥३२॥
त्वद्बुद्धया निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा ।

हे गोविन्द ! भीष्म, द्रोण, कर्ण, महात्मा गौतम वंशोद्भव कृपाचार्य, तथा अन्य महारथी, बहुत से शूरवीर एवं उनके साथी सैनिक, तुम्हारी बुद्धि से कर्ण के मारे जाने पर शेष सब मारे ही समझो ॥३२॥

इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम् ॥३३॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालावालैर्मनोजवैः ।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ॥३४॥
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा ।

हे राजन् ! इस प्रकार कहकर पुरुषश्रेष्ठ, महाबाहु, धर्मराज सुवर्ण-विभूषित, श्वेत वर्ण धारी, काले बालों वाले मन के समान

वेगशाली, अश्वोंसे युक्त अपने रथ पर चढ़कर अपनी सेना के साथ रणभूमि देखने लगे ॥३३-३४॥

कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततः प्रियम् ॥३५॥
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ ।
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥३६॥

धर्मराज, वीर श्रेष्ठ श्रीकृष्णार्जुन से मन्त्रणा करके अपने प्रिय दृश्य को देखने को चले वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन से बातें करते हुए, वहां पहुंचे और वहां पर पुरुष प्रवीर कर्ण को रणभूमि में पड़ा हुआ देखा ॥३५-३६॥

यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम् ।
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ॥३७॥

जिस तरह कदम्ब का पुष्प, सब ओर से केशरों से घिरा होता है-उसी तरह बाणों से व्याप्त महारथी कर्ण को रण भूमि में धर्मराज ने देखा ॥३७॥

गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः ।
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यन्ते वै वृषं तदा ॥३८॥

सुगन्धित तेल से सिक्त सुवर्णमय मशालों से प्रकाश करके उन लोगों ने धर्मात्मा कर्ण को देखा । इसका कवच छिन्न भिन्न हो रहा था और बाणों ने उसमें छेद पर छेद कर दिए थे ॥३८॥

संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम् ।
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ॥३९॥

सञ्जातप्रत्ययोऽतंव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः ।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥४०॥

राजा युधिष्ठिर पुत्र सहित कर्ण को मृत देखकर उन्हें बार बार देखने लगा, कि कहीं जीवित तो नहीं हैं। जब उसको बिल्कुल निश्चय हो गया, कि ये मर चुके तो वह नर श्रेष्ठ श्री कृष्ण और अर्जुन की बड़ी ही प्रशंसा करने लगा ॥३९-४०॥

अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह ।
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥४१॥

हे गोविन्द ! मैं आज अपने भाइयों के सहित पृथिवी का राजा हो गया । युद्ध विद्या के ज्ञाता, तुम वीर स्वामी ने ही हमारी यह रक्षा की है ॥४१॥

हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेयमतिमानिनम् ।
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥४२॥

आज नर श्रेष्ठ अत्यन्त अभिमानी राधा पुत्र कर्ण को मृत सुनकर दुरात्मा दुर्योधन अपनी विजय में अवश्य निराश हो जावेगा ॥४२॥

जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे ।
त्वत्प्रसादाद्वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥४३॥

हे पुरुषर्षभ ! कर्ण के मारे जाने पर राजा दुर्योधन का तो जीवन और दोनों ही नष्ट समझो । आज हम आपके अनुग्रह से अत्यन्त कृतार्थ हो गए हैं ॥४३॥

दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च विजयी पाण्डुनन्दनः ॥४४॥

हे गोविन्द ! आप विजयी हुए और शत्रु गिरा लिया-यह बड़े ही हर्ष की बात है । गाण्डीव धनुष धारी पाण्डव वंश के आनन्द के बढ़ाने वाला अर्जुन विजयी हुआ-इससे बढ़कर अन्य क्या हर्ष का स्थान हो सकता है ॥४४॥

त्रयोदशसमास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः ।
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज ॥४५॥

हम लोगों ने जागते २ तेरह वर्ष बड़े दुःख से व्यतीत किए हैं । हे महाभुज ! आज आपके अनुग्रह से हम सुख से सोवेंगे ॥४५॥

एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम् ।
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥४६॥

हे राजन् ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार से जनार्दन कृष्ण और अर्जुन की बार २ प्रशंसा की ॥४६॥

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः ॥४७॥

सञ्जय बोले—हे राजेन्द्र ! अर्जुन के बाणों से पुत्र सहित कर्ण को निहत देखकर राजा युधिष्ठिर ने अपना पुनर्जन्म समझा ॥४७॥

समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ॥४८॥

हे महाराज ! कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर से मिल २ कर अनेक हर्षोल्लास युक्त महारथी, राजा युधिष्ठिर को आनन्दित करने लगे ॥४८॥

नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥४९॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपश्चालसृञ्जयाः ।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥५०॥

हे महाराज ! नकुल सहदेव, पाण्डव श्रेष्ठ वृकोदर भीमसेन वृष्णि वंश श्रेष्ठ महारथी सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, तथा अन्य पाण्डव, पञ्चाल और सञ्जय वीर सूत नन्दन कर्ण के मारे जाने पर धर्मराज को वधाइयां देने लगे ॥४९-५०॥

ते वर्धयित्वा नृपतिं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
जितकाशिनो लब्धलक्ष्या युद्धशौण्डाः प्रहारिणः ॥
स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परन्तपौ ।
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः ॥५२॥

इन लोगों ने जब धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को वधाई दे ली तो वे अनेक स्तुति युक्त वाणी से शत्रुतापी श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। इस समय इनको अपने विजय की निश्चय

आशा हो गई। ये सारे अपने लक्ष्य को बींधने वाले युद्ध कुशल प्रहार कर्ता वीर थे। इसके अनन्तर सारे महारथी अपने २ शिविरों को चले गए॥५१-५२॥

एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्किमर्थमनुशोचसि ॥५३॥

हे राजन्! इस प्रकार तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उठे हुए इस युद्ध में यह महान् लोमहर्षकारी विध्वंस हुआ। यह सब कुछ आप का ही किया हुआ है इससे चिन्ता करना उचित नहीं है॥५३॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥५४॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय! इस प्रकार अप्रिय समाचार सुनकर अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र कटे हुए मूल वाले वृक्ष की तरह अचेत होकर भूमि में गिर गया ॥५४॥

तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी।
शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि ॥५५॥
तां पर्यगृह्णाद्विदुरो नृपतिं सञ्जयस्तथा।
पर्याश्वासयतां चैव तावुभावेव भूमिपम् ॥५६॥

इसी तरह परिणाम देखने वाली गान्धारी देवी भी मूर्च्छित होकर गिरगई, वह बहुत से बनाव बनाकर युद्ध में कर्ण के मारे जाने पर सोच करने लगी, गिरती हुई गान्धारी को विदुरने और

राजा को सञ्जय ने पकड़ लिया। इन दोनों ने राजा को बहुत सी सान्त्वना दी ॥५५-५६॥

तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः।
स दैवं परमं मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ॥५७॥
परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः।
चिन्ताशोकपरीतात्मा न जज्ञे मोहपीडितः।
स समाश्वासितो राजा तूष्णीमासीद्विचेतनः ॥५८॥

अब बहुत सी कौरव वंश की स्त्रियां आगईं और उन्होंने गान्धारी को उठालिया। राजा धृतराष्ट्र ने दैव और होनहार को प्रधान मान कर बड़ी ही पीड़ा का अनुभव किया। यह महातपस्वी बड़ा ही अचेत सा होगया। इसके चित्त को चिन्ता और शोक ने घेर लिया। यह मोह से व्याप्त होकर कुछ भी नहीं सोच सकता था। जब सञ्जय ने इन्हें बहुत समझाया-तो यह अचेत सा ही चुप बैठ गया ॥५७-५८॥

इमं महायुद्धमखं महात्मनोर्धनञ्जयस्याधिरथेश्च यः पठेत्।
स सम्यगिष्टस्य मखस्य यत्फलं तदाप्नुयात्संश्रवणाच्च भारत

हे राजन्! जो कोई व्यक्ति, महावीर अर्जुन और कर्ण के इस महायुद्ध को जो पढ़ता है सुनता है वह अच्छी तरह किये हुए महायश अश्वमेध का फल पाता है ॥५६॥

मखो हि विष्णुर्भगवान्सनातनो वदन्ति तच्चाग्र्यनिलेन्दुभानवः
अतोऽनसूयुः शृणुयात्पठेच्च यः स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत्

सनातन भगवान् विष्णु ही यज्ञ रूप से पूजित होते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि ये सब विष्णु के ही रूप हैं। जो किसी की निन्दा नहीं करने वाला मनुष्य, इसे पढ़ता या सुनता है- वह सब लोकों को प्राप्त करके सुखी होता है ॥६०॥

तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम्
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा नन्दन्ति ते नात्र विचारणास्ति

जो मनुष्य, बड़ी भक्ति के साथ इस श्रेष्ठ संहिता महाभारत को पढ़ता है—वे धन, धान्य, और यश से युक्त होकर आनन्दित होते हैं इस में कुछ सन्देह न समझो ॥६१॥

अतोऽनसूयुः शृणुयात्सदा तु वै,
नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात्।
विष्णुः स्वयम्भूर्भगवान्भवश्च,
तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ॥६२॥

जो इसकी निन्दा न करके मनुष्य, सुनता है-वह सर्वदा सुखों को प्राप्त करता है उस नरश्रेष्ठ से विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, शिव आदि सारे देव प्रसन्न होजाते हैं ॥६२॥

वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि
धनज्येष्ठाश्चापि भवन्ति वैश्या शूद्राऽऽरोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे

इसके पढ़ने से ब्राह्मणों को वेद की प्राप्ति और क्षत्रियों को रण में विजय की उपलब्धि होती है। वैश्य धन पाकर बड़े बन जाते हैं और शूद्रगण भी आरोग्यता का लाभ करते हैं ॥६३॥

तथैव विष्णुर्भगवान्सनातनः स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः
ततः स कामान्लभते सुखी नरो महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा

भगवान् ! सनातन विष्णु के गुणों का कीर्तन इस संहिता में किया गया है । महा मुनिव्यास का यही वचन है, कि इनके श्रवण से अवश्य मनुष्य कामना पाकर सुखी होता है ॥६४॥

कपिलानां सवत्सानां सर्वमेकं निरन्तरम् ।
यो दद्यात्सुकृतं तद्धि श्रवणात्कर्णपर्वणः ॥६५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे पण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

कर्णपर्व समाप्तम् ॥ (श्लोक संख्या ५०१४)

जो एक वर्ष तक प्रतिदिन बछड़े सहित कपिला गौ का लगातार प्रदान करता है उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है-वही इस कर्णपर्व के सुनने वाले को पुण्य मिलता है ॥६५॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्णपर्व के माहात्म वर्णन का छियानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ और यही पर्व कर्णपर्व भी समाप्त होगया-इसके आगे शल्य पर्व चलेगा-जिसका प्रथम यह श्लोक है

अतः परं शल्यपर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज ॥१॥





श्री महर्षिव्यासप्रणीतम्

महाभारतम्

शल्यपर्व

पहिला अध्याय

श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीवेदव्यासाय नमः ।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।१।।

जनमेजय उवाच—

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।
अल्पाऽवशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज ।।१।।

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! जब सव्यसाची अर्जुन ने इस कर्ण को मार गिराया-तो कौरव वीर तो बहुत ही स्वल्प सङ्ख्या में शेष रह गये थे । इसके बाद, उन्होंने क्या किया-मुझे यह बताओ ।।१।।

उदीर्यमाणं च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
पाण्डवैः प्राप्तकालं च किं प्रापद्यत कौरवः ॥२॥

हे द्विजराज ! पाण्डवों द्वारा अपनी सेना को छिन्न-भिन्न देख कर राजा दुर्योधन ने समयानुकूल क्या उपाय किया ॥२॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥३॥

हे द्विजोत्तम ! मैं यह सब कुछ वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। मुझे पूर्व पुरुषों के चरित्र सुनने से तृप्ति नहीं होती है ॥३॥

वैशम्पायन उवाच—

ततः कर्णे हते राजन्धार्त्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत् ॥४॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! कर्ण के मारे जाने पर धृत-राष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन शोक समुद्र में गोते लगाने लगा और उसको अपनी विजय में सर्वथा निराशा हो गई ॥४॥

हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः पुनः पुनः ।
कृच्छ्रात्स्वशिबिरं प्राप्तो हतशेषैर्नृपैः सह ॥५॥

यह हाय ! कर्ण, हाय ! कर्ण, इस तरह बार २ चिन्ता पूर्ण शब्द करता हुआ बचे हुए अपने साथी राजाओं के साथ बड़ी कठिनाई से अपने शिबिर की ओर चला ॥५॥

स समाश्वास्यमानोऽपि हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः ।
राजभिर्नालभच्छर्म सूतपुत्रवधं स्मरन् ॥६॥

इस समय अनेक राजा ! शास्त्रानुसार हेतुवाद देकर इसको समझा रहे थे, परन्तु यह सूत पुत्र कर्ण का स्मरण करता हुआ शान्ति नहीं लेता था ॥६॥

स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ।
संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ ॥७॥

अब उसने दैवकी इच्छा और होनहार को बलवान् समझा। यह फिर युद्ध का निश्चय करके फिर संग्राम के लिए तय्यार हो गया ॥७॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद्राजपुङ्गवः ।
रणाय निर्ययौ राजा हतशेषैर्नृपैः सह ॥८॥

इस राजश्रेष्ठ दुर्योधन ने, मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया और मरने से बचे हुए राजाओं को लेकर यह युद्ध के लिए चल पड़ा ॥८॥

ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
बभूव भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम् ॥९॥

हे भरत श्रेष्ठ ! इसके अनन्तर कौरव और पाण्डवों की सेना का देवासुर संग्राम के समान भीषण युद्ध हुआ ॥९॥

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे ।
ससैन्योऽथ स मध्याह्ने धर्मराजेन घातितः ॥१०॥

हे महाराज ! रणाङ्गण में राजा शल्य ने पाण्डवसेना का बहुत घोर विध्वंस उड़ाया, परन्तु दोपहर के पीछे धर्मराज ने सेना सहित उसे भी मार गिराया ॥१०॥

ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात् ।
अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद्भयात् ॥११॥

जब सारे बान्धव, मारे गए तो अन्त में राजा दुर्योधन, शत्रु के भय से रणक्षेत्र से भाग निकला और एक घोर तालाब में जाकर छुप गया ॥११॥

अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः ।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥१२॥

हे राजन ! उसी दिन के सायङ्काल में उस तालाब से निकाल कर घेर कर गदायुद्ध द्वारा उसे भीमसेन ने मार गिराया ॥१२॥

तस्मिन्हते महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः ।
संरम्भान्निशि राजेन्द्र जघ्नुः पाञ्चालसोमकान् ॥१३॥

हे राजेन्द्र ! जब महाधनुर्धर राजा दुर्योधन भी मारा गया- तो कृतवर्मा, अश्वत्थामा, और कृपाचार्य ये तीन महारथी बचे । इन्होंने कुपित होकर रात में सारे पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय मार गिराए ॥१३॥

ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य सञ्जयः ।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥१४॥

इसके अनन्तर दिन के पूर्वार्द्ध में शिबिर से लौटकर सञ्जय बड़े, दुःखशोक से समन्वित होकर बड़ी दीनता के साथ हस्तिना-पुर में घुसे ॥१४॥

स प्रविश्य पुरीं सूतो भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः ।
वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निकेतनम् ॥१५॥

सूतपुत्र सञ्जय, हस्तिनापुर में घुसा वह भुजा उठाकर दुःख पूर्वक रोने लगा। वह कांपता २ राजा धृतराष्ट्र के महलों में घुसा ॥१५॥

रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः ।
अहो बत विनष्टाः स्म निधनेन महात्मनः ॥१६॥

हे नरव्याघ्र ! राजन् ! इस प्रकार सम्बोधन करके दुःख के साथ सञ्जय रोने लगा। वह बोला—आज हम महावीर राजा दुर्योधन की मृत्यु से बिल्कुल ही नष्ट होगए ॥१६॥

विधिश्च बलवानत्र पौरुषं तु निरर्थकम् ।
शक्रतुल्यबलाः सर्वे यथाऽवध्यन्त पाण्डवैः ॥१७॥

आज मुझे पता लगा, विधाता बड़ा बलवान् है और पुरुषार्थ निरर्थक है, जो इन्द्र के समान पराक्रमी वीरों को भी पाण्डवों ने मार गिराया ॥१७॥

दृष्ट्वैव च पुरे राजन् जनः सर्वः स सञ्जयम् ।
क्लेशेन महता युक्तं सर्वतो राजसत्तम ॥१८॥
रुरोद च भृशोद्विग्नो हा राजन्निति विस्वरम् ।
आकुमारं नरव्याघ्र तत्र तत्र समन्ततः ॥१९॥

हे राजन् ! सारी प्रजा के लोग अच्छी तरह क्लेशातुर, सञ्जय को देखकर बड़ी उद्विग्नता से विस्वर होकर रोने लगे। हे नर श्रेष्ठ ! इसमें बच्चे से लेकर वृद्ध तक सम्मिलित थे ॥१८-१९॥

आर्त्तनादं ततश्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम् ।
धावतश्चाप्यपश्यामस्तत्र तान्पुरुषर्षभान् ॥२०॥
नष्टचित्तानिवोन्मत्तान् शोकेन भृशपीडितान् ।

इन्होंने जब राजा दुर्योधन को मृतक सुना-तो वे आर्तनाद करने लगे। उस समय शोक से इधर उधर छटपटाते हुए सारे कौरव वीर अचेष्ट, उन्मत्त और अत्यन्त पीड़ित दिखाई दिए।

तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयम् ॥२१॥
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।

अब विह्वल हुए सञ्जय ने राजमहल में प्रवेश किया। वहां उन्होंने प्रज्ञाचक्षु, नृपतिश्रेष्ठ, राजा धृतराष्ट्र को देखा ॥२१॥

तथा चासीनमनघं समन्तात्परिवारितम् ॥२२॥
स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च ।
तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैषिभिः ॥२३॥
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ।

हे भरतश्रेष्ठ ! ऐश्वर्य सम्पन्न राजा धृतराष्ट्र, अपनी पुत्रवधू गान्धारी और विदुर से घेरे हुए वहां बैठे थे। इनके साथ में

अन्य सुहृद् हितैपी बन्धुबान्धव बैठे थे। ये कर्ण की मृत्यु के विषय में बात चीत करते हुए युद्ध की चर्चा कर रहे थे ॥२२-२३॥

रुदन्नेवाब्रवीद्वाक्यं राजानं जनमेजय ॥२४॥
नातिहृष्टमनाः सूतो वाक्यसन्दिग्धया गिरा।
सञ्जयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ॥२५॥
मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा।
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥२६॥
संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह।
म्लेच्छाश्च पार्वतीयाश्च यवना विनिपातिताः ॥२७॥
प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः।

हे जनमेजय। अब रोता २ सञ्जय, सन्दिग्ध वाणी होगया। बड़ी उदासी से राजा से यह वाक्य बोला—हे नर व्याघ्र! भरतर्षभ! मैं सञ्जय हूँ। आप पुरुष श्रेष्ठ को प्रणाम कर रहा हूँ। आज मद्राधिप शल्य, सुबल पुत्र शकुनि, उसका पुत्र अत्यन्त पराक्रमी छली उलूक, संशप्तक, काम्बोज, शक, म्लेच्छ, पर्वतोत्पन्न यवन आदि सारे वीर मार गिराए गए ॥२४-२७॥

उदीच्याश्च हताः सर्वे प्रतीच्याश्च नरोत्तमाः ॥२८॥
राजानो राजपुत्राश्च सर्वे ते निहता नृप।

हे महाराज! आज प्राच्य, दाक्षिणात्य, उदीच्य, और प्रतीच्य, राजा गण, और राजपुत्र सारे ही मारे गए ॥२८॥

दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह ॥२६॥

भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः ।

हे महाराज ! पाण्डु पुत्र भीमसेन ने जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी कर दिखाई । आज जंघा टूटे हुए राजा दुर्योधन, मिट्टी में लेट रहे हैं ॥२६॥

धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः ॥३०॥

उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन्प्रभद्रकः ।

पञ्चालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः ॥३१॥

तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत ।

कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनः प्रतापवान् ॥३२॥

नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः ।

रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च निहता युधि ॥३३॥

हे राजन् ! पाण्डव पक्ष के वीर महारथी धृष्टद्युम्न, किसी से पराजित नहीं होने वाला शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु और प्रभद्रक भी मारे जा चुके । हे नरव्याघ्र ! महाराज ! सारे पञ्चाल और चेदी वीर भी समाप्त हुए । हे भारत ! तुम्हारे सारे पुत्र और द्रौपदी के पुत्र भी नष्ट होगए । महाप्रतापी, कर्णपुत्र, शूरवीर वृषसेन, मारा गया सारे मनुष्य और गज गिराए जाचुके । हे नर व्याघ्र ! इसी तरह सारे रथी और अश्वरोही युद्ध में मर गए ॥३०-३३॥

किञ्चिच्छेषं च शिविरं तावकानां कृतं प्रभो ।
पाण्डवानां कुरूणां च समासाद्य परस्परम् ॥३४॥
प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत्कालेन मोहितम् ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो रथाः ॥३५॥

हे प्रभो ! तुम्हारे शिविर में बहुत थोड़ी सेना शेष रही है। पाण्डव और तुम कौरवों के इस परस्पर के कलह का यही परिणाम हुआ। काल की प्रेरणा से सारे जगत में प्रायः स्त्रियां शेष रह गई हैं। पाण्डवों की ओर सात महारथी और तुम्हारी ओर के तीन महारथी बचे हैं ॥३४-३५॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः ॥३६॥
तथाऽप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम ।
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ॥३७॥
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः ।
कालेन निहतं सर्वं जगद्वै भरतर्षभ ॥३८॥
दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरं च भारत ।

हे महाराज ! उनमें पांच पाण्डव, एक श्रीकृष्ण और एक सात्यकि हैं। तथा तुम्हारे पक्ष के कृप, कृतवर्मा, और विजयी अश्वत्थामा बचे हुए हैं। हे नृप सत्तम ! सारी एकादश अक्षौहिणी सेना में ये दश महारथी बचे समझो। हे जनेश्वर! शेष सारे वीर

नष्ट होगए। हे भरतर्षभ ! इससारे जगत को काल ने नष्ट करडाला है। हे भारत ! यह सब कुछ काल ने दुर्योधन के कलह को आगे करके किया है ॥३६-३८॥

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥३९॥
निपपात स राजेन्द्रो गतसत्वो महीतले ।

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार के सञ्जय के क्रूर वचनों को सुनकर राजाधिराज, राजा धृतराष्ट्र, अचेत होकर पृथिवी पर गिरगए ॥३९॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः ॥४०॥
निपपात महाराज शोकव्यसनकर्शितः ।

हे महाराज ! धृतराष्ट्र के गिरते ही महायशस्वी विदुर भी शोक और व्यसन से पीड़ित होकर पृथिवी में गिरगए ॥४०॥

गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥४१॥
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरवचस्तदा ।

हे नृपश्रेष्ठ ! इसी समय महारानी गान्धारी और सारी कुरुवंश की स्त्रियां इस बुरे वृत्तान्त को सुनकर एक दम भूमि में गिर गईं ॥४१॥

निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदाऽऽसीद्राजमण्डलम् ॥४२॥
प्रलापयुक्तं महति चित्रन्यस्तं पटे यथा ।

अब सारा ही राज मण्डल इस तरह मूर्च्छित होकर पृथिवी में गिर गया जिस तरह किसी बड़े वस्त्र में चित्र खैंच दिया गया हो। ये पड़े २ बहुत से प्रलाप कर रहे थे ॥४२॥

कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥४३॥
शनैरलभत प्राणान्पुत्रव्यसनकर्शितः।
लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः॥
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्।

हे राजन्! अपने पुत्र राजा दुर्योधनादि की मृत्यु के शोक से पीड़ित राजा धृतराष्ट्र को जैसे तैसे-धीरे २ चेतनता प्राप्त हुई। ज्योंही राजा धृतराष्ट्र की मूर्च्छा टूटी-तो कांप रहा था। वह बड़े दुःख के साथ इधर उधर देखता हुआ, विदुर से यह वाक्य बोला ॥४३-४४॥

विद्वन्क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ ॥४५॥
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः।
एवमुक्त्वा ततो भूतो विसंज्ञो निपपात ह ॥४६॥

हे भरतर्षभ! महाप्राज्ञः विदुर! तुम बड़े विद्वान् हो-इस समय तुम ही मेरे अवलम्बन हो, क्योंकि मैं पुत्रों से हीन होने से आज अत्यन्त अनाथ हो गया हूं। हे राजन्! इतना कहकर फिर मूर्च्छित होकर पृथिवी में गिर गया ॥४५-४६॥

तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन।
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि ॥४७॥

इस तरह राजा धृतराष्ट्र को अचेत होकर गिरते देखकर बांधवों ने इन्हें जल से सींचा और बहुत से सेवक पङ्खा लेकर पवन करने लगे ॥४७॥

स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः ।
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ॥४८॥

बहुत देर के बाद राजा धृतराष्ट्र को अचेनता (होश) आई ! अब राजा धृतराष्ट्र, पुत्र के मरने की विपत्ति से व्याकुल हुआ चुपचाप बैठ गया ॥४८॥

निःश्वसन्जिह्मग इव कुम्भक्षिप्तो विशाम्पते ।
सञ्जयोऽप्यरुदत्तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥४६॥
तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी ।

हे विशाम्पते ! यह राजा धृतराष्ट्र, घड़े में डाले हुए सर्प की भांति श्वास छोड़ रहा था । राजा को इस तरह शोकातुर देखकर सञ्जय, सारी कुरुवंश की स्त्रियां तथा यशस्विनी गान्धारी, भी रोने लगी ॥४६॥

ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् ॥५०॥
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी ॥५१॥
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम् ।

हे नर श्रेष्ठ ! राजा धृतराष्ट्र बार २ मोह को प्राप्त होते थे । बहुत देर के बाद उन्होंने महात्मा विदुर से यह वचन कहा-इस

समय सारी स्त्रियां और यशस्विनी गान्धारी भी चली जावें। सारे सुहृद भी जावें, मेरा मन बहुत ही चकरा रहा है ॥५०-५१॥

एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ ॥५२॥
विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनःपुनः।
निश्चक्रमुस्ततः सर्वाः स्त्रियो भरतसत्तम ॥५३॥
सुहृदश्च तथा सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम्।

हे भरतर्षभ ! इतनी आज्ञा सुनते ही महात्मा विदुर ने बार बार कांपते २ धीरे २ उन स्त्रियों को वहां से हटाया। हे भरत-सत्तम ! अब सारी स्त्रियां वहां से निकल गईं तथा राजा धृतराष्ट्र को व्याकुल देखकर सारे बान्धव भी चले गए ॥५२-५३॥

ततो नरपतिं तूर्णं लब्धसंज्ञं परन्तप ॥५४॥
अवैक्षत्सञ्जयो दीनं रोदमानं भृशातुरम्।

हे परन्तप ! अब राजा धृतराष्ट्र को कुछ संज्ञा प्राप्त हुई। इन के समीप में खड़ा हुआ सञ्जय, अत्यन्त आतुर रोते हुए हीन राजा धृतराष्ट्र की ओर देखने लगा ॥५४॥

प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण च ॥५५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रप्रमोहे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अब राजा धृतराष्ट्र बार २ श्वास भार रहे थे । उनकी यह दशा देखकर महात्मा विदुर हाथ जोड़ कर खड़े हुए, उनको मधुर स्वर में समझाने लगे ॥४५॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिपेक पर्व में
धृतराष्ट्र के मूर्च्छित होने का प्रथम
अध्याय समाप्त हुआ



द्वितीय अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

निसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
विललाप महाराज दुःखाद्दुःखांतरं गतः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! कुरुवंश की स्त्रियों को भेज कर अम्बिका सुत राजा धृतराष्ट्र, एक दुःख के अनन्तर दूसरे दुःख का स्मरण करके बहुत ही विलाप करने लगा ॥१॥

सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन्पुनःपुनः ।
विचिंत्य च महाराज वचनं चेदमब्रवीत् ॥२॥

हे राज श्रेष्ठ ! जनमेजय ! धूमसहित निश्वास लेते और बार २ हाथ पटकते हुए राजा धृतराष्ट्र कुछ सोचकर अब यह वचन बोले ॥२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

अहो बत महद्दुःखं यदहं पाण्डवान्रणे ।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै ॥३॥

हे सूत! यह बड़े आश्चर्य पूर्ण दुःखदायी घटना सुन रहा हूँ-जो रण में सारे पाण्डव कल्याण युक्त हैं और उनमें से एक भी पाण्डव कम नहीं हुआ ॥३॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा निहतान्पुत्रान्दीर्यते न सहस्रधा ॥४॥

हे सञ्जय! मेरा हृदय बड़ा दृढ़ और वज्र का बना हुआ प्रतीत होता है, जो अपने पुत्रों की मृत्यु सुनकर भी सहस्रों टुकड़ों में नहीं फट जाता है ॥४॥

चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च सञ्जय ।
हतान्पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः ॥५॥

हे सञ्जय! अपने पुत्रों की आयु और बालक्रीड़ा का स्मरण करके आज मेरा हृदय फटा जाता है, क्योंकि मेरे सारे ही पुत्र मारे जा चुके ॥५॥

अनेत्रत्वाद्यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनम् ।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥६॥

यद्यपि मैं नेत्रविहीन था, इससे मैं उनके रूप को नहीं देख सका परन्तु तो भी मेरी पुत्र स्नेह से उत्पन्न प्रीति, उन में बहुत बढ़ रही थी ॥६॥

बालभावमतिक्रम्य यौवनस्थांश्च तानहम् ।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदाऽनघ ॥७॥

हे अनघ ! जब उन्होंने बाल भाव का अतिक्रमण किया और यौवनावस्था में पहुंचे-इसके बाद जब प्रौढ़ावस्था प्राप्त की, उस समय मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥७॥

तानद्य निहतान्श्रुत्वा हतैश्वर्यान्हतौजसः ।
न लभेयं क्वचिच्छान्ति पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥८॥

ऐश्वर्य और ओज से नष्ट होकर आज उनको मृतक सुनकर पुत्र शोक से व्याकुल हुए मुझ भाग्यहीन (कम्बख्त) को आज कहीं शान्ति नहीं है ॥८॥

एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य सांप्रतम् ।
त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिम् ॥६॥

हे महाबाहो, राजाधिराज ! पुत्र दुर्योधन ! मुझ अनाथ की रक्षा के निमित्त शीघ्र आ । हे पुत्र ! तुमसे विहीन होने से मेरी क्या दुर्गति होगी क्या तुम नहीं जानते हो ॥६॥

कथं त्वं पृथिवीपालांस्त्यक्त्वा तात समागतान् ।
शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा ॥१०॥

हे तात ! तुम्हारी सहायता को आए हुए राजाओं को छोड़ कर तुम क्षुद्र नृप के तुल्य आज कैसे भूमि में शयन कर रहेहो ॥१०॥

गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु यास्यसि ॥११॥

हे महाराज ! तुम तो अपने सुहृद और बान्धवों के आश्रय थे । हे वीर ! आज मुझ अन्धे और वृद्ध पिता को छोड़ कर तुम कहां चल गए ॥११॥

सा कृपा सा च ते प्रीतिः सा च राजन्सुमानिता ।
कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः ॥१२॥

हे राजन् ! दुर्योधन ! तुम्हारी कृपा प्रीति और वह माननीयता आज कहां गई । तुम तो युद्ध में किसी से पराजित होने वाले नहीं थे, परन्तु पाण्डवों ने कैसे मार गिराया ॥१२॥

को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति ।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत ॥१३॥

हे वीर ! जब मैं शयन से उठूंगा-तब मुझे तात ? तात ! महाराज ! लोकनाथ ! आदि शब्दों से उच्चारण करके कौन सम्बोधित करेगा ॥१३॥

परिष्वज्य च मां कंठे स्नेहेन क्लिन्नलोचनः ।
अनुशाधीति कौरव्य तत्साधु वद मे वचः ॥१४॥

हे तात ! स्नेह से आप्लुत होकर प्रेमाश्रुओं से आंखें गीली किए हुए पुत्र, तुम आकर मेरे कण्ठमें आलिङ्गन करो । हे कुरुराज ! आज्ञा करो-इस प्रकार मेरे सन्मुख स्पष्ट वचन कहो ॥१४॥

ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक ।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥१५॥

हे पुत्र ! मैंने तो तुम से यह वचन वार २ सुना था, कि मेरे पास बहुत अधिक भूमि है पाण्डवों के पास कहां है-वे मेरी समानता कैसे कर सकेंगे ॥१५॥

भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च वाह्लिकः ॥१६॥
अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महावलः ।
बृहद्बलश्च काशीशः शकुनिश्चापि सौवलः ॥१७॥
म्लेच्छाश्च शतसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्था ॥१८॥
भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान् ॥१९॥
जलसन्धोऽथार्ष्यशृंगी राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
अलम्बुषो महाबाहुः सुवाहुश्च महारथः ॥२०॥
एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम ।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥२१॥
तेषां मध्येस्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः ।
योधयिष्याम्यहं पार्थान्पाञ्चालांश्चैव सर्वशः ॥२२॥
चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे ।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम् ॥२३॥

हे राज सत्तम ! राजा भगदत्त, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, अवन्ती कुमार विन्दानुविन्द, सिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज वल्हिक, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, महावली मगध-राज, काशिराज वृहद्वल, सुवलपुत्र शकुनि, लाखों की संख्या में म्लेच्छ, शक, यवन, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, त्रिगर्ताधिपति, सुदक्षिण, भीष्मपितामह, भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य, गौतमवंशोद्भव कृपाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु, वीर्यवान् शतायु, जलसंघ, आर्ष्यशृङ्गी राक्षसराज अलायुध, महाबाहु अलम्बुप, महारथी सुबाहु—ये तथा अन्य वहुत से वीर प्राण और धन का मोह छोड़कर मेरी सहायता में तत्पर हैं। हे नृपशार्दूल ! मैं इन राजाओं के मध्य में स्थित होकर और अपने भाइयों के साथ, सारे पाण्डव, पञ्चाल चेदी वीर, द्रौपदी पुत्र सात्यकि, कुन्तिभोज और राक्षस राज घटोत्कच से अच्छी तरह लड़ लूंगा ॥१६-२३॥

एकोऽप्येषां महाराज समर्थः सन्निवारणे ।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम् ॥२४॥
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः ।

हे महाराज ! हमारे वीरों में एक एक वीर इतना बली है कि इन सारे क्रोध में आक्रमण करते हुए पाण्डव वीरों के जीतने में समर्थ हैं। यदि ये सारे वीर इकट्ठे होकर पाण्डवों से भिड़ गए तो फिर विजय में सन्देह ही क्या है। ये सारे ही तो पाण्डवों से वैर रखते हैं ॥२४॥

अथवा सर्व एवैते पाण्डवस्यानुयायिभिः ॥२५॥
योत्स्यंते सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान्मृधे ।

हे राजेन्द्र! ये सारे वीर, महारथी पाण्डवों के अनुयायी वीरों से अच्छी तरह युद्ध कर लेंगे और उन्हें रणक्षेत्र में मार गिरावेंगे ॥२५॥

कर्ण एको मया सार्द्धं निहनिष्यन्ति पाण्डवान् ॥२६॥
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने ।
यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः ॥२७॥
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद्वचः ।
तस्याथ वदतः सूत बहुशो मम सन्निधौ ॥२८॥
शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान्पाण्डवान्रणे ।

हे राजन्! इन अन्य राजाओं की चर्चा ही क्या है—मेरे साथ अकेला कर्ण ही सारे पाण्डवों को मार लेगा। इनके मार लेने पर सारे वीर राजा मेरे शासन में चलने लगेंगे। हे राजन्! उन पाण्डवों का जो महाबली नेता वसुदेव पुत्र कृष्ण है वे युद्ध में खड़े नहीं हो सकते हैं। हे पुत्र! तुमने मुझसे यह बात बार २ कही थी। हे सूत! जब दुर्योधन ने मुझसे बार २ इस तरह कहा—तो मैंने भी उनकी शक्ति पर विश्वास किया और पाण्डवों को रण में मृत ही समझ लिया ॥२६-२८॥

तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यंते मम पुत्रकाः ॥२९॥
व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद्भागधेयतः ।

उन ही वीरों के मध्य में स्थित होकर भी युद्ध करते हुए मेरे पुत्र रण में मारे गये इसमें भाग्य के सिवा और क्या माना जा सकता है ॥२६॥

भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान् ॥३०॥
शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जम्बुकम् ।

जिस तरह मृगेन्द्र को गीदड़ मार लेवे-इसी तरह महाप्रतापी लोकनाथ, भीष्म भी शिखण्डी के साथ भिड़कर नष्ट हो गए ॥३०॥

द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥३१॥
निहतः पाण्डवैः सङ्ख्ये किमन्यद्भागधेयतः ।

ब्राह्मण श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य भी, सारे शास्त्रों में पारङ्गत थे, उन्हें रणक्षेत्र में पाण्डवों ने मार दिया, इसमें भाग्य की ही महिमा बलवान् समझनी चाहिए ॥३१॥

कर्णश्च निहतः सङ्ख्ये दिव्यास्त्रज्ञो महाबलः ॥३२॥
भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे ।
वाह्लिकश्च महाराज किमन्यद्भागधेयतः ॥३३॥

हे महाराज ! दिव्य अस्त्रों का ज्ञाता, महाबली, कर्ण रण में मारा गया तथा इसी रण में राजा सोमदत्त उसका पुत्र भूरिश्रवा और महाराज वाह्लिक राज मारे गये-यह सब भाग्य की ही तो लीला है ॥३२-३३॥

भगदत्तो हतो यत्र गजयुद्धविशारदः ।
जयद्रथश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥३४॥

सुदक्षिणो हतो यत्र जलसन्धश्च पौरवः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च किमन्यद्भागधेयतः ॥३५॥
महाबलस्तथा पाण्ड्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
निहतः पाण्डवैः सङ्ख्ये किमन्यद्भागधेयतः ॥३६॥

हे सञ्जय ! गज युद्ध में विशारद, राजा भगदत्त, सिन्धुराज जयद्रथ, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, पौरवराज जलसन्व, श्रुतायु अयुतायु और महाबली सर्व शास्त्रों का जानने वाला पाण्डयराज भी रण में पाण्डवों द्वारा मारे गये इससे भाग्य ही बलवान् है ॥

बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः ।
उग्रायुधश्च विक्रान्तः प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥३७॥
आवन्त्यो निहतो यत्र त्रैगर्त्तस्य जनाधिपः ।
संशप्तकाश्च निहताः किमन्यद्भागधेयतः ॥३८॥

राजा बृहद्बल, महाबलो मगधराज, महापराक्रमी धनुष, धारियों में उग्रायुध, अवन्तिराज, त्रिगर्ताधिपति राजा सुशर्मा तथा सारे संशप्तक गण मारे गए-इसमें भाग्य के सिवा क्या माना जा सकता है ॥३७-३८॥

अलम्बुषस्तथा राजन् राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
आर्ष्यशृंगिश्च निहतः किमन्यद्भागधेयतः ॥३९॥
नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः ।
म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः किमन्यद्भागधेयतः ॥४०॥

शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्यश्च महाबलः ।
निहतः सबलो वीरः किमन्यद्भागधेयतः ॥४१॥

हे राजन्! राक्षसराज अलम्बुष, अलायुध, आष्यश्रृङ्गी, नारायणी सेना के युद्ध दुर्मद, गोपाल, कई सहस्र म्लेच्छ और सुबल पुत्र महाबली धूर्तराज शकुनि भी सेना सहित मारे गये-इस में भाग्य के सिवा क्या माना जा सकता है ॥३९-४१॥

एते चान्ये च बहवः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥४२॥

हे तात! ये ऊपर गिनाए हुए वीर राजा तथा अन्य बहुत से अस्त्र विद्या में कुशल युद्ध दुर्मद राजा और वीर राजपुत्र भी भाग्य के उलटे होने से मारे गए ॥४२॥

निहता बहवो यत्र किमन्यद्भागधेयतः ।
यत्र शूरा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥४३॥
बहवो निहताः सूत महेन्द्रसमविक्रमाः ।
नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र सञ्जय ॥४४॥
निहताः समरे सर्वे किमन्यद्भागधेयतः ।

हे सूत पुत्र सञ्जय! महाधनुर्धर, अस्त्रज्ञाता, युद्धकुशल, इन्द्र समान पराक्रमी, बहुत शूरवीर मारे गए। ये क्षत्रियवीर, अनेक देश देशान्तर से आए हुए थे, जो सारे रणक्षेत्र में मारे गए-यह भाग्य की लीला नहीं-तो अन्य क्या है ॥४३-४४॥

पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः ॥४५॥
वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद्भागधेयतः ।

हे सञ्जय ! मेरे महाबली पुत्र और पौत्र, मित्र और भ्राता, सबही तो मारे गए-यह सब कुछ भाग्य का ही तो चमत्कार है ॥४५॥

भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः ॥४६॥
यस्तु भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ।

हे सूत ! मनुष्य, भाग्य लेकर ही उत्पन्न होता है-जिसका भाग्य अच्छा होता है वही मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है ॥४६॥

अहं वियुक्तस्तैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह सञ्जय ॥४७॥
कथमद्य भविष्यामिः वृद्धः शत्रुवशं गतः ।

हे सञ्जय ! मैं आज भाग्य से हीन हो गया-इससे पुत्रों से भी रहित हो गया हूँ । अब वृद्धावस्था में शत्रु के वश में पड़कर मेरा जीवन कैसे चलेगा ॥४७॥

नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो ॥४८॥
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ।

हे प्रभो ! अब तो मुझे वनवास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उचित प्रतीत नहीं होता है । अब अपने बान्धवों के नष्ट होने से निर्बन्धु हुआ वनको चला जाऊंगा ॥४८॥

न हि मेऽन्यद्भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते ॥४९॥
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य सञ्जय ।

हे सञ्जय ! अब तो वनवास के सिवा मुझे अन्य कोई कल्याण कारी मार्ग प्रतीत नहीं होता है। इस समय तो मेरी दशा पंख कटे पक्षी की सी हो रही है ॥४९॥

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि ॥५०॥
दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः ।
कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम् ॥५१॥

जब राजा दुर्योधन मारा गया, रणक्षेत्र में राजा शल्य मर चुके-दुःशासन, विविंशति, महाबली विकर्ण, नष्ट हुए तो अब मैं उल्लास भरे हुए भीमसेन के वचन कैसे सुनूंगा ॥५०-५१॥

एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ।
असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च ॥५२॥
दुःखशोकाभिसन्तप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः ।

इस अकेले भीमसेन ने मेरे सौ पुत्र मार गिराये हैं। इसने दुर्योधन के मारने की बार २ प्रतिज्ञा की थी। आज दुःख और शोक से सन्तप्त होकर भीमसेन की वाणी मुझसे नहीं सुनी जा सकती है ॥५२॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं वृद्धश्च सन्तप्तः पार्थिवो हतबान्धवः ॥५३॥
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ।

वैशम्पायन बोले-हे राजसत्तम ! अपने पुत्र आदि बन्धु बांधवों के मारे जाने पर राजा धृतराष्ट्र, बड़े ही सन्तप्त हुए और वे पुत्रों के दुःख से व्याप्त हुए बार २ मोहित हो जाते थे ॥५३॥

विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥५४॥
दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम् ।
दुःखेन महता राजन्सन्तप्तो भरतर्षभः ॥५५॥
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद्यथातथम् ।

हे राजन्! भरतवंश श्रेष्ठ, अम्बिका पुत्र राजा धृतराष्ट्र ने बहुत देर तक विलाप किया और फिर लम्बी श्वास मारी और अपने पराभव पर विचार किया। यह बड़े दुःख से सन्तप्त होकर फिर गवल्गण के पुत्र सञ्जय से ठीक २ वृत्तान्त पूछने लगा ॥५३-५५

धृतराष्ट्र उवाच—

भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रं च घातितम् ॥५६॥
सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! भीष्म, द्रोण और सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर मेरे पुत्रों ने सेना के सञ्चालक किस व्यक्ति को सेनापति बनाया ॥५६॥

यं यं सेनाप्रणेतारं युधि कुर्वन्ति मामकाः ॥५७॥
अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पाण्डवाः ।

मेरे पुत्र दुर्योधनादि, इस युद्ध में जिस २ वीर को सेनापति बनाते हैं-उसी २ व्यक्ति को थोड़े ही समय में पाण्डव मार गिराते हैं ॥५७॥

रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना ॥५८॥
एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ।

एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥५६॥
सराजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना।

हे सञ्जय! तुम सब लोग देखते रहे और किरीटधारी अर्जुन ने, रणक्षेत्र में भीष्म को मार गिराया। इसी तरह तुम सब देखते रहे और द्रोणाचार्य मारे गए। महाप्रतापी सूतपुत्र कर्ण भी इसी तरह नष्ट हुए और सारे राजा तथा तुम लोगों के देखते २ अर्जुन ने कर्ण को मार गिराया ॥५८-५६॥

पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना ॥६०॥
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति।

महात्मा विदुर ने तो मुझसे पूर्व में ही कहा था, कि इस दुर्योधन के अपराध से यह सारी प्रजा नष्ट होजावेगी ॥६०॥

केचिन्न सम्यक्पश्यन्ति मूढाः सम्यगवेच्य च ॥६१॥
तदिदं मम मूढस्य तथा भूतं वचः स्म तत्।

कोई २ मूढ़ अपने सन्मुख होनहार को नाचती देखकर भी नहीं समझ पाते हैं—यह बात मुझ मूर्ख पर ज्यों की त्यों घट गई ॥६१॥

यदब्रवीत्स धर्मात्मा विदुरो दीर्घदर्शिवान्।
तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥६२॥

दीर्घदर्शी धर्मात्मा विदुर ने जो बात कही थी, उस सत्यवादी की वह बात ज्यों की त्यों सत्य सिद्ध हुई ॥६२॥

दैवोपहतचित्तेन यन्मया न कृतं पुरा ।
अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ॥६३॥

हे गवल्गण पुत्र सञ्जय ! दैव के विपरीत होने से नष्ट चित्त मुझ नीच ने जो कार्य पूर्व में नहीं किया, उस अनीति के फल को तुम अच्छी तरह सुनाओ ॥६३॥

कः वा मुखमनीकानामासीत्कर्णे निपातिते ।
अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ॥६४॥

हे सञ्जय ! जब कर्ण मारा गया-तो कौरव सेना का कौन सेनापति बना, जो महारथी वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन के सन्मुख युद्ध के लिए पहुंच गया ॥६४॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं मद्रराजस्य संयुगे ।
वामं च योद्धुकामस्य के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥६५॥

इस युद्ध में मुझको तत्पर मद्रराज के दक्षिण चक्र की किसने रक्षा की और उस वीर के वाम चक्र की ओर कौन रक्षक था ॥६५॥

कथं च वःसमेतानां मद्रराजो महारथः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये पुत्रो वा मम सञ्जय ॥६६॥

हे सञ्जय ! तुम सब लोग वहां इकट्ठे ही थे-फिर किस तरह रणाङ्गण में पाण्डवों ने महारथी, मद्रराज शल्य और मेरे पुत्र राजा दुर्योधन को मार गिराया ॥६६॥

ब्रूहि सर्वं यथा तत्त्वं भरतानां महात्ययम् ।
यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥६७॥

हे तात ! अब तुम भरतवंश के क्षय के सारे वृतान्त को ठीक २ सुनाओ तथा मेरा पुत्र दुर्योधन कैसे २ मरा-यह भी खोल कर बताओ ॥६७।

पञ्चालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥६८

सारे पञ्चाल, उनकी सेना धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पांचों पुत्र, किस तरह मरे ॥६८॥

पाण्डवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ माधवौ युधि ।
कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ॥६९॥

सारे पाण्डव, वृष्णिवंशोद्भव, दोनों वीर श्रीकृष्ण और सात्यकि कृपाचार्य, कृतवर्मा और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा कैसे बचेरहे ॥६९

यद्यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तं च साम्प्रतम् ।
अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

हे सञ्जय ! इस समय जिस तरह जैसे २ युद्ध हुआ वह मैं सब कुछ सुनाना चाहता हूँ तुम मुझे सुनाओ। तुम सुनाने में बड़े ही कुशल हो ॥७०॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
धृतराष्ट्र विलाप का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ



तीसरा अध्याय

सञ्जय उवाच—

शृणुराजन्नवहितो यथावृत्तो महान्क्षयः ।

कुरूणां पाण्डवानां च समासाद्य परस्परम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! परस्पर कलह में प्रवृत्त होने पर जिस तरह पाण्डव और कौरवों को यह महान् क्षय प्रवृत्त हुआ-वह सब कुछ तुम्हें सुनाता हूं-तुम ध्यान से सुनो ॥१॥

निहते सूतपुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना ।

विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चासकृत् ॥२॥

घोरे मनुष्यदेहानामाजौ नरवरक्षये ।

यत्तत्कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ॥३॥

तदा तव सुतान्राजन्प्राविशत्सुमहद्भयम् ।

न सन्धातुमनीकानि न चैवाथ पराक्रमे ॥४॥

आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कस्य चित् ।

जब महावीर पाण्डु पुत्र अर्जुन द्वारा सूतपुत्र मारे गए बार २ रोकने पर भी जब तुम्हारी सेना भाग निकली, रणाङ्गण में जब मनुष्यों का घोर क्षय हुआ-तो कर्ण के मरते ही अर्जुन ने सिंहनाद किया। हे राजन ! उस समय तुम्हारे पुत्रों के चित्त में भय का बड़ा ही सञ्चार हुआ। वे अपनी सेना के जोड़े रखने और कुछ भी पराक्रम दिखाने में समर्थ नहीं होसके। कर्ण के मारे जाने

पर तुम्हारे पक्ष के किसी भी योद्धा में युद्ध करने का साहस न रहा ॥३-४॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवा इव ॥५॥

अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ।

कौरव पक्ष के वीर इस युद्ध रूपी अपार समुद्र को तैरना चाहते थे, परन्तु उनकी दशा अगाध समुद्र में नौका टूट जाने पर व्यापारी की सी होरही थी। अर्जुन द्वारा उनके रक्षक कर्ण के मारे जाने से वे बहुत ही उलझन में उलझ गए ॥५॥

सूतपुत्रे हते राजन्वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥६॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ।

हे राजन ! सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर वे बड़े भयभीत तथा शरों से क्षत-विक्षत थे। ये अनाथ हुए अब किसी रक्षक की खोज में इस तरह थे, जैसे वन में सिंह से अर्दित मृग होते हैं॥६॥

भग्नशृङ्गा इव वृषाः शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः ॥७॥

प्रत्युपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ।

सींग टूटे हुए वृषभ और दांत तोड़े हुए सर्प के सदृश हम लोग अर्जुन से जीते जाकर सायंकाल में अपने शिविर में पहुंचे ॥७॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥८॥

सूतपुत्रे हते राजन्पुत्रास्ते प्राद्रवंस्ततः ।

हे राजन् ! सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर तुम्हारे शेष सारे पुत्र भाग निकले। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे पक्ष के बहुत से वीर क्षतविक्षत करके मार गिराए गए थे ॥८॥

विध्वस्तकवचाः सर्वे कां दिशीका विचेतसः ॥६॥

अन्योन्यसभिनिघ्नन्तो वीक्षमाणा भयाद्दिशः ।

इन सारे वीरों के कवच छिन्न-भिन्न होचुके थे और वे अचेत होकर भय से भाग रहे थे। वे भयभीत होकर इधर उधर दिशाओं को देखते और एक दूसरे को मारते जाते थे ॥६॥

मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ॥१०॥

अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च भारत ।

हे भारत ! ये सैनिक यह समझ रहे थे, कि मेरे पीछे अर्जुन आया मेरे पीछे वृकोदर भीम लपका आरहा है—इस तरह समझते हुए वे गिरते पड़ते और दुःखी होते हुए भाग रहे थे ॥१०॥

अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ॥११॥

आरुह्य जवसम्पन्नाः पादातान्प्रजहुर्भयात् ।

कुछ महारथी, अश्व, कुछ गज और कुछ रथों पर सवार होकर भाग रहे थे, और वे अपने साथी पैदलों को भय से छोड़ कर वेग से निकल जाते थे ॥११॥

कुञ्जरैः स्यन्दना भग्नाः सादिनश्च महारथैः ॥१२॥

पदातिसङ्घाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भृशं हताः ।

इस समय भागते हुए हाथियों ने रथ, बड़े २ रथों ने अश्वरोही, अश्वारोहियों ने पैदल समूह को कुचल कर चकनाचूर कर डाला ॥१२॥

व्यालतस्करसङ्कीर्णे सार्थहीना यथा वने ॥१३॥
तथा त्वदीयानि हते सूतपुत्रे तदाऽभवन् ।

वनैले जन्तुओं और चोर आदि से संकीर्ण वन में जिस तरह सार्थवाह (नेता) के विना बिखरे हुए सार्थ (साथ) की दुर्दशा होती है उसी तरह सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर तुम्हारे सैनिकों की दुर्दशा होगई ॥१३॥

हतारोहास्तथा नागाश्छिन्नहस्तास्तथा परे ॥१४॥
सर्वं पार्थमयं लोकमपश्यन्वै भयार्दिताः ।

कुछ गजों के सवार मारे गए, कुछ गजों की सूंडे कट कर गिर गईं। ये भय से अर्दित होकर सारे संसार को अर्जुनमय ही देखरहे थे ॥१४॥

तान्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ॥१५॥
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हाहाकृत्वैवमब्रवीत् ।
नातिक्रमिष्यते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ॥१६॥
जघने युद्धयमानं मां तूर्णमश्वान्प्रचोदय ।

भीमसेन के भय से व्याकुल सैनिकों को भागते देखकर राजादुर्योधन शोकपूर्वक झुंझलाकर अपने सारथि से कहनेलगे हे सूत! जबमैं धनुष हाथमें लेकर युद्धके लिए डटकर खड़ाहो जाऊंगा

और पीछे से युद्ध करने लगूंगा तो अर्जुन मुझपर आक्रमण नहीं कर सकेगा, इस से तुम शीघ्र अश्वों को हांको ॥१५-१६॥

समरे युद्धयमानं हि कौन्तेयो मां धनञ्जयः ॥१७॥
नोत्सहेताप्यतिक्रान्तुं वेलामिव महार्णवः ।

जब मैं रण में अपने हाथ दिखाने लगूंगा तो कुन्ती पुत्र अर्जुन मुझपर आक्रमण करने में इस तरह समर्थ नहीं होगा-जैसे वेला समुद्र पर अतिक्रमण नहीं कर सकती है ॥१७॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम् ॥१८॥
निहत्य शिष्टान् शत्रूंश्च कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम् ।

आज अर्जुन श्रीकृष्ण और अभिमानी भीमसेन तथा अन्य शेष शत्रुओं को मारकर मैं कर्ण से उऋण हो जाना चाहताहूँ ॥१८॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः ॥१९॥
सूतो हेमपरिच्छन्नान् शनैरश्वानचोदयत् ।

राजादुर्योधन के आर्य शूरवीर के सदृश वचन सुनकर सारथि ने सुवर्ण विभूषित अश्व को धीरे २ अर्जुन की ओर चलाया ॥१९॥

गजाश्वरथहीनास्तु पादाताश्चैव मारिष ॥२०॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः प्राद्रवन् शनकैरिव ।

हे आर्य ! अब गज, अश्व और रथों से हीन पच्चीस हजार पैदल सैनिक चुपचाप धीरे २ कुरुराज दुर्योधन के साथ २ चल दिये ॥२०॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥२१॥
बलेन चतुरङ्गेण परिक्षिप्याहनच्छरैः ।

इन सैनिकों को क्रोधातुर भीमसेन और पर्षतवंशोद्भव, धृष्टद्युम्न ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना द्वारा तीखे बाणों से मार मार कर बिछा दिया ॥२१॥

प्रत्ययुध्यस्तु ते सर्वे भीमसेनं सपार्षतम् ॥२२॥
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ।

ये सैनिक भी धृष्टद्युम्न और भीमसेन से टक्कर लेने लगे-इन में कोई तो भीमसेन और कोई धृष्टद्युम्न का नाम ले २ कर युद्ध के लिए ललकार रहे थे ॥२२॥

अक्रुद्ध्यत रणे भीमस्तैर्मृधे प्रत्यवस्थितैः ॥२३॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ।

जब वे सैनिक युद्ध में डट गए तो भीमसेन बड़े कुपित हुए। वह रथ से कूद पड़ा और गदा हाथ में लेकर युद्ध करने लगा ॥२३॥

न तान्रथस्थो भूमिष्टान्धर्मापेक्षो वृकोदरः ॥२४॥
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यमुपाश्रितः ।

वृकोदर भीम धर्म युद्ध करना चाहता था, इससे उसने पैदल सैनिकों से रथ में स्थित होकर युद्ध करना नहीं चाहा। कुन्तीपुत्र भीम ने तो अब केवल अपने भुजाओं के बल का आश्रय लेकर ही युद्ध करना आरम्भ किया ॥२४॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥२५॥
न्यवधीत्तावकान्सर्वान्दण्डपाणिरिवान्तकः ।

इसने सुवर्ण से मण्डित विशाल गदा को ग्रहण करके दण्ड पाणि यमराज की भांति तुम्हारे सारे सैनिकों को मारना आरम्भ किया ॥२५॥

पदातयो हि संरब्धास्त्यक्तजीवितबान्धवाः ॥२६॥
भीममभ्यद्रवन्संख्ये पतङ्गा इव पावकम् ।

पैदल सैनिक भी आवेश में भरे हुए थे। उन्होंने भी अपने जीवन और स्त्री आदि का मोह छोड़ दिया था। वे रण में अग्नि में पतङ्ग की भांति भीमसेन के ऊपर गिरने लगे ॥२६॥

आसाद्य भीमसेनं ते संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥२७॥
विनेदुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ।

ये युद्ध दुर्मद क्रोधाविष्ट, वीर सैनिक, भीमसेन को पाकर इस तरह गर्जना करने लगे जैसे प्राणी समूह काल को देखकर चीत्कार मचा देता है ॥२७॥

श्येनवद्व्यचरद् भीमः खड्गेन गदया तथा ॥२८॥
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानां व्यपोथयत् ।

इस समय भीमसेन खड्ग और गदा लेकर आकाश में श्येन पक्षी की भांति रण में चक्कर लगाने लगा। उसने तुम्हारे पक्ष के पचीस सहस्र वीर, बिल्कुल कुचल डाले ॥२८॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥२९॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य पुनस्तस्थौ महाबलः ।

महापराक्रमी महाबली भीमसेन, इस सारी पैदल सेना का नाश करके और धृष्टद्युम्न को आगे करके रणक्षेत्र में स्थित हो गया ॥२९॥

धनञ्जयो रथानीकमन्वपद्यत वीर्यवान् ॥३०॥
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ॥३१॥

महावीर्यवान् धनञ्जय अर्जुन, रथानीक पर झपटा और महाबली सात्यकि तथा माद्री पुत्र सहदेव और नकुल ने शकुनिपर आक्रमण किया। ये सारे महारथी, बड़े वेग से राजा दुर्योधन की सेना का विध्वंस करते हुए हर्ष पूर्वक झपटे॥३०-३१॥

तस्याश्ववाहान्सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ।
तमन्वधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमवर्तत ॥३२॥

सात्यकि और नकुल सहदेव इन तीनों वीरों ने शकुनि की अश्वारोही सेना पर तीखे बाणों से प्रहार किया। इन्होंने बड़ी शीघ्रता से फिर शकुनि पर भी आक्रमण किया इस समय बड़ा ही घोर युद्ध चल पड़ा ॥३२॥

ततो धनञ्जयो राजन् रथानीकमगाहत ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन्धनुः ॥३३॥

हे राजन् ! दूसरी ओर अर्जुन ने रथ सेना को मथ डाला। उसने तीनों लोकों में प्रसिद्ध अपने गाण्डीव धनुष का खैंचना आरम्भ किया ॥३३॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ।
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ॥३४॥

हे राजन ! कृष्ण को सारथि बनाकर श्वेत अश्वों वाले अर्जुन के रथ को तथा महारथी अर्जुन को देखकर तुम्हारे पक्ष के योद्धा भय से भागने लगे ॥३४॥

विप्रहीणरथाश्वाश्च शरैश्च परिवारिताः ।
पञ्चविंशतिसाहस्राः पार्थमार्छन्पदातयः ॥२५॥

रथ और अश्वों से हीन हुए, शरों से व्याप्त पच्चीस सहस्र वीर सैनिकों ने अर्जुन को घेर लिया ॥३५॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं पञ्चालानां महारथः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥३६॥

पञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्न ने अपने सन्मुख पहुंची हुई कौरव सेना का विनाश करके वह भीमसेन के साथ में बहुत शीघ्रता से दिखाई दिया ॥३६॥

महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणमर्दनः ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महायशाः ॥३७॥
पारावतसवर्णाश्वं कोविदारवरध्वजम् ।
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ॥३८॥

पाण्डव सेनापति, द्रुपद पुत्र महा यशस्वी धृष्टद्युम्न, बड़ा धनुर्धर, ऐश्वर्यशाली और शत्रुगण नाशक महावीर है। इसके अश्वों की रङ्गत कबूतर के वर्ण के समान भूरी थी और इसकी ध्वजा में कचनार के वृक्ष का चिन्ह था। महारथी धृष्टद्युम्न को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर भय से भागने लगे ॥३७-३८॥

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ।
अचिरात्प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ॥३९॥

शीघ्र अस्त्र फैंकने में समर्थ, गान्धारराज शकुनि पर आक्रमण करके महायशस्वी माद्री पुत्र नकुल सहदेव भी सात्यकि के साथ उसी क्षण दिखाई दिए ॥३९॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
हत्वा त्वदीयं सुमहत्सैन्यं शङ्खानथाधमन् ॥४०॥

हे आर्य ! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदी पुत्र प्रतिविन्ध्य आदि भी तुम्हारी विशाल सेना का नाश करके पृथक् २ शङ्ख बजाने लगे ॥४०॥

ते सर्वे तावकान्प्रेक्ष्य द्रवतो वै पराङ्मुखान् ।
अभ्यधावन्त निघ्नन्तो वृषान् जित्वा वृषा इव ॥४१॥

हे राजेन्द्र ! पाण्डव वीर, तुम्हारे पक्ष के वीरों को रण से विमुख होकर भागते देखकर उन्हें मारते हुए इस तरह दौड़े-जैसे सांड़ों को जीत कर सांड पीछा करते हैं ॥४१॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव पुत्रस्य पाण्डवः ।
अवस्थितं सव्यसाची चुक्रोध बलवन्नृप ॥४२॥

हे नृप सत्तम ! पाण्डु पुत्र सव्यसाची अर्जुन तुम्हारी सेना को बची हुई और अपने सन्मुख खड़ी देखकर बहुत ही अधिक कुपित होगया ॥४२॥

तत एनं शरै राजन्सहसा समवाकिरत् ।
रजसा चोद्धतेनाथ न स्म किञ्चन दृश्यते ॥४३॥

हे राजन् ! अब अर्जुन ने इनको बाणों से आच्छादित करना आरम्भ किया इस समय रणस्थल में इतनी धूलि उठी हुई थी, कि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था ॥४३॥

अन्धकारीकृते लोके शरीभूते महीतले ।
दिशः सर्वा महाराज तावकाः प्राद्रवन्भयात् ॥४४॥

हे महाराज ! जब रज से सारे रणस्थल में अन्धकार होगया और पृथिवी बाणों से व्याप्त होगई-तो उस समय तुम्हारी सारी सेना भय से सारी दिशाओं में भाग निकली ॥४४॥

भज्यमानेषु सर्वेषु कुरुराजो विशाम्पते ।
परेषामात्मनश्चैव सैन्ये ते समुपाद्रवत् ॥४५॥

हे विशाम्पते ! जब सारी सेना भाग निकली-तो यह देखकर कुरुराज क्रोधातुर होगया उसने अपनी और शत्रु की सेना दोनों पर ही आक्रमण कर दिया ॥४५॥

ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ।
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ॥४६॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अब राजा दुर्योधन ने, देवों पर बलिदैत्य की भांति युद्ध के लिए सारे पाण्डव वीरों को ललकारा ॥४६॥

त एनमभिगर्जन्तं सहिताः समुपाद्रवन् ।
नानाशस्त्रसृजः क्रुद्धो भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥४७॥

जब कुरुराज, गर्जना कर रहे थे, तो एक दम सारे पाण्डव वीरों ने क्रोध में भर कर बार २ फटकारते हुए अनेक शस्त्र छोड़ना आरम्भ किया ॥४७॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तानरीन् व्यधमच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥४८॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरतिवर्त्तितुम् ।

राजा दुर्योधन भी बिना किसी घबराहट के अपने बाणोंसे इन शत्रुओं को छेदने लगा। हे नृप ! उस समय हमने तुम्हारे पुत्र का बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। कि सारे पाण्डव वीर अकेले दुर्योधन का अतिक्रमण नहीं कर सके ॥४८॥

नातिदूरापयातं च कृतबुद्धिः पलायने ॥४९॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमपश्यद्भृशविक्षतम् ।

हे राजश्रेष्ठ ! महाबुद्धिमान् राजा दुर्योधन, अत्यन्त क्षतविक्षत समीप में ही स्थित, भागने का विचार करती हुई सेना को देखकर यह कहने लगा ॥४९॥

ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥५०॥
हर्षयन्निव तान्योधांस्ततो वचनमब्रवीत् ।

हे राजेन्द्र ! कृतार्थ बुद्धि तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को वहीं रोक लिया, और अपने योद्धाओं को उत्साहित करते हुए उसने यह वचन कहा—॥५०॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥५१॥
यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ।

हे वीरों ! मैं तो कोई ऐसा स्थान पर्वतों वाला पृथिवी पर भी नहीं देखता हूँ-जहां तुम्हारे भाग जाने पर पाण्डव, तुम्हें न मार लेंगे, फिर तुम्हारे भागने से लाभ ही क्या रखा है ॥५१॥

स्वल्पं चैव बलंतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥५२॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

अब पाण्डवों की सेना बहुत थोड़ी बची है । कृष्ण और अर्जुन भी बहुत ही क्षत विक्षत होरहे हैं । यदि हम सब डटे रह गए-तो अवश्य हमारा विजय होगा ॥५२॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्पाण्डवाः कृतकिल्विषान् ॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः ।

यदि तुम भाग पड़े-तो बिखरे हुए घबराहट से युक्त तुम लोगों का पीछा करके पाण्डव, तुम्हें मार लेंगे । भाग कर मरने से तो युद्ध में मर जाना अच्छा है ॥५३॥

सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥५४॥
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।

जो मनुष्य, क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करता २ रण में मृत्यु प्राप्त करता है वह बड़ी सुखकारिणी मौत समझनी चाहिए मरने पर दुःख का अनुभव तो होता नहीं और परलोक में अक्षय सुख की प्राप्त होती है ॥५४॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥५५॥
द्विषतो भीमसेनस्य वशमेष्यथ विद्रुताः ।

हे सारे क्षत्रिय वीरो ! जितने तुम यहां उपस्थित हो-वे सब तुम कान खोल कर सुन लो । यदि तुम आज चले-तो दुष्टशत्रु भीमसेन के अवश्य वश में पड़ जाओगे ॥५५॥

पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥५६॥
नान्यत्कर्मास्ति पापीयः क्षत्रियस्य पलायनात् ।

तुम्हारे पिता पितामहों से आचरित धर्म का परित्याग तुम्हें श्रेष्ठ नहीं है । क्षत्रिय वीर को रण छोड़ कर भाग जाने से अधिक कोई पापकर्म नहीं है ॥५६॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान्हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥५७॥
सुचिरेणार्जिताँल्लोकान्सद्यो युद्धात्समश्नुते ।

हे कौरव वीरो ! युद्ध से अधिक कोई कल्याणकर्ता कर्म क्षत्रिय को नहीं है । जिन शुभ लोकों को मनुष्य, बहुत काल के उत्तम कर्मों से पाता है-उन्हें युद्ध से शीघ्र ही पा लेता है ॥५७॥

तस्य तद्वचनं राज्ञः पूजयित्वा महारथाः ॥५८॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त क्षत्रियाः पाण्डवान्प्रति ।
पराजयममृष्यन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ॥५९॥

राजा दुर्योधन के ये वचन मान कर कौरव पक्ष के महारथी वीर फिर युद्ध के लिए लौट पड़े, वे पराजय से भड़क उठे थे और पराक्रम कर दिखाना चाहते थे ॥५८-५९॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव सुदारुणम् ।
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ॥६०॥

अब इन तुम्हारे पक्ष के वीर और पाण्डव वीरों में देवासुर संग्राम के सदृश भीषण दारुण रण होने लगा ॥६०॥

युधिष्ठिरपुरोगांश्च सर्वसैन्येन पाण्डवान् ।
अन्वधावन्महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥६१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि कौरवसैन्यापयाने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे महाराज ! अब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अपनी सारी सेना के द्वारा, धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीरों पर वेग से आक्रमण किया ॥६१॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
कौरव सेना के भागने का तीसरा
अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

सञ्जय उवाच—

पतितान् रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम् ।
रणे च निहतान्नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ॥१॥
आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ।
अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः ॥२॥
विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि ।
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ॥३॥
ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत ।
बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ॥४॥
अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे ।
कृपाविष्टः कृपो राजन्वयः शीलसमन्वितः ॥५॥
अब्रवीत्तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम् ।
दुर्योधनं मन्युवशाद्वाक्यं वाक्यविशारदः ॥६॥

सञ्जय बोले—हे आर्य ! इस घोर युद्ध में रथों की छतरी, महावीरों के रथ, रण में मारे हुए हाथी और पैदलों को मृत तथा रुद्र की क्रीड़ा के सदृश अत्यन्त घोर इस युद्ध, में लाखों की संख्या मेंमारे गए राजाओं को देखकर शोकातुर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, रणाङ्गण से विमुख होगया। अर्जुन के पराक्रम को देखकर सारी कौरव सेना भी घबड़ा उठी। हे भारत ! सारी सेना

दुःख में व्याप्त होकर कुछ सोचने लगी। पाण्डव वीरों द्वारा मथित की हुई सेना का कोलाहल सुनकर तथा रण में इस युद्ध के चिन्ह भूत, क्षत्रिय वीरों के क्षेत्रों को देखकर वाक्य विशारद कृपा युक्त आयु और आचार से समन्वित, तेजस्वी, कृपाचार्य, राजा दुर्योधन के पास जाकर शोक के साथ उनसे यह वचन बोले ॥१-६॥

दुर्योधन निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव।
श्रुत्वा कुरुमहाराज यदि ते रोचतेऽनघ ॥७॥

हे कुरुराज! अनघ! दुर्योधन! मैं जो तुमसे कहता हूं-तुम उसको सुनो। हे महाराज! यदि सुनकर तुमको सुन्दर प्रतीत हो तो मानना-नहीं तो आपकी इच्छा ॥७॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते।
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥८॥

हे राजेन्द्र! क्षत्रियर्षभ! युद्ध धर्म से श्रेष्ठ, कोई कर्म क्षत्रिय के लिए उत्तम नहीं माना गया है। इसी से युद्ध का अवलम्बन करके क्षत्रिय वीर परस्पर भिड़ जाया करते हैं ॥८॥

पुत्रो भ्राता पिता चैव स्वस्रीयो मातुलस्तथा।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव योद्धया वै क्षत्रजीविना ॥९॥
वधे चैव परो धर्मस्तथाऽधर्मः पलायने।
ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीवितार्थिनः ॥१०॥

जो क्षत्रिय धर्म पर आरूढ़ है उस वीर पुरुष को समय पर अपने पुत्र, भ्राता, पिता, भानजा, मातुल, तथा सम्बन्धी बान्धवों से भी युद्ध करना होगा। यदि वह उनको मार लेगा-तो बड़ा धर्म होगा और उस युद्ध से पीछे हट जाने में बड़ा अधर्म है। क्षत्रिय वीर जीवन के लिए इस घोर जीविका का अवलम्बन किए हुए हैं ॥९-१०॥

तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किंचिदेव हितं वचः।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ॥११॥
जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे ॥१२॥

हे अनघ! मै तुमसे कुछ हितकारी बातें कहता हूँ। भीष्म, द्रोणाचार्य, महारथी कर्ण, राजा जयद्रथ, तुम्हारा भ्राता दुःशासन और पुत्र श्रेष्ठ लक्ष्मण मारा जा चुका है। अब क्या बचा है-किसके आश्रय से हम युद्ध में प्रवृत्त रहें ॥११-१२॥

येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि।
ते सन्त्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिम् ॥१३॥

जिनके जीवित रहने से राज्य प्राप्ति की अभिलाषा होती है, वे शूरवीर अपने शरीरों को छोड़ कर ब्रह्मज्ञानियों की गति को प्राप्त कर चुके हैं ॥१३॥

वयं त्विह विनाभूता गुणवद्भिर्महारथैः।
कृपणं वर्त्तयिष्याम पातयित्वा नृपान्बहून ॥१४॥

आज उन गुणवान महारथियों के बिना बहुत से शत्रु राजाओं को मार कर भी हम लोग हीन होरहे हैं ॥१४॥

सर्वैरथ च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः ।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः ॥१५॥

आज जगत् में सारे प्राणियों से अर्जुन अजेय है, क्योंकि इनके नेता कृष्ण हैं । यह महाबाहु, अर्जुन देवों से भी दुरासद है ॥१५॥

इन्द्रकार्मुकतुल्याभमिंद्रकेतुमिवोच्छ्रितम् ।
वानरं केतुमासाद्य सञ्चचाल महाचमूः ॥१६॥

अर्जुन का धनुष इन्द्र के धनुष के समान उज्वल और उस की वानर के चिन्ह से अङ्कित ऊंची ध्वजा के समान दिव्य है। इसको देखते ही तुम्हारी बड़ी भारी सेना भी विचलित हो जाती है ॥१६॥

सिंहनादाच्च भीमस्य पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषात्संहृष्यन्ति मनांसि नः ॥१७॥

भीमसेन के सिंहनाद श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि और अर्जुन के गाण्डीव धनुष की टङ्कार से हमारे मन डावांडोल हो उठते हैं ॥१७॥

चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम् ।
अलातमिव चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत ॥१८॥

नेत्र ज्योति को चकाचौंध कर देने वाली बिजली और घुमाया हुआ अलातचक्र (पलीता) के सदृश गाण्डीव धनुष दिखाई देता है ॥१८॥

जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद्धनुः ।

दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव ॥१९॥

जब अर्जुन सुवर्णोज्ज्वल, विशाल धनुष को कंपाने लगता है-तब सारी दिशाओं में बादलों में बिजली सी चमकने लगती है ॥१९॥

श्वेताश्च वेगसम्पन्नाः शशिकाशसमप्रभाः ।

पिबन्त इव चाकाशं रथे युक्तास्तु वाजिनः ॥२०॥

उह्यमानांश्च कृष्णेन वायुनेव बलाहकाः ।

जाम्बूनदविचित्रांगा वहन्ते चार्जुनं रणे ॥२१॥

अर्जुन के रथ में चन्द्रमा और काश के समान वर्ण वाले वेगशाली श्वेत अश्व जुड़े हुए हैं, जो गमन में आकाश का पान सा करते रहते हैं । उनको श्रीकृष्ण हांकते हैं, जैसे बादलों को वायु उड़ाता है । ये सुवर्णोज्ज्वल अश्व रण में अर्जुन को इधर उधर लिए उड़े फिरते हैं ॥२१॥

तावकं तद्बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः ।

गहनं शिशिरे कक्षं ददाहाग्निरिवोल्बणः ॥२२॥

हे राजन्! अस्त्र कुशल अर्जुन तुम्हारी सेना को इस तरह भस्म करता रहता है-जैसे उल्बण अग्नि, शिशिर काल में तृण समूह को यत्र तत्र जलाता रहता है ॥२२॥

गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम् ।
धनञ्जयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम् ॥२३॥

सेनाओं के आलोड़न करने वाले, इन्द्र के सदृश प्रभावशाली अर्जुन को चार दांत वाले हाथी के सदृश, हम लोग रण में घूमते देखते हैं ॥२३॥

विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान् ।
धनञ्जयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम् ॥२४॥

शत्रु राजाओं वित्रासित और सेना को आलोडित करते हुए अर्जुन को रणक्षेत्र में हम लोग नलिनी वन को कुचलते हुए महागज के सदृश देखते रहते हैं ॥२४॥

त्रासयन्तं तथा योधान्धनुर्घोषेण पाण्डवम् ।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणानिव ॥२५॥

यह अर्जुन, अपने धनुष के घोष से शत्रुओं को इस तरह भयभीत कर देता है जैसे मृग समूह को सिंह भयभीत करता है ॥

सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः ॥२६॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन सारे लोक में महाधनुधर, सारे धनुष धारियों में श्रेष्ठ हैं। वे कवचधारण करके रणक्षेत्र में निर्भय घूमते रहते हैं ॥२६॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि ॥२७॥

हे भारत ! इस महा घोर युद्ध में सब ओर से योद्धाओं का विध्वंस उड़ गया है, जिस को आरम्भ हुए आज सत्रह दिन व्यतीत हो चुके ॥२७॥

वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि सर्वतः ।
शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः ॥२८॥

जिस तरह वायु द्वारा शरत्काल के बादल के बादल उड़ा दिए जाते हैं उसी तरह तुम्हारी सेना को सब ओर से अर्जुन उड़ा देता है ॥२८॥

तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे ।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत् ॥२६॥

हे महाराज ! सव्यसाची अर्जुन, विशाल समुद्र में वायु से विकम्पित नौका की भांत तुम्हारी सेना को विचलित करता है ॥

क नु ते सूतपुत्रोऽभूत्क नु द्रोणः सहानुगः ।
अहं क च क चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क नु ॥३०

दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क नु ।
बाणगोचरसंप्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम् ॥३१॥
सम्बन्धिनस्ते भ्रातृंश्च सहायान्मातुलांस्तथा ।
सर्वान्विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि ॥३२॥

जयद्रथो हतो राजन्किं नु शेषमुपास्महे ।
को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम् ॥३३॥

हे राजन् ! तुम्हारे आधारभूत सूतपुत्र कर्ण की क्या गिनती है । सेनासहित द्रोणाचार्य क्या थे । मेरी और तुम्हारी चर्चा ही क्या है ? हृदिक पुत्र कृतवर्मा क्या शक्ति रखते हैं । अपने भाइयों के साथ दुःशासन की क्या गणना है । तुम बाण के गोचर हुए सिन्धुराज जयद्रथ को-तो देखो कि अर्जुन ने तुम्हारे सम्बन्धी, भ्राता, सहायक और मातुल आदि सबके देखते २ और सारे संसार में श्रेष्ठ बनकर राजा जयद्रथ को जा मारा । अब क्या शेष रह गया है जो हम युद्ध करते रहे । आज कौन वीर संसार में विद्यमान है जो अर्जुन को जीत सकेगा ॥३०-३३॥

तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो धैर्याणि हरते हि नः ॥३४॥

इस महावीर अर्जुन के पास अनेक दिव्य अस्त्र हैं । इसके गाण्डीव धनुष की टङ्कार तो हमारे धैर्य को एक दम लुप्त कर देती है ॥३४॥

नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका ।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता ॥३५॥

जिस तरह चन्द्रमा से रहित रात असुन्दर दिखाई देती है । हाथी से तोड़े हुए वृक्षों से युक्त क्षुद्र नदी के तुल्य, हमारी सेना विचलित हो रही है ॥३५॥

ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः ।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन् ॥३६॥

नेता से हीन हमारी सेना में श्वेत अश्वों वाला महाबाहु अर्जुन तृणराशि में अग्नि के समान जाज्वल्यमान होकर घूमता रहेगा ॥३६॥

सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः ।
दारयेच्च गिरीन्सर्वान् शोषयेच्चैव सागरान् ॥३७॥

सात्यकि और भीमसेन इन दोनों का वहुत ही अपरिमित वेग है। ये सारे पर्वतों को चीर सकते हैं और समुद्र को सुखा सकते हैं ॥३७॥

उवाच वाक्यं यद्भीमः सभामध्ये विशांपते ।
कृतं तत्सफलं तेन भूयश्चव करिष्यति ॥३८॥

हे विशाम्पते ! भीमसेन ने जो सभा के मध्य में प्रतिज्ञा की थी, वह सत्य सिद्ध करदी है और जो कुछ शेष है-वह उसे भी पूरी करके दिखादेगा ॥३८॥

प्रमुखस्थे तदा कर्णे वलं पाण्डवरक्षितम् ।
दुरासदं तदा गुप्तं व्यूढं गाण्डीवधन्वना ॥३६॥

हे राजन् ! जिस समय कर्ण जीवित थे, तब पाण्डु पुत्र भीमसेन ने सेना की कैसी रक्षा की और गाण्डीव धनुष धारी अर्जुन ने, सेना को व्यूह बनाकर उसे किस प्रकार सुरक्षित कर दिया था ॥३६॥

युष्माभिस्तानि चीर्णानि यान्यसाधूनि साधुषु ।
अकारणकृतान्येव तेषां वः फलमागतम् ॥४०॥

तुमने तो सारे कर्म ही ऐसे कर डाले, कि जिनको सज्जन निन्दित मानते हैं। यह सब कुछ विना कारण किया, जिसका तुमको यह फल प्राप्त हुआ है ॥४०॥

आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः ।
स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ ॥४१॥

हे भरतर्षभ ! तुमने अपने स्वार्थ को प्रधान मान कर सारे जगत् को विपत्ति में डाल दिया। हे तात ! परन्तु आज तो तुम्हारी आत्मा भी संशय में पड़ गई है ॥४१॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम् ॥४२॥

हे दुर्योधन ! तुम अब अपनी रक्षा करो अपना बचा लेना ही सब कुछ माना गया है। हे तात ! यदि मूलपात्र ही नष्ट होजावेगा-तो उसके आधार पर रहने वाली वस्तु तो नष्ट ही समझो ॥४२॥

हीयमानेन वै संधिः पर्येष्टव्यः समेन वा ।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः ॥४३॥

जब आप दुर्बल होजावे, या शत्रु के समान बलधारी रहजावे तो सन्धि कर लेनी चाहिए। जब अपना बल अधिक हो-तब शत्रु से युद्ध करे-यह बृहस्पति आचार्य का मत है ॥४३॥

ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीनाः स्म बलशक्तितः ।
तदत्र पांडवैः सार्धं संधिं मन्ये क्षमं प्रभो ॥४४॥

हे प्रभो ! आज हम पाण्डवों से बल और शक्ति में न्यून रह गए हैं । इस समय तो हमें पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है ॥४४॥

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते ।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविंदते ॥४५॥

जो व्यक्ति, अपने कल्याण को नहीं पहचानता और समय पर कल्याण युक्त बातों का तिरस्कार कर देता है वह शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट हो जाता है और समय पर कल्याण को प्राप्त नहीं करता है ॥४५॥

प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि ।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन् गन्तुं पराभवम् ॥४६॥

हे राजन् ! यदि धर्मराज को प्रणाम करने से भी हमें राज्य की उपलब्धि होती है-तो भी अच्छा है, परन्तु मूर्खता से पराभव प्राप्त करना अच्छा नहीं है ॥४६॥

वैचित्रवीर्यवचनात्कृपाशीलो युधिष्ठिरः ।
विनियुंजीत राज्ये त्वां गोविंदवचनेन च ॥४७॥
यद् ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम् ।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वे कुर्युरसंशयम् ॥४८॥

राजा युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा है—वह विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र या श्रीकृष्ण के वचन से तुम को ही राज्य पर बैठा देगा यदि श्रीकृष्ण अजेय धर्मराज, अर्जुन या भीमसेन से जो कुछ कहेगा—वे तीनों, निश्चय श्रीकृष्ण के वचन को पूरा करेंगे ।४७-४८॥

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु ।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः ॥४९॥

मेरी सम्मति में श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र के वचनों का उल्लंघन नहीं करेंगे और श्रीकृष्ण के वचनों का उल्लंघन पाण्डव भी करने वाले नहीं हैं ॥४९॥

एतत्क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम् ।
न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात् ॥५०॥
पथ्यं राजन्ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि ।

मैं तो तुम्हारा कल्याण इसी में मानता हूँ-पाण्डवों के साथ विग्रह करना अच्छा नहीं है । मैं कुछ कायरता के कारण यह वचन नहीं कह रहा हूँ और न मैं प्राणों की रक्षा के लिए ऐसा कहने में प्रवृत्त हुआ हूँ हे राजन् ! मैं तो तुम से हितकारी वचन कहरहा हूँ-इन वचनों को यदि नहीं माना तो मरते हुए मेरे वचनों का स्मरण करोगे ॥५०॥

इति वृद्धो विलप्यैतत्कृपः शारद्वतो वचः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च ॥५१॥

इति श्रीमहाभारते० शल्यपर्वणि कृपवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

हे राजन्! इस प्रकार शरद्वान् पुत्र वृद्ध कृपाचार्य विलाप-पूर्वक इतना कहकर और लम्बी सांस मार कर चिन्ता करता हुआ मोहित होगया ॥५१॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में कृप के सन्धि प्रस्ताव का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद्विशाम्पते ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते! गौतम गोत्रोत्पन्न तपस्वी कृपाचार्य ने ये वचन कहे—तो राजा दुर्योधन ने लम्बी सांस मारी और चुप हो गया।१॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्त्तराष्ट्रो महामनाः।
कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परन्तपः ॥२॥

थोड़ी देर तक आप (धृतराष्ट्र) के पुत्र परन्तप महामनस्वी दुर्योधन ने विचार किया और फिर शरद्वान पुत्र कृपाचार्य से यह वचन कहा ॥२॥

यत्किञ्चित्सुहृदा वाच्यं तत्सर्वं श्रावितो ह्यहम् ।
कृतं च भवता सर्वं प्राणान्सन्त्यज्य युध्यता ॥३॥

हे ब्रह्मन् ! जो कुछ हितकारी व्यक्ति कहता है वही आपने कहा है-जैसे मुझे समझाना चाहिए-उतना समझा दिया। आप लोगों ने प्राणों की भी अपेक्षा (परवा) न करके जो युद्ध किया है वह थोड़ा नही है ॥३॥

गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः ।
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वामनुदृष्टवान् ॥४॥

तुमने महारथी अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवों के साथ जो युद्ध किया और उनकी सेना का आलोड़न कर दिखाया-यह सारे जगत् ने देखा हो ॥४॥

सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता श्रावितो ह्यहम् ।
न मां प्रीणाति तत्सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥५॥

यद्यपि आप मेरे सुहृद हो-आप को जो वाक्य कहना चाहिए वह आपने कह भी दिया, परन्तु यह सब कुछ आपका कथन मुझे इस तरह रुचि कर प्रतीत नहीं होता-जिस तरह मरने वाले किसी व्यक्ति को औषध अच्छी नहीं मालूम होती है ॥५॥

हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम् ।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते ॥६॥

हे महाबाहो ? युक्ति पूर्वक बड़ा ही हितकारी वचन कहा है परन्तु हे ब्रह्मन् ! यह सब कुछ कथन मुझे तो जचता ही नहीं है ।६॥

राज्याद्विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत् ।
अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः ॥७॥
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद्भूय एव तु ।
तथा दौत्येन संप्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः ॥८॥
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितम् ।
स च मे वचनं ब्रह्मन्कथमेवाभिमन्यते ॥९॥

जिस धर्मराज को हमने राज्य निर्वासित किया-वह हम पर कैसे विश्वास कर लगा। अत्यन्त ऐश्वर्यशाली युधिष्ठिर को हमने जुआ खेलकर जीता था-वही धर्मराज अब फिर मेरे वचनों पर कैसे विश्वास कर सकता है। इसी तरह सन्धि कराने के निमित्त दूत बनकर पाण्डवों के हित में तत्पर श्रीकृष्ण मेरे पास आए उस समय भी मैंने श्रीकृष्ण को चक्कर में ही डाल दिया-वह क्या मेरा थोड़ा मूर्खता पूर्ण कृत्य था। हे ब्रह्मन्! बताओ! फिर श्री कृष्ण भी मेरे वचनों को कैसे मानेगें ॥७-९॥

विललाप च यत्कृष्णा सभामध्ये समेयुषी ।
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा ॥१०॥

सभा के मध्य में पहुंची हुई द्रौपदी ने जो विलाप किया और लोगों ने जो पाण्डवों का राज्य छीन लिया इस बात को कृष्ण क्षमा कर सकता है ॥१०॥

एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यमभिसंश्रितौ ।
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत्प्रभो ॥११॥

अर्जुन और कृष्ण के एक प्राण और दो शरीर हैं। वसी तरह वे एक दूसरे के आश्रित हैं। हे महाभाग ! यह बात मैंने प्रथम तो सुनी ही थी, परन्तु आज उसे आंखों से देख लिया ॥११॥

स्वस्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः।
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥१२॥

जबसे उनकी बहन सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु मारा गया है तभी से वह बड़े दुःख से सोता है। हम लोगों ने कृष्ण का बड़ा अपराध किया है फिर वह कैसे मुझे क्षमा कर सकता है ॥१२॥

अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः।
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥१३॥

अभिमन्यु के मारे जाने से अर्जुन को चैन ही नहीं पड़ता है। यदि उनसे सन्धि की प्रार्थना की जावे-तो इस अवस्था में मेरे हित में वह कैसे प्रयत्न कर सकता है ॥१३॥

मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः।
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत् ॥१४॥

महाबली मध्यम पाण्डु पुत्र भीमसेनने बड़ी ही उग्र प्रतिज्ञा कर रखी है। वह टूट जावेगा, परन्तु झुकेगा नहीं ॥१४॥

उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ।
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥१५॥

नकुल और सहदेव भी सर्वदा खड्ग बांधे और कवच पहने रहते हैं। उनके चित्त में भी वैर की अग्नि धधक रही है। ये दोनों वीर यमराज के तुल्य भीषण है ।।१५।।

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह ।

तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम ।।१६।।

हे द्विज सत्तम ! पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न और शिखण्डी भी मुझसे वैर मानते हैं। वे दोनों भी मेरे हित में कैसे प्रयत्न कर सकते हैं ।।१६।।

दुःशासनेन यत्कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला ।

परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ।।१७।।

दुःशासन ने एक वस्त्र पहने हुए रजस्वला, द्रोपदी को सभा के मध्य में बड़े अपमान के साथ खैंचा था, जिसको सारे सभासद बैठे देखते रहे ।।१७।।

तथा विवसनां दीनां स्मरंत्यद्यापि पाण्डवाः ।

न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परन्तपाः ।।१८।।

पाण्डव, आज भी द्रोपदी के नग्न करने के अपमान का स्मरण करते रहते हैं-वे उसे भूले नहीं हैं। उन शत्रुतापी पाण्डवों को कोई भी युद्ध से निवृत्त नहीं कर सकता है ।।१८।।

यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता ।

स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद्वैरस्य यातनम् ।।१६।।

जब से द्रोपदी का अपमान हुआ है—तभी से वह बड़ी क्लेशित और दुःखी रहती है। वह मेरे विनाश के निमित्त नित्य ही भूमि में सोती है। यह उसका नियम तब तक चलेगा-जब तक वह वैर नहीं निकाल लेगी ॥१६॥

उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तॄणामर्थसिद्धये ।
निक्षिप्यमानं दर्पं च वासुदेवसहोदरा ॥२०॥
कृष्णाया प्रेष्यवद्भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा ।
इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथञ्च न ॥२१॥

अपने भर्ताओं की सिद्धि के लिए द्रोपदी उग्र तप कर रही है। अपने अभिमान को लीन करके कृष्ण भगिनी सुभद्रा भी द्रोपदी की दासी की तरह सेवा करती है। ये सारी घटना बड़ी प्रज्वलित हो रही हैं। ये किसी प्रकार भी नहीं शान्त हो सकती है ॥२०-२१॥

अभिमन्योर्विनाशेन स सन्धेयः कथं मया ।
कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम् ॥२२॥
पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम् ।

अभिमन्यु का विनाश हो जाने पर भी राजा युधिष्ठिर कैसे मुझसे सन्धि करने को तय्यार हो सकता है। इस समुद्र वसना पृथिवी पर भोग करके मैं, फिर कैसे पाण्डवों की कृपा से मिली हुई भूमि का उपभोग कर सकूंगा ॥२२॥

उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा ॥२३॥
युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत् ।

मैं सारे राजाओं के ऊपर सूर्य की तरह चमकता रहा—अब दास की तरह युधिष्ठिर के पीछे कैसे चल सकूंगा ॥२३॥

कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान्दत्वा दायांश्चपुष्कलान् ॥२४॥
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम् ।

मैं अपनी स्वतन्त्रता से भोगों को भोग कर और पुष्कल दान देकर फिर कैसे दीन वृत्ति कर सकूंगा या दीनों के साथ साथ अपनी भी जीविका चलाऊंगा ॥२४॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया ॥२५॥
न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथंचन ।

हे ब्रह्मन् ! मै कोई तुम्हारे वचनों का खण्डन नहीं कर रहा हूँ आपने तो प्रेमपूर्ण हितकारी ही वचन कहा है, परन्तु इस समय मुझे तो किसी प्रकार सन्धि होना या करना उचित प्रतीत नहीं होता ॥२५॥

सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परन्तप ॥२६॥
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः ।

हे परन्तप ! मैं तो अच्छी तरह युद्ध करके ही सब कुछ प्राप्त करना चाहता हूं। यह काल क्लीब बनने का नहीं है—यह तो वीरता के साथ युद्ध करने का समय है ॥२६॥

इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ॥२७॥
प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम् ।
भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ॥२८॥
नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान्वक्तुमीदृशम् ।

मैंने बहुत से यज्ञ कर लिए और ब्राह्मणों को दक्षिणा भी दे दी। सारी कामनाएँ प्राप्त करली। वेदों का श्रवण भी कर चुका। सदा शत्रुओं के शिर पर स्थित भी रह चुका। हे तात ! मैंने अपने सेवकों को वृत्ति भी सुचारु रूप से दे दी और दीन जनों की रक्षा भी कर चुका। हे द्विज श्रेष्ठ ! अब मैंतो पाण्डवों से सन्धि की कह नहीं सकता हूँ ॥२७-२८॥

जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम ॥२९॥
भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया ।
पितृणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः ॥३०॥

हे आचार्य ! मैंने शत्रु देश जीत लिए अपने राष्ट्र की रक्षा करली। सारे भोग भोगलिए और तीनों वर्ग धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति कर चुका। मैं क्षत्रधर्म का पालनकर चुका और पितरों से उऋण हो गया ॥२९-३०॥

न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः ।
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा ॥३१॥

सुख सर्वदा नहीं रहा करते, फिर राष्ट्र या जीवित अवस्था का यश तो क्षणिक ही है। इस लोक में तो मनुष्य को ऐसे कर्म करने चाहिए जिससे मृत्यु के अनन्तर लोक लोकान्तरों की प्राप्ति या कीर्ति हो सके। वह तो युद्ध से ही मिल सकती है-उसका अन्य कोई उपाय नहीं है ॥३१॥

गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम् ।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥३२॥

घर में क्षत्रिय की मृत्यु बड़ी ही निन्दित मानी गई है। जो घर में शय्या पर क्षत्रिय मरता है-उसको महान् अधर्म की प्राप्ति होती है ॥३२॥

अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः ।
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥३३॥

जो क्षत्रिय बड़े २ यज्ञ करके रण में या अरण्य में शरीर छोड़ता है-वही बड़ी भारी महिमा को प्राप्त होता है ॥३३॥

कृपणं विलपन्नार्त्तो जरयाऽभिपरिप्लुतः ।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥३४॥

जो क्षत्रिय, दीनता के साथ करुणस्वर में विलाप करता हुआ बुढ़ापे से आक्रान्त होकर अपने बन्धु बान्धवों के रोते २ शरीर छोड़ता है, वह पुरुष ही नहीं है ॥३४॥

त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान्प्राप्तानां परमां गतिम् ।
अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं यत्सलोकताम् ॥३५॥

आज मैं भी इन भोगों को छोड़कर पूर्वजों की उत्तमगति को प्राप्त करूंगा। उनके लोकों की प्राप्ति केवल युद्ध से ही हो सकेगी ॥३५॥

शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
धीमतां सत्यसन्धानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥३६॥
शस्त्रावभृथपूतानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे ।
मुदा नूनं प्रपश्यन्ति युद्धे ह्यप्सरसां गणाः ॥३७॥
पश्यन्ति नूनं पितरः पूजितान्सुरसंसदि ।
अप्सरोभिः परिवृतान्मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥३८॥

जो आर्य आचरणधारी संग्राम से नहीं हटने वाले, बुद्धिमान सत्य प्रतिज्ञा युक्त, अनेक बड़े २ यज्ञ करने वाले, और शस्त्रयज्ञ से पवित्र हुए वीर हैं, उनका वास निश्चय ही स्वर्गमें माना गया है जो व्यक्ति युद्ध में तत्पर होता है, उसे अप्सराओं के गण बड़े आनन्द से देखते हैं तथा देव सभा में पूजित, उस क्षत्रिय को पितर बड़े आनन्द से देखते हैं। अप्सराओं के गण उनको घेरे रहते हैं। वे इस तरह स्वर्ग में बड़ा ही आनन्द करते हैं ॥३६-३८॥

पन्थानममरैर्यान्तं शूरैश्चैवानिवर्त्तिभिः ।
अपि तत्सङ्गतं मार्गं वयमप्यारुहेमहि ॥३९॥

जिस मार्ग में देवता जाते हैं, उसी मार्ग में शूरवीर भी जाते हैं और लौटते नहीं है। उसी उत्तम मार्ग को आज हम लोग भी जाना चाहते हैं ॥३९॥

पितामहेन वृद्धेन तथाऽऽचार्येण धीमता ।
जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च ॥४०॥
घटमाना मदर्थेऽस्मिन्हताः शूरा जनाधिपाः ।
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः ॥४१॥

वृद्ध भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण, राजा जयद्रथ महारथी कर्ण और दुःशासन ने मेरे हित के लिए बड़ा प्रयत्न किया और वे मारे गए। इसी तरह बहुत से शूरवीर राजा लोग बाणों से क्षतविक्षत होकर रक्त में सने हुए संग्राम भूमि में लेट रहे हैं ॥४०-४१॥

उत्तमास्त्रविदः शूरा यथोक्तक्रतुयाजिनः ।
त्यक्त्वा प्राणान्यथान्यायमिन्द्रसद्मसु धिष्ठिताः ॥
तैः स्वयं रचितो मार्गो दुर्गमो हि पुनर्भवेत् ।
सम्पतद्भिर्महावेगैर्यास्यद्भिरिह सद्गतिम् ॥४३॥
ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन् ।
ऋणं तत्प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ॥४४॥

ये शूरवीर उत्तम २ अस्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने भी धर्मानुसार प्राण छोड़कर स्वर्गलोक में स्थान बनाया है। उन लोगों ने आज मुझे भी मार्ग बता दिया। यह मार्ग फिर दुर्लभ होजावेगा। वे लोग बड़े वेग से झपटे हुए सद्गति में चले जारहे हैं। जिन वीरों ने मेरे निमित्त प्राण छोड़े उनके कर्तव्यों का स्मरण करके मुझे

उनका ऋण चुकाना है, इससे अब राज्य करने को मेरा चित्त ही नहीं चाहता है ॥४२-४४॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान् ।
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद्ध्रुवम् ॥४५॥
कीदृशं च भवेद्राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः ?
सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवम् ॥४६॥

अपने मित्र भ्राता, पितामह आदि को मरवा कर यदि मैं अपने जीवन की रक्षा करूं-तो संसार मेरी निन्दा करेगा। इसके अतिरिक्त बन्धु बान्धवों तथा मित्र सुहृदों से विहीन और पाण्डवों के प्रणाम से प्राप्त इस राज्य के उपयोग में आनन्द ही क्या रखा है ॥४५-४६॥

सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम् ।
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥४७॥

हे ब्रह्मन्! इस तरह इस जगत् का विध्वंस कराकर कैसे जीवित रह सकता हूँ-मैं तो उत्तम युद्ध द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर सकता हूँ-स्वर्ग प्राप्ति का अन्य कोई अब उपाय नहीं है ॥४७॥

एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः ।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे ॥४८॥

जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा तो सब क्षत्रिय वीरों ने कुरुराज दुर्योधन के वचन का बड़ा आदर किया। उन लोगों ने उनके वचन की बड़ी ही प्रशंसा की ॥४८॥

पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥४९॥

इस समय इन वीरों को पराजय की कोई चिन्ता न थी, वे तो पराक्रम कर दिखाने में तत्पर हो चुके थे। इस समय युद्ध के अभिलाषी उन सारे वीरों के चित्त में बड़ा ही उत्साह भरगया ॥४९॥

ततो वाहान्समाश्वास्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥५०॥

उन्होंने अपने २ अश्वों को पुचकारा और वे सारे ही युद्ध के लिए सन्नद्ध होगए। अब कुछ दो योजन से कम दूरी पर जाकर कौरव स्थित होगए ॥५०॥

आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥५१॥

इस समय आकाश लाल हो रहा था, वे हिमालय की तलहटी में लाल वर्ण वाली सरस्वती पर नहीं पहुंचे, और उन्होंने स्नान और जलपान किया ॥५१॥

तत्र पुनकृतोत्साहाः पर्यवर्त्तन्त ते ततः ।
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ।
सर्वे राजन्न्यवर्त्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के उत्साह देने पर वे सारे क्षत्रिय वीर लौट पड़े। उन्होंने एक दूसरे को उत्साहित करके युद्ध के लिए सन्नद्ध किया। काल की प्रेरणा से कौरव पक्ष के सारे ही वीर राजा फिर युद्ध के लिए लौट पड़े ॥५२॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
राजा दुर्योधन के वीरता पूर्ण कथन के वर्णन का
पांचवाँ अध्याय समाप्त हुआ



छठा अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर हिमालय के प्रस्थ [तलहटी] में युद्ध के उत्साह में भरे हुए क्षत्रिय वीर स्थित थे। ये इधर उधर से आये हुए सारे राजा बड़े ही योद्धा थे ॥१॥

शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥२॥
सुषेणोऽरिष्टसेनश्च द्रुतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥३॥

शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य सात्वतवंश श्रेष्ठ कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, वीर्यवान्, द्रुतसेन जयत्सेन आदि कौरव पक्ष के राजाओं ने रात में वहीं पर निवास किया ॥२-३॥

रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः ।
नालभन् शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥४॥

रण क्षेत्र में कर्ण के मारे जाने पर विजयी पाण्डवों से कौरव भयभीत थे । हिमालय की तलहटी के सिवा उनको चैन से विश्राम करने का कोई स्थान प्रतीत नहीं हुआ ॥४॥

तेऽब्रुवन्सहितास्तत्र राजानं शल्यसन्निधौ ॥
कृतयत्ना रणे राजन्संपूज्य विधिवत्तदा ॥५॥

हे राजन् ! अब वे सारे राजा शल्य के समीप पहुँचे और इकट्ठे ही विधिपूर्वक उसकी पूजा करके कहने लगे । ये लोग, रणमें प्रयत्न करके अभी विजय प्राप्त करलेना चाहते थे ॥५॥

कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि ।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥६॥

इन्होंने कहा हे मद्रराज ! अब हम आपको सेनापति बना कर शत्रुओं से लड़ना चाहते हैं । आपसे संग्राम में सुरक्षित हुए हम लोग अवश्य ही शत्रुओं को जीत लेंगे ॥६॥

ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम् ।
सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥७॥

स्वङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बुग्रीवं प्रियंवदम् ।
व्याकोशपद्मपत्राक्षं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ॥८॥
स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः ।
पुष्टश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णवरोरसम् ॥९॥
बले जवे च सदृशमरुणानुजवातयोः ।
आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं बुद्ध्या चोशनसा समम् ॥१०॥
कान्तिरूपमुखैश्वर्यैस्त्रिभिश्चन्द्रमसा समम् ।
काञ्चनोपलसङ्घातैः सदृशं श्लिष्टसन्धिकम् ॥११॥
सुवृत्तोरुकटीजंघं सुपादं स्वंगुलीनखम् ।
स्मृत्वा स्मृत्वैव तु गुणान्धात्रा यत्नाद्विनिर्मितम्
सर्वलक्षणसम्पन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् ।
जेतारं तरसाऽरीणामजेयमरिभिर्बलात् ॥१३॥
दशाङ्गं यश्चतुष्पादमिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।
साङ्गांस्तु चतुरो वेदान्सम्यगाख्यानपञ्चमान् ॥१४॥
आराध्य त्र्यम्बकं यत्नाद्व्रतैरुग्रैर्महातपाः ।
अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥१५॥
तमप्रतिमकर्माणं रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् ॥१६॥
तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् ।

अश्वत्थामा अनेक महारथियों में श्रेष्ठ थे। वे सारे युद्ध के दङ्गों के जानने वाले युद्ध में काल के समान बली हो जाते थे। उनका शरीर सुन्दर और वे मुकुट आदि से आच्छादित मस्तक-धारी थे। उनकी ग्रीवा शङ्ख के तुल्य थी और वे बड़े ही प्रियवादी थे। अश्वत्थामा खिले हुए कमल पुष्प के तुल्य नेत्र वाले, सिंह के सदृश मुखधारी, मेरु पर्वत तुल्य ऊंचे स्कन्ध, नेत्र, गति और स्वर में शिव के वृषभ के समान सुन्दर थे। इनकी भुजा बड़ी पुष्ट और लम्बी थी और छाती विशाल और दृढ़ थी। इनका बल और वेग गरुड़ और वायु के सदृश था। अश्वत्थामा तेज सूर्य की ज्योतिं के समान और बुद्धि शुक्राचार्य के सदृश थी। कान्ति, रूप और मुख की शोभा ये तीनों चन्द्रमा के बराबर थे। सुवर्ण की शिला के संघात के तुल्य पृथक् २ सन्धि वाले बड़े गोल जंघों, कटी और नितम्ब भाग थे। उत्तम अंगुली और नखों से सुशोभित उनके सुन्दर चरण थे। विधाता ने उत्तम गुणों का स्मरण कर कर के इसको बनाया है। ये सब लक्षणों से सम्पन्न वेद के समुद्र, चतुर, वेग से शत्रु विजेता, बल पूर्वक शत्रुओं से अपराजित थे। महातपस्वी अश्वत्थामा ने यत्न पूर्वक बड़े उग्रतप से महादेव की उपासना की, जिससे दश अङ्ग (अभ्यास शस्त्र तीक्ष्णी करण आदि) और चार पाद [उपदेश सेना शिक्षा आदि] वाली अस्त्र विद्या को उन्होंने बड़ी उत्तमता से सीखा था. और चारों वेद और पांचवा इतिहास सम्यक् रीति से पढ़ लिया था अयोनि उत्पन्न द्रोण से कृपो में इनका उत्पन्न किया था। अद्भुत

क्रम करने वाले, रूप में अद्वितीय, समस्त विद्याओं में पारङ्गत गुणसमुद्र, अनिन्दित इनही अश्वत्थामा के समीप तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन रथ में स्थित होकर पहुँचे और यह वचन बोले ॥

यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान् ॥१७॥
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः ।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥१८॥

हे महाभाग ! जिनको सेनापति बनाकर हम सब लोग, इकट्ठे होकर पाण्डवों को जीत लेवें उसे आप बताइए। आप हमारे गुरु पुत्र और परम अवलम्बन हैं। आप आज्ञा दीजिए कि किसको सेनापति बनाना चाहिए ॥१७-१८॥

द्रौणिरुवाच—

अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥१९॥

अश्वत्थामा ने कहा—हे राजन् ! कुल, रूप, तेज, यश, श्री तथा अन्य सारे गुणों में मद्राधिपति राजा शल्य सर्व श्रेष्ठ हैं-अब उनको ही हमारे सभापति हो जाना चाहिए। १९॥

भागिनेयान्निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः ।
महासेनो महाबाहुर्महासेन इवापरः ॥२०॥

यह हमारे उपकारों का बदला चुकाने को अपने भागिनेय पाण्डवों को छोड़कर हमारी ओर आ मिला । इस महाबाहु के समीप बहुत सी सेना है-जो बल में कार्तिकेय के सदृश पराक्रमी है ॥२०॥

एनं सेनापतिं कृत्वा नृपतिं नृपसत्तम ।

शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभिर्देवैः स्कन्दमिवाजितम् ॥

हे नृपसत्तम ! इस मद्रेश्वर को सेनापति करके हम लोग इस तरह विजय प्राप्त कर सकते हैं, जैसे देवों के साथ स्कन्द सेनापति बनकर विजय प्राप्त करता है ॥२१॥

तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः ।

परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥२२॥

युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः ।

जब द्रोण पुत्र ने इतना कहा-तो सारे राजा मद्रराज को घेर कर खड़े होगए और जयकार शब्द का उच्चारण करने लगे, ये लोग युद्ध के लिए बड़ा उत्साह दिखाने लगे और बड़े भारी आवेश में आए ॥२२॥

ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितम् ॥२३॥

उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे ।

अब राजा दुर्योधन भूमि में स्थित हुए हाथ जोड़कर रथ में स्थित, युद्ध में द्रोण और भीष्म के सदृश, राजा शल्य से यह वचन बोले ॥२३॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ॥२४॥

यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः ।

हे मित्र वत्सल ! आज वह काल उपस्थित होगया, जिसमें मित्र और शत्रु की बुद्धिमान मनुष्य परिक्षा लेते हैं ॥२४॥

स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे ॥२५॥
रणं याते च भवति पाण्डवा मन्दचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाश्च निरुद्यमाः ॥२६॥

हे मद्रराज ! आज तुम हमारी सेना के अग्रभाग में स्थित होकर हमारा नेतृत्व करो । जब आप रण मे सेना पति बनकर आगे आओगे-तो पाण्डव घबरा जावेंगे और सारे पाञ्चाल अपने साथियों के साथ उत्साह हीन होजावेंगे ॥२५-२६॥

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो राजानं राजसन्निधौ ॥२७॥

राजा दुर्योधन के वचन सुनकर मद्राधिपति बोलने में कुशल राजा शल्य ने कुरुराज के समीप यह वचन कहा ॥२७॥

शल्य उवाच—

यत्तु मां मन्यसे राजन्कुरुराज करोमि तत् ।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च ॥

शल्य बोले हे कुरुराज ! यदि तुम मुझे सेनापति होने के योग्य समझते हो-तो अच्छी बात है । मैं सब कुछ तुम्हारे लिए करूंगा तुम्हारे हित सम्पादन के निमित्त मेरे प्राण, राज्य और धन सब कुछ उपस्थित है ॥२८॥

दुर्योधन उवाच—

सैनापत्येन वरये त्वामहं मातुलातुलम् ।
सोऽस्मान्पाहि युधां श्रेष्ठ स्कन्दो देवानिवाहवे ॥२९॥

राजा दुर्योधन ने कहा—हे मातुल ! अतुल पराक्रमी आपका मैं सेनापति पद पर वरण करता हूँ। हे योद्धाओं में श्रेष्ठ ! आप हमारी इस तरह रक्षा कीजिए-जैसे युद्ध में स्कन्द देवों की करता है ॥२६॥

अभिषिच्यस्व राजेन्द्र देवानामिव पावकिः ।
जहिशत्रून्रणे वीर महेन्द्रो दानवानिव ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शल्यदुर्योधनसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम देवों के सेनापति स्कन्द की भांति अपना सेनापति पद पर अभिषेक कराओ। हे वीर अब आप रण में दानवों का इन्द्र की तरह शत्रुओं का विनाश करो ॥३०॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में शल्य दुर्योधन सम्वाद का छठा अध्यांय समाप्त होगया



सातवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान् ।
दुर्योधनं तदा राजन्वाक्यमेतदुवाच ह ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! महाप्रतापी राजा शल्य, कुरुराज दुर्योधन के वचन सुनकर उनसे यह वचन कहने लगा ॥१॥

दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर ।
यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ ॥२॥
न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथञ्चन ।

हे महाबाहो ! दुर्योधन ! आप बोलने वालों में बड़े श्रेष्ठ हो अब तुम मेरे वचन को ध्यान से सुनो । यद्यपि तुम रथस्थित अर्जुन और कृष्ण को बड़े उत्तम महारथी समझते हो परन्तु सच जानो-ये दोनों बाहुबल में मेरे समान नहीं है ॥२॥

उद्यतां पृथिवीं सर्वां ससुरासुरमानवाम् ॥३॥
योधयेयं रणमुखे संक्रुद्धः किमु पाण्डवान् ।

यदि सारी पृथिवी के सुर असुर और मनुष्य, रणक्षेत्र में मेरे सन्मुख आजावें तो भी मैं उनसे क्रोधातुर होकर युद्ध कर सकता हूँ-फिर इन पाण्डवों की तो चर्चा ही क्या है ॥३॥

विजेष्यामि रणे पार्थान् सोमकांश्च समागतान् ॥४॥
अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः ।

अब मैं युद्ध में सन्मुख आए हुए सारे सोमक और पाण्डव वीरों को जीत देता हूँ मैं तुम्हारी सेना का नेता बनता हूँ-इसमें तुम कुछ हिचक न समझो ॥४॥

तं च व्यूहं विधास्यामि न तरिष्यन्ति यं परे ॥५॥
इति सत्यं ब्रवीम्येष दुर्योधन न संशयः ।

मैं आज ऐसी व्यूह रचना करूंगा, कि जिसको शत्रु तोड़ ही नहीं सकेंगे। हे दुर्योधन! यह मैं सत्य कहता हूँ-तुम मिथ्या न समझो ॥५॥

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥६॥
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम ।

हे भरत सत्तम ! इतना कहने के अनन्तर कुरुराजाने सेना-पति पद पर सेना के मध्य में ही बड़ी शीघ्रता से राजा शल्य का अभिषेक कर दिया ॥६॥

विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते ॥७॥
अभिषिक्ते ततस्तस्मिन्सिंहनादो महानभूत् ।

हे विशाम्पते ! जब शास्त्रानुसार विधि से राजा शल्य का अभिषेक किया गया-तो वह चमक उठा । इसके अभिषेक के अनन्तर कौरव सेना में महान सिंह नाद होने लगा ॥७॥

तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥८॥
क्रुष्टाश्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः ।

हे भारत ! इस समय तुम्हारी सेना में बहुत से बाजे बजने लगे-कौरव वीर बड़े क्रुद्ध हुए और महारथी मद्र देश के वीर भी झल्ला उठे ॥८॥

तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम् ॥९॥
जय राजंश्चिरं जीव जहि शत्रून्समागतान् ।

ये वीर, युद्ध में शोभा पाने वाले राजा शल्य की प्रशंसा करने लगे। हे राजन्! आपकी जय हो-आप चिरकाल जीवित रहें और सन्मुख आए हुए शत्रुओं को नष्ट करते रहें ॥९॥

तव बाहुबलं प्राप्य धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥१०॥
निखिलाः पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः।

महाबली धृतराष्ट्र सेना के वीर, तुम्हारे बाहुबल का आश्रय पाकर सारे शत्रुओं का नाश करलें और चिरकाल तक इस सारी पृथिवी का शासन करें ॥१०॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानवान् ॥११॥
मर्त्यधर्माण इह तु किमु सृञ्जयसोमकान्।

हे मद्राधिपते! आप असुर और सुरों सहित सारी पृथिवी के जीतने में समर्थ हैं फिर मनुष्यों की सी शक्ति रखने वाले सृञ्जय और सोमवंश क्षत्रिय वीर तुम्हारे सन्मुख क्या ठहर सकते हैं ॥११॥

एवं सम्पूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली ॥१२॥
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः।

हे राजन्! जब इस प्रकार मद्रदेशेश्वर महाबली राजा शल्य की सबने स्तुति की-तो उस वीर ने, बलहीन मनुष्यों को दुर्लभ महान् हर्ष की प्राप्ति की ॥१२॥

शल्य उवाच—

अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान्सह पाण्डवैः ॥१३॥
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः।
अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ॥१४॥

शल्य ने कहा—हे राजन्! दुर्योधन! आज मैं रण में या तो पाण्डवों के साथ सारे पञ्चालों को मार लेता हूँ-या उनके द्वारा मारा जाकर स्वर्ग को गमन करूंगा। पाण्डव वीर, आज मुझे रणक्षेत्र में निर्भीक भाव से घूमते देखेंगे ॥१३-१४॥

अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः।
पञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥१५॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः।
विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद्बलम् ॥१६॥

आज पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर आदि, श्रीकृष्ण, सात्यकि, पञ्चाल, चेदि, द्रौपदी पुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सारे प्रभद्रक वीर, मेरे धनुष के बल और मेरे पराक्रम का दर्शन करेंगे ॥१५-१६॥

लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि।
अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥१७॥
यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे।

हे नृप! आज पाण्डव, सिद्ध और चारण मेरी स्फूर्ति, (फुर्ती) अस्त्रबल और बाहुबल को रणाजिर में अच्छी तरह देखेंगे कि मेरी भुजाओं में कितना बल तथा अस्त्र शक्ति है ॥१७॥

अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ॥१८॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः।

हे राजन् ! पाण्डव पक्ष के महारथी आज मेरे बल विक्रम को देखकर उसके प्रतीकार में तत्पर होंगे और अनेक निष्फल क्रिया करते दिखाई देंगे ॥१८॥

अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ॥१९॥

द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन्प्रियार्थं तव कौरव ॥२०॥

हे कुरुराज ! आज मैं पाण्डवों की सारी सेना को सब ओर भगादूंगा । हे विभो ! मैं द्रोण और भीष्म से भी अधिक पराक्रम कर दिखाऊंगा और तुम्हारे हित के लिए युद्ध करता हुआ रण में निःशङ्क चक्कर लगाऊंगा ॥१९-२०॥

सञ्जय उवाच—

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णं व्यसनं किञ्चिन्मेनिरे तत्र भारत ॥२१॥
हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान्पार्थान्मद्रराजवशङ्गतान् ॥२२॥

सञ्जय बोले—हे मान देने वाले ! भरतवंश श्रेष्ठ ! धृतराष्ट्र ! इस प्रकार तुम्हारे सेना में शल्य को सेनापति पद पर अभिषिक्त कर देने पर सैनिकों को कर्ण की मृत्यु का विस्मरण होगया । वे लोग, बड़े प्रसन्न और उत्साहित हुए । अब तो ये यही समझने लगे, कि पाण्डव मद्रराज के वश में पड़कर मारे गए ही समझो ॥२१-२२॥

प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ ।
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साऽभवत् ॥२३॥

हे भरतर्षभ ! आपकी सेना इसतरह आनन्दोल्लास में भरगई कि उसने रात में कहीं निवास करके शयन भी नहीं किया और वह हर्ष में तय्यारी ही करती रही ॥२३॥

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
वार्ष्णेयमब्रवीद्वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥२४॥

हे राजन् ! तुम्हारी सेना के इस कोलाहल को सुनकर राजा युधिष्ठिर, सारे क्षत्रियों के सन्मुख वृष्णिवंश श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से यह वचन बोले ॥२४॥

मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥२५॥

हे माधव ! अब कौरवों ने मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है, जो बड़ा धनुर्धर है। सारी सेनाओं ने उसकी बड़ी पूजा की है ॥२५॥

एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम् ।
भवान्नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम् ॥२६॥

हे माधव ! आपको यह मालूम हो जाना चाहिए। अब जो आपको करना है-वह करो। आप हमारे नेता और रक्षक हैं इस समय जो कर्तव्य है-वह बताओ ॥२६॥

तमब्रवीन्महाराज वासुदेवः जनाधिपम् ।
आर्तायनिमहं जाने यथा तत्त्वेन भारत ॥२७॥
वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः ।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च ॥२८॥
यादृग्भीष्मस्तथा द्रोणो यादृकर्णश्च संयुगे ।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥२६॥

हे महाराज ! इतना सुनकर राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण ने कहा—हे भारत ! मैं ऋतायन के पुत्र शल्य के बल को बहुत जानता हूँ ! यह महात्मा, बड़ा बलवान् और विशेषकर तेजस्वी है यह विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाला लाघव से संयुक्त, अस्त्र-विद्या में कुशल योद्धा है। जिस तरह भीष्म, द्रोण और कर्ण रण में पराक्रम दिखाने वाले थे, इसी तरह का पराक्रमी भी यह शल्य है अथवा उनसे भी अधिक समझना चाहिए ॥२७-२६॥

युद्ध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयानश्च भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥३०॥

हे जनाधिप ! जब वह युद्ध में तत्पर होगा-तो उसके सन्मुख किस महारथी को जाना चाहिए-यह मैं बार बार सोचता हूँ परन्तु मुझे उसके समान पराक्रमी कोई दिखाई नहीं देता है ॥३०॥

शिखण्डयर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत ।
धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ॥३१॥

हे भारत! शिखण्डी, अर्जुन, भीमसेन, सात्वतवंश श्रेष्ठ, सात्यकि और धृष्टद्युम्न से भी मद्रराजशल्य अधिक बलशाली है ॥३१॥

मद्रराजो महाराजः सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥३२॥

महाराज मद्राधिपति शल्य सिंह और हाथी के तुल्य पराक्रमी है। यह रणक्षेत्र में निर्भीक होकर इस तरह घूमेगा-जैसे क्रुद्ध हुआ काल प्रलय में घूमता है ॥३२॥

तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥३३॥

हे पुरुष व्याघ्र! सिंह के समान पराक्रमी राजा शल्य से तुम्हारे सिवा मैं अन्य किसी वीर को मुक़ाबिले में लड़ने वाला नहीं देखता हूँ ॥३३॥

स देवलोके कृत्स्नेऽस्मिन्नान्यस्त्वत्तः पुमान्भवेत्।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात्कुरुनन्दन ॥३४॥

हे कुरुवंशश्रेष्ठ! धर्मराज इस परमात्मा की सृष्टि में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई वीर नहीं है जो रण में कुपित मद्रराज का वध कर सके ॥३४॥

अहन्यहनि युध्यंतं क्षोभयन्तं बलं तव ।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥३५॥

यह प्रतिदिन युद्ध करता हुआ, तुम्हारी सेना को नष्ट करता चला आ रहा है। अब तुम शम्बर को इन्द्र की तरह राजा शल्य को रण में मार गिराओ ॥३५॥

अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्त्तराष्ट्रेण सत्कृतः ।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥३६॥

धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन से सत्कार पाकर शल्य बड़ा ही दुर्धर्ष और अजेय हो गया है। यदि तुमने मद्रेश्वर शल्य को मार लिया तो तुम्हारा रण में अवश्य विजय समझो ॥३६॥

तस्मिन्हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥३७॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥३८॥

ज्योंही शल्य मारा गया उसी समय सारी कौरव सेना को नष्ट समझो। हे महाराज ! तुम मेरे इस वचन को ध्यान से सुन लो। हे कुन्ती पुत्र ! धर्मराज ! आज तो रण में आप ही महारथी मद्रराज शल्य के सन्मुख जाइए। हे महाबाहो ! नमुचि दैत्य को जिस तरह इन्द्र ने मार गिराया, इसी तरह आप भी इसे मार डालो ॥३७-३८॥

न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥३९॥

हे राजन् ! आप यह समझ कर कि यह मेरे मातुल है इसपर दया न करो । क्षत्रिय धर्म को ध्यान में रखकर इस मद्रेश्वर शल्य को अवश्य मार गिराओ ॥३६॥

द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम् ।

मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥४०॥

हे धर्मराज ! आपने भीष्म द्रोण जैसे समुद्र को पार कर लिया और पाताल तक गहरे कर्ण रूपी तालाब को भी तर लिया । कहा शल्य रूपी गोष्पद [गो के खुर के जल] को प्राप्त कर तुम सेना सहित डूब मत मरना ॥४०॥

यच्चते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।

तद्दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥४१॥

जो तुम्हारा तप का बल और शस्त्र तेज है वह आज सबको दिखादो और इस महारथी को रण में मार गिराओ ॥४१॥

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।

जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥४२॥

-शत्रु वीर नाशक, श्रीकृष्ण, इतना वचन कहकर सायङ्काल में अपने शिबिर में पहुंचे और पाण्डवों ने उनका अभ्युत्थान आदि से बड़ा सत्कार किया ॥४२॥

केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

विसृज्य सर्वान् भ्रातृंश्च पञ्चालानथ सोमकान् ॥४३॥

जब श्रीकृष्ण चले गये तो धर्मराज युधिष्ठिर, सारे भ्राता, पञ्चाल और सोमक वीरों को छोड़कर उस रात में इस तरह सोए जैसे बाण निकाल लेने पर हाथी सो जाता है ॥४३॥

सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ।
ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा ॥४४॥

इसी तरह सारे अन्य महाधनुर्धर, पञ्चाल और पाण्डव वीर कर्ण के मारे जाने से बड़े प्रसन्न थे। वे भी रात भर बड़े चैन से सो गए ॥४४॥

कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ।
गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥४५॥
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं च मुदितं नृप ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शल्यसेनापत्याभिषेके सप्तमोऽध्यायः॥७॥

हे आर्य ! गुण सम्पन्न ! राजन् ! सूत पुत्र के मारे जाने पर पाण्डवों को विजय प्राप्त हुई, इससे सारी पाण्डव सेना, चिन्ता, रहित हो गई। यह महाधनुर्धर, बड़े रथों वाली सेना, कर्णरूपी समुद्र को पाकर सुख से सोई ॥४५-४६॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में शल्य के सेनापति बनाने का सातवां अध्याय समाप्त हुआ

आठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्सन्नह्यन्तां महारथाः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अब रात के व्यतीत होने पर राजा दुर्योधन, अपने सेना के सारे वीरों से कहने लगे, कि हे महारथियों! तुम तय्यार हो जाओ ॥१॥

राज्ञश्च मतमाज्ञाय समनह्यन्त साचमूः ।
अयोजयन् रथांस्तूर्णं पर्यधावंस्तथाऽपरे ॥२॥
अकल्पयन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः ।
रथानास्तरणोपेतांश्चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥३॥

राजा दुर्योधन की आज्ञा पाते ही सारी सेना तय्यार हो गई उन्होंने अपने २ रथ जोड़ लिए। उनमें कुछ वीर इधर उधर दौड़ने लगे हाथी सजाए जाने लगे, पैदल सैनिक तय्यार हुए। सहस्रों वीरों ने अपने रथों को आस्तरणों (युद्धोपयोगी वस्त्रों) से युक्त किया ॥२-३॥

वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
आयोधनार्थं योधानां बलानां चाप्युदीर्यताम् ॥४॥

हे विशाम्पते! अब बाजों की ध्वनि विस्तृत होने लगी, जो लड़ने के लिए महापराक्रमी योद्धा और सेना को उत्साहित कर रही थी ॥४॥

ततो बलानि सर्वाणि सेनाशिष्टानि भारत ।
प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥५॥

हे भारत ! अब कौरवों की शेष सारी सेना मृत्यु का भय छोड़कर रण यात्रा के लिए चल पड़ी ॥५॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः ।
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः ॥६॥

हे राजन् ! अब कौरव महारथी, मद्रेश्वर शल्य को सेनापति बनाकर और सारी सेना के विभाग करके अपनी २ सेना में स्थित होगए ॥६॥

ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥७॥
अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुरादृताः ।
न न एकेन योद्धव्यं कथंचिदपि पाण्डवैः ॥८॥
यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्येद्यो वा युद्ध्यन्तमुत्सृजेत् ।
स पञ्चभिर्भवेद्युक्तः पातकैश्चोपपातकैः ॥९॥
अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह ।

हे राजन ! अब सारे तुम्हारे सैनिक आकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से आकर मिले । इनमें कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और सुबल पुत्र शकुनि प्रधान थे । इनके सिवा अन्य भी शेष राजा आए । वे आदर पाकर प्रतिज्ञा करने लगे, कि पाण्डवों के

साथ पृथक् पृथक् रूप से नहीं लड़ना चाहिए। जो कोई अकेला पाण्डवों से युद्ध करेगा या युद्ध करते हुए पाण्डव वीर को छोड़कर पीछे हट जावेगा। उसको पांच पातक और पांचों उपपातक लगेंगे। अब तो एक दूसरे की रक्षा करते हुए सबको इकट्ठे ही युद्ध करना चाहिए॥७-९॥

एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः ॥१०॥
मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन्परान्।

हे भारत! इस प्रकार वे सारे कौरव महारथी प्रतिज्ञा करके और मद्रराज शल्य को सेनापति बनाकर शत्रुओं पर बड़ी शीघ्रता से झपटे ॥१०॥

तथैव पाण्डवा राजन्व्यूह्य सैन्यं महारणे ॥११॥
अभ्ययुः कौरवान् राजन्योत्स्यमानाः समन्ततः।

हे राजन्! इसी तरह महायुद्ध में पाण्डवों ने भी अपना व्यूह बनाया और वे सब ओर से युद्ध करते हुए कौरवों पर वेग के साथ दौड़े ॥११॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ॥१२॥
समुद्धूतार्णवाकारमुद्भूतरथकुञ्जरम्।

हे भरतश्रेष्ठ! रथ हाथियों से परिपूर्ण पाण्डव दल-उछलते हुए समुद्र के समान ध्वनि और उद्धत समुद्र के तुल्य आकार धारी था ॥१२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

द्रोणस्य चैव भीष्मस्य राधेयस्य च मे श्रुतम् ॥१३॥

पातनं शंस मे भूयः शल्यस्याथ सुतस्य मे ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मैंने द्रोण भीष्म, और राधा पुत्र कर्ण का पतन तो सुन लिया अब तुम मुझे मद्रेश्वर शल्य और मेरे पुत्र राजा दुर्योधन के पतन की कहानी सुनाओ ॥१३॥

कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन सञ्जय ॥१४॥

भीमेन च महाबाहुः पुत्रो दुर्योधनो मम ।

हे सञ्जय ! धर्मराज ने शल्य को किस तरह मार गिराया तथा महाबाहु भीम ने मेरे पुत्र दुर्योधन को किस तरह मारा यह सब कुछ मुझे बताओ ॥१४॥

सञ्जय उवाच—

क्षयं मनुष्यदेहानां तथा नागाश्वसंक्षयम् ॥१५॥

शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा संग्रामं शंसतो मम ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अब तुम हाथी अश्व और मनुष्यों का रण में, जिस तरह विनाश हुआ-मैं उस संग्राम को सुनाता हूं तुम ध्यान से सुनो ॥१५॥

आशा बलवती राजन्पुत्राणां तेऽभवत्तदा ॥१६॥

हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते ।

शल्यः पार्थान्रणे सर्वान्निहनिष्यति मारिष ॥१७॥

हे आर्य गुणसम्पन्न ! राजन् ! यद्यपि द्रोण, भीष्म और सूतपुत्र कर्ण मारे जाचुके थे, तो भी एक बार तुम्हारे पुत्रों को यह बलवती आशा होगई थी कि राजा शल्य रण में सारे पाण्डवों को अवश्य मार लेगा ॥१६-१७॥

तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ।
मद्रराजं च समरे समाश्रित्य महारथम् ॥१८॥

हे भारत ! तुम्हारे पुत्रों ने उस आशा को मन में रखकर और कुछ आश्वासन प्राप्त करके महारथी राजा शल्य का रण में आश्रय ग्रहण किया। उस समय फिर तुम्हारे पुत्रों को आशा हुई कि अभी हमारा रक्षक विद्यमान है ॥१८॥

नाथवन्तं तदाऽऽत्मानममन्यन्त सुतास्तव ।
यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥१९॥
तदा तु तावकान् राजन्नाविवेश महद्भयम् ।
तान्समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान् ॥२०॥
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतो भद्रमृद्धिमत् ।

हे राजन् ! जब कर्ण मारे गए-तो पाण्डवों ने बहुत वेग से सिंह नाद किया उस समय तुम्हारे वीरों के हृदय में बहुत ही भय का सञ्चार हुआ। उन वीरों को महाप्रतापी मद्रराज शल्य ने आश्वासन दिया। हे महाराज ! फिर राजा शल्य ने सब ओर से कल्याण कारी ऐश्वर्यशाली व्यूह बनाया ॥१९-२०॥

प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान्मद्रराजः प्रतापवान् ॥२१॥
विधुन्वन्कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम् ।

अब महाप्रतापी मद्रराज शल्य, रण में वेगशाली युद्ध के भार सहन करने में समर्थ, विचित्र अपने धनुष को कंपाते हुए चल दिया ॥२१॥

रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः ॥२२॥
तस्य सूतो महाराज रथस्थोऽशोभयद्रथम् ।

हे महाराज ! महारथी शल्य, सिन्धु देशोत्पन्न अश्वों से युक्त रथ में बैठ गया। इसके पीछे सारथि भी रथ में बैठा, जिससे रथ की शोभा बहुत ही उत्तम होगई ॥२२॥

स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्षणः ॥२३॥
तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणां ते भयप्रणुत् ।

हे महाराज ! शत्रुनाशक वीर श्रेष्ठ शल्य उस रथ से युक्त होकर इस तरह स्थित हुआ जिससे तुम्हारे पुत्रों का भय नष्ट होगया ॥२३॥

प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ॥२४॥
मद्रकैः सहितो वीरः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः ।
सव्येऽभूत् कृतवर्मा च त्रिगर्त्तैः परिवारितः ॥२५॥
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह ।
अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत्काम्बोजैः परिवारितः ॥२६॥

दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुंगवैः ।
हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ॥२७॥
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः ।

जब यह चढ़ाई की जा रही था, तब उस सेना का मुख्य सब तरह सुसज्जित मद्रराज शल्य बना। इसके साथ दुर्जय मद्रदेश के बीर और कर्ण के पुत्र थे। इसके बांयो ओर कृतवर्मा, त्रिगर्तों को साथ लेकर चलरहा था। तथा शक और यवनों के साथ दांयी पार्श्व में गौतम गोत्री कृपाचार्य चलरहे थे। कम्बोज देशों के वीरों के साथ पीछे से अश्वत्थामा चला। कौरव वीरों से सुरक्षित होकर राजा दुर्योधन बीच में चलपड़ा। बहुत से अश्वों की सेना से युक्त होकर महारथी छली जुआरी शकुनि, सेना सहित चलदिया ॥२४-२७॥

पांडवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिन्दमाः ॥२८॥
त्रिधा भूता महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् ।

अरिमर्दन महाधनुर्धर पाण्डवों ने भी अपनी सेना का व्यूह बनाया। हे महाराज! उन्होंने अपनी सेना के तीन भाग किए और तुम्हारी सेना पर आक्रमण किया ॥२८॥

धृष्टद्युम्नः शिखंडी च सात्यकिश्च महारथः ॥२९॥
शल्यस्य वाहिनीं हन्तुमभिदुद्रुवुराहवे ।

हे राजन्! इस युद्ध में धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकि राजा शल्य की सेना का विनाश करनेके निमित्त वेगसे झपटे ॥२९॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकन संवृतः ॥३०॥
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः ।

इसके बाद भरतवंशश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने भी अपनी सेना से संयुक्त होकर राजा शल्य के वध करने की इच्छा से उस पर आक्रमण किया ॥३०॥

हार्दिक्यं च महेष्वासमर्जुनः शत्रुसैन्यहा ॥३१॥
संशप्तकगणांश्चैव वेगितोऽभिविदुद्रुवे ।
गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ॥३२॥
अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान्युधि ।

शत्रु सेना नाशक अर्जुन ने हृदिक पुत्र महाधनुर्धर कृतवर्मा पर आक्रमण किया तथा संशप्तक गणों पर भी वेग से अर्जुन ही झपटे। हे राजेन्द्र ! महारथी सोमक वीर और भीमसेन, गौतम गौत्रोत्पन्न कृपाचार्य पर झपटे। हे राजेन्द्र ! ये इस युद्ध में सारे शत्रुओं को मार गिराना चाहते थे ॥३१-३२॥

माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ॥३३॥
ससैन्यौ सह सैन्यातावुपतस्थतुराहवे ।

माद्री पुत्र नकुल सहदेव ने, महारथी शकुनि और उसके पुत्र उलूक पर आक्रमण किया। इस युद्ध में सेना से सुसज्जित शकुनि और उलूक पर सेना को साथ लेकर नकुल सहदेव ने आक्रमण किया ॥३३॥

तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे ॥३४॥
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।

हे राजन् ! इसी तरह दशों हजार तुम्हारे पक्ष के योद्धाओं ने रण में अनेक प्रकार के शस्त्र हाथ में लेकर क्रोध के साथ पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥३४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ॥३५॥
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे ।
सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु सञ्जय ॥३६॥
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद्बलम् ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! महाधनुर्धर भीष्म, द्रोणाचार्य और महारथी कर्ण मारे जा चुके थे, कौरव और पाण्डव दोनों के वीर बहुत थोड़े शेष रहगए थे । पाण्डव वीर आवेश में भरकर आक्रमण कररहे थे । उस समय हमारी और दूसरों की सेना में कौन २ वीर शेष रहे यह बताओ ॥३५-३६॥

सञ्जय उवाच—

यथा वयं परे राजन्युद्धाय समुपस्थिताः ॥३७॥
यावच्चासीद्बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे ।

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जिस तरह हम लोग और पाण्डव पक्ष के वीर युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए और जो रण में अवशिष्ट सेना रहगई-मैं तुमको बताता हूँ-तुम ध्यान से सुनो ॥३७॥

एकादशसहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥३८॥
दशदंतिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च ।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥३६॥
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तदा भवत् ।
रथानां षट् सहस्राणि षट् सहस्राश्च कुंजराः ॥४०॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत ।
एतद्बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ॥४१॥
एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! ग्यारह हजार रथ दशहजार सातसौ हाथी, दो लाख अश्वारोही और तीन करोड़ पैदल सैनिक इतनी संख्या में तुम्हारी (कौरवों) सेना थी। छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दश हजार अश्वारोही और एक करोड़ सेना पाण्डवों की रण में बची थी। हे भरतर्षभ ! ये सब इकट्ठे होकर युद्ध के लिए चलपड़े ॥३८-४१॥

एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराज वशे स्थिताः ॥४२॥
पाण्डवान्प्रत्युदीयुस्ते जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार सेना का विभाग करके मद्रराज के वश में होकर क्रोधातुर कौरव विजय की अभिलाषा से पाण्डवों पर झपटे ॥४२॥

तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः ॥४३॥
उपयाता नरव्याघ्राः पंचालाश्च यशस्विनः ।

इसी तरह शूरवीर पाण्डव भी रण में विजय की अभिलाषा से तथा नर व्याघ्र, यशस्वी पञ्चाल, वीर भी आगे बढ़े ॥४३॥

इमे ते च बलौघेन परस्परवधैषिणः ॥४४॥
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो ।

हे प्रभो ! ये नर व्याघ्र प्रातःकाल के सूर्य के उदय होते ही चल पड़े । ये दोनों सेना अपनी २ शक्ति लगाकर एक दूसरे के वध के लिए आगे बढ़े ॥४४॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि व्यूहनिर्माणे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

हे राजन् ! अब एक दूसरे को मारते हुए तुम्हारे पक्ष और पाण्डव पक्ष में भयानक घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥४५॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
दोनों सेनाओं के व्यूह निर्माण का आठवां
अध्याय समाप्त हुआ



नौवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम् ।

सृंजयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजेन्द्र ! अब कौरवों का देवासुर संग्राम के तुल्य भीषण भयानक घोर युद्ध होने लगा ॥१॥

नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः ।

वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम् ॥२॥

नर, रथ, गज समूह और सहस्रों अश्वारोही और अश्व, परस्पर भिड़ गए ॥२॥

गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान् ।

अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले ॥३॥

भयानक आकार धारी गजों के आक्रमण करने पर वर्षाकाल में आकाश में मेघ ध्वनि के तुल्य, शब्द सुनाई देने लगा ॥३॥

नागैरभ्याहताः केचित्सरथा रथिनोऽपतन् ।

व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः ॥४॥

गजों से मारे हुए बहुत से रथी रथों सहित गिर गए। इन मदोत्कट हाथियों से भगाए हुए वीर रण में भागने लगे ॥४॥

हयौघान्पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः ।
शरैः संप्रेषयामासुः परलोकाय भारत ॥५॥

हे भारत ! अश्व समूह पादरक्षक, और बड़े शिक्षित रथियों को मार २ कर परलोक के लिए भेजने लगे ॥५॥

सादिनः शिक्षिता राजन्परिवार्य महारथान् ।
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन्प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा ॥६॥

हे राजन्! युद्ध विद्या में शिक्षित, अश्वारोही वीर बड़े २ महारथियों को घेर कर रण में घूमने लगे। जो प्रास शक्ति और ऋष्टि नामक शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे ॥६॥

धन्विनः पुरुषाः केचित्परिवार्य महारथान् ।
एकं बहव आसाद्य प्रययुर्यमसादनम् ॥७॥

धनुषधारी बहुत से वीरों ने बहुत से महारथियों को घेर लिया। कहीं पर किसी एक महारथी को घेर कर ये वीर यमलोक पहुंचाने लगे ॥७॥

नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः ।
सान्तरा योधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम् ॥८॥

महारथियों ने बड़े २ हाथी और रथों को घेर लिया। कहीं पर बीच में घुसकर युद्ध करने वाले किसी भागते हुए महारथी को हाथियों ने मार डाला ॥८॥

तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरंतं शरान् बहून् ।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः ॥९॥

हे महाराज ! अब कोई रथी क्रोधातुर होकर बाणवर्षा करने लगा। उस वीर को हाथियों ने सब ओर से घेरकर मारगिराया ॥९॥

नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे।

शक्तितोमरनाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत ॥१०॥

इस रण में हाथी पर हाथी और रथी पर रथी ने आक्रमण किया। हे भारत ! बहुत से महारथी वीर, शक्ति, तोमर, और नाराचों से एक दूसरे को मारने लगे ॥१०॥

पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः।

रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥११॥

रथ, हाथी और अश्व पैदल सैनिकों को कुचलते हुए रण के मध्य में महान् व्याकुलता मचाने लगे ॥११॥

हयाश्च पर्यधावंत चामरैरुपशोभिताः।

हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥१२॥

ग्रीवा के बालों से सुशोभित, अश्व पृथिवी को निगलते हुए से दौड़ने लगे जैसे हिमालय की तलेटो में हंस उड़ रहे हों ॥१२॥

तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशाम्पते।

अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥१३॥

हे विशाम्पते ! उन अश्वों के खुरों से क्षत विक्षत भूमि इस तरह सुशोभित होने लगी, जैसे नख क्षतों से क्षत विक्षत नारी सुशोभित होती है ॥१३॥

वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥१४॥
वादित्राणां च घोषेण शंखानां निनदेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥१५॥

हे भारत ! अश्वों के खुर के शब्द रथ नेमि की ध्वनि पैदल सैनिकों के शब्द गजों की चिघाड़ बाजों के घोष और शङ्खों के निनाद से भूमि इस तरह शब्दायमान हुई जैसे प्रलयकाल मचने वाला हो ॥१४-१५॥

धनुषां कूजमानानां शस्त्रौघानां च दीप्यताम् ।
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किंचन ॥१६॥

हे राजन ! इस समय धनुष की टङ्कार शस्त्र समूह की दीप्ति तथा कवचों की चमक के सिवा कुछभी दिखाई नहीं देता था॥१६॥

बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१७॥

हाथी के सूंड के समान उत्तम वीरों की बहुत सी कटी हुई भुजाएँ रणभूमि में तड़फड़ाती दौड़ती और बड़ा वेग करती थी ।१७॥

शिरसां च महाराज पततां धरणीतले ।
च्युतानामिव तालेभ्यस्तालानां श्रूयते स्वनः ॥१८॥

हे महाराज ! रणभूमि में गिरते हुए शिरों की ध्वनि ऐसी सुनी जाती थी जैसे ताल वृक्षों से गिरते हुए ताल के फलों की ध्वनि होती है ॥१८॥

शिरोभिःपतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुंधरा

तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत ॥१६॥

हे भारत ! रुधिर में भीगे हुए मस्तकों से व्याप्त भूमि उस समय सुनहरी कमलों से भरी सी दिखाई देती है ॥१६॥

उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः ।

व्यभ्राजत मही राजन्पुण्डरीकैरिवावृता ॥२०॥

हे राजन् ! बदली आंखों वाले, प्राण विहीन क्षत विक्षत मस्तकों से व्याप्त भूमि कमलों से भरी सी प्रतीत होती थी ॥२०॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः ।

पतितैर्भाति राजेन्द्र महाशक्रध्वजैरिव ॥२१॥

हे राजेन्द्र ! बहुत मूल वाले केयूर नामक आभूषण से युक्त चन्दन चर्चित, रणभूमि में पड़ी हुई इन्द्र की ध्वजा सी दिखाई देरही थी ॥२१॥

ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे ।

हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद्रणांगणम् ॥२२॥

इसी तरह नरेन्द्रों की कटी हुई हाथी की सूंड के सदृश रण में पड़ी हुई जंघाओं से भी रणाङ्गण व्याप्त हो गया ॥२२॥

कबन्धशतसंकीर्णं छत्रचामरसंकुलम् ।

सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा ॥२३॥

सैंकड़ों कवचों से व्याप्त छत्र चामरों से परिपूर्ण, सेना वन पुष्पों से व्याप्त वन सा प्रतीत होता था ॥२३॥

तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् ।
दृश्यन्ते रुधिराक्तांगाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥२४॥

हे महाराज ! उस समय रणभूमि में निर्भीक घूमते हुए रुधिर से क्लिन्न योधा, पुष्पों से भरे हुए किंशुक (ढाक) वृक्ष से दिखाई देते थे ॥२४॥

मातंगाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः ।
पतंतस्तत्रतत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥२५॥

बाण, तोमर आदि शस्त्रों से पीड़ित, हाथी रणस्थल में जहां तहां पड़े हुए छिन्न मेघ से प्रतीत होते थे ॥२५॥

गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः ।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव ॥२६॥

हे महाराज ! महावीरों के आघातों से आहत हुई गज सेना के भाग जाने से दिशा ऐसी स्वच्छ होगई-जैसे वायु से बादल उड़ा देने पर स्वच्छ हो जाते हैं ॥२६॥

ते गजा घनसंकाशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
वज्रनुन्ना इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥२७॥

ये मेघ सदृश हाथी शस्त्रों से आहत होकर सब ओर रणभूमि में इस तरह पड़े दिखाई देते थे, जैसे वज्र से छिन्न भिन्न पर्वत प्रलयकाल में पड़े हों ॥२७॥

हयानां सादिभिः सार्धं पतितानां महीतले ।
राशयः स्म प्रदृश्यन्ते गिरिमात्रास्ततस्ततः ॥२८॥

अश्वारोहियों के साथ पृथिवी में इधर उधर पड़े हुए अश्वों के समूह पर्वताकार से ज्ञात होते थे ॥२८॥

संजज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी ।
शोणितोदा रथावर्ता ध्वजवृक्षाऽस्थिशर्करा ॥२९॥
भुजनक्रा धनुःस्रोता हस्तिशैला हयोपला ।
मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ॥३०॥
कवचोष्णीपसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा ।
चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवेणुदंडकावृता ॥३१॥
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धनी ।
प्रावर्त्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥३२॥

हे राजन ! इस समय रणभूमि में एक नदी वह चली जो परलोक रूपी समुद्र को जा रही थी । उसमें रक्त का जल, रथों के आवर्त, ध्वजाओं के वृक्ष, और अस्थियों के कंकड़ थे वहां वीरों की भुजा नक्रो के समान पड़ी थी । उसमें धनुषों के स्रोत, हाथियों के पर्वत और अश्वों के पत्थर थे । जिसमें मेद मज्जा की कीचड़ छत्रों के हंस और गदा की नौका थी । कवच और उष्णीष (पगड़ी) रूपी जल जन्तु तथा पताका रूपी सुन्दर वृक्ष थे । रथों

के चक्र चक्वों के जोड़े और रथ के त्रिवेणु और दण्डे मत्स्य आदि थे। इस नदी को देखकर शूरवीरों को उत्साह और कायरों को भय होता था। यह कुरु सृञ्जयों के रक्त से प्रवृत्त हुई नदी वह चली ॥२६-३२॥

तां नदीं परलोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् ।
तेरुर्वाहननौभिस्ते शूराः परिघबाहवः ॥३३॥

परलोक में वह कर जाने वाली अत्यन्त भीषण, इस नदी को परिघ भुजाधारी शूरवीरों ने अपने वाहन रूपी नौकाओं से जैसे तैसे पार कर गए ॥३३॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
चतुरंगक्षये घोरे पूर्वदेवासुरोपमे ॥३४॥
व्याक्रोशन्बान्धवानन्ये तत्र तत्र परन्तप ।
क्रोशद्भिर्दयितैरन्ये भयार्ता न निवर्तिरे ॥३५॥

हे विशाम्पते ! जब युद्ध मर्यादा हीन होकर चलरहा था, चतुरङ्गिणी सेनाका विध्वंस हो रहा था, युद्ध देवासुर संग्राम की भांति, घोर रूप में प्रवृत्त था, उस समय बहुत से वीर अपने २ बान्धवों को पुकारने लगे। हे परन्तप ! यद्यपि अपने प्रिय पुत्रादि चिल्ला रहे थे, परन्तु बहुत से मनुष्य तो भयातुर हुए लौटते भी नहीं थे ॥३४-३५॥

निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने भयानके ।
अर्जुनो भीमसेनश्च मोहयाञ्चक्रतुः परान् ॥३६॥

हे राजन! जब भयानक मर्यादा हीन युद्ध चल रहा था तब अर्जुन और भीमसेन शत्रुओं को मोहित करने लगे ॥३६॥

सा वध्यमाना महती सेना तव नराधिप ।

अमुह्यत्तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥३७॥

हे नराधिप! शत्रु द्वारा आहत की हुई कौरव सेना जहां तहां इस तरह मोहित होगई जैसे मद के वश में स्त्री मोहित होती है ॥३७॥

मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधन यौ ।

दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादांश्च चक्रतुः ॥३८॥

भीमसेन और अर्जुन उस सेना को मोहित करके शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥३८॥

श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।

धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥३९॥

इस महा गर्जना को सुनकर धृष्टद्युम्न और शिखण्डी धर्मराज को आगे करके मद्रराज पर वेग से झपटे ॥३९॥

तत्राश्चर्यमपश्याम घोररूपं विशाम्पते ।

शल्येन संगताः शूरा यदयुद्ध्यन्त भागशः ॥४०॥

हे विशाम्पते! इस समय एक बड़ा भारी घोर आश्चर्य हुआ, कि, जो अकेले राजा शल्य से बहुत से पाण्डव वीर एक दम लड़ने लगे ॥४०॥

माद्रीपुत्रौ तु रभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ परन्तप ॥४१॥

हे परन्तप ! माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव बड़े वेग शाली, अस्त्र विद्या में कुशल और युद्ध दुर्मद थे । वे मद्रराज शल्य के जीत लेने के लिए बड़े वेग से झपटे ॥४१॥

ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥४२॥

हे भरतर्षभ ! विजयोन्मत्त पाण्डवों द्वारा छोड़े हुए बाणों से पीड़ित, तुम्हारी सेना युद्ध से विमुख हो पड़ी ॥४२॥

वध्यमाना च : सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव ।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना शरवृष्टिभिः ॥४३॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र यह सारा दृश्य देख रहे थे और तुम्हारी सेना आहत की जारही थी। बाणबर्षा से उत्पीड़ित की हुई तुम्हारी सेना अन्त में भाग चली ॥४३॥

हाहाकारो महान् जज्ञे योधानां तत्र भारत ।
तिष्ठतिष्ठेति चाप्यासीद्द्रावितानां महात्मनाम् ॥४४॥

हे भारत ! योद्धाओं का महान् हाहाकार होने लगा । भगाए हुए वीरों के पीछे भी ठहरो ठहरो की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी ॥४४॥

क्षत्रियाणां सहान्योन्यं संयुगे जयमिच्छताम् ।
प्राद्रवन्नेव संभग्नाः पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥४५॥

इस युद्ध में परस्पर टकरा कर अपनी २ विजय के अभिलाषी क्षत्रिय वीरों में युद्ध होने लगा। अब पाण्डवों के वीरों से आहत होकर तुम्हारी सेना के वीर भाग खड़े हुए ॥४५॥

त्यक्त्वा युद्धे प्रियान्पुत्रान् भ्रातॄनथ पितामहान् ।
मातुलान्भागिनेयांश्च वयस्यानपि भारत ॥४६॥

हे भारत! कौरव वीर इस युद्ध में प्रियपुत्र भ्राता, पितामह, मातुल, भागिनेय, और मित्रों को छोड़ २ कर भाग चले ॥४६॥

हयान् द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समन्ततः ।
आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते० शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे नवमोऽध्यायः

हे भरतर्षभ! इस समय तो तुम्हारे वीरों को अपने प्राण बचाने की सूझ पड़रही थी। वे अश्व हाथी आदि वाहनों को वेग से दौड़ाते हुए भाग निकले ॥४७॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में घोर युद्ध के वर्णन का नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



दशवां अध्याय

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान् ।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान्महाजवान् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! महाप्रतापी मद्रराज शल्य ने जब अपनी सेना को भागती देखा-तो अपने सारथि से कहा—तुम शीघ्र वेगशाली अश्वों को हांको ॥१॥

एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥२॥

यह देखो ? पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर सन्मुख खड़े हैं, जिन पर श्वेत छत्र सुशोभित है ॥२॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम् ।
न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि ॥३॥

हे सारथे ! तुम मुझे उसके सन्मुख लेचलो और मेरे बल का चमत्कार देखो । धर्मराज मेरे सन्मुख युद्ध में नहीं ठहर सकता है ॥३॥

एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः ।
यत्र राजा सत्यसन्धो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥४॥

राजा शल्य के इतना कहने पर मद्रराज का सारथि, वहां चलदिया जहां पर सत्य प्रतिज्ञाधारी, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर थे ॥४॥

प्रापतत्तच्च सहसा पाण्डवानां महद्बलम् ।

दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥५॥

इसी समय पाण्डवों की विशाल सेना वहां आ झुकी। परन्तु राजा शल्य ने उसे इस तरह रोक दिया, जैसे समुद्र के वेग को वेला रोक देती है ॥५॥

पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष ।

व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिंधोर्वेग इवाचलम् ॥६॥

हे आर्य ! इस युद्ध में पाण्डवों की सेना का समूह भी राजा शल्य के सन्मुख इस तरह डटा रहा, जिस तरह नदी के वेग में पर्वत डटा रहता है ॥६॥

मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम् ।

कुरवः संन्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥७॥

जब कौरव वीरों ने राजा शल्य को युद्ध में वीरता के साथ डटा हुआ देखा-तो वे मृत्यु की परवाह छोड़कर युद्ध के लिए लौट पड़े ॥७॥

तेषु राजन्निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः ।

प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ॥८॥

हे राजन् ! सेना का व्यूह बनाकर अपने २ स्थान पर कौरव वीरों के लौटने पर रक्त के जल से परिपूर्ण, महा भयानक युद्ध होने लगा ॥८॥

समार्च्छच्चित्रसेनं तु नकुलो युद्धदुर्मदः।
तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ॥९॥
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ।

युद्ध दुर्मद, नकुल ने चित्रसेन पर आक्रमण किया। ये दोनों परस्पर विचित्र धनुष धारण करके इस तरह युद्ध करने लगे, जैसे वर्षाकारी दक्षिण और उत्तर के मेघ परस्पर टकरा रहे हों ॥९॥

शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ॥१०॥
नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च।

ये दोनों चित्रसेन और नकुल रण में परस्पर बाण रूपी जल से एक दूसरे को सींचने लगे इन दोनों के बाण छोड़ने के मध्य के अन्तर को कोई भी नहीं देख पाता था ॥१०॥

उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ ॥११॥
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ।

ये दोनों ही अस्त्रविद्या में कुशल बलवान् और रथ युद्ध में विशारद थे। एक दूसरे के वध के प्रयत्न में संलग्न और परस्पर त्रुटि के देखने की घात में आसक्त थे ॥११॥

चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥१२॥
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद्धनुः।

हे महाराज! चित्रसेन ने अपने विष में बुझे हुए तीक्ष्ण भल्ल-संज्ञक बाण से नकुल की मुट्ठी पर से धनुष को काट डाला ॥१२॥

अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥१३॥
त्रिभिः शरैरसम्भ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत् ।

जब नकुल का धनुप कट गया-तो सुवर्ण के मूल वाले शिला पर तीक्ष्ण किए हुए तीन बाणों से बिना किसी त्वरा के धैर्य-पूर्वक चित्रसेन ने, नकुल के ललाट में प्रहार किया ॥१३॥

हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ॥१४॥
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत् ।

इसने तीक्ष्ण बाणों से नकुल के अश्वों को मार गिराया और ध्वजा तथा सारथि के भी तीन २ बाण मारे ॥१४॥

स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः ॥१५॥
नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ।

हे राजन् ! शत्रु की भुजा से निकले हुए ललाट स्थित तीन बाणों से नकुल, तीन शिखर वाले पर्वत के तुल्य सुशोभित होने लगा ॥१५॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ॥१६॥
रथादवातरद्वीरः शैलाग्रादिव केसरी ।

जब नकुल का धनुष कट गया और वह रथ विहीन होगया तो वह वीर ढाल और तलवार लेकर पर्वत के शिखर से सिंह की भांति रथ से नीचे उतर पड़ा ॥१६॥

पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत् ॥१७॥
नकुलोऽप्यग्रसत्तां वै चर्मणा लघुविक्रमः ।

जब वह पैदल आगे बढ़ा। तो उसपर बाण वर्षा होने लगी, परन्तु स्फूर्तिमान् (फुर्तीले) नकुल ने उस सारी बाण वर्षा को अपनी ढाल पर रोक लिया ॥१७॥

चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः ॥१८॥
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

विचित्रता के साथ युद्ध कर्ता, नहीं थकने वाला महाबाहु नकुल, सारी सेना के देखते २ चित्रसेन के रथ पर जा चढ़ा।

सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ॥१९॥
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः ।
स पपात रथोपस्थे दिवाकरसमद्युतिः ॥२०॥

इस समय पाण्डुपुत्र नकुल ने, कुण्डल धारी, सुन्दर नासिका से युक्त, मुकुट से सुशोभित, बड़ी लम्बी चौड़ी आंखों वाले चित्रसेन के मस्तक को शरीर से काट कर पृथक कर दिया अब सूर्यके समान तेजस्वी चित्रसेन रथ के मध्य में गिर गया ॥१९-२०॥

चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥२१॥

जब पाण्डव महारथियों ने चित्रसेन के टुकड़े देखे-तो वे साधुवाद के शब्द कहकर बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे ॥२१॥

विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तो विविधान्शरान् ॥२२॥
ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम् ।
जिघांसंतौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन्महावने ॥२३॥

हे राजन् ! कर्ण के दो महारथी पुत्रों ने अपने भ्राता चित्रसेन के टुकड़े देखे-तो सुषेण और सत्यसेन, अनेक भांति के बाण छोड़ते हुए बड़े वेग से रथिश्रेष्ठ नकुल पर इस तरह टूट पड़े, जैसे हाथी के मारने को दो बघेरे झपटे हों ॥२२-२३॥

तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् ।
शरौघान्सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा ॥२४॥

इन दोनों बड़े तेजस्वी वीरोंने इस महारथी नकुल पर जलधारा को मेघ के सदृश बाणधारा बरसाते हुए बड़े वेग से आक्रमण किया ॥ ४॥

स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान् ॥२५॥
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः ।

यद्यपि पाण्डुपुत्र नकुल का शरीर शरों से जर्जरित हो गया। तो भी वह वेगवान् वीर रथ पर चढ़कर और दूसरा धनुष लेकर क्रोध में भरा हुआ, काल की भांति रण में खड़ा होगया ॥२५॥

तस्य तौ भ्रातरौ राजन्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२६॥
रथं विशकली कर्तुं समारब्धौ विशाम्पते ।

ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे ॥२७॥
जघान निशितैर्बाणैः सत्यसेनस्य वाजिनः ।

हे राजन ! अब चित्रसेन के भाइयों ने अपने नतपर्व वाले बाणों से फिर नकुल के रथ के टुकड़े कर देने चाहे। हे विशाम्पते इस समय नकुल हंसने लगा और उसने इस घोर युद्ध में चार तीक्ष्ण बाण छोड़े, जिससे उसने सत्यसेन के चारों घोड़े मार लिए ॥२६-२७॥

ततः सन्धाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम् ॥२८॥
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः ।

हे राजेन्द्र ! इसके बाद पाण्डुपुत्र नकुल ने, शिलापर तीक्ष्ण किया हुआ सुवर्णमूलधारी, बाण चढ़ाया और उससे सत्यसेन के धनुष को काट गिराया ॥२८॥

अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ॥२९॥
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम् ।

अब वह दूसरे रथपर चढ़कर बैठ गया और उसने दूसरा धनुष भी उठा लिया। इस तरह सत्यसेन और सुषेण-इन दोनों ने मिल कर एकदम नकुल पर आक्रमण किया ॥२९॥

अविध्यत्तावसम्भ्रान्तौ माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥३०॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि ।

हे महाराज ! ये दोनों रण में कुछ भी नहीं सटपटा रहे थे, तो भी महाप्रतापी माद्री पुत्र नकुल ने उनको दो दो बाणों से रणाङ्गण में बींध डाला ॥२०॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद्धनुः ॥२१॥
चिच्छेद प्रहसन्युद्धे क्षुरप्रेण महारथः ।

अब महारथी सुषेण भी कुपित हो उठा और उसने नकुल के विशाल धनुष को हंसते २ इस युद्ध में अपने क्षुरोपम तीक्ष्ण बाण से काट गिराया ॥२१॥

अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः ॥२२॥
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।

अपने धनुष के कटते ही नकुल क्रोध से उबल उठा और उसने दूसरा धनुष उठाया। इसने सुषेण को पांच बाणों से बींध कर एक बाण से उसकी ध्वजा काट डाली ॥२२॥

सत्यसेनस्य स धनुर्हस्तावापञ्च मारिष ॥२३॥
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ।

हे आर्य ! नकुल ने बड़े वेग से इस युद्ध में सत्यसेन के धनुष और उसके हस्तकवच को काट दिया। उसको देखकर लोग चिल्लाने लगे ॥२३॥

अथान्यद्धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम् ॥२४॥
शरैः सञ्छादयामास समन्तात्पाण्डुनन्दनम् ।

अब उसने वेग नाशक युद्ध भार सहन में समर्थ दूसरा धनुष उठाया और उससे बाण छोड़ कर सब ओर से पाण्डु नन्दन, नकुल को आच्छादित कर दिया ॥३४॥

सन्निवार्य तु तान्बाणान्नकुलः परवीरहा ॥३५॥
सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ।

शत्रु वीर नाशक, नकुल ने उन बाणों को रोक कर सत्यसेन और सुषेण को दो २ बाणों से वींध दिया ॥३५॥

तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥३६॥
सारथिं चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः ।

हे राजेन्द्र ! अब सत्यसेन और सुषेण ने सीधे जाने वाले बाण, पृथक् पृथक् नकुल पर छोड़े और कुछ तीक्ष्ण बाण छोड़ कर उसके सारथि को वींध दिया ॥३६॥

सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा ॥३७॥
पृथक् शराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान् ।

सत्यसेन बड़ा सिद्ध-हस्त और प्रतापी था उसने पृथक् २ बाण छोड़कर नकुल के रथ की ईषा और धनुष को काट दिया ॥३७॥

स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशत् ॥३८॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ।
लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम् ॥३९॥
समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे ।

सा तस्य हृदयं संख्ये विभेद च तथा नृप ॥४०॥
स पपात रथाद्भूमिं गतसत्त्वोऽल्पचेतनः ।

उस महारथी ने रथ में स्थित हुए रथशक्ति नामक शस्त्र को उठाया जो स्वर्ण दण्ड से विभूषित, नुकीली, तेल से चमकीली थी। हे विभो ! महाविष पर रण करने वाली नागन के समान यह शक्ति चाट जाने वाली थी। हे नृप ! इसको उठाकर नकुल ने, इस रण में बड़े वेग से सत्यसेन पर फैंका। उस शक्ति ने रण-क्षेत्र में उसका हृदय बींध डाला। इस शक्ति के लगते ही उसके प्राण निकल गए और वह प्राण विहीन होकर रथ से नीचे भूमि में गिर पड़ा ॥३८-४०॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥४१॥
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम् ।

अपने भ्राता सत्यसेन को मृतक देखकर सुषेण क्रोध से जल उठा। उसने पैदल पाण्डु नन्दन नकुल पर वेग से बाणवर्षा करना आरम्भ किया ॥४१॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्ध्वजं छित्वा च पञ्चभिः ॥४२॥
त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह ।

इस कर्ण पुत्र सुषेण ने चार बाणों से चार अश्व, और पांचवें बाण से उसकी ध्वजा को काट दिया। उसने तीन बाणों से सारथि को मार कर बड़ी गर्जना की ॥४२॥

नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम् ॥४३॥
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन्पितरं रणे ।

नकुल को रथ हीन देखकर द्रौपदी पुत्र सुतसोम, अपने पिता के भ्राता की रक्षा के निमित्त बड़े वेग से झपटा ॥४३॥

ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ॥४४॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी ।
अन्यत्कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ॥४५॥

अब नकुल सुतसोम के रथ पर चढ़गया। वहां वह पर्वत स्थित सिंह की भांति सुशोभित होने लगा। नकुल ने, दूसरा धनुष उठाया और वह सुषेण से युद्ध करने लगा ॥४४-४५॥

तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् ।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥४६॥

इन दोनों महारथियों ने परस्पर बाणवर्षा करके एक दूसरे के वध में प्रयत्न करना आरम्भ किया ॥४६॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ।
सुतसोमं तु विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥४७॥

सुषेण ने क्रोधातुर होकर पाण्डव पुत्र नकुल पर तीन बाण मारे। और सुतसोम के बाहु और हृदय में बीस बाणों का प्रहार किया ॥४६-४७॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान् ॥४८॥

हे महाराज ! शत्रु वीर नाशक, नकुल क्रोध में भर रहा था, उस महापराक्रमी ने, अपने बाणों से सारी दिशाएँ आच्छादित कर दी ॥४८॥

ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम् ।
सुवेगवन्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे ॥४९॥

उसने तीक्ष्ण नोक वाले अत्यन्त वेगशाली चमकीले अर्धचन्द्र बाण को ग्रहण करके उसे रण में कर्ण पुत्र सुषेण पर छोड़ा ॥४९॥

तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥५०॥

हे नृप सत्तम ! इस बाण से उसने उसका शिर शरीर से पृथक् काट गिराया । सारी सेना खड़ी देखती रही यह बड़ी ही अद्भुत बात हुई ॥५०॥

स हतः प्रापतद्राजन्नकुलेन महात्मना ।
नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥५०॥

हे राजन् ! महावीर नकुल द्वारा आहत होकर नदी के वेग से टूटे हुए तटोत्पन्न महान वृक्ष की भांति सुषेण रणभूमि में गिर गया ॥५१॥

कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् ।
प्रदुद्राव भयात्सेना तावकी भरतर्षभ ॥५२॥

तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान् ।
अपालयद्रणे शूरः सेनापतिररिन्दमः ॥५३॥

हे भरतर्षभ ! कर्ण पुत्र सुषेण के वध और नकुल के पराक्रम को देखकर तुम्हारी सेना भय से व्याकुल होकर भाग निकली ॥५२॥

हे महाराज ! भागती हुई उस सेना को महाप्रतापी, अरिमर्दन सेनापति मद्रराज शल्य ने रण में रक्षा की ॥५३॥

विभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुः शब्दं च दारुणम् ॥५४॥

हे महाराज ! उसने सेना को रोक दिया और आप निर्भीक भाव से स्थित होगए। उसने अत्यन्त जोर से सिंहनाद करके दारुण धनुष की टङ्कार की ॥५४॥

तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना ।
प्रत्युद्ययुश्च तांस्ते तु समन्ताद्विगतव्यथाः ॥५५॥

हे राजन् ! दृढ़ धनुष धारी राजा शल्य द्वारा सुरक्षित हुए तुम्हारे सैनिक व्यथा हीन होगए और वे सब ओर से फिर युद्ध के लिए लौट पड़े ॥५५॥

मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः ।
स्थिता राजन्महा सेना योद्धुकामा समन्ततः ॥५६॥

हे राजन् ! महाधनुर्धर मद्रराज शल्य को घेर कर युद्ध की अभिलाषा से सारी कौरव सेना सब ओर स्थित होगई ॥५६॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पांडवौ ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिन्दमम् ॥५७॥
परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
बाणशंखरवांस्तीव्रान् क्ष्वेडाश्च विविधा दधुः ॥५८॥

सात्यकि भीमसेन, पाण्डु पुत्र नकुल सहदेव लज्जा शील अरिमर्दन राजायुधिष्ठिर को आगे करके और उसे इस रण में घेरकर पाण्डव वीर सिंहनाद करने लगे। उन्होंने बाण आदि के तीव्र शब्द और अनेक प्रकार की गर्जना की ॥५७-५८॥

तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमंजसा ।
परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥५९॥

हे राजन्! इसी तरह तुम्हारे पक्षके वीरों ने भी बड़े वेग से मद्रपति शल्य का घेर लिया वे बड़े आवेश में भर कर युद्ध के लिए अग्रसर हुए ॥५९॥

ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम् ।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥६०॥

हे महराज! अब तुम्हारे पक्ष और पाण्डव पक्ष के वीरों को मृत्यु का भय नहीं था, इस से कायर लोगों को भय करने वाला युद्ध प्रवृत्त हुआ ६०॥

यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद्विशाम्पते ।
अभीतानां तथा राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥६१॥

हे विशाम्पते ! जिस तरह पूर्वकाल में देवासुर संग्राम हुआ था। हे राजन्! उसी तरह इन निर्भीक वीरों का यमराष्ट्र का बढ़ाने वाला युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥६१॥

ततः कपिध्वजो राजन्हत्वा संशप्तकान्रणे।
अभ्यद्रवत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः ॥६२॥

हे राजन् ! कपिध्वजा धारी अर्जुन ने रणाङ्गण में संशप्तकों को मार लिया। अब पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर ने उस सेना पर आक्रमण किया ॥६२॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शितान् शरान् ॥

इसी तरह भीमसेन आदि पाण्डव, धृष्टद्युम्न आदि पञ्चाल वीरों को आगे करके तीक्ष्ण बाण छोड़ते हुए उस कौरव सेना पर झंपटे ॥६३॥

पाण्डवैरवकीर्णानां संमोहः समजायत।
न च जज्ञुस्त्वनीकानि दिशो वा विदिशस्तथा ॥६४॥

जब उस सेना को पाण्डवों ने घेर लिया-तो कौरव मोहित से होगए। उस सेना को दिशा और विदिशा का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा ॥६४॥

आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्यमाणा समन्ततः ॥६५॥
कौरव्यावध्यत चमूः पाण्डुपुत्रैर्महारथैः।

पाण्डवों के फेंके हुए तीक्ष्ण बाणों से वह बिखर गई-उसके योद्धा मारे गए। यद्यपि सेनापति शल्य उसे सब ओर से रोक रहे थे। इस तरह महारथी पाण्डवों ने कौरव सेना का नाश कर दिया ॥६५॥

तथैव पाण्डवं सैन्यं शरै राजन्समन्ततः ॥६६॥
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः।

हे राजन! इसी तरह बाणों से कौरव वीरों ने सब ओर पाण्डव सेना मार गिराई। तुम्हारे पुत्रों ने सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में पाण्डव वीर मार लिए ॥६६॥

ते सेने भृश संतप्ते वध्यमाने परस्परम् ॥६७॥
व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव।

परस्पर मारी जाती हुई, अत्यन्त संतप्त सेना, इस प्रकार व्याकुल होगई-जैसे वर्षाऋतु में नदियाँ व्याकुल होजाती हैं ॥६७॥

आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद्भयम्।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तथा भूते महाहवे ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

हे राजेन्द्र! इस समय तुम्हारी सेना में तीव्र भय का सञ्चार होगया। इसी तरह इस घोर युद्ध में पाण्डवों को भी भय प्रतीत होने लगा ॥६८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में नकुल और कर्ण पुत्रों के युद्ध के वर्णन का दशवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

ग्यारवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तस्मिन्विलुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम् ।
द्रवमाणेषु योधेषु विद्रवत्सु च दन्तिषु ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब परस्पर सेना के वीर एक दूसरे को मारने लगे, तो योद्धा भागने और हाथी बिखरने लगे ॥१॥

कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे ।
निहतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा ॥२॥
प्रलये दारुणे घोरे संहारे सर्वदेहिनाम् ।
नानाशस्त्रसमावाये व्यतिषक्तरथद्विपे ॥३॥
हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्धने ।
गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु ॥४॥
प्राणादाने महाघोरे वर्त्तमाने दुरादरे ।
संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्द्धने ॥५॥
पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्निशितैः शरैः ।
तथैव तावका योधा जघ्नुः पाण्डवसैनिकान् ॥६॥

हे महाराज ! इस महा युद्ध में पैदल सैनिकों के चिल्लाने और गरजने तथा बहुत से अश्वों के मारे जाने पर सारे प्राणियों का घोर, दारुण विनाश होने लगा। इसमें अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र का व्यवहार प्रवृत्त हुआ। रथ और हाथी परस्पर टकरा गए युद्ध वीर हर्ष से नाच उठे और कातरों को भय उठ खड़ा हुआ। परस्पर वध के अभिलाषी, योद्धाओं के रण के आलोड़न करने पर प्राणों की बाजी लगाकर महा घोर युद्ध द्यूत प्रवृत्त हुआ। इस घोर संग्राम में यमराष्ट्र की वृद्धि होरही थी। अब पाण्डवों ने अपने तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारी सेना का विध्वंस कर डाला। इसी तरह तुम्हारी सेना के वीरों ने भी पाण्डव सैनिकों को मार गिराया ॥२-६॥

तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने युद्धे भीरुभयावहे।
पूर्वाह्णे चापि सम्प्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥७॥
लब्धलक्षाः परे राजन् रक्षितास्तु महात्मना।
अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥८॥

हे राजन् ! भीरु मनुष्यों के भयोत्पादक इस युद्ध के वर्तमान होने और सूर्य के उदय होने पर दिन के पूर्वभाग में महावीर धर्मराज से सुरक्षित होकर लक्ष्य बींधने में समर्थ पाण्डव वीर मृत्यु का ध्यान छोड़कर तुम्हारी सेना से युद्ध करने लगे ॥७-८॥

बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः।
कौरव्या सीदत्पृतना मृगीवाग्निसमाकुला ॥९॥

बलवान् उद्धत, लक्ष बींधने में समर्थ, प्रहार कुशल पाण्डवों द्वारा कौरव सेना अग्नि से व्याकुल मृगी की भांति, व्याकुल हो उठी ॥९॥

तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम् ।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात्पाण्डुसुतान्प्रति ॥१०॥

जब मद्रराज शल्य ने कीचड़ में फंसी हुई गौ के तुल्य अपनी सेना को पीड़ित देखा-तो वह उसका उद्धार करने के निमित्त पाण्डवों पर टूट पड़ा ॥१०॥

मद्रराजः सुसंक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः ॥११॥

मद्रराज शल्य अत्यन्त क्रोधातुर होगया और उसने उत्तम धनुप उठाया वह संग्राम में आततायी पाण्डवों पर झपटा ॥११॥

पाण्डवा अपि भूपाल समरे जितकाशिनः ।
मद्रराजं समासाद्य विभिदुर्निशितैः शरैः ॥१२॥

हे भूपाल ! पाण्डव भी, युद्ध में विजोन्मत्त हो रहे थे । वे भी मद्रेश्वर शल्य के सन्मुख पहुंचे और तीक्ष्ण बाणों से उसे बींधने लगे ॥१२॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महारथः ।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः ॥१३॥

अब महारथी मद्रराज शल्य भी अपने तीक्ष्ण बाणों से धर्मराज के देखते २ पाण्डव सेना का अर्दन करने लगा ॥१३॥

प्रादुरासन्निमित्तानि नानारूपाण्यनेकशः ।
चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता ॥१४॥

इस समय अनेक प्रकार के शकुन होनेलगे और पर्वतों के सहित पृथिवी कांप उठी ॥१४॥

सदण्डशूला दीप्ताग्रा दीर्यमाणाः समन्ततः ।
उल्का भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम् ॥१४॥

चमकीली नोक वाले दण्डशूल, सब ओर से विदीर्ण करते हुए बरसने, सूर्य मण्डल को फीका करती हुई उल्का आकाश से भूमि में गिरने लगी ॥१५॥

मृगाश्च महिषाश्चापि पक्षिणश्च विशाम्पते ।
अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप ॥१६॥

हे विशाम्पते ! मृग भैंसे पक्षी आदि जन्तुओं ने तुम्हारी सेना को बांयी ओर करके अपशकुन युक्त कर दिया ॥१६॥

भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेनसमन्वितौ ।
चरमं पाण्डुपुत्राणां पुरस्तात्सर्वभूभुजाम् ॥१७॥

हे राजन् ! शुक्र, मङ्गल और बुध के तारे सारे राजाओं के देखते २ पाण्डु पुत्रों के पीछे उदय को प्राप्त हुए, जो शुभ शकुन माने गए ॥१७॥

शस्त्राग्रेष्वभवज्ज्वाला नेत्राण्याहत्य वर्षती ।
शिरःस्वलीयन्त भृशं काकोलूकाश्च केतुषु ॥१८॥

कौरव सेना में शस्त्रों के अग्रभाग में इतनी चमक निकली कि सारे वीरों की आंखें चुंधिया गईं। शिर के ऊपर और ध्वजाओं पर काक तथा उलूक आकर बैठने लगे, जो अपशकुन थे ॥१८॥

ततस्तद्युद्धमत्युग्रमभवत्सङ्गचारिणाम् ।
तथा सर्वाण्यनीकानि सन्निपत्य जनाधिप ॥१९॥
अभ्ययुः कौरवा राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।

इन सारे वीरों का उग्रयुद्ध चलने लगा। हे जनाधिप! इसी तरह सारी सेना भी परस्पर टकरा गई। हे राजन्! अब कौरव वीर पाण्डवों की सेना पर झपटे ॥१९॥

शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक् ॥२०॥
अभ्यवर्षत धर्मात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
भीमसेनं शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥२१॥
द्रौपदेयांस्तथा सर्वान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नं च शैनेयं शिखण्डिनमथापि च ॥२२॥
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध स महाबलः ।
ततोऽसृजद्बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव ॥२३॥

हे महाराज! सहस्रनेत्र धारी इन्द्र के तुल्य बाणों की वर्षा करता हुआ, राजा शल्य भी धर्मात्मा कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर पर टूट पड़ा। उसने सुवर्ण मूलधारी शिला पर तीक्ष्ण किए गए बाणों से भीमसेन पर भी आक्रमण किया। इसी तरह माद्रीपुत्र

पाण्डवों पर द्रौपदी पुत्रों को भी जा दबाया। महावीर धृष्टद्युम्न, शिनि पौत्र सात्यकि और महारथी शिखण्डी, को भी महारथी शल्य ने दश बाणों से बींध दिया। ग्रीष्म के अन्त में वर्षाकाल के उपस्थित होने पर इन्द्र की भांति बाणवर्षा होने लगी ॥२०-२३॥

ततः प्रभद्रका राजन्सोमकाश्च सहस्रशः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः ॥२४॥

हे राजन! सहस्रों प्रभद्रक और सोमक वीर, शल्य के बाणों से आहत होकर गिर गए और गिरते जा रहे थे ॥२४॥

भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः ।
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतन् शराः ॥२५॥

जिस तरह भ्रमरों [मधुमक्खी] के झुण्ड और छोटी दल आकर गिरते हैं, तथा मेघसे बिजली युक्त जलधारा गिरती है उसी तरह शल्य के बाण गिरने लगे ॥२५॥

द्विरदास्तुरगाश्चार्त्ताः पत्तयः रथिनस्तथा ।
शल्यस्य बाणैरपतन्नभ्रमुर्न्यनदंस्तदा ॥२६॥

हाथी, अश्व, रथी और पैदल सैनिक बड़े ही आतुर हो गए ये सारे शल्य के बाणों से गिरने घूमने और चिल्लाने लगे ॥२६॥

आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च ।
प्राच्छादयदरीन्संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ॥२७॥

इस समय मूर्तिमान क्रोध और पुरुषार्थ-मद्रराज शल्य में घुस पड़े। काल से छोड़े हुए मृत्यु के समान रण में शल्य ने सारे शत्रुओं को आच्छादित कर दिया ॥२७॥

विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः ।
सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी ॥२८॥
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद्युधिष्ठिरम् ।

मद्रराज महाबली शल्य मेघ के तुल्य गर्जना और सिंहनाद करने लगा। शल्य द्वारा मारी हुई पाण्डवों की सेना अजातशत्रु कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर के समीप परित्राण के निमित्त पहुंची॥

तां सम्मर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः ॥२९॥
बाणवर्षेण महता युधिष्ठिरमताडयत् ।

इस घोर युद्ध में शीघ्र हाथ चलाने वाले राजा शल्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों से वहां भी इस पाण्डव सेना का विध्वंस कर दिया इसने बड़ी भारी बाण वर्षा करके राजा युधिष्ठिर पर प्रहार किया॥

तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः ॥३०॥
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महाद्विपमिवांकुशैः ।

जब राजा युधिष्ठिर ने पैदल और घुड़सवारों के साथ राजा शल्य को आगे बढ़ते देखा-तो उसे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे इस तरह रोका जैसे अंकुश से मदोन्मत्त हाथी को रोक दिया जाता है ॥३०॥

तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम् ॥३१॥
स निर्भिद्य महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम् ।

अब राजा शल्य ने उसपर विषधर सर्प के तुल्य घोर बाण छोड़ा वह अपने वेग से महात्मा धर्मराज को बींध कर वेग से पृथिवी में घुस गया ॥३१॥

ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः ॥३२॥
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः ।

अब भीमसेन क्रोधातुर हुए और उसने शल्य के सात और सहदेव ने पाँच और नकुल ने दश बाण मारे ॥३२॥

द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः ॥३३॥
अभ्यवर्षन्महाराज मेघा इव महीधरम् ।

हे महाराज ! द्रौपदी पुत्रों ने तो ऋतायन के पुत्र शत्रुमदन राजा शल्य पर बाणों की झड़ी पर्वत पर मेघ के समान बाँध दी ॥

ततो दृष्ट्वा वार्यमाणं शल्यं पार्थैः समन्ततः ॥३४॥
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम् ।

जब कृतवर्मा और कृपाचार्य ने सब ओर से घेरा हुआ मद्रराज शल्य देखा तो वे क्रोध में भर गए और वेग से दौड़े ॥३४॥

उलूकश्च महावीर्यः शकुनिश्चापि सौबलः ॥३५॥
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महाबलः ।
तव पुत्राश्च कार्त्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे ॥३६॥

महाबली उलूक और सुबल पुत्र शकुनि तथा महा पराक्रमी अश्वत्थामा भी धीरे से वहाँ पहुंचे । इसी तरह तुम्हारे शेष पुत्र भी सारे इकट्ठे होकर रण में शल्य की रक्षा कर रहे थे ॥

भीमसेनं त्रिभिर्विध्द्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः ।
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥३७॥

कृतवर्मा, अपने तीन बाणोंसे भीमसेन को बींध कर महान् बाण वर्षा से क्रोधातुर भीमसेन को रोकने लगा ॥३७॥

धृष्टद्युम्नं ततः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत् ।
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात् ॥३८॥

धृष्टद्युम्न भी क्रोध युक्त हो रहे थे; वे भी बाणों की झड़ी लगा कर कौरव वीरों को पीड़ित करने लगे। शकुनि ने द्रौपदी पुत्रोंपर और अश्वत्थामा ने नकुल सहदेव पर आक्रमण किया ॥३८॥

दुर्योधनो युधां श्रेष्ठ आहवे केशवार्जुनौ ।
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद्बली ॥३९॥

हे राजन् ! योद्धाओं में श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन ने इस घोर युद्ध में श्रीकृष्ण और अर्जुन पर आक्रमण किया। इस महाबली उग्र-तेजस्वी वीर ने बाणों से उनको आहत करना आरम्भ किया ॥३९॥

एवं द्वन्द्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह ।
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशाम्पते ॥४०॥

हे विशाम्पते ! इस समय जहां तहाँ तुम्हारी सेना के वीरोंका सैंकड़ों द्वन्द्वों में घोर और विचित्र युद्ध होने लगा ॥४०॥

ऋक्षवर्णान्जघानाश्वान्भोजो भीमस्य संयुगे ।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वात्पाण्डुनन्दनः ॥४०॥
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदापाणिरयुध्यत ।

भोजराज कृतवर्मा ने इस रण में भीमसेन के काले वर्ण के अश्वों को मार दिया। पाण्डु पुत्र भीमसेन उस अश्वहीन रथ से नीचे उतर पड़े। वह दण्ड को काल की तरह गदा को हाथ में लेकर युद्ध करने लगे ॥४१॥

प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वान्स मद्रराट् ॥४२॥
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनाऽवधीत् ।

सहदेव के देखते २ मद्रराज शल्य ने उसके अश्वों को मार गिराया। सहदेव ने भी अपनी तलवार से राजा शल्य के पुत्र का वध कर दिया ॥४२॥

गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥४३॥
असम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तो यत्नवान्यत्नवत्तरम् ।

इसके बाद गौत्तम गोत्रोत्पन्न बड़े सावधान प्रयत्न शील कृपाचार्य नेअत्यन्त सावधान प्रयत्न परायण धृष्टद्युम्नसे युद्ध करना आरम्भ किया ॥४३॥

द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ॥४४॥
अविद्ध्यदाचार्यसुतो नातिक्रुद्धो हसन्निव ।
पुनश्च भीमसेनस्य जघानाश्वांस्तथाऽऽहवे ॥४५॥

आचार्य पुत्र अश्वत्थामा ने हंसते २ विना किसी क्रोध के द्रौपदी पुत्रों को दश २ बाण मार कर घायल कर दिया। फिर इस ने इस रण में भीमसेन के अश्वमार दिए ॥४४-४५॥

सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं हताश्वः पाण्डुनन्दनः ।
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदां क्रुद्धो महाबलः ॥४६॥
पोथयामास तुरगान्रथञ्च कृतवर्मणः ।
कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात्तस्मादपाक्रमत् ॥४७॥

अश्वों के मारे जाने पर पाण्डव पुत्र भीमसेन फिर रथ से कूद पड़े । ये महाबली अपनी गदा को यम दण्ड को काल की तरह उठा कर युद्ध में प्रवृत्त हुए । इसने गदा से कृतवर्मा के अश्व और रथ का चूरा कर दिया । कृतवर्मा उस रथ से कूद कर वहाँ से भाग गए ॥४६-४७॥

शल्योऽपि राजन्संक्रुद्धो निघ्नन्सोमकपाण्डवान् ।
पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥४८॥

हे राजन्! शल्य भी क्रोध में भर रहे थे, वे भी सोमक और पाण्डव वीरों का विनाश कर रहे थे । वह फिर तीक्ष्ण बाण लेकर राजा युधिष्ठिर को पीड़ित करने लगा ॥४८॥

तस्य भीमो रणे क्रुद्धः सन्दश्य दशनच्छदम् ।
विनाशायाभिसन्धाय गदामादय वीर्यवान् ॥४९॥
यमदण्डप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्यताम् ।
गजवाजिमनुष्याणां देहान्तकरणीमति ॥५०॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव ।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयोमयीम् ॥५१॥

चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव ।
वसामेदोपदिग्धाङ्गीं जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥५२॥
पटुघण्टाशतरवां वासवीमशनीमिव ।
निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि ॥५३॥
त्रासनीं सर्वभूतानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम् ।
मनुष्यलोके विख्यातां गिरिशृङ्गविदारणीम् ॥५४॥
यया कैलासभवने महेश्वरसखम्बली ।
आह्वयामास युद्धाय भीमसेनो महाबलः ॥५५॥

इस घोर युद्ध में भीमसेन उसपर कुपित हुआ और उसपर ओष्ठ चबाने लगा। अब महाबली भीमसेन ने राजा शल्य के मारने का निश्चय करके यम दण्ड के तुल्य, काल रात्रि के समान उद्यत, गज, अश्व, और मनुष्यों को देह का अंत करने वाली सुवर्ण पत्र से मंढी हुई प्रज्वलित उल्का (मशाल) के समान देदीप्यमान छींके पर रखी रहने वाली सर्पिणी के सदृश भीषण, वज्रवत् दृढ़ लोह निर्मित, चन्दन अगर आदि से प्रलिप्त सुन्दर स्त्री के समान प्रिय, वसामेद आदि में सनी हुई यमराज की जिह्वा के सदृश, सैंकड़ों घण्टियों के शब्द से झण झणायित, इन्द्र की शनि के सदृश, भीषण कांचली रहित सर्प के समान आकार वाली हस्तिमद से लिप्त, सब प्राणियों को भयङ्कर अपनी सेना में हर्ष उत्पन्न करने वाली संसार में विख्यात

पर्वत की चोटियों को तोड़ देने में समर्थ अपनी गदा को सम्हाला। इसी गदा को लेकर महाबली भीमसेन ने कैलास महेश्वर के सखा कुबेर को युद्ध के लिए ललकारा था ॥४९-५५॥

यया मायामयान्दृप्तान्सुबहून्धनदालये ।

जघान गुह्यकान्क्रुद्धो नदन्पार्थो महाबलः ॥५६॥

महाबली कुन्ती पुत्र भीमसेन ने क्रोध में भरकर इस गदा के बल पर ही कुबेर भवन में गर्जना की थी। इसने माया रूपधारी उद्धत बहुत से यक्षों को क्रोध में भरकर इसी गदा से मार लिया था ॥५६॥

निवार्यमाणो बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः ।

तां वज्रमणिरत्नौघकल्माषां वज्रगौरवाम् ॥५७॥

समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यपतद्रणे ।

गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ॥५८॥

पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान्महाजवान् ।

इसे बहुतों ने बार २ रोका परन्तु यह युद्ध से नहीं रुका और द्रौपदी के प्रिय सम्पादन में लगा रहा। वज्र, मणि, रत्न आदि के समूह से विचित्र, वज्र के समान दृढ़ रूपधारिणी, उस दारुण शब्द करने वाली गदा को उठा कर युद्ध कुशल महाबाहु भीमसेन ने रण में राजा शल्य पर आक्रमण किया इस गदा से इसने महावेग शाली राजाशल्य के चारों अश्वों को नष्ट करडाला ॥५७-५८॥

ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम् ॥५६॥
निचखान नदन्वीरो वर्म भित्वा च सोऽभ्ययात् ।

अब मद्रेश्वर शल्य भी कुपित होउठे, उन्होंने एक तोमर बाण उठाया और उसको गर्जना पूर्वक इस तरह छोड़ा कि वह भीमसेन का कवच वींधकर उसके विशाल वक्षस्थल में जाकर बुरी तरह गड़गया ॥५६॥

वृकोदरस्त्वसम्भ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ॥६०॥
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि ।
स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन्वित्रस्तमानसः ॥६१॥
पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् ।
कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ॥६२॥
गदामाश्रित्य धर्मात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत ।

भीमसेन इस तोमर बाण के आघात से कुछभी नहीं घबराया उसने वहीं उस तोमर को पकड़कर खैंच लिया और मद्रराज के सारथि की छाती में मारा। इस तोमर से सारथि का कवच कट गया, और वह भयभीत मन वाला होकर रुधिर उगलने लगा। वह हीन, राजा शल्य के सन्मुख ही रथ से नीचे गिर पड़ा। मद्रराज भी रथ से नीचे उतरे। महावीर राजा शल्य ने अपने तोमर का यह उत्तर देखकर बड़ा अचम्भा किया। अब उन्होंने गदा उठाई और अपने शत्रु भीमसेन की ओर देखा ॥६०-६२॥

ततः सुमनसः पार्थो भीमसेनमपूजयन् ।
ते दृष्ट्वा कर्मसंग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि भीमसेनशल्ययुद्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

इस उत्तम वीर कर्म करने वाले भीमसेन के इस घोर कर्म को इस घोर संग्राम में देखकर सारे पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने भीमसेन की बड़ी प्रशंसा की ॥६३॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
भीमसेन और शल्य के युद्ध के वर्णन का ग्यारहवां
अध्याय समाप्त हुआ ।



बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब राजा शल्य ने अपने सारथि को रणभूमि में पतित देखा-तो उन्होंने सर्व कठिन लोह निर्मित गदा, वेग से उठाई और वे अचल पर्वत की भांति स्थित होगए ॥१॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम् ।
सशृंगमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम् ॥२॥

सशूलमिव हर्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् ।
जवेनाभ्यपतद्भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥३॥

ततः शंखप्रणादश्च तूर्याणां च सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां हर्षवर्धनः ॥४॥

कालाग्नि के समान प्रदीप्त, पाशधारी काल, शिखर सहित कैलाश, वज्र धारी इन्द्र शूलधारी, शङ्कर के समान मद्रराज शल्य को मदोन्मत्त हाथी की भांति खड़ा देखकर भीमसेन भी बड़ी भारी गदा लेकर उसपर वेग से झपटा। इस समय शङ्ख ध्वनि और सहस्रों बाजों की ध्वनि होने लगी। शूरवीरों का हर्ष बढ़ाने वाला सिंहनाद उत्पन्न हुआ ॥१-४॥

प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ ।
तावकाश्चापरे चैव साधु साध्वित्यपूजयन् ॥५॥

हे राजन्! अब सारे योद्धा इन दोनों योद्धा रूपी महागजों को सब ओर से देखने लगे। तुम्हारे पक्ष के वीर और शत्रुवीर सब दोनों की प्रशंसा में तत्पर हुए ॥५॥

न हि मद्राधिपादन्यो रामाद्वा यदुनन्दनात् ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥६॥

हे राजन्! रण में भीमसेन के गदा के वेग को मद्रराजशल्य और यदुनन्दन बलराम को छोड़कर कोई भी साधारण वीर, नहीं सह सकता था ॥६॥

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधः युधि वृकोदरात् ॥७॥

इसी तरह महावीर मद्रदेशाधिपति महाराज शल्य के भी गदा वेग को युद्ध में वृकोदर भीम के सिवा अन्य कोई सहने में समर्थ नहीं था ॥७॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥८॥

वे वृषों (सांडों) की तरह गर्जते हुए मण्डल बनाने लगे और मद्रराज शल्य तथा वृकोदर भीम दोनों ही गदा के हाथ उलटने पलटने लगे ॥८॥

मण्डलावर्त्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद्युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥९॥

मण्डल बनाकर युद्ध करने और गदा के प्रहार करने में उन दोनों महारथी वीरों का युद्ध इतना भीषण था, कि उसमें कोई भेद (फर्क) नहीं किया जा सकता था ॥९॥

तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धिनी ।
अग्निज्वालैरिवाबद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा ॥१०॥

तपाए हुए सुवर्ण के चमकीले पत्रों से मंढी हुई शल्य की गदा, अग्नि की ज्वाला से व्याप्त सी दिखाई देती थी। जिसके देखने से ही वीरों के हृदय में भय का सञ्चार होने लगा था ॥१०॥

तथैव चरतो मार्गान्मण्डलेषु महात्मनः ।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥११॥

इसी तरह अनेक गदा के पैंतरे और मण्डल बांधने पर वादलों में विजली के सदृश, भीमसेन की गदा सुशोभित होने लगी ॥११॥

ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा ।
दह्यमानेव खे राजन्साऽसृजत्पावकार्चिषः ॥१२॥

हे राजन! अव मद्रराज शल्य ने अपनी गदा से भीमसेन की गदा टकराई। वह जलती हुई सी होकर आग की लपट छोड़ने लगी ॥१२॥

तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा ।
अंगारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥१३॥

हे राजन्! जव शल्य की गदा पर अपनी गदा की चोट लगाई-तो उस समय अङ्गारे निकल पड़े-जो वड़ी ही अद्भुत वात दिखाई पड़ी ॥१३॥

दन्तैरिव महानागौ शृंगैरिव महर्षभौ ।
तोत्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः ॥१४॥

हे जनेश्वर! तेज शस्त्रोपम दांतों से महागज और अपने २ सींगों से जिस तरह वृषभ टक्कर मारते हैं उसी तरह ये दोनों वीर भी अपनी २ उत्तम गदा से एक दूसरे को मारने लगे ॥१४॥

तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥१५॥

जब क्षण भर में गदा से इनके शरीर रुधिर में भीग गए, तो वे पुष्पों से भरे हुए किंशुक (ढाक) वृक्ष के समान दिखाई देने लगे ॥१५॥

गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः ।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो यथा ॥१६॥

हे राजन् ! मद्रराज शल्य की गदा से दांयी बांयी ओर से आहत होकर भी महाबाहु भीमसेन अचल के समान विचलित न हुआ ॥१६॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः ।
शल्यो न विव्यथे राजन्दन्तिनेव महागिरिः ॥१७॥

भीमसेन भी अपनी गदा के वेग से बार २ ताड़न कर रहे थे, परन्तु राजा शल्य उससे भी इसी तरह विचलित न होते थे जैसे हाथी की टक्कर से महापर्वत नहीं हिलता हो ॥१७॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदानिपातसंह्रादो वज्रयोरिव निःस्वनः ॥१८॥

हे महाराज ! इन दोनों पुरुष प्रवीर भीम और शल्य की ही सारी दिशाओं में गदा टकराने की ध्वनि वज्रध्वनि की समान सुनाई दे रही थी ॥१८॥

निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितमहागदौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥१९॥

अब ये महापराक्रमी पीछे हटे और दोनों ने अपनी गदा उठाली। ये अब भीतरी मार्ग (पैंतरे) दिखाते हुए मण्डल बनाने लगे ॥१९॥

अथाभ्येत्य पदान्यष्टौ सन्निपातोऽभवत्तयोः ।
उद्यम्य लोहदंडाभ्यामतिमानुषकर्मणोः ॥२०॥

अब ये आठ पैर पीछे हटे और फिर टकरा गए। इन्होंने अपनी २ लोह निर्मित गदा उठा रखी थी, जिससे ये मनुष्याति-शायी कर्म कर रहे थे ॥२०॥

पोथयन्तौ तदान्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ।
क्रियाविशेषं कृतिनौ दर्शयामासतुस्तदा ॥२१॥

ये एक दूसरे पर आघात करते हुए मण्डल बना रहे थे। इन युद्ध कुशल वीरों ने अपनी २ गदायुद्ध की कुशलता दिखाई।

अथोद्यम्य गदे घोरे सशृंगाविव पर्वतौ ।
तावाजघ्नतुरन्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ॥२२॥

जब इन्होंने घोर गदा उठाई-तो शिखर घाटी पर्वत से दिखाई दिये। ये एक दूसरे पर प्रहार करते हुए मण्डल बनाने लगे ॥२२॥

क्रियाविशेषकृतिनौ रणभूमितलेऽचलौ ।
तौ परस्परसंरंभाद्गदाभ्यां सुभृशाहतौ ॥२३॥

युगपत्पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव ।
उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हा हा कृतोऽभवन् ॥२४॥
भृशं मर्माण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ ।

ये गदायुद्ध की विशेष विधि के ज्ञाता थे, जो रणभूमि में अचल पर्वत की भांति डटे थे। उन दोनों ने परस्पर के क्रोध से गदा द्वारा अत्यन्त प्रहार किए। अब ये दोनों एक दम रणभूमि में इस तरह गिर गए, जैसे इन्द्र की ध्वजा पड़ी हों। इस समय दोनों ओर की सेना के वीर हाहाकार करने लगे। इनके मर्म स्थलों में बड़ी चोट पहुंच चुकी थी। ये बड़े ही विह्वल हो गए ॥२३-२४॥

ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामृषभं रणे ॥२५॥
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादथ ।

अब मद्रराज शल्य को अपने रथ में डालकर कृपाचार्य, बड़ी शीघ्रता से उसे रणक्षेत्र से लेकर चल दिए ॥२५॥

क्षीववद्विह्वलत्वात्तु निमेषात्पुनरुत्थितः ॥२६॥
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम् ।

भीमसेन, मोटे ताजे थके पुरुष की तरह कुछ सांस मार रहे थे, परन्तु क्षण भर में ही फिर खड़े होगए। भीमसेन ने फिर गदा उठाई और मद्रपति को युद्ध के लिए ललकारा ॥२६॥

ततस्तु तावकाः शूरा नानाशस्त्रसमायुताः ॥२७॥
नानावादित्रशब्देन पाण्डुसेनामयोधयन् ।

अब तुम्हारे पक्ष के शूरवीर, अनेक प्रकार के शस्त्र लेकर अनेक बाजे बजाकर पाण्डव सेना से युद्ध करने लगे ॥२७॥

भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः ॥२८॥
अभ्यद्रवन्महाराज दुर्योधनपुरोगमाः ।

हे महाराज ! अब राजा दुर्योधन आदि कौरव वीर भुजा और शस्त्र उठाकर बड़ी गर्जना के साथ भीमसेन पर दौड़े ॥२८॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥२६॥
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान् ।

हे राजन ! तुम्हारी इस सेना को झपटते देखकर पाण्डव भी सिंहनाद करते हुए राजा दुर्योधन आदि कौरव महारथियों पर बड़े वेग से दौड़े ॥२६॥

तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥३०॥
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम् ।
स पपात रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥३१॥
रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः ।

हे भरतर्षभ ! जब बड़े वेग से पाण्डव वीर आए-तो तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने, प्रास नामक शस्त्र का चेकितान के हृदय में जोर से प्रहार किया । तुम्हारे पुत्र के प्रहार से चेकितान, रुधिर में भीग कर रथ में गिर गया और उसको विपुलतम अर्थात् मृत्यु ने दबा लिया ॥३०-३१॥

चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवेया महारथाः ॥२२॥
असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः ।

महारथी पाण्डवों ने जब चेकितान को मृत देखा-तो लगातार अपनी २ ओर से बाणवर्षा करने लगे ॥२२॥

तावकानामनीकेषु पाण्डवा जितकाशिनः ॥२३॥
व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः ।

हे महाराज ! विजयोन्मत्त पाण्डव, तुम्हारी सेना में घूमने लगे, जो बड़े ही देखने योग्य प्रतीत होते थे ॥२३॥

कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महारथः ॥२४॥
अयोधयन्धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः ।

हे राजन् ! अब मद्रराज शल्य को आगे करके कृपाचार्य, कृतवर्मा, और सुबल पुत्र महाबली शकुनि, धर्मराज से युद्ध करने लगे ॥२४॥

भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ॥२५॥
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।

हे महाराज ! भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य के घातक अत्यन्त पराक्रमी धृष्टद्युम्न से राजा दुर्योधन युद्ध करने लगे ॥२५॥

त्रिसाहस्रास्तथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ॥२६॥
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः ।

हे राजन ! तुम्हारे पुत्र की आज्ञा से तीन सहस्र योद्धाओं को लेकर द्रोण पुत्र अश्वत्थामा अर्जुन से लड़ने लगे ॥२६॥

विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥३७॥

प्राविशंस्तावका राजन्हंसा इव महत्सरः ।

हे राजन् ! अपनी विजय का संकल्प करके समर में प्राणों का मोह छोड़कर तुम्हारे वीर इस रण में इस तरह घुस गए-जैसे महान् सरोवर में हंस घुसते हैं ॥३७॥

ततो युद्धमभूद्घोरं परस्परवधैषिणाम् ॥३८॥

अन्योन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीतिवर्धनम् ।

परस्पर एक दूसरे के वध की इच्छा में तत्पर वीरों का घोर युद्ध होने लगा। ये एक दूसरे को मारना चाहते थे, जिससे इनको परस्पर बड़ा आनन्द मिल रहा था ॥३८॥

तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे राजन्वीरवरक्षये ॥३९॥

अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः ।

हे राजन् ! अच्छे अच्छे वीरों के विनाशक इस युद्ध के प्रवृत्त होने पर पर वायु से उठायी हुई महान् धूलि खड़ी हो गई ॥

श्रवणान्नामधेयानां पाण्डवानां च कीर्तनात् ॥४०॥

परस्परं विजानीमो यदयुद्धयन्नभीतवत् ।

जब वीर अपना २ नाम लेते थे तो हम लोग उस अन्धकार में भी पाण्डव वीरों के कीर्तन से उन्हें पहचान लेते थे। इस तरह परस्पर कौन किस प्रकार इस समय में भी युद्ध कर रहा है। इसका हमको पता लग रहा था ॥४०॥

तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ॥४१॥
दिशश्च विमला जातास्तस्मिंस्तमसि नाशिते ।

हे पुरुष व्याघ्र ! उस धूलि को उस रक्त ने बिल्कुल शान्त कर दिया । जब वह अन्धकार नष्ट हो गया-तो सारी दिशाएं विमल हो गई ॥४१॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे घोररूपे भयानके ॥४२॥
तावकानां परेषां च नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ।

जब यह घोर भयानक संग्राम प्रवृत्त हो रहा था तो उस समय भी तुम्हारी और शत्रु सेना में कोई भी रण से विमुख नहीं हुआ ॥४२॥

ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥४३॥
सुयुद्धेन पराक्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः ।

ये वीर ब्रह्म लोक के गमन को तय्यार होकर विजय चाहने लगे । ये योद्धा, स्वर्ग की अभिलाषा से अच्छी तरह युद्ध करके पराक्रम दिखाने लगे ॥४३॥

भर्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्यविनिश्चिताः ॥४४॥
स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ।

ये अपने स्वामी के अन्नदान के ऋण से मुक्त होना चाहते थे इससे अपने स्वामी के कार्य में चित्त लगाकर प्रवृत्त थे । योद्धा गण स्वर्ग में मन लगाकर युद्ध म संलग्न हुए ॥४४॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥४५॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् ।

ये महारथी, अनेक प्रकार के शस्त्र छोड़कर एक दूसरे पर गर्जना करते हुए परस्पर प्रहार करने लगे ॥४५॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृंतत ॥४६॥
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले ।

मारो ? बींधो ? पकड़ो ? प्रहार करो ? काटो ? इस प्रकार की वाणी तुम्हारी और पाण्डवों की सेना में सुनाई देने लगी ॥

ततः शल्यो महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥४७।
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम् ।

हे महाराज ! अब राजा शल्य ने महारथी धर्मराज के मार देने की इच्छा से तीक्ष्ण बाणों द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥४७॥

तस्य पार्थो महाराज नाराचान्वै चतुर्दश ॥४८॥
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव ।

हे महाराज ! कुन्ती पुत्र धर्मराज मर्म स्थानों के ज्ञाता थे इन्होंने चौदह बाण छोड़कर हंसते २ शल्य के मर्म स्थानों में प्रहार किया ॥४८॥

आवार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महाबलः ॥४९॥
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कंकपत्रिभिः ।

महाबली शल्य ने अपने बाणों से धर्मराज को वहीं रोक दिया और उनके मार देने की अभिलाषा से रण में क्रोध के साथ उनको कङ्क पत्रधारी बहुत से बाणों से बींध दिया ॥४९॥

अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा ॥५०॥
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्व सैन्यस्य पश्यतः।

हे महाराज ! नत पर्वधारी बाणसे राजा शल्य ने सारी सेना के देखते २ राजा युधिष्ठिर पर प्रहार किया ॥५०॥

धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः ॥५१॥
विव्याध निशितैर्बाणैः कंकबर्हिणवाजितैः।

महायशस्वी धर्मराज भी मद्रराज पर कुपित हो गया। उस ने कंक और मयूर पुच्छ से सुशोभित, तीक्ष्ण बाणों से उसपर आक्रमण किया ॥ १॥

चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः ॥५२॥
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः।

महारथी धर्मराज ने सत्तर बाण से चन्द्रसेन नौ बाणों से सारथि और भद्रसेन को चौंसठ बाणों से आहत किया ॥५२॥

चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना ॥५३॥
निजघान ततो राजंश्चेदीन्वै पंचविंशतिम्।

हे राजन् ! महावीर राजा युधिष्ठिर द्वारा चक्र रक्षक के मार गिराने पर राजा शल्य ने पचीस चेदी महारथियों को मार गिराया ॥५३॥

सात्यकिं पंचविंशत्या भीमसेनं च पंचभिः ॥५४॥
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः ।

इसने सात्यकि पर पच्चीस, भीमसेन पर पांच, और माद्रीपुत्र नकुल सहदेव पर रणक्षेत्र में सौ तीक्ष्ण बाणों का प्रहार करके उनको आहत कर दिया ॥५४॥

एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ॥५५॥
सम्प्रैषयच्छितान्पार्थः शरानाशीविषोपमान् ।

हे राजसत्तम ! जब इस तरह राजा शल्य संग्राम में घूम रहे थे-तो कुन्ती पुत्र धर्मराज ने, आशीविष सर्प के तुल्य तीक्ष्ण बाण, उनपर छोड़े ॥५५॥

ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५६॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद्रथात् ।

कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर ने रणभूमि में अपने सामने फड़फड़ाती हुई ध्वजा को देखकर अपने भल्ल संज्ञक बाण से उसे काट कर रथ से नीचे गिरा दिया ॥५६॥

पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ॥५७॥
निपतन्तमपश्याम गिरिशृंगमिवाहतम् ।

हे राजन ! जब महावीर पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर ने उस ध्वजा को काट कर गिराया-तो वह आहत पर्वत शिखर के समान पड़ी हुई रणक्षेत्र में दिखाई देती थी ॥५७॥

ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम् ॥५८॥
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह ।

जब अपनी ध्वजा कट कर गिरगई और सामने ही धर्मराज को स्थित देखा तो-मद्रराज शल्य बहुत कुपित हुआ और बाण-वर्षा करने लगा ॥५८॥

शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥५९॥
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

अपरिमित बलशाली, क्षत्रिय श्रेष्ठ, राजा शल्य ने, वर्षा करने वाले मेघ की तरह क्षत्रिय वीरों पर बाणों की झड़ी लगादी ॥५९॥

सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥६०॥
एकैकं पंचभिर्विध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ।

राजा शल्य ने सात्यकि, भीमसेन माद्री पुत्र पाण्डव नकुल सहदेव तथा राजा युधिष्ठिर को पांच २ बाणों से बींध दिया ॥६०॥

ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि ॥६१॥
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् ।

यह बाणों का जाल पाण्डु पुत्र धर्मराज की छाती पर छागया। हे महाराज ! वह चढ़ा हुआ मेघ जाल सा प्रतीत होता था ॥६१॥

तस्य शल्यो रणे क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥६२॥
दिशः सञ्छादयामास प्रदिशश्च महारथः ।

अब महारथी शल्य, रण में क्रुद्ध होउठा। उसने नतपर्व वाले, बाणों से दिशा और प्रदिशा आच्छादित कर दी ॥६२॥

ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः ।

बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा ।।६३।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां

शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

हे राजन्! इस प्रकार बाण जाल से पीड़ित राजा युधिष्ठिर इस तरह अत्यन्त पराक्रम दिखाने लगा जिस तरह इन्द्र से लड़ता हुआ जम्भासुर पराक्रम करता दिखाई देरहा था ।।६३।।

इतिश्री महाभारत शल्य पर्व में धर्मराजयुधिष्ठिर और शल्य के युद्ध का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



तेरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष ।

सात्यकि र्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।।१।।

परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे ।

सञ्जय ने कहा—हे आर्य! जब मद्रराज ने धर्मराज को पीड़ित किया तो सात्यकि, भीमसेन और पाण्डु पुत्र नकुल सहदेव, इस रण में अपने २ रथों से शल्य को घेर कर उसे पीड़ित करने लगे ।।१।।

तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीड्यमानं महारथैः ॥२॥
साधुवादो महान्जज्ञे सिद्धाश्चासन्प्रहर्षिताः ।
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि सङ्गताः ॥३॥

जब इन बहुत से महारथियों ने, अकेले शल्य को घेर लिया तो सिद्ध लोग उन्हें साधुवाद देने लगे और बड़े प्रहर्षित हुए उस समय वहां एकत्रित मुनि लोग भी-यह बड़ा आश्चर्य होरहा है इस तरह कहने लगे ॥२-३॥

भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे ।
एकेन विध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥४॥

हे राजन् ! इस युद्ध में राजा पाण्डवों का सचमुच शल्य बन गया । उसके भीषण पराक्रम को देखकर भीमसेन ने, एक बाण से वींध कर फिर सात बाणों से उसे बींध दिया ॥४॥

सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया ।
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत् ॥५॥

धर्मराज युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त सात्यकि ने, सौ बाण राजा शल्य पर मार कर बड़े तीव्र स्वर में सिंहनाद किया ॥५॥

नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च पञ्चभिः ।
बद्ध्वा तं तु पुनस्तूर्णं ततो विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥

अब नकुल ने पांच, सहदेव ने भी पांच बाणों से बींध कर फिर सात बाणोंसे उसे आहत किया ॥६॥

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः ।
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम् ॥७॥
सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष ।
भीमसेनं तु सप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा ॥८॥

हे आर्य ! वह शूरवीर शल्य इन महारथियों से पीड़ित होकर भी बड़ी सावधानी दिखा रहा था। उसने शत्रु वेग नाशक, रण भार के सहन में समर्थ घोर धनुष खैंचकर सात्यकि पर पच्चीस बाण छोड़कर उसे आहत किया। इसने भीमसेन पर सत्तर, नकुल पर सात बाण मारे ॥७-८॥

ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः ।
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ॥९॥

इसके अनन्तर धनुर्धर सहदेव के बाण सहित धनुष को अपने भल्ल संज्ञक बाण से काट कर उसे इक्कीस बाणों से क्षतविक्षत कर दिया ॥९॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम् ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत् ॥१०॥
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसन्निभैः ।

सहदेव ने भी इस युद्ध में अत्यन्त तेजस्वी अपने मातुल शल्य को दूसरा धनुष खैंचकर पांच बाणों से घायल कर दिया ये बाण आशीविष सर्प और प्रज्वलित अग्नि के समान प्रदीप्त थे ॥१०॥

सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा ॥११॥
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं वै भूयस्त्रिभिः शरैः ।

सहदेव ने फिर युद्ध में नतपर्व धारी बाण से इसके सारथि को बींध दिया और अत्यन्त क्रोध में भर कर फिर तीन बाणों से राजा शल्य को भी बींध दिया ॥११॥

भीमसेनस्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः ॥१२॥
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत् ।

अब भीमसेन ने सत्तर सात्यकि ने नौ तथा धर्मराज ने साठ बाण मद्राधिपति शल्य के शरीर में मारे ॥१२॥

ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः ॥१३॥
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा ।

हे महाराज ! अब राजा शल्य उन महारथियोंसे बींधा गया। इसके शरीर से रुधिर की धारा पर्वत से गैरिक आदि धातु स्राव की भांति वह निकली ॥१३॥

तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥१४॥
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

हे राजन् ! इन सारे महाधनुर्धरों को पांच २ बाण मार कर बड़े वेग से बींध दिया-जो एक अद्भुत घटना मानो गई ॥१४॥

ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष ॥१५॥
धनुश्चिच्छेद समरे सज्ज्यं स सुमहारथः ।

हे आर्य ! अब महारथी शल्य ने दूसरा भल्ल संज्ञक वाण छोड़कर राजा युधिष्ठिर का युद्ध में सुसज्जित शरासन को काट गिराया ॥१५॥

अथान्यद्धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१६॥
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः ।

अब धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने, दूसरा धनुष, उठाया और उससे वाण छोड़कर अश्व सारथि, ध्वजा और रथ के सहित शल्य को बींध दिया ॥१६॥

स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः ॥१७॥
युधिष्ठिरमथाविध्यद्दशभिर्निशितैः शरैः ।

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के वाणों से रणभूमि में आच्छादित हुए राजा शल्य ने दश तीक्ष्ण वाण छोड़कर राजा युधिष्ठिर को क्षतविक्षत कर दिया ॥१७॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते ॥१८॥
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः ।

जब धर्मराज, वाण से पीड़ित हुए-तो सात्यकि क्रोध से उबल उठा। अब उसने पांच तीक्ष्ण वाण छोड़कर शूरवीर मद्रराज शल्य को बींध दिया ॥१८॥

स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद्धनुः ॥१९॥
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ।

राजा शल्य ने सात्यकि का भी विशाल धनुष क्षुरोपम बाण से काट दिया और भीमसेन आदि वीरों को तीन तीन बाणों से घायल किया ॥१९॥

तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥२०॥
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् ।

हे महाराज ! सत्यपराक्रमी सात्यकि क्रुद्ध होउठा । उसने महा मूल्य वाले सुवर्ण के दण्ड वाले एक तोमर बाण को फेंका॥२०॥

भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥२१॥
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् ।
धर्मराजः शतघ्नीं च जिघांसुः शल्यमाहवे ॥२२॥

हे राजन् ! भीमसेन, प्रज्वलित सर्प तुल्य नाराच बाण, नकुल ने शक्ति, सहदेव ने तीव्र गदा और धर्मराज ने शतघ्नी, रण में शल्य के मार लेने के लिए छोड़ी ॥२१-२२॥

तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् ।
वारयामास समरे शस्त्रसङ्घैः स मद्रराट् ॥२३॥

हे नृप ! इन पांचों वीरों के छोड़े हुए शस्त्रों को आते देखकर मद्रराज शल्य ने रण में अपने शस्त्र जाल छोड़कर उन्हें वहीं रोक दिया ॥२३॥

सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम् ।
प्रहितं भीमसेनेन शरं कनकभूषणम् ॥२४॥
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् ।

राजा शल्य ने, सात्यकि द्वारा छोड़ा हुआ तोमर बाण, अपने भल्लों से काट गिराया। अब भीमसेन ने सुवर्ण विभूषित, बाण छोड़ा। महाप्रतापी सिद्धहस्त राजा शल्य ने उसके भी दो टुकड़े कर दिए ॥२४॥

नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम् ॥२५॥
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत ।

हे राजन् ! नकुल की फैंकी हुई सुवर्ण विभूषित भयानक शक्ति को और सहदेव प्रेरित गदा को बाणसमूह से रोक दिया॥२५॥

शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत ॥२६॥
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च ।
नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे ॥२७॥

हे भारत ! दो बाणों से धर्मराज की शतघ्नी को राजा शल्य ने काट गिराया। पाण्डु पुत्रों के देखते २ उसने बड़ा ही सिंहनाद किया। इस युद्ध में शत्रुभूत राजा शल्य की विजय सात्यकि से नहीं सही गई ॥२६-२७॥

अथान्यद्धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विध्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥२८॥

क्रोध में भरे हुए सात्यकि ने दूसरा धनुष उठाया। उससे दो बाण छोड़कर मद्रेश्वर को बींध दिया, और सारथि को तीन बाणों से बींधा ॥२८॥

ततः शल्यो रणे राजन्सर्वांस्तान्दशभिः शरैः ।
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपान् ॥२६॥

हे राजन्! अब रण में राजा शल्य ने क्रोधातुर होकर दश बाणों से उन सबको इस तरह बींध दिया, जैसे तोत्र शस्त्र से गज को घायल कर दिया जाता है ॥२६॥

ते वार्यमाणाः समरे मद्रराज्ञा महारथाः ।
न शेकुः संमुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिषूदनाः ॥३०॥

मद्रराज शल्य से रण में रोके हुए शत्रुनाशक महारथी इस समय राजा शल्य के सन्मुख उपस्थित नहीं होसके ॥३०॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् ।
निहतान्पाण्डवान्मेने पञ्चालानथ सृञ्जयान् ॥३१॥

अब राजा शल्य के पराक्रम को देखकर राजा दुर्योधन ने पञ्चाल सृञ्जय और पाण्डवों को मरा हुआ ही समझ लिया ॥३१॥

ततो राजन्महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
सन्त्यज्य मनसा प्राणान्मद्राधिपमयोधयत् ॥३२॥

हे राजन्! महाबाहु प्रतापवान् भीमसेन, अपने प्राणों का मोह छोड़कर मद्राधिपति शल्य से युद्ध करने लगा ॥३२॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथाः ।
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद्व्यकिरन्शरैः ॥३३॥

नकुल, सहदेव, महारथी सात्यकि, शल्य को घेर कर सब ओरसे बाणों से आच्छादित करने लगा ॥३३॥

स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां महारथैः ।
वृतस्तान्योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥३४॥

इस समय मद्रराज शल्य को पाण्डवों के चार महारथियों ने घेर लिया, तो भी उनसे महा प्रतापी मद्रराज अकेला ही लड़ता रहा ॥३४॥

तस्य धर्मसुतो राजन्क्षुरप्रेण महाहवे ।
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः ॥३५॥

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में क्षुरोपम बाण से राजा युधिष्ठिर ने मद्राधिपति शल्य के चक्र रक्षक को मार गिया ॥३५॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे ।
मद्रराजोऽपि बलवान्सैनिकानावृणोच्छरैः ॥३६॥

शूरवीर महारथी चक्र रक्षक के मारे जाने पर बलवान् मद्रराज शल्य ने अपने बाणों से बहुत से सैनिकों को आच्छादित कर दिया ॥३६॥

समावृतांस्ततस्तांस्तु राजन्वीक्ष्य स्वसैनिकान् ।
चिन्तयामास समरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३७॥
कथं नु समरे शक्यं तन्माधववचो महत् ।
स हि क्रुद्धो रणे राजन्क्षपयेत बलं मम ॥३८॥

हे राजन ! अपने सैनिकों को शल्य के बाणों से आच्छादित देखकर धर्मराज युधिष्ठिरने विचार किया कि किस तरह श्रीकृष्ण

का वचन पूरा किया जावे। यह तो रण में कुपित हुआ मेरी सारी सेना को नष्ट करके छोड़ेगा ॥३७-३८॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
मद्रराजं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ॥३९॥

हे धृतराष्ट्र! अब रथ, हाथी और अश्व सहित सारे पाण्डव सब ओर से मद्रराज शल्य को पीड़ित करते हुए उसपर झपटे॥

नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम्।
व्यधमत्समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः ॥४०॥

जिस तरह बड़े २ मेघों को वायु उड़ा देता है, उसी तरह राजा शल्य ने अनेक शस्त्रों के समूह से व्याप्त, बड़ी तीव्र, शस्त्र वृष्टि को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४०॥

ततः कनकपुङ्खान्तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम्।
शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवायतिम् ॥४१॥

सुवर्ण मूलधारी, शल्य की फैंकी हुई आकाशचारी, बाण वृष्टि को हम लोगों ने टीडी दल की भाँति देखा ॥४१॥

ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्धनि।
सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां व्रजा इव ॥४२॥

मद्रराज शल्य द्वारा रणाङ्गण में फैंके हुए बाण समूह टीडियों के समूह से दिखाई दिये ॥४२॥

मद्रराजधनुमुक्तैः शरैः कनकभूषणैः ।
निरन्तरमिवाकाशं सम्बभूव जनाधिप ॥४३॥

हे जनाधिप ! कनक भूषित, मद्रराज के धनुष से निकले हुए बाणों से आकाश में कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया ॥४३॥

न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चिद्व्यदृश्यत ।
बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाहवे ॥४४॥
मद्रराजेन बलिना लाघवाच्छरवृष्टिभिः ।

इस समय पाण्डव और हम लोगों को कुछ भी दिखाई नहीं देता था, इस महा युद्ध में बाणों का बहुत ही अधिक अन्धकार हो रहा था । क्योंकि महाबली मद्रराज ने बड़े वेग से बाण वर्षा की थी ॥४४॥

चाल्यमानं तु तं दृष्ट्वा पाण्डवानां बलार्णवम् ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः ।

जब पाण्डवों की सेना को विचलित देखा तो देव, गन्धर्व और मनुष्य बड़ा ही अचम्भा करने लगे ॥४५॥

स तु तान्सर्वतो यत्तान्शरैः सञ्छाद्य मारिष ॥४६॥
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद्व्यनदन्मुहुः ।

हे आर्य ! सब ओर से प्रयत्न शील उन महारथियों को बाणों से आच्छादित करके धर्मराज को भी बाणों से पाट दिया । अब वह बार २ सिंह की भांति गर्जना करने लगा ॥४६॥

ते च्छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ॥४७॥
नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम् ।

जब मद्रराज ने अपने बाणों से पाण्डवों के महारथियों को आच्छादित कर दिया-तो पाण्डव वीर उस महारथी शल्य की ओर जाने को भी समर्थ नहीं हुए ॥४७॥

धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः ।
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि शल्ययुद्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

इस युद्ध में भी धर्मराज और भीमसेन आदि पाण्डव महारथियों ने शूरवीर युद्ध शोभी राजा शल्य का पीछा नहीं छोड़ा

इति श्रीमहाभारत शल्य पर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व
में तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।



चौदहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः।

तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः ॥१॥

द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः।

तथेतरान्महेष्वासान्द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनञ्जयः ॥२॥

भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत्।

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! अश्वत्थामा, तथा उनके अनुचर वीर और त्रिगर्तों के महारथी वीरों द्वारा बहुत से लोह निर्मित बाणों से अर्जुन घायल हो गया। अब अर्जुन ने भी रणक्षेत्र में तीन बाण मारकर अश्वत्थामा और दो २ बाणोंसे अन्य महाधनुर्धर योद्धाओं को आहत कर दिया। इसके बाद अर्जुन ने बाणों की झड़ी सी बांध दी ॥१-२॥

शरकंटकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ॥३॥

न जहुः पार्थमासाद्य ताड्यमानाः शितैः शरैः।

हे भरतर्षभ! इस समय तुम्हारे पक्ष के वीर, बाणों से बींधे पड़े थे, तो भी वे अर्जुन के सन्मुख से तिल भर पीछे न हटे। यद्यपि तीक्ष्ण बाणों से वे बींधे हुए पड़े थे ॥३॥

अर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥४॥

अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः।

द्रोण पुत्र अश्वत्थामा आदि महारथियों ने अपनी रथ समूह की सेना को लेकर अर्जुन को घेर लिया और रणक्षेत्र में युद्ध करना आरम्भ किया ॥४॥

तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन्कार्तस्वरविभूषिताः ॥५॥
अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा ।

हे राजन् ! उन महारथियों ने इतने सुवर्णोज्ज्वल बाण अर्जुन पर छोड़े कि उनसे बहुत ही शीघ्र अर्जुन का रथ भरता चला गया ॥

तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥६॥
शरैर्वीक्ष्य वितुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ।

इस तरह सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, महाधनुर्धर, श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाणों से क्षत विक्षत देखकर युद्ध दुर्मद कौरव महारथी बड़े ही प्रसन्न हुए ॥६॥

कूबरं रथचक्राणि ईषायोक्त्राणि वा विभो ॥७॥
युगं चैवानुकर्षं च शरभूतमभूत्तदा ।

हे विभो ! कूबर, रथ चक्र, ईषा (रथाग्र भाग) और जोते जूड़ा नीचे के रथ के काष्ठ, ये सारे रथ के अङ्ग-प्रत्यङ्ग बाण मय हो गए ॥७॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन्नैव च नः श्रुतम् ॥८॥
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः संप्रचक्रिरे ।

हे राजन् ! हमने पूर्व काल में न तो ऐसा युद्ध देखा और न सुना, जैसा इस समय अर्जुनने और तुम्हारे महारथियों ने किया ।

स रथः सर्वतो भाति चित्रपुंखैः शितैः शरैः ॥९॥
उल्काशतैः संप्रदीप्तं विमानमिव भूतले ।

विचित्र मूल वाले तीक्ष्ण बाणों से व्याप्त हुआ वह रथ सब ओर से इस तरह चमक रहा था, जैसे सैंकड़ों उल्काओं से भूतल पर विशाल महल प्रदीप्त हो रहा हो ॥९॥

ततोऽर्जुनो महाराज शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१०॥
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्टयेव पर्वतम् ।

हे महाराज ! अब अर्जुन ने नत पर्वधारी बाणों से उस सेना को इस तरह आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ वर्षा से पर्वत को ढ़क देता है ॥१०॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थनामांकितैः शरैः ॥११॥
पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् ।

जब युद्ध स्थल में अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों से ये महारथी आहत हुए-तो वे यह दशा देखकर सारे युद्ध स्थल को अर्जुन मय सी देखने लगे ॥११॥

कोपोद्भूतशरज्वालो धनुः शब्दानिलो महान् ॥१२॥
सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः ।

कोप से उठी हुई बाण ज्वाला से युक्त शब्द रूपी वायु से प्रेरित, अर्जुन रूपी अग्नि ने तुम्हारी सेना रूपी इन्धन को जला कर भस्म कर दिया ॥१२॥

चक्राणां पततां चापि युगानां च धरातले ॥१३॥
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह ।
ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत ॥१४॥
अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः ।
शिरसां पततां चापि कुंडलोष्णीषधारिणाम् ॥१५॥
भुजानां च महाभाग स्कन्धानां च समंततः ।
छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः ॥१६॥
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत ।

हे भारत ! पृथिवी पर पड़े हुए चक्र, जूड़े, तूणीर, पताका, ध्वजा, रथ, ईषा, अनुकर्ष, तीन वेणु, धुरे, जोते, पतोद (चाबुक) कुण्डल और पगड़ी पहने हुए रणभूमि में पतित मस्तक, सब ओर बिखरी हुई भुजा और कन्धे, छत्र पंखे और मुकुट राशि का, जिधर अर्जुन का रथ निकल गया उधर ही ढ़ेर लग गया ॥१३-१६॥

ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशाम्पते ॥१७॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

हे विशाम्पते ! क्रोधातुर अर्जुन के रथ के मार्ग में पृथिवी मांस और रक्त की कीचड़ से भरकर बड़ी अगम्यरूप होगई ।१७॥

भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्धिनी ॥१८॥
बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ।

हे भरतश्रेष्ठ ! इस भूमि को देखकर कायरों को भय और शूरवीरों को हर्ष होता था। इस समय रणक्षेत्र रुद्र का क्रीड़ास्थान सा बन रहा था ॥१८॥

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परन्तपः ॥१६॥

रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

शत्रुतापी अर्जुन ने, रण में दो सहस्र, रथी वीरों को उनके रथों के साथ नष्ट कर दिया। अर्जुन, विधूम अग्नि की भांति प्रज्वलित होरहे थे ॥१६॥

यथा हि भगवानग्निर्जगद्दग्ध्वा चराचरम् ॥२०॥

विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो धनञ्जयः ।

हे राजन् ! जिस तरह देदीप्यमान अग्नि, चराचर जगत् को दग्ध करके प्रदीप्त होता है, उसी तरह धनञ्जय अर्जुन, धूमरहित अग्नि से प्रदीप्त होरहे थे ॥२०॥

द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥२१॥

रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् ।

जब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने अर्जुन का पराक्रम देखा-तो उसने अपनी फड़फड़ाती पताका वाले रथ को आगे बढ़ाकर अर्जुन को रोका ॥२१॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ ॥२२॥

समीयतुस्तदाऽन्योन्यं परस्परवधैषिणौ ।

ये दोनों अश्वत्थामा और अर्जुन सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ थे। वे परस्पर वध करने की इच्छा से एक दूसरे पर बुरी तरह् झपटे ॥२२॥

तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् ॥२३॥
जीमूतयोर्यथा वृष्टिस्तपांते भरतर्षभ ।

हे महाराज! इन दोनों की दारुण बाण वर्षा का आरम्भ हुआ। हे भरतर्षभ ! यह बाण वर्षा, दो मेघों की जल वृष्टि के समान भीषण थी ॥२३॥

अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२४॥
ततक्षतुस्तदाऽन्योन्यं शृंगाभ्यां वृषभाविव ।

ये दोनों वीर एक दूसरे से आगे बढ़ने की इच्छा में संलग्न थे। इन्होंने नतपर्व धारी बाणों से एक दूसरे को सींगों से सांडों की भांति घायल कर डाला ॥२४॥

तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् ॥२५॥
शस्त्राणां संगमश्चैव घोरस्तत्राभवत्पुनः ।

हे महाराज ! इन दोनों योद्धाओं का चिरकाल तक भीषण युद्ध समान रूप से होता रहा। वहां पर शस्त्रों की घोर टक्कर बार २ होने लगी ॥२५॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुंखैः सुतेजनैः ॥२६॥
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत ।

हे भारत! अब अश्वत्थामा ने, सुवर्ण पंखधारी अत्यन्त तीक्ष्ण, बारह बाणों से अर्जुन और दश बाणों से श्रीकृष्ण को घायल कर दिया ॥२६॥

ततः प्रहर्षाद्बीभत्सुर्व्याक्षिपद्गांडिवं धनुः ॥२७॥
मानयित्वा मुहूर्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे।
व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची परन्तपः ॥२८॥
मृदुपूर्वं ततश्चैनं पुनः पुनरताडयत्।

अब रणोल्लास में भरकर अर्जुन ने भी अपना गाण्डीवधनुष खैंचा। उसने इस घोर युद्ध में एक बार गुरुपुत्र अश्वत्थामा का मान किया। इसके अनन्तर सव्यसाची अर्जुन ने, अश्वत्थामा को अश्व, रथ और सारथि से रहित कर दिया। अर्जुन ने यद्यपि अश्वत्थामा पर बाण छोड़े परन्तु उनमें नरमी थी ॥२७-२८॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम् ॥२९॥
मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम्।

अश्व हीन रथ में स्थित अश्वत्थामा ने, लोह निर्मित मुसल उठाया और उस परिघ के समान मुसल को पाण्डु पुत्र अर्जुन पर फैंका ॥२९॥

तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ॥३०॥
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः।

सुवर्ण पत्र से विभूषित, उस मुसल को अपने ऊपर गिरते देखकर एक दम शत्रुनाशक, महारथी अर्जुन ने उसके सात टुकड़े कर दिए ॥३०॥

स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः ॥३१॥
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् ।
चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ॥३२॥

अपने मुसल को छिन्न भिन्न देखकर अश्वत्थामा बहुत ही क्रोध में भर गया । उसने पर्वत के शिखर के समान आकार धारी, घोर परिघ को उठाया, युद्ध विशारद अश्वत्थामा ने उस परिघ को अर्जुन पर फैंका ॥३१-३२॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥३३॥

पाण्डु पुत्र अर्जुन ने जब क्रोधपूर्वक अन्तक की भांति छोड़ा हुआ परिघ देखा-तो उसने पांच उत्तम बाण छोड़कर उसे नष्ट कर डाला ॥३३॥

स च्छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महाहवे ।
दारयन् पृथिवींद्राणां मनांसीव च भारत ॥३४॥

इस महाघोर युद्ध में अर्जुन के बाणों से छिन्न भिन्न, होकर वह परिघ रणभूमि में गिर गया । हे भारत ! इस समय उसके पतन से राजाओं के हृदय फटते चले गए ॥३४॥

ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः ।
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना ॥३५॥
नाकंपत तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ।

अब अर्जुन ने तीन भल्ल संज्ञक बाण छोड़े-जिनसे अश्वत्थामा को बींध दिया । महाबलीवीर अर्जुन द्वारा आहत हुए अश्वत्थामा अपने पुरुषार्थ में स्थित रहे और कुछ भी विचलित न हुए ॥३५॥

सुरथं च ततो राजन् भारद्वाजो महारथम् ॥३६॥
अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।

हे राजन् ! अब भरद्वाज वंशोत्पन्न अश्वत्थामा ने सारे क्षत्रिय वीरों के देखते २ महारथी राजा सुरथ को अपनी बाण वर्षा से आच्छादित कर दिया ॥२६॥

ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पञ्चालानां महारथः ॥३७॥
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत् ।

पञ्चाल महारथी, सुरथ ने रण में अपने मेघ घोष धारी रथ के द्वारा द्रोण पुत्र अश्वत्थामा पर आक्रमण किया ॥३७॥

विकर्षन्वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ॥३८॥
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत् ।

राजा सुरथ ने सब युद्ध भार के सहन में समर्थ दृढ़ धनुष को खैंचा और अग्नि तथा आशीविष सर्प के सदृश बाणों से उसको आच्छादित करने लगा ॥३८॥

सुरथं तं ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम् ॥३९॥
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सृक्किणीपरिसंलिहन् ॥४०॥

हे राजन् ! क्रोधातुर महारथी राजा सुरथ को अपने ऊपर झपटता देखकर अश्वत्थामा दण्डाहत सर्प की तरह रण में कुपित हो उठा, इन्होंने भिवलियों से युक्त भ्रुकुटी बनाई और ओष्ठ चबाने लगे ॥३९-४०॥

उद्वीक्ष्य सुरथं रोषाद्धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डोपमद्युतिम् ॥४१॥

अश्वत्थामा ने जब सुरथ को सन्मुख देखा तो रोष से धनुष की डोरी खैंची और यमदण्डोपम तीक्ष्ण नाराच नामक शस्त्र छोड़ा ॥४१॥

स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगितः ।
शक्राशनिरिवोत्सृष्टो विदार्य धरणीतलम् ॥४२॥

उस नाराच बाण से उसका हृदय चिरता चला गया और वह बाण वेग के साथ छोड़ी हुई इन्द्र की अशनि के तुल्य धरती में घुस गया ॥४२॥

ततः स पतितो भूमौ नाराचेन समाहतः ।
वज्रेण च यथा शृङ्गं पर्वतस्येव दीर्यतः ॥४३॥

इस नाराच बाण से आहत होकर राजा सुरथ भूमि में इस तरह गिर गया-जैसे-वज्र से आहत पर्वत शिखर गिरगया हो ॥४३॥

तस्मिन्विनिहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां वरः ॥४४॥

जब वीर श्रेष्ठ राजा सुरथ मारा गया-तो महाप्रतापी रथिश्रेष्ठ द्रोण पुत्र, अश्वत्थामा, वेग से रथ में जा चढ़ा ॥४४॥

ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः ।
अर्जुनं योधयामास संशप्तकवृतो रणे ॥४५॥

हे महाराज ! रण दुर्मद अश्वत्थामा अब सुसज्जित होकर और संशप्तक गणों को साथ लेकर अर्जुन से युद्ध करने लगा ॥४५॥

तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य परैः सह ।
मध्यन्दिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥४६॥

अब अर्जुन का अन्य वीरों के साथ यमराष्ट्र का बढ़ाने वाला घोर युद्ध होने लगा । इस समय मध्यान्ह काल होरहा था ॥४६॥

तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम् ।
यदेको युगपद्वीरान्समयोधयदर्जुनः ॥४७॥

हे राजन् ! हमने उस समय यह बड़ा भारी अचम्भा देखा, कि अकेला अर्जुन सारे कौरव महारथियों से युद्ध कररहा था ॥४७॥

विमर्दः सुमहानासीदेकस्य बहुभिः सह ।
शतक्रतोर्यथापूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

हे नृपते ! इस अकेले अर्जुन का बहुत से वीरों से इस प्रकार घोर युद्ध होने लगा, जैसे पूर्वकाल में विशाल दैत्य सेना के साथ शतक्रतु इन्द्र का युद्ध हुआ था ॥४८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
घोर युद्ध के वर्णन का चौदहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



पन्द्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
चक्रतुः सुमहद्युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥१॥

सञ्जय बोले— हे महाराज ! राजा दुर्योधन और पषतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, बाण और शक्ति आदि शस्त्रों से बड़ा ही भीषण युद्ध करने लगे ॥१॥

तयोरासन्महाराज शरधाराः सहस्रशः ।
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः ॥२॥

हे राजन् ! उन दोनों वीरों की बाण धारा वर्षाकाल में मेघों से सब ओर छुटी हुई जलधारा के सदृश रणभूमि में गिरने लगी॥२॥

राजा च पार्षतं विद्ध्वा शरैः पञ्चभिराशुगैः ।
द्रोणहन्तारमुग्रेषु पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥३॥

राजा दुर्योधन ने शीघ्रगामी पांच बाणों से द्रोण घातक उग्र बाण धारी पर्वतकुमार धृष्टद्युम्न को बींधकर फिर सात बाणों का उस पर प्रहार किया ॥३॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान्दृढविक्रमः ।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ॥४॥

दृढ़ पराक्रमी अत्यन्त बलवान धृष्टद्युम्न ने सत्तर बाण छोड़ कर राजा दुर्योधन को पीड़ित कर दिया ॥४॥

पीडितं वीक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम् ॥५॥

हे भरतर्षभ ! जब राजादुर्योधन को उसके भ्राताओं ने पीड़ित देखा-तो उन्होंने विशाल सेना लेकर पर्षतवंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न को जा घेरा ॥५॥

स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम् ।
व्यचरत्समरे राजन्दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥६॥

हे राजन् ! जब इन महावीरों ने राजा दुर्योधन को सुरक्षित कर दिया-तो वह भी अपना अस्त्र कौशल दिखाता हुआ रणाङ्गण में घूमने लगा ॥६॥

शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम् ।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ॥७॥

शिखण्डी ने महारथी कृतवर्मा और गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य से युद्ध करना आरम्भ किया। शिखण्डी के साथ प्रभद्रकों की सेना थी और ये दोनों वीर भी बड़े ही धनुर्धर थे ॥७॥

तत्रापि सुमहद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
प्राणान्सन्त्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ॥८॥

हे विशाम्पते ! इस स्थान पर बड़ा घोर रूप धारी युद्ध प्रवृत्त हुआ। प्राणों का पण (बाज़ी) लगा कर प्रवृत्त किए हुए इस युद्ध रूपी द्यूत में वीरवर अपने २ प्राणों की आहुति देनेलगे।

शल्यः सायकवर्षाणि विमुञ्चन्सर्वतो दिशम् ।
पाण्डवान्पीडयामास ससात्यकिवृकोदरान् ॥९॥

राजा शल्य ने सब ओर बाणवर्षा की। इसने सात्यकि और वृकोदर भीम जैसे वीरों के साथ सारे पाण्डवों को पीड़ित कर दिया ॥९॥

तथा तौ तु यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ ।
योधयामास राजेन्द्र वीर्येणास्त्रबलेन च ॥१०॥

हे राजेन्द्र ! दोनों नकुल और सहदेव, यम के तुल्य पराक्रमी थे। वे अपने पराक्रम और अस्त्रबाण के अनुरूप युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ॥१०॥

शल्यसायकनुन्नानां पाण्डवानां महामृधे ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥११॥

हे राजन् ! इस युद्ध में राजा शल्य के बाणों से क्षत विक्षत पाण्डवों के विषय में तो बहुत से महारथियों को यह खयाल होगया, कि अब पाण्डवों का कोई रक्षक नहीं है ॥११॥

ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं मातृनन्दनः ॥१२॥

हे भारत ! धर्मराज के पीड़ित कर देनेपर शूरवीर मातृनन्दन नकुल ने भी वेग के साथ अपने मामा शल्य पर आक्रमण किया॥१२॥

सञ्छाद्य समरे वीरं नकुलः परवीरहा ।
विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे ॥१३॥
सर्वपारसवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥१४॥

शत्रुवीर नाशक, नकुल ने रण में वीरश्रेष्ठ राजा शल्य को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया। इसके बाद उसने हंसते २ दश बाण मद्रेश्वर शल्य की छाती में मारे। ये बाण दृढ़ लोह निर्मित और कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किए हुए थे। इनके मूलसुवर्ण के बने थे। शिला पर चमकाए हुए इन बाणों को यन्त्र के रूप में चलने वाले धनुष से नकुल ने छोड़ा ॥१३-१४॥

शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्रीयेण महात्मना ।
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥१५॥

महावीर अपने भगिनी पुत्र नकुल द्वारा पीड़ित हुए राजाशल्य ने नतपर्व वाले बाणों से नकुल को बींध दिया ॥१५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः ।
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥१६॥

अब राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीपुत्र सहदेव ने मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया ॥१६॥

तानापतत एवाशु पूरयाणान्रथस्वनैः ।
दिशश्च विदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ॥१७॥
प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित् ।
युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च पञ्चभिः ॥१८॥
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः ।

ये सारे पाण्डव वीर अपने रथों की ध्वनि से दिशा और विदिशाओं को शब्दायमान करते हुए वेग से झपटे । इनके आक्रमण से पृथिवी कांपने लगी । इनको आते देखकर रण में शत्रुविजयी कौरव सेनापति राजा शल्य ने, उनका मुकाबिला किया । राजा शल्य ने राजा युधिष्ठिर को तीन, भीमसेनको पांच, सात्यकि को सौ, और सहदेव को तीन बाणों से आहत किया ॥१७-१८॥

ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः ॥१९॥
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा मारिष चिच्छिदे ।
तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः ॥२०॥

हे आर्य ! महावीर नकुल के बाण सहित धनुष को मद्रराज शल्य ने, अपने क्षुर की धारा से काट कर फेंक दिया। उन बाणों से शल्य का धनुष छिन्न भिन्न होकर विशीर्ण होगया ॥१६-२०॥

अथान्यद्धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥२१॥

माद्रीपुत्र, महारथी सहदेव ने, दूसरा धनुष उठाया उसने अपने बाणों से मद्रराज के रथ को शीघ्रता से भर दिया ॥२१॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥२२॥

हे आर्य गुणसम्पन्न ! अब राजा युधिष्ठिर और सहदेव ने मद्रराज शल्य के वक्षस्थल में दश दश बाणों का प्रहार किया ॥२२॥

भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः।
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कंकपत्रिभिः ॥२३॥

हे राजन ! भीमसेन ने आक्रमण करके साठ, सात्यकि ने दश कंकपत्र युक्त बाणों से मद्रराज शल्य को आहत करदिया ।२३॥

मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥२४॥

अब मद्रराज ! शल्य भी कुपित होगया। उसने नौ बाणों से सात्यकि को बींध दिया। फिर नतपर्व धारी सत्तर बाणों से इसपर और प्रहार किया ॥२४॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥२५॥

हे आर्य ! राजा शल्य ने सात्यकि के शर सहित धनुष को मुट्ठी पर से काट दिया। इसने इसके चारों अश्वों को मृत्यु के अधीन कर दिया ॥२५॥

विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समंततः ॥२६॥

राजा शल्य ने जब सात्यकि को रथ विहीन कर दिया-तो उस के बाद उसने सब ओर से सौ बाण मारे ॥२६॥

माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम्।
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः ॥२७॥

हे कुरुवंश श्रेष्ठ ! राजा शल्य ने क्रोधाविष्ट माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, पाण्डु पुत्र भीमसेन और राजा युधिष्ठिर को दश २ बाण मार कर आहत कर दिया ॥२७॥

तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम्।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्त्तंत संयुगे ॥२८॥

हे राजन् ! इस समय हमने मद्रराज शल्य का अद्भुत पुरुषार्थ देखा-जो सारे पाण्डव, इकट्ठे होकर भी मद्रराज शल्य को रण में जीत नहीं सके ॥२८॥

अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
पीडितान्पाण्डवान्दृष्ट्वा मद्रराजवशं गतान् ॥२६॥
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बलात् ।

सत्यपराक्रमी सात्यकि ने अन्य रथ पर बैठकर मद्रराज से पीड़ित पाण्डवों को देखा। यह देखकर सात्यकि ने, मद्राधिपति पर बड़े वेग से बलपूर्वक आक्रमण किया ॥२६॥

आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः ॥३०॥
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

युद्ध दुर्मद राजा शल्य ने, जब सात्यकि का रथ आता देखा-तो उसने भी अपना रथ इस तरह बढ़ाया, जिस तरह एक मदोन्मत्त हाथी पर दूसरा हाथी झपटता है ॥३०॥

स सन्निपातस्तुमुलो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥३१॥
सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च ।
यादृशो वै पुरावृत्तः शंबरामरराजयोः ॥३२॥

मद्राधिपति और शूरवीर सात्यकि का यह इतना घमसान युद्ध हुआ कि जिसको देखकर सब वीर बड़ा ही अद्भुत मानने लगे। यह शम्बरासुर और इन्द्र के पूर्वकाल में प्रवृत्त भीषण युद्ध के समान था ॥३१-३२॥

सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजमवस्थितम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥३३॥

सात्यकि ने, जब अपने सन्मुख मद्रराज शल्य को देखा-तो उसने दश बाणों से उसे बींध दिया और ठहरो-ठहरो इस प्रकार वचन कहा ॥३३॥

मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना ।
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुंखैः शितैः शरैः ॥३४॥

जब महावीर सात्यकि द्वारा मद्रराज शल्य अत्यन्त आहत हो गया तो उसने विचित्र पङ्खधारी बाणों से सात्यकि को बींध दिया ॥३४॥

ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम् ।
अभ्यवर्तन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकांक्षया ॥३५॥
तत आसीत्परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः ।
शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम् ॥३६॥

इस समय राजा युधिष्ठिर ने सात्वत वंश श्रेष्ठ सात्यकि की रक्षाके निमित्त प्रयाण किया तो महा धनुर्धर अन्य पाण्डवोंने भी अनुगमन किया। उन्होंने अपने मामा शल्यके वधकी आकांक्षा से अपने २ रथों को आगे बढ़ाकर वेगसे उसपर आक्रमण किया।

तेषामासीन्महाराज व्यधिक्षेपः परस्परम् ।
सिंहानामामिषेप्सूनां कूजतामिव संयुगे ॥३७॥

अब रक्त प्रवाह से युक्त घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ। ये युद्ध करते हुए शूरवीर सिंह की भांति गर्जना कर रहे थे ॥३६॥

हे महाराज ! उनका परस्पर इस तरह से रण में घोर आघात होने लगा। जिस तरह मांस लोलुप गरजते हुए दो सिंहों की परस्पर झड़प होती है ॥३७॥

तेषां बाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाऽभवत् ।
अंतरिक्षं च सहसा बाणभूतमभूत्तदा ॥३८॥

उनके सहस्रों बाणों से सारी पृथिवी भर गई। तथा आकाश भी सारा बाणमय ही दिखाई देने लगा ॥३८॥

शरान्धकारं सहसा कृतं तेन समंततः ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ॥३९॥

उसने अपने बाणों से सब ओर अन्धकार कर दिया। इन महावीरों के छोड़े हुए बाणों से बादल से छाकर सर्वत्र छाया हो गई ॥३९॥

तत्र राजन् शरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
स्वर्णपुंखैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तदा ॥४०॥

हे राजन् ! कांचुली से रहित सर्पों के सदृश तथा सुवर्ण मूल-धारी चमकीले बाणों से सारी दिशा प्रकाशित हो उठी ॥४०॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः ।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ॥४१॥

शत्रुनाशक, शूरवीर राजा शल्य ने यह अद्भुत वीर कर्म कर दिखाया-जो अकेले नें युद्ध में बहुत से पाण्डव वीरों से युद्ध कर दिखाया ॥४१॥

मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कंकबर्हिणवाजितैः ।
सम्पतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥४२॥

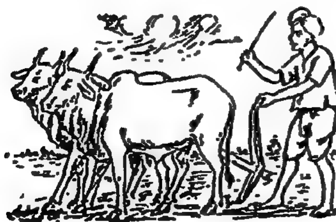
मद्रराज की भुजा से छोड़े हुए, कंक और मयूर पत्ती के पंखों से युक्त, गिरते हुए घोर बाणों से पृथिवी सारी व्याप्त हो गई ॥४२॥

तत्र शल्यरथं राजन्विचरन्तं महाहवे ।
अपश्याम यथा पूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

हे राजन ! इस घोर युद्ध में घूमते हुए, राजा शल्य के रथ को हमने असुर नाशक युद्ध में इन्द्र के रथ के समान देखा ॥४३॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
सात्यकि शल्य आदि के घोर युद्ध वर्णन का
पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सोलहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—ततः सैन्यास्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः।
पुनरभ्यद्रवन्पार्थान् वेगेन महता रणे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर मद्रराज से युक्त तुम्हारे सैनिकों ने बड़े वेग के साथ रणाङ्गण में पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥१॥

पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः।
क्षणेन चैव पार्थास्ते बहुत्वात्समलोडयन् ॥२॥

यद्यपि तुम्हारे पक्ष के वीर बड़े ही पीड़ित होरहे थे तो भी रण में दुर्मद होने से दौड़ रहे थे। उन्होंने बहुत होने के कारण क्षण भर में पाण्डवों को आलोडित कर दिया ॥२॥

ते वध्यमानाः समरे पाण्डवा नावतस्थिरे।
निवार्यमाणा भीमेन पश्यतोः कृष्णयोस्तदा ॥३॥

इन कौरव महावीरों द्वारा पीड़ित किए हुए पाण्डव युद्ध भूमि में ठहर भी नहीं सके। इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन देखरहे थे, कि केवल भीमसेन सबको रोक रहे थे ॥३॥

ततो धनञ्जयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥४॥

अब अर्जुन भी कृपाचार्य और उनके सैनिक तथा कृतवर्मा पर अपने बाण समूह की वर्षा करने लगे ॥४॥

शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवाकिरत् ।
नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥५॥
द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठान्समवारयन् ।
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत् ॥६॥
भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत् ।
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥७॥

सहदेव ने सेना सहित शकुनि पर आक्रमण किया तथा नकुल भी अपने पार्श्व में स्थित मद्रराज शल्य की ओर देखने लगा। द्रौपदी पुत्रों ने बहुत से राजाओं को रोका, अश्वत्थामा को पाञ्चाल वंशोद्भव शिखण्डी रोक रहा था, गदाधारी भीमसेन राजा दुर्योधन से भिड़ रहे थे। इसी तरह कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर ने सेना सहित उपस्थित राजा शल्य पर आक्रमण किया ॥५-७॥

ततः समभवत्सैन्यं संसक्तं तत्र तत्र ह ।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥

हे राजन! इस प्रकार रणक्षेत्र में जहां तहां सारी सेना एक दूसरी सेना से भिड़ गई। संग्राम से नहीं लौटने वाले तुम्हारे और पाण्डव वीरों का युद्ध होने लगा ॥८॥

तत्र पश्याम्यहं कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे ।
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत् ॥९॥

हे राजन्! वहां हमने राजा शल्य का बड़ा भीषण कर्म देखा कि जो अकेला ही पाण्डवों की सारी सेना से युद्ध कर रहा था ॥९॥

व्यदृश्यत तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः ।
रणे चन्द्रमसोऽभ्याशे शनैश्चर इव ग्रहः ॥१०॥

हे महीपते ! अब राजा शल्य धर्मराज के समीप इस तरह दिखाई दिया, जैसे-रण में चन्द्रमा के समीप शनैश्चर ग्रह पहुंचा हो ॥१०॥

पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीविषोपमैः ।
अभ्यधावत्पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत् ॥११॥

राजा शल्य ने प्रथम तो आशीविष के समान अपने बाणों से धर्मराज को पीड़ित किया और फिर आक्रमण करके बाणवर्षा से भीम को आच्छादित कर दिया ॥११॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम् ।
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च ॥१२॥

हे राजन् ! राजा शल्य की शीघ्रता और कृतास्त्रता को देख कर तुम्हारी और पाण्डवों की सेना उसकी प्रशंसा करने लगी ॥१२॥

पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः ।
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे ॥१३॥

शल्य द्वारा अत्यन्त क्षत विक्षत हुए पीड़ित पाण्डव वीर रण छोड़कर भाग निकले और धर्मराज उनको रोकने को पुकारते ही रहे ॥१३॥

वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः ।
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥१४॥

जब मद्रराज शल्य ने सेना को मार बिछाया तो पाण्डु पुत्र धर्मराज राजा युधिष्ठिर, बड़ा ही क्रोध में भर गया ॥१४॥

ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमताडयत् ।
जयो वास्तु वधो वाऽस्तु कृतबुद्धिर्महारथः ॥१५॥

अब अपने पौरुष का अवलम्बन लेकर धर्मराज युधिष्ठिर ने मद्रराज पर प्रहार किया । महारथी धर्मराज ने अब तो यह निश्चय कर लिया, कि जय हो या मृत्यु प्राप्त हो-आज राजा शल्य से निपटारा करके रहूँगा ॥१५॥

समाहूयाब्रवीत्सर्वान् भ्रातॄन् कृष्णं च माधवम् ।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः ॥१६॥
कौरवार्थे पराक्रांताः संग्रामे निधनं गताः ।
यथाभागं यथोत्साहं भवंतः कृतपौरुषाः ॥१७॥
भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः ।

उसने सारे भ्राताओं और वृष्णि वंशोद्भव श्रीकृष्ण से कहा । भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा अन्य राजा कौरवों के निमित्त पराक्रम दिखाते हुए रण में मृत्यु को प्राप्त होगए । तुम लोगों ने भी अपने २ भाग और उत्साह के अनुकूल पराक्रम दिखाया है । अब तो यह महारथी शल्य केवल मेरा भाग अवशिष्ट है ॥१६-१७॥

सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकाधिपम् ॥१८॥
तत्र यन्मानसं मह्यं तत्सर्वं निगदामि वः ।

अब में इस मद्रपति शल्य को जीत लेना चाहता हूँ। इस विषय में जो मेरे विचार हैं-वे मैं तुमसे कहता हूँ ॥१८॥

चक्ररक्षाविमौ वीरौ मम माद्रवतीसुतौ ॥१९॥
अजेयौ वासवेनापि समरे शूरसम्मतौ ।
साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ ॥२०॥

मेरे चक्ररक्षक माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव होवें-जो शूरवीरों में मान्य और इन्द्र द्वारा भी अजेय हैं। ये क्षत्रिय धर्म को प्रधान मान कर अपने मातुल शल्य से युद्ध करने को तत्पर हैं ॥१९-२०॥

मदर्थं प्रतियुद्ध्येतां मानार्हौ सत्यसङ्गरौ ।
मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाऽहं भद्रमस्तु वः ।
इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत ।
योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षात्रधर्मेण पार्थिवाः ॥२२॥

ये मान के योग्य, उत्तम प्रकार से युद्ध करने में समर्थ हैं। आज मैं शल्य को मारलूंगा। या शल्य मुझे ही मारलेंगे। हे लोकवीरों! तुम्हारा कल्याण हो—मैं तुमसे यह सत्य वाणी कहता हूँ। हे महीपालो! मैं क्षत्रिय धर्म को मुख्य मानकर आज अपने मातुल से युद्ध के लिए आगे बढ़ता हूँ ॥२२॥

स्वमंशमभिसन्धाय विजयायेतराय वा ।
तस्य मेऽप्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च ॥२३॥

संसज्जंतु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद्रथयोजकाः।
शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ॥२४॥
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनञ्जयः।
पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ॥२५॥
एवमभ्यधिकः शल्याद्भविष्यामि महामृधे।

मैंने अपने भाग को निश्चित कर लिया है। अब विजय पराजय भगवान् के अधीन है। राजा शल्य के पास मुझ से अधिक शस्त्र और रण सामग्री है। रथ सजाने वाले विद्वान शीघ्र मेरे रथ को सजावें। शिनि पौत्र सात्यकि दक्षिण चक्र और धृष्टद्युम्न बांये चक्र पर नियुक्त होवे आज मेरी पीछे से धनञ्जय अर्जुन रक्षा करता रहे। मेरे आगे चलने वाला शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ भीमसेन होना चाहिए। मैं इस तरह इस युद्ध में राजा शल्य से भी अधिक बलशाली हो जाऊंगा ॥२३-२५॥

एवमुक्तास्तथा चक्रुस्तदा राज्ञः प्रियैषिणः ॥२६॥
ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत्तदा मृधे।

राजा युधिष्ठिर के प्रिय करने के अभिलाषी वीरों ने इतना कहने पर जो कुछ वे चाहते थे, कर दिया। इस तरह इस घोर युद्ध में सेनाओं का बड़ा आनन्द बढ़ गया ॥२६॥

पञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः ॥२७॥
प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात्।

हे राजन् ! पञ्चाल, सोमक और मत्स्य वीरों के सन्मुख, राजा शल्य के मार देने की प्रतिज्ञा करके राजा युधिष्ठिर ने मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया ॥२७॥

ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान् ॥२८॥
अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे ।

इसके अनन्तर शङ्ख भेरी और सैंकड़ों पुष्कल बाजे, पञ्चाल वीर बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥२८॥

तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजं तरस्विनम् ॥२९॥
महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुङ्गवाः ।

ये वीर, आवेश में भरे हुए, महा वेग शाली मद्रराज पर टूट पड़े ॥२९॥

ह्रादेन गजघंटानां शंखानां निनदेन च ॥३०॥
तूर्यशब्देन महता नादयन्तश्च मेदिनीम् ।

हे राजन् ! अब बड़े हर्ष गर्जना गजघंटा की ध्वनि, शङ्खों के निनाद तुरी के महान् शब्द से पृथिवी को शब्दायमान करते हुए कौरव महारथी भी उन पर टूटे ॥३०॥

तान्प्रत्यगृह्णात्पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥३१॥
महामेघानिव बहून्शैलावस्तोदयावुभौ ।

हे भारत ! पाण्डव वीरों का तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन और महापराक्रमी राजा शल्य ने; इस तरह सामना (मुक़ाबिला) किया

जिस तरह महामेघ का उदय और अस्त पर्वत सामना करते रहते हैं ॥३१॥

शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिन्दमम् ॥३२॥
ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव ।

युद्ध में प्रशंसा करने वाला राजा शल्य, अरिनाशक धर्मराज पर इस तरह बाणों की वर्षा करने लगा—जैसे इन्द्र शम्बरासुर पर बरसता रहता है ॥३२॥

तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥३३॥
द्रोणोपदेशान्विविधान्दर्शयानो महामनाः ।
ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥३४॥
न चास्य विवरं कश्चिद्ददर्श चरतो रणे ।

हे राजन ! कुरुवंशश्रेष्ठ धर्मराज ने भी एक सुन्दर धनुष ग्रहण किया। इस महामनस्वी ने भी द्रोण के अनेक प्रकार के उपदेश को सफल करना आरम्भ किया। इसने बड़ी विचित्रता शीघ्रता और उत्तमता के साथ बाण बरसाना आरम्भ किया। रण में बाण फैंकते हुए इसके चढ़ाने और छोड़ने के अन्तर को कोई भी नहीं देख पाता था ॥३३-३४॥

तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ॥३५॥
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे ।

इन दोनों वीरों ने एक दूसरे को परस्पर छेदना आरम्भ किया ये रण में मांस लोलुप, दो सिंहों के सदृश पराक्रम दिखा रहे थे।३५

भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन सङ्गतः ॥३६॥
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
शकुनिप्रमुखान्वीरान्प्रत्यगृह्णन्समन्ततः ॥३७॥

महावीर भीमसेन तुम्हारे युद्ध दुर्मद पुत्र राजा दुर्योधन से उलझ रहा था। पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न सात्यकि और माद्रीपुत्र नकुल सहदेव, शकुनि वीरों से रणाङ्गण में अटके हुए थे ।३६-३७॥

तदासीत्तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम् ।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥३८॥

हे राजन ! तुम्हारी दुर्मन्त्रण से उठे हुए इस युद्ध में अपनी २ विजय के लोलुप, कौरव पाण्डवों में घमसान युद्ध चलपड़ा ॥३८॥

दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा ।
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥३९॥

अब राजा दुर्योधन ने, नतपर्व धारी बाण से भीमसेन की सुवर्णोज्ज्वल ध्वजा रणभूमि में काट गिराई ॥३९॥

स किङ्किणीकजालेन महता चारुदर्शनः ।
पपात रुचिरः संख्ये भीमसेनस्य पश्यतः ॥४०॥

यह ध्वजा सुन्दर २ घूंघरुओं से सुशोभित थी। वह कट कर भीमसेन के देखते देखते रणक्षेत्र में गिरगई ॥४०॥

पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् ।
क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त्त नराधिपः ॥४१॥

तब राजा दुर्योधन ने, गजराज के सूंड के समान उत्तम भीमसेन के धनुप को क्षुरे की धार के समान तीक्ष्ण बाण से काट गिराया ॥४१॥

स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव ।
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत् ॥४२॥

जब भीमसेन का धनुप कट गया-तो वह तेजस्वी रथ शक्ति लेकर झपटा और उसने राजा दुर्योधन के वक्षस्थल में प्रहार किया इस प्रकार से वह मूर्च्छित होकर रथ के मध्य में गिर गया ॥४२॥

तस्मिन्मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः ।
यन्तुरेव शिरः कायात्क्षुरप्रेणाहरत्तदा ॥४३॥

जब राजा दुर्योधन को मूर्च्छा आगई-तो उसने उस के सारथि के शिर को क्षुरोपम बाण से काट कर शरीर से पृथक् करदिया ।

हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत ।
व्यद्रवन्त दिशो राजन्हाहाकारस्तदाऽभवत् ॥४४॥

हे भारत ! जब कुरुराज दुर्योधन का सारथि मारा गया-तो उसके रथ के अश्व, उस रथ को लेकर दिशाओं को भाग गए । उस समय रण में बड़ा ही हाहाकार मच गया ॥४४॥

तमभ्यधावत्त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः ।
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः ॥४५॥

राजा दुर्योधन की रक्षा के निमित्त महारथी द्रोण पुत्र अश्वत्थामा दौड़े । तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की रक्षा के निमित्त ही कृपाचार्य और कृतवर्मा भी दौड़े ॥४५॥

तस्मिन्विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः।
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः ॥४६॥

अश्वत्थामा के पाण्डव सेना को पीड़ित करने पर भीमसेन के सैनिक व्याकुलहो उठे। अब गाण्डीवधारी अर्जुन ने, अपना धनुष उठाया और बाणों से उन लोगों को छिन्न भिन्न कर दिया ॥४६॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्यधावदमर्षितः।
स्वयं सन्नोदयन्नश्वान्दन्तवर्णान्मनोजवान् ॥४७॥

अब राजा युधिष्ठिर, क्रोध में भर कर मद्रराज शल्य पर झपटा। इन्होंने मन के समान वेग शाली दन्त के समान वर्ण वाले, अश्वों को स्वयं आगे बढ़ने को प्रेरित किया ॥४७॥

तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे।
पुरा भूत्वामृदुर्दान्तो यत्तदा दारुणोऽभवत् ॥४८॥

हे राजन्! उस समय हमने कुन्ति पुत्र राजा युधिष्ठिर का अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह बड़ा मृदु और उदार होकर भी बड़ा ही दारुण हो गया ॥४८॥

विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना।
चिच्छेद योधान्निशितैः शरैः शतसहस्रशः ॥४९॥

धर्मराज की आंखें खुली हुई थी और वह क्रोध के मारे काँप रहा था उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से सैंकड़ों हजारों योद्धाओं को मार गिराया ॥४९॥

यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पाण्डवः।
शरैरपातयद्राजन् गिरीन्वज्रैरिवोत्तमैः ॥५०॥

हे राजन्! पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर जिस सेना की ओर निकल जाता था, वह अपने बाणों से उन्हें इस तरह मार बिछाता था, जैसे उत्तम २ वज्रों से पर्वतों को छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है ॥५०॥

साश्वसूतध्वजरथान्रथिनः पातयन्बहून्।
अक्रीडदेको बलवान्पवनस्तोयदानिव ॥५१॥

जिस तरह वायु, मेघों को उड़ा देता है, उसी तरह बलवान् धर्मराज ने अश्व, सारथि, ध्वजा, रथ और बहुत से रथियों को गिराते हुए रण में विचरणा आरम्भ किया ॥५१॥

साश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तींश्चैव सहस्रधा।
व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥५२॥

अश्वारोहों सहित अश्व और सहस्रों पैदलों को क्रुद्ध हुए धर्मराज ने रण भूमि में मार मार कर इस तरह बिछा दिया जैसे रुद्र प्रजा का संहार कर देता है ॥५२॥

शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः।
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥५३॥

इन्होंने बाणवर्षा से इतना विध्वंस उड़ाया कि सारा रणप्रांत शून्य हो गया। धर्मराज ने मद्रेश्वर शल्य पर आक्रमण किया और कहा—हे शल्य! तनक ठहरा रह ॥५३॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः ।

वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात् ॥५४॥

रणक्षेत्र में भीमकर्म कर्ता राजा युधिष्ठिर के व्यवहार को देखकर तुम्हारे पक्ष के वीर भयातुर हो गए। अब शल्य ने धर्मराज पर आक्रमण किया ॥५४॥

ततस्तौ भृशसंक्रुद्धौ प्रध्माय सलिलोद्भवौ ।

समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः ॥५५॥

अब ये दोनों अत्यन्त क्रोध में भर गए और उन्होंने अपने अपने शङ्ख बजाए। ये एक दूसरे को सम्बोधित करके फटकारने और ललकारने लगे ॥५५॥

शल्यस्तु शरवर्षेण पीडयामास पाण्डवम् ।

मद्रराजं तु कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥५६॥

राजा शल्य ने बाणवर्षा से पाण्डु पुत्र राजा युधिष्ठिर को आच्छादित कर दिया। इसी तरह मद्रराज शल्य को कुन्ती पुत्र धर्मराज ने बाण वर्षा से व्याप्त कर डाला ॥५६॥

अदृश्येतां तदा राजन्कङ्कपत्रिभिराचितौ ।

उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥५७॥

हे राजन्! कङ्क पक्षी के पङ्खों से युक्त बाणों से दोनों वीर राजा शल्य और युधिष्ठिर का शरीर व्याप्त दिखाई देने लगा। इन दोनों के शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी ॥५७॥

पुष्पितौ शुशुभाते वै वसन्ते किंशुकौ यथा ।
दीप्यमानौ महात्मानौ प्राणद्यूतेन दुर्मदौ ॥५८॥

इस रक्तधारा से भीगे हुए ये वीर बसन्त में पुष्पों से लदे हुए किंशुक (ढाक) वृक्ष के समान रक्त दिखाई देने लगे। ये महावीर बड़े ही देदीप्यमान और प्राण का पण (बाज़ी) लगाकर युद्ध करना चाहते थे ॥५८॥

दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयम् ।
हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुन्धराम् ॥५६॥
शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद्दुर्योधनाय गाम् ।
इतीव निश्चयो नाभूद्योधानां तत्र भारत ॥६०॥
प्रदक्षिणमभूत्सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः ।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे ॥६१॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत ।

सारी सेना उनको देखकर यह निश्चित नहीं कर सकी कि इन में कौन विजयी होगा। क्या राजा युधिष्ठिर, मद्राधिपति शल्य को मार कर पृथिवी का स्वामी बन जायेगा, या राजा शल्यहीं धर्मराज को मारकर राजा दुर्योधनको पृथिवीका भार सौंप देगा। हे भारत! इस प्रकारका कोई भी निश्चय वहां योद्धाओंको नहीं हो रहा था। अब धर्मराजके युद्ध करते २ उसकी सारीसेना राजा शल्यके दांयी

ओर हो गई। अब राजा शल्य ने सैंकड़ों बाण धर्मराज युधिष्ठिर पर छोड़े और अपने तीक्ष्ण नोक वाले बाण से इसके धनुष को काट गिराया ॥५९-६१॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः ॥६२॥
अविध्यत्कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृंतत।

अब धर्मराज ने दूसरा धनुष उठाया और शल्य पर तीक्ष्ण बाण मारे और क्षुरोपम बाण से इसका धनुष भी काट गिराया ॥

अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥६३॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्यामुभौ तत्पार्ष्णिसारथी।

इसके अनन्तर धर्मराज ने फिर नत पर्वधारी चार बाण छोड़े, जिन से इनके चारों अश्व मार डाले और दो तीक्ष्ण नोक वाले बाणों से दोनों पार्श्व रक्षकों को मार लिया ॥६३॥

ततोस्य दीप्यमानेन पीतेन निशितेन च ॥६४॥
प्रमुखे वर्त्तमानस्य भल्लेनापाहरद्ध्वजम्।
ततः प्रभग्नं तत्सैन्यं दौर्योधनमरिन्दम ॥६५॥

इसके बाद, अग्नि तम, तीक्ष्ण चमकीले भल्ल संज्ञक बाण से धर्मराज ने राजा शल्य की सामने फड़फड़ाती ध्वजा काट डाली। हे अरिमर्दन! यह देखकर कौरव सेना भाग गई ॥६४-६५॥

ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत्तथा कृतम्।
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रवे ॥६६॥

अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा इस अवस्था में वर्तमान राजा शल्य के समीप पहुंचा। वह शल्य को अपने रथ में लेकर रणभूमि से दौड़कर निकल गया ॥६६॥

मुहूर्त्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे।
स्मित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः ॥६७॥

राजा शल्य थोड़ी ही देर को हटा होगा कि राजा युधिष्ठिर गर्जना करने लगे। अब मुसकुराकर मद्राधिपति शल्य दूसरे रथ पर स्थित हुआ ॥६७॥

विधिवत्कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम्।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विपतां लोमहर्षणम् ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

यह रथ, युद्ध विधि के अनुसार सजाया गया था। महा मेघ के समान इसमें ध्वनि थी और बाण आदि शस्त्र फेंकने के यन्त्र (मशीन) लगे थे, जिसको देखकर शत्रुओं के रोमांच खड़े हो जाते थे ॥६८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
युधिष्ठिर शल्य आदि के घोर युद्ध वर्णनका
सौलहवां अध्याय समाप्त हुआ।



सत्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— अथान्यद्धनुरादाय बलवान्वेगवत्तरम् ।

युधिष्ठिरं मद्रपतिर्विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! अब मद्रपति राजा शल्य ने दूसरा बलशाली वेगयुक्त धनुष को उठाया जिससे राजा युधिष्ठिर को घायल करके वह सिंह की तरह गरजने लगा ॥१॥

ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।

अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभः ॥२॥

क्षत्रिय वंश श्रेष्ठ अपरिमित बलशाली, राजा शल्य ने वर्षा करने वाले मेघ की तरह राजा युधिष्ठिर पर बाण वर्षा करना आरम्भ कर दिया ॥२॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिः शरैः ।

सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ॥३॥

उसने सात्यकि को दश, भीमसेन को तीन, सहदेव को भी तीन बाणों से बींधकर राजा युधिष्ठिर को क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तांस्तानन्यान्महेष्वासान्साश्वान्सरथकूबरान् ।

अर्दयामास विशिखैरुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥४॥

इसी तरह अन्य भी बहुत से महारथियों को अश्व, रथ और कूबरों के सहित बाणों से इस तरह पीड़ित किया जैसे उल्काओं से हाथियों को किया जाता है ॥४॥

कुञ्जरान्कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः ।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥५॥

इस रथी श्रेष्ठ शल्य ने हाथी उनके सवार अश्व और अश्वारोही, रथ और रथियों को एक साथ ही मार २ कर यमलोक भेज दिया ॥५॥

बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान्केतनानि च ।
चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥६॥

इसने वेग से अस्त्र युक्त भुजाएँ और ध्वजाएँ काट गिराईं तथा रणभूमि को मृत योद्धाओं से इस तरह व्याप्त कर दिया जैसे कुशा से वेदी व्याप्त कर दी जाती है ॥६॥

तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम् ।
परिवव्रुभृशं क्रुद्धाः पाण्डुपञ्चालसोमकाः ॥७॥

जब इसने अपने शत्रुभूत पाण्डवों की सेना को प्रलयकारी काल की तरह मार २ कर बिछा दी-तो पाण्डव पञ्चाल और सोमक वीर अत्यन्त क्रोध में भर गए और उसे घेरने को आगे बढ़े ॥७॥

तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा पर्याप्तमन्योन्यमथाह्वयन्त ॥८॥

अब भीमसेन, शिनिनप्ता सात्यकि, पुरुष प्रवीर माद्री पुत्र, नकुल सहदेव, भयङ्कर सेना के साथ धर्मराज आगे बढ़े । और वे एक दूसरे को पर्याप्त ललकार में आह्वान करने लगे ॥८॥

ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥६॥

हे नरेन्द्र! योद्धाओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर को पाकर सारे कौरव वीर रणाङ्गण में इसको रोक कर उग्र वेग वाले, पंखधारी बाणों से घायल करने लगे ॥६॥

संरक्षितो भीमसेनेन राजा माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥१०॥

इस समय भीमसेन माद्री पुत्र नकुल सहदेव और सात्यकि ने राजा युधिष्ठिर की रक्षा की। अब धर्मराज ने, उग्र वेग वाले बाणों से मद्राधिपति शल्य की छाती में प्रहार किया ॥१०॥

ततो रणे तावकानां रथौघाः समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥११॥

हे राजन्! जब रणक्षेत्र में तुम्हारे योद्धाओं ने मद्रराज शल्य को बाणों से व्याप्त देखा-तो वे राजा दुर्योधन की इच्छा से बड़े सुसज्जित होकर उत्तम २ वीर उन्हें घेरने को आगे बढ़े ॥११॥

ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्धयत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा

अब मद्रदेश के अधिपति राजा शल्य ने, रणमें सात बाण छोड़कर उसे बींध डाला। हे राजन्! महाबली राजा युधिष्ठिर ने, इस घोर युद्ध में नौ बाण छोड़कर राजा शल्य को बींध दिया १२॥

आकर्णपूर्णायतसम्प्रयुक्तैः शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥

हे राजन ! महारथी, राजा युधिष्ठिर और मद्रपति शल्य ने तेल से तेज किए हुए कान तक खैंचकर छोड़े हुए बाणों से एक दूसरे को आच्छादित कर दिया ॥१३॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥

महाबली शत्रुओं का दुर्धर्ष महारथी दोनों राजाओं ने, रण में एक दूसरे को क्रोध पूर्वक दृष्टि से देखा । और बाणों के समूह से एक दूसरे को बहुत ही घायल कर दिया ॥१४॥

तयोर्धनुर्ज्यातलनिःस्वनो महान्महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥१५॥

महावीर मद्राधिपति और धर्मराज परस्पर एक दूसरे पर बाणवर्षा करने लगे । इस समय इनके धनुष की डोरी की ध्वनि इन्द्र के वज्र के तुल्य सुनाई देती थी ॥१५॥

तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ ततक्षतुः संयति जातदर्पौ ॥१६॥

वे दोनों वीर भयङ्कर वन में मांस लोलुप दो सिंह के बच्चों के समान पराक्रम दिखा रहे थे । ये रणाङ्गण में मदोद्धत दांतों वाले दो हाथियों की तरह एक दूसरे के घाव पहुंचा रहे थे ॥१६॥

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥१७॥

इसके अनन्तर महाबली मद्रराज ने सूर्य और अग्नि के समान बाणों से भयानक बलधारी राजा युधिष्ठिर के हृदय में बल-पूर्वक बड़े वेग से प्रहार किया ॥१७॥

ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि सुसम्प्रयुक्तेन शरेण राजन्।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम्

हे राजन ! अत्यन्त युक्ति के साथ छोड़े हुए बाण से राजा युधिष्ठिर बहुतही घायल होगया। इस महावीर धर्मराज ने, मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया और कौरव वंशश्रेष्ठ धर्मराज ने बड़ा ही आनन्द प्राप्त किया ॥१८॥

ततो मुहूर्त्तादिव पार्थिवेन्द्रो लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥१९॥

धर्मराज के प्रहार से थोड़ी देर को राजा शल्य को मूर्च्छा प्राप्त होगई। जब उसको चेत हुआ-तो उसकी आंखें क्रोध से लाल हो उठी। इन्द्र के समान ओजधारी राजा शल्य ने बड़ी शीघ्रता से सौ बाण कुन्ति पुत्र धर्मराज पर छोड़े ॥१९॥

त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः
भित्वाह्युरस्तपनीयं च वर्म जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः

महावीर धर्मराज ने बड़े वेग से, कोप के साथ, नौ बाण छोड़कर शल्य का हृदय और सुवर्ण का कवच बींध दिया। इस के बाद अन्य छः बाण छोड़ कर उसे और घायल कर दिया॥२०॥

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं धनुर्विकृष्य व्यसृजन्पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञश्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥

अब मद्राधिपति राजा शल्य ने अपना उत्कृष्ट धनुष खैंचा और उससे बाण छोड़ना आरम्भ किया। उससे दो बाण छोड़कर कुरु वंश श्रेष्ठ, राजा युधिष्ठिर का धनुष काट गिराया ॥२१॥

नवं ततोऽन्यत्समरे प्रगृह्य राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ताद्यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः

अब महाबली राजा युधिष्ठिर ने एक अन्य नवीन धनुष ग्रहण किया। इस धनुष से तीक्ष्ण नोक वाले बाण छोड़कर धर्मराज ने शल्य को इस तरह घायल कर दिया जैसे इन्द्र ने नमुचि दैत्य को घायल कर दिया था ॥२२॥

ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कैर्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयोर्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥

अब महावीर राजा शल्य ने भीमसेन और राजा युधिष्ठिर का सुवर्णमय कवच, नौ बाण छोड़कर काट डाला और उसकी भुजा को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२३॥

ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं षड्भिः शरैः सोऽभिमुखः पपात

अब अन्य अग्नि और सूर्य के तुल्य देदीप्यमान, क्षुरोपम तीक्ष्ण बाण से राजा शल्य ने धर्मराज का धनुष काट गिराया।

कृपाचार्य ने अपने छः बाणों से धर्मराज के सारथि को मार गिराया। वह मरकर सन्मुख गिर गया ॥२४॥

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान्।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥

अब मद्राधिपति ने, चार बाण छोड़कर राजा युधिष्ठिर के अश्वों को नष्ट कर डाला। इस तरह महाबली शल्य ने धर्मराज के अश्व मार कर राजा युधिष्ठिर के योद्धाओं का क्षय करना आरम्भ किया ॥२५॥

तथा कृते राजनि भीमसेनो मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा।
छित्वा धनुर्वेगवता शरेण द्वाभ्यामविध्यत्सुभृशं नरेन्द्रम् ॥

जब राजा शल्य ने धर्मराज की यह दुर्दशा करदी-तो महावीर भीमसेनने अपने वेगशाली बाणसे उसे छेद दिया और बाण छोड़कर राज शल्य को बहुत ही घायल कर डाला ॥२६॥

तथाऽपरेणास्य जहार यन्तुः कायाच्छिरः संहननीयमध्यात्
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥

अब भीमसेन ने एक दूसरा बाण छोड़ा। उस बाण से मारने योग्य सेना के मध्य से सारथि का शिर शरीर से पृथक् कर दिया। अत्यन्त कुपित भीमसेन ने बड़ी शीघ्रता से राजा शल्य के चारों अश्वों को मार लिया ॥२७॥

तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणामेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम्।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥

अत्यन्त वेग के साथ रण में घूमते हुए राजा शल्य को सारे धनुर्धरों में अग्रणी, भीमसेन और माद्रीपुत्र सहदेव ने सैंकड़ों शरों से व्याकुल कर दिया ॥२८॥

तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा मद्राधिपश्चर्मसहस्रतारम् ॥२९॥
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा प्रस्कंद्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत्

जब भीमसेन ने अपने बाणों से राजा शल्य को मोहित देखा-तो उसने उसके कवच को बाणोंसे काट डाला। जब भीमसेन ने उसके कवच को काट दिया-तो मद्राधिपति शल्यने सहस्रों तारों से युक्त ढाल और खड्ग को उठाया। वह रथ से कूद पड़ा और कुन्ती पुत्र नकुल पर झपटा। भयानक बलधारी शल्यने नकुल के रथ की ईषा काट डाली और फिर राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥२९-३०॥

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥

अन्तक के समान आक्रमण करते हुए और उछलते हुए राजा शल्य को देखकर धृष्टद्युम्न, द्रौपदी-पुत्र, शिखण्डी, शिनितप्ता सात्यकि ने एक दम उसे घेर लिया ॥३१॥

अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ नदन्प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥३२॥

इसके अनन्तर महात्मा भीमसेन ने नौ बाण छोड़कर राजा शल्य की अद्भुत ढ़ाल काट डाली तथा मुट्ठी पर से खड्ग को भल्ल से काट कर तुम्हारी सेना के मध्य में चमकने लगा ॥३२॥

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टास्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः
नादं च चक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः शंखांश्च दध्मुः शशिसन्निकाशान्

भीमसेन के इस अद्भुत कर्म को देखकर पाण्डवों के उत्तम महारथी, बड़े प्रहर्षित हुए। वे गर्व में भर कर सिंहनाद करने लगे और चन्द्रमा के तुल्य उज्ज्वल शंखों को बजाने लगे ॥३३॥

तेनाथ शब्देन विभीषणेन तथाऽभितप्तं बलमप्रधृष्यम् ।
कां-दिग्भूतं रुधिरेणोक्षिताङ्गं विसंज्ञकल्पं च तदा विषण्णम्

उस भयानक गर्जना से तुम्हारी सारी दुर्धर्ष सेना सन्तप्त हो उठी। वह भयातुर होकर दिशाओं को देखने लगी और उसका सारा शरीर रुधिर से क्षत विक्षत हो गया। वह सेनाहीन होकर बहुत ही व्याकुल हो उठी ॥३४॥

स मद्रराजः सहसा विकीर्णो भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः ॥

जब भीमसेन को साथ लेकर पाण्डवों के मुख्य २ योद्धाओं ने मद्रराज को तङ्ग कर डाला-तो वह वेग से धर्मराज पर इस तरह झपटा, जैसे मृग के निमित्त सिंह झपटता है ॥३५॥

स धर्मराजो निहताश्वसूतः क्रोधेन दीप्तो ज्वलनप्रकाशः ।
दृष्ट्वा च मद्राधिपतिं स्म तूर्णं समभ्यधावत्तमरिं बलेन ॥

राजा युधिष्ठिर के अश्व और सारथि मारे जा चुके थे। वे क्रोध से अग्नि के समान देदीप्यमान होकर चमक उठा। उसने सामने ही अपना शत्रु राजा शल्य देखा। वह उसपर बुरी तरह बलपूर्वक वेग से झपटा ॥३६॥

गोविंदवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य दध्रे मतिं शल्यविनाशनाय
स धर्मराजो निहताश्वसूतो रथे तिष्ठन् शक्तिमेवाभ्यकांक्षत्।

धर्मराज को श्रीकृष्ण के वचन का स्मरण आया। उसन शल्य के मारने के निमित्त विचार किया। धर्मराज के अश्व और सारथि मारे जा चुके थे। उसने उसी रथ में बैठकर शक्ति नामक शस्त्र को ग्रहण किया ॥३७॥

तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म महात्मनो भागमथावशिष्टम्
कृत्वा मनः शल्यवधे महात्मा यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥

राजा युधिष्ठिर ने महावीर शल्य का यह अद्भुत कर्म देखा और उसे अपना भाग समझा अर्थात् अपने मारने के भाग में आने पर भी बचा ही देखा-तो श्रीकृष्ण क वचन के कथनानुसार महात्मा धर्मराज ने उसके मारने का विचार किया ॥३८॥

स धर्मराजो मणिहेमदण्डां जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम्।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत ॥

अब धर्मराज ने मणिजटित सुवर्ण दण्डवाली सुवर्णोज्ज्वल शक्ति उठाई। उसने अपनी क्रोध पूर्ण आंखें बदली और क्रोध के साथ राजा शल्य को देखा ॥३९॥

निरीक्षितोऽसौ नरदेवराज्ञा पूतात्मना निहृतकल्मषेण ।
आसीन्नयद्भस्मसान्मद्रराजस्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥

हे राजन् ! पापरहित पवित्रात्मा धर्मराज ने यद्यपि शल्य को बड़ी क्रोध पूर्ण दृष्टि से देखा-तो भी मद्रराज भस्म नहीं हुआ। महात्मा के क्रोध से देखने पर भी भस्म न होना-एक अद्भुत घटना मुझे प्रतीत हुई ॥४ ॥

ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां मणिप्रवेकोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम्
चिक्षेप वेगात्सुभृशं महात्मा मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥

इसके अनन्तर सुन्दर सुवर्ण दण्डवाली, मणिजटित, प्रदीप्त शक्ति को अत्यन्त वेग से कुरुवंश श्रेष्ठ महावीर धर्मराज ने मद्राधिपति राजा शल्य पर फैंका ॥४१॥

दीप्तामथैनां प्रहितां बलेन सविस्फुलिंगां सहसाऽऽपतंतीम् ।
प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता दिवो युगान्ते महतीमिवोल्काम् ॥

बड़े बल के साथ फैंकी हुई, चिनगारियों से युक्त प्रलयकाल का उल्का तुल्य आकाश से एक दम से गिरती हुई उस शक्ति को कौरवों ने देखा ॥४२॥

तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम्
स ब्रह्मदण्डप्रतिमाममोघां ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥

वह शक्ति पाशधारिणी काल रात्रि के समान भीषण, उग्ररूप वाली यम की धाक के तुल्य भोषण, ब्रह्मदण्डके समान उग्र, उस अमोघ शक्ति को बड़ी सावधानो से युद्ध में धर्मराज ने फैंका ॥४३॥

गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनैरभ्यर्चितां पाण्डुसुतैः प्रयत्नात् ।
सांवर्त्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं कृत्यामथर्वांगिरसीमिवोग्राम्
ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम्
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम्
घण्टापताकां मणिवज्रनीलां वैदूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम् ।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥
बलप्रयत्नादधिरूढवेगां मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात् ।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥

पाण्डु पुत्रोंने इस शक्ति को गन्ध, माला उत्तम आसन, पान और भोजनों से प्रयत्न पूर्वक पूज रखा था। वह प्रलय काल की अग्नि सी जल रही थी तथा उग्र अथर्व वेद से उत्पन्न कृत्या राक्षसी सी दिखाई देती थी। विश्वकर्मा ने रुद्र के निमित्त उसे रचा था जो शत्रुओं को देह का भक्षण कर जाती थी यह पृथिवी अन्तरिक्ष और जलाशयों को जला देने वाली सारे भूतों को प्रसह्य नष्ट कर देने में समर्थ, घण्टा पताकाओं से युक्त मणि वज्र आदि से नील वर्ण वाली, वैदूर्य मणि से युक्त जटित और सुवर्ण दण्ड वाली थी। विश्वकर्मा ने उस शक्ति को प्रयत्न पूर्वक नियमानुसार ब्रह्मद्वेषियों के बध के लिये बनाया था। यह निष्फल नहीं जा सकती थी। बल के प्रयत्न से इसने और भी वेग बढ़ रहा था। घोर मन्त्रों से इसका अभिमन्त्रण कर रखा था। उसको उत्कृष्ट मार्ग द्वारा मद्रपति के बधके योग्य बनाया ॥४४-४७॥

हतोऽसि पापेत्यभिगर्जमानो रुद्रोऽन्धकायांतकरं यथेषुम् ।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥

हे पापी! अब तू मारा गया-इतना कहकर गर्जना के साथ बाण को अन्धकासुर पर रुद्र के समान धर्मराज ने उस शक्ति को फैंका। धर्मराज ने क्रोध से अपनी दृढ़ भुजा फैलायी और रणाङ्गण में नाच सा करने लगा ॥४८॥

तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥

राजा युधिष्ठिर ने किसी भी तरह नहीं रुकने वाली शक्तिको अपनी सारी शक्ति लगाकर फैंका। राजा शल्य ने भी उस शक्ति को देख कर इस तरह गर्जना की जैसे घृतधारा को देखकर अग्नि हंसने लगता है ॥४९॥

सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्रमुरो विशालं च तथैव भित्त्वा
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती ॥

वह शक्ति राजा शल्य के मर्मों को विदीर्ण करके तथा उसके शुभ विशाल, हृदय को चीरकर सरलता से पृथिवी में पानी की तरह घुस गई। इसने राजा शल्य के सारे यश को दग्ध कर दिया॥

नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन प्रस्यन्दता च व्रणसंभवेन ।
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत्क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः

इस समय राजा शल्य की नाक, आंख, और मुख तथा वर्णों से बहते हुए रक्त से उसका सारा शरीर भीग गया। वह स्कन्द द्वारा आहत किए गए क्रौंच पर्वत के समान प्रतीत होने लगा ॥५१॥

प्रसार्य बाहू च रथाद्गतो गां संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा वज्राहतं शृंगमिवाचलस्य ॥

अब राजा शल्य हाथ फैलाकर रथ से नीचे गिर पड़ा। राजा युधिष्ठिर द्वारा इसका कवच छिन्न-भिन्न कर दिया गया था। महावीर राजा शल्य, इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी के सदृश आकार वाले थे। वे वज्र से आहत पर्वत के शिखर के तुल्य रणभूमि में पड़े हुए प्रतीत होने लगे ॥५२॥

बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्।
ततो निपतितो भूमाविंद्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥५३॥

हे राजन्! मद्रराज, शल्य, भुजा फैलाकर धर्मराज के सन्मुख इस तरह भूमि में गिर गया जैसे अत्यन्त उच्छ्रित इन्द्र की ध्वजा कटकर गिर गई हो ॥५३॥

स तथा भिन्नसर्वांगो रुधिरेण समुक्षितः।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः ॥५४॥
प्रियया कान्तया कांतः पतमान इवोरसि।
चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कांतामिव प्रभुः ॥५५॥
सर्वैरंगैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव चाभवत्।

राजा शल्य के सारे अङ्ग छिन्न भिन्न हो गए। वह रक्तधारा से बहुत ही भीग गया। यह नर श्रेष्ठ, इस रक्तधारा से ऐसा प्रतीत

हुआ मानो अपनी प्रिया भूमि के प्रेम की धारा में भीग रहा हो अपनी प्रिय कान्ता के हृदय से लिपट कर पड़े हुए पतिके समान राजा शल्य पड़े थे। चिरकाल तक भोगी हुई अपनी कान्ती के समान चिरकाल तक भोगी हुई पृथिवी सारे अङ्गों से आलिङ्गन करके मानो बड़े आनन्द के साथ राजा शल्य पड़े थे ॥५४-५५॥

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहते धर्मसूनुना ॥५६॥
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोग्निरिवाध्वरे ।

इस धर्म युद्ध में धर्मात्मा धर्मराज द्वारा मारे गए मद्रराज शल्य इस तरह शान्त हो गए-जैसे अच्छी तरह घृत से हवन किया हुआ अग्नि, यज्ञ वेदी में शान्त हो गया हो ॥५६॥

शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम् ॥५७॥
संशांतमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुंचति ।

राजा शल्य का हृदय धर्मराज की शक्ति से विदीर्ण हो गया इस के आयुध और ध्वजा कट फट गई। यद्यपि मद्रराज शान्त हो चुके-तो भी उनकी कान्ती फीकी नहीं पड़ती थी ॥५७॥

ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम् ॥५८॥
व्यधमद्द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान् ।

अब राजा युधिष्ठिर ने अपना इन्द्र धनुष के समान कान्ति वाले धनुषको उठाया और उससे शत्रुओंको रणमें इस तरह मार बिछाया, जैसे गरुड़ सर्पों को मार गिराता है ॥५८॥

देहान्सुनिशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन् क्षणात् ॥५९॥
ततः पार्थस्य बाणौघैरावृताः सैनिकास्तव ।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः ॥६०॥
क्षरन्तो रुधिरं देहैर्विपन्नायुधजीविताः ।

राजा युधिष्ठिर ने शत्रुओं की देहों को अपने भल्ल संज्ञक बाणों से क्षणभर में नष्ट कर दिया। धर्मराज के बाणों से तुम्हारे सैनिक अत्यन्त आच्छादित हो गये। बाणों से आहत वीरों की आँखें मिचने लगी। वे एक दूसरे पर गिर कर उनको कुचलने लगे। उनकी देहों से रक्त गिर रहा था। और उनके आयुध और जीवन समाप्त हो चुके थे ॥५९-६०॥

ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा ॥६१॥
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वै रथी पाण्डवमभ्ययात् ।

जब राजा शल्य मारे गए-जो उनका छोटा भ्राता बिल्कुल युवा था। वे भी अपने भ्राता के गुणों से सम्पन्न था। वह महारथी अब धर्मराज पर झपटा ॥६१॥

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन् ॥६२॥
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः ।
तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव ॥६३॥

इस युद्ध दुर्मद वीर श्रेष्ठ राजा शल्य के भ्राता ने अपने भ्राता के बदला चुकाने के लिए बहुत से नाराच बाणों से बड़ी शीघ्रता के साथ आक्रमण किया। इसने झटपट छः बाण छोड़कर धर्म-

राज को घायल कर दिया। तथा दो क्षुरोपम बाणों से इसके धनुष और ध्वजा को काट डाला ॥६२-६३॥

कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च ।
ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च ॥६४॥
प्रमुखे वर्त्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः ।
सकुण्डलं तद्ददृशे पतमानं शिरो रथात् ॥६५॥

अपने धर्मराज ने अपने दृढ़ तीक्ष्ण, प्रदीप्त भल्ल संज्ञक बाण से सन्मुख उपस्थित राजा शल्य के भ्राता का शिर शरीर से दूर कर दिया। वह कुण्डलों से सुशोभित मस्तक रथ से गिरता हुआ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पुण्यक्षय होने से स्वर्ग से कोई पुण्यात्मा गिर रहा हो ॥६३-६५॥

पुण्यक्षयमनुप्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः ।
तस्यापकृत्तशीर्षं तु शरीरं पतितं रथात् ॥६६॥

जब शल्य भ्राता का शिर कट गया। जब सेना ने उस शरीर को रक्त में भीगा हुआ देखा तो वह भाग निकली ॥६६॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्टा सैन्यमभज्यत ।
विचित्रकवचे तस्मिन्हते मद्रनृपानुजे ।६७॥

जब विचित्र कवचधारी मद्रेश्वर शल्य का भ्राता भी मारा गया तो हाहा कार करते हुए कौरव भाग निकले ॥६७॥

हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः ।
शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः ॥६८॥

विनेशुः पाण्डवभयाद्रजोध्वस्तास्तदा भृशम् ।

राजा शल्य के भ्राता को मृत देखकर तुम्हारे सैनिकों को अपने जीवन से निराशा हो गई। ये सारे धूलिमें सने हुए थे। अब ये पांडवों से भयभीत हो उठे ॥६८॥

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ ॥६९॥
शिनेर्नप्ता किरन् बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः ।

हे भरतर्षभ ! जब शिनिनप्ता सात्यकि ने कौरव सेना को भागती देखी-तो वह बाणों की झड़ी लगाता हुआ उसके पीछे २ दौड़ा ॥६९॥

तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम् ॥७०॥
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन्प्रत्यगृह्णादभीतवत् ।

हे राजन ! जब महाधनुर्धर, दुष्प्रसह्य, दुरासद, आते हुए सात्यकि को देखा तो निर्भीक भाव से हृदिक पुत्र कृतवर्मा ने आगे बढ़कर उन्हें रोका ॥७०॥

तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ ॥७१॥
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ।

अब उत्तम २ रथ पर चढ़े हुए दोनों वृष्णिवंशोद्भव, महावीर कृतवर्मा और सात्यकि बलवान सिंहों की तरह युद्ध करने लगे॥७१॥

इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ॥७२॥
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ ।

इन्होंने परस्पर एक दूसरे को चमकीले बाणों से आच्छादित कर दिया। ये ऐसे प्रतीत होने लगे-जैसे किरणों से दो सूर्य उदय को प्राप्त हो रहे हों ॥७२॥

चापमार्गबलोद्भूतान्मार्गणान्वृष्णिसिंहयो ॥७३॥

आकाशगानपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ।

अपने २ बल से छोड़े हुए, इन दोनों वृष्णि वीरों के आकाशचारी, बाण, शीघ्रगामी सूर्य के समान प्रतीत होते थे ॥७३॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ॥

चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा ।

अब हृदिक पुत्र कृतवर्मा ने, दश बाणों से सात्यकि, तीन बाणों से अश्व, और नतपर्व धारी एक बाण से उसका धनुष काट डाला ॥७४॥

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ॥७५॥

अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् ।

जब सात्यकि का धनुष कट गया-तो उसने उसे फैंकदिया और दूसरा वेगशाली धनुष अपने हाथ में उठाया ॥७५॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ॥७६॥

हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।

सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ, सात्यकि ने इस दूसरे धनुष को उठाकर कृतवर्मा की छाती में दश बाणों से प्रहार किया ॥७६॥

ततो रथं युगेषां च च्छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः ॥७७॥

अश्वांस्तस्यावधीत्तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।

अब सात्यकि ने इसके रथ जूड़े, ईषा (अग्रभाग) को अपने सुचारु बाणों से काट दिया। और बड़ी शीघ्रता से अश्व तथा दोनों पार्ष्णि रक्षकों को मार गिराया ॥७७॥

ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो ॥७८॥
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान् ।

हे प्रभो ! जब शारद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने कृतवर्मा को रथ विहीन देखा-तो वह वीर्यवान्, कृप, उसे शीघ्र अपने रथ में लेकर रणभूमि से बाहर निकल गया ॥७८॥

मद्रराजे हते राजन्विरथे कृतवर्मणि ॥७९॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ।

हे राजन् ! जब मद्रराज मारा गया, और कृतवर्मा, रथहीन कर दिए गए-तो राजा दुर्योधन की सेना युद्ध से पराङ्मुख हो गई ॥७९॥

स्वे परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसाऽऽवृते ॥८०॥
बलं तु हतभूयिष्ठं तत्तदासीत्पराङ्मुखम् ।

इस समय सारी सेना रण में उठी हुइ धूली में दिखाई भी नहीं देती थी। जब कौरव सेना का बहुत भाग मारा गया-तो वह युद्ध से पीछे हट गई। ॥८०॥

ततो मुहूर्तात्तेऽपश्यन् रजो भौमं समुत्थितम् ॥८१॥
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ।

हे पुरुषर्षभ ! जो धूलि, रणभूमि में उठी हुई थी, वह थोड़ी ही देर में अनेक प्रकार के रुधिर स्राव से बिल्कुल शान्त होगई ॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥८२॥

जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत् ।

जब राजा दुर्योधन ने, अपने सन्मुख ही अपनी सेना को भागते देखा-तो वह वेग से आक्रमण करने वाले सारे पाण्डवों को अकेला ही रोकने लगा ॥८२॥

पाण्डवान्सरथान्दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥८३॥

आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत् ।

तं परे नाभ्यवर्त्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम् ॥८४॥

अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत ।

राजा दुर्योधन, रथियों सहित पाण्डव पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न और दुराधर्ष सात्यकि को देखकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उन्हें रोकने लगा। इस समय शत्रुवीर राजा दुर्योधन के सन्मुख इस तरह नहीं बढ़ सके-जैसे मृत्यु के सन्मुख मनुष्य नही जा सकते हैं। अब दूसरे रथपर बैठकर हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी लौटे ॥८३-८४॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥८५॥

चतुर्भिर्निजघानाश्वान्पत्रिभिः कृतवर्मणः ।

अब महारथी, राजा युधिष्ठिर ने बड़ी शीघ्रता से चार बाण छोड़कर कृतवर्मा के चारों अश्वों को मार गिराया ॥८५॥

विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः ॥८६॥

अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम् ।

तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात् ॥८७॥

राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त तीक्ष्ण छः भल्ल संज्ञक बाणों से गौतम गौत्रोत्पन्न कृपाचार्य को बींध दिया। राजा युधिष्ठिर द्वारा रथ हीन और अश्वहीन बनाए हुए हृदिक पुत्र कृतवर्मा को अश्वत्थामा, अपने रथ में लेकर धर्मराज के सामनेसे चलते बने ८६-८७॥

ततः शारद्वतः षड्भिः प्रत्यविद्ध्यद्युधिष्ठिरम् ।
विव्याध चाश्वान्निशितैस्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः ॥

अब शरद्वान पुत्र कृपाचार्य ने, छः बाणों से राजा युधिष्ठिर को बींध दिया। इसने तीक्ष्ण आठ बाणों से इसके अश्वों को भी घायल कर दिया ॥८८॥

एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्त्तत ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्सहपुत्रस्य भारत ॥८९॥

हे महाराज! आपने अपने पुत्र राजा दुर्योधन के साथ सम्मति करके जो यह युद्ध खड़ा किया उसका शेष युद्ध इस तरह समाप्त हुआ ॥८९॥

तस्मिन्महेष्वासधरे विशस्ते संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन ।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः शङ्खान्प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम् ॥

हे भारत! जब महाधनुर्धर, राजा शल्य, रणक्षेत्र में कुरुवंश श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर द्वारा मारे गए तो वे पाण्डव, राजा शल्य को मृत देखकर, इकट्ठे ही शंख बजाने लगे और बड़ेही प्रसन्न हुए ॥९०॥

युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ पुराकृते वृत्रवधे यथेन्द्रम् ।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान्निनादयन्तो वसुधां समेताः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शल्यवधे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

वे युद्ध में राजा युधिष्ठिर की इस तरह प्रशंसा करने लगे, जैसे वृत्रासुर के वध में देवों ने इन्द्र की प्रशंसा की थी। उन्होंने पृथिवी को शब्दायमान करते हुए अनेक प्रकार के बाजे बजाए।६१।

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में शल्य वध का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

अठारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच— शल्येऽथ निहते राजन्मद्रराजपदानुगाः।

रथाः सप्तशता वीर निर्ययुर्महतो बलात् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे वीरश्रेष्ठ! राजन्! जब मद्रेश्वर राजा शल्य मारे गए तो उनके सातसौ रथी सैनिक बड़े वेग के साथ सेना से चल दिए ॥१॥

दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसन्निभम्।

छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ॥२॥

न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत्।

जब राजा दुर्योधन ने उनको युद्ध भूमि से जाता देखा तो वह पर्वतोपम हाथी पर चढ़कर उनके सन्मुख आया। राजा दुर्योधन

के ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था और सेवक चंवर ढुला रहे थे। तुम लोग युद्ध छोड़ कर अपने देश को न जाओ-इस प्रकार कह कर कुरुराज ने उनको रोका ॥२॥

दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥३॥
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन्बलम् ।

हे राजन ! जब राजा दुर्योधन ने उनको बार २ आग्रह करके रोका वे राजा युधिष्ठिर के बध करने के निमित्त फिर पाण्डव सेना में घुस पड़े ॥३॥

ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने ॥४॥
धनुःशब्दं महत्कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः ।

हे महाराज ! अब उन वीरों में युद्ध के लिए उमङ्ग भर गया। वे धनुष की टङ्कार करके पाण्डवों के साथ युद्ध में तत्पर हुए ॥४॥

श्रुत्वा च विहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम् ॥५॥
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः ।
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ॥६॥
पूरयन्रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः ।

जब अर्जुन ने सुना कि राजा शल्य मारे गए और धर्मराज को मद्रराज के हित में तत्पर उसके महारथियों ने घेर लिया है, तो वह धनुष फिराता हुआ वहां आ पहुंचा। महारथी अर्जुन ने अपने रथ घोष से सारी दिशाएं भरदी ॥५-६॥

ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥७॥
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाञ्चालाः सहसोमकैः ॥८॥
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात्पर्यवारयन् ।

हे महीपते ! अब अर्जुन, भीमसेन, माद्री पुत्र नकुल सहदेव, नर श्रेष्ठ सात्यकि सारे द्रौपदी पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पञ्चाल और सोमक वीरोंनें, राजा युधिष्ठिर की रक्षा के अभिप्राय से उसे सब ओर से घेर लिया ॥७-८॥

ते समन्तात्परिवृताः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥९॥
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा ।

जब महावीर सारे पाण्डवों ने घेरा बना लिया-तो अब वे कौरव सेनाको इस तरह आलोड़ित करने लगें-जैसे समुद्रको मकर आलोड़ित करते हैं ॥९॥

वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकान् ॥१०॥
पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी ।
अक्षोभ्यत तदा राजन्पाण्डूनां ध्वजिनी ततः ॥११॥

हे राजन् ! बड़ी आंधी जिस तरह वायु को कम्पित कर देती हैं, वसी तरह उन्होंने तुम्हारी सेना को कम्पित कर दिया। पूर्वी वायु से कम्पित महानदी गङ्गा की भांति सारी पाण्डव सेना तरङ्गित हो उठी ॥१०-११॥

प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः।
वहवश्चक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः ॥१२॥
भ्रातरो वाऽस्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केनच।
धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥१३॥
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः।

हे भरतर्षभ! अब महावीर मद्रदेश के महारथियों ने पाण्डव सेना पर आक्रमण किया। उन में वहुत से वीर पुकारने लगे कि राजा युधिष्ठिर कहाँ है उनके भ्राता भीम आदि पाण्डव भी कहां गए-वे शूरवीर भी दिखाई नहीं देते हैं। धृष्टद्युम्न, सात्यकि, सारे द्रौपदी पुत्र महा पराक्रमी पञ्चाल,महारथी शिखण्डी कहां छुप गए॥

एवं तान्वादिनः शूरान्द्रौपदेया महारथाः ॥१४॥
अभ्यघ्नन्युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान्।

जब इस तरह उन मद्रराज के सैनिकों ने चिल्लाना आरम्भ किया-तो द्रौपदी पुत्र और सात्यकि ने उनको मारना आरम्भ किया ॥१४॥

चक्रैर्विमथितैः केचित्केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः ॥१५॥
ते दृश्यन्तेऽपि समरे तावका निहताः परैः।

हे राजन्! अब किन्ही मद्र महारथियों के चक्र टूट गए और वहुतों की बड़ी २ ध्वजा छिन्न भिन्न हो गई। इस तरह शत्रुओं ने तुम्हारे सैनिकों को बुरी तरह छिन्न भिन्न कर दिया ॥१५॥

आलोक्य पाण्डवान्युद्धे योधा राजन्समन्ततः ॥१६॥

वार्यमाणा ययुर्वेगात्पुत्रेण तव भारत ।

दुर्योधनश्च तान्वीरान्वारयामास सांत्वयन् ॥१७॥

न चास्य शासनं केचित्तत्र चक्रुर्महारथाः ।

हे भारत ! जब पाण्डवों को इस वीरता के साथ मद्र वीरों ने अपने सन्मुख देखा तो वे शीघ्रता से आक्रमण करने को झपटे। यद्यपि राजा दुर्योधन उन्हें रोक रहे थे। राजा दुर्योधन ने बहुत कुछ समझा बुझाकर, उन सैनिकों को रोकना चाहा परन्तु उन महारथियों में से किसी ने भी उसकी आज्ञा नहीं मानी ॥१७॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ॥१८॥

दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः ।

हे महाराज ! अब गान्धार राज का पुत्र बोलने में चतुर शकुनि राजा दुर्योधन से यह वचन कहने लगे ॥१८॥

किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम् ॥१९॥

न युक्तमेतत्समरे त्वयि तिष्ठति भारत ।

हे भारत ! हम लोग तो खड़े देख रहे हैं, और मद्र वीरों की सेना का इस तरह विध्वंस हो रहा है ॥१९॥

सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः ॥२०॥

अथ कस्मात्परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप ।

हे नृप ! हम लोगों ने तो यह नियम बना लिया था, कि अब सब साथ २ युद्ध किया करेंगे । अब आप इस तरह मार काट मचाते हुए शत्रुओं की कैसे उपेक्षा कर रहे हैं ॥२०॥

दुर्योधन उवाच— वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम
एते विनिहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् ।

राजा दुर्योधन ने कहा—मैंने इस सेना को प्रथम रोका था, कि तुम इस तरह आक्रमण मत करो, परन्तु इन्होंने मेरी बात नहीं मानी । ये बिखर गये-इससे पाण्डु सेना से घिर कर नष्ट हो रहे हैं ॥२१॥

शकुनि रुवाच— न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः
अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम् ।

शकुनि ने कहा—हे राजन ! जब वीरों को आवेश आजाता है तब वे स्वामी का वचन न मानकर भी आक्रमण कर देते हैं । अब आप क्रोध न करो यह समय उपेक्षा का नहीं है ॥२२॥

यामः सर्वे च सम्भूय सवाजिरथकुञ्जराः ॥२३॥
परित्रातुं महेष्वासान्मद्रराजपदानुगान् ।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ॥२४॥

हे नृप ! अब हम लोग, अश्व, रथ और हाथियों की सेना लेकर इकट्ठे ही महाधनुर्धर मद्रराज के सैनिकों की रक्षा के निमित्त आक्रमण करें । इस तरह बड़े प्रयत्न के साथ एक दूसरे की रक्षा में समर्थ होसकेंगे ॥२३-२४॥

एवं सर्वेऽनुसञ्चिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ।
सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महताऽवृतः ॥
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

सञ्जय बोले—हे राजन ! यह सोचकर सारे वीर वहां चल दिए-जहां मद्र सैनिक युद्ध कररहे थे शकुनि के वचन मान कर राजा दुर्योधन भी विशाल सेना लेकर सिंह नाद से पृथिवी को कंपाते हुए वहां पहुंचे ॥२५॥

हत विद्ध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥२६॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ।

हे भारत ! इस समय तुम्हारी सेना में ये ही घोर शब्द हो रहे थे, कि मारो बींधों, पकड़ो प्रहार करो और काट डालो ॥२६॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ॥२७॥
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ।

पाण्डवों ने भी जब मद्रराज के सैनिकों को रण में देखा तो उन इकट्ठे ही वीरों पर मध्यम गुल्म नामक व्यूह रचना करके आक्रमण किया ॥२७॥

ते मुहूर्ताद्रणे वीरा हस्ताहस्ति विशाम्पते ॥२८॥
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ।
ततो नः सम्प्रयातानां हता मद्रास्तरस्विनः ॥२६॥

हे विशाम्पते ! थोड़ी ही देर में रण में वीरों की हाथापाई होने लगी । इस समय मद्रराज के सैनिक मरते ही दिखाई देने

लगे। जब तक हम लोग वहां पहुंचे तब तक सारे वेगशाली मद्र वीर मारे जाचुके ॥२८-२९॥

हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्सहिताः परे ।
उत्थितानि कबन्धानि समदृश्यन्त सर्वशः ॥३०॥
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम् ।

इस समय शत्रुभूत पाण्डव, इकट्ठे होकर हर्षपूर्वक ध्वनि करने लगे। जिधर देखो-उधरही कबन्ध युद्ध करते हुए दिखाई देरहे थे अब आकाश मण्डल से एक विशाल उल्कापात हुआ ॥३०॥

रथभग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ॥३१॥
अश्वैर्निपतितैश्चैव सञ्छन्नाऽभूद्वसुन्धरा ।

बहुत से रथ जूड़े और अक्ष टूट गए, बहुत से महारथी मारे गए। अश्वों के गिरने से सारी रणभूमि, व्याप्त होगई ॥३१॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः ॥३२॥
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ।

हे महाराज! रथों के जूड़े में जुड़े हुए अश्व, वायु के वेग से दौड़ रहे थे। रणक्षेत्र में इस तरह जिधर देखो-उधर ही योद्धा दिखाई देरहे थे ॥३२॥

भग्नचक्रान्रथान्केचिदहरंस्तुरगा रणे ॥३३॥
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।

हे राजन् ! इस समय रणभूमि में अश्व, टूटे चक्र वाले रथों को लिए फिरते थे। तथा कुछ अश्व, आधे रथ को ही लिए हुए रणस्थल में भाग रहे थे ॥३३॥

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः ॥
रथिनः पतमानाश्च दृश्यन्ते स्म नरोत्तमाः ।
गगनात्प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥३५॥

जोतों से युक्त ग्रीवा वाले बहुत से अश्व, इधर उधर भाग रहे थे। तथा नरश्रेष्ठ, महारथी भी इधर उधर दृष्टिगोचर आरहे थे, ये वीर स्वर्ग से गिरे हुए क्षीण पुण्य वाले सिद्ध तपस्वी से दिखाई देते थे ॥३४-३५॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥३६॥
अभ्यवर्त्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्रान् शङ्खनिःस्वनैः ॥३७॥

जब मद्रराजके सैनिक शूरवीर मारे गए, तो पाण्डव महारथियों ने हमारी ओर दृष्टि डाली। हम लोगों को देखते ही विजय की अभिलाषा से उन प्रहार कुशल वीरों ने हमपर आक्रमण किया वे शङ्ख ध्वनि के साथ बाणों के शब्द करने लगे ॥३६-३७॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रचुक्रुशुः ॥३८॥
ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत् ।

लक्ष्य को बींध देने में कुशल महाबली पाण्डव योद्धा, हम लोगों के समीप आकर धनुष कंपाते हुए सिंह नाद करने लगे॥३८॥

मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ॥३९॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ।

जब राजा दुर्योधन की सेना ने मद्रराज की विशाल सेना नष्ट हुई देखी-तथा रणाङ्गण में शूरवीर राजा शल्य को पतित देखा-तो वह फिर युद्ध से मुख मोड़कर चलदी ॥३९॥

वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥
दिशो भेजेऽथ संभ्रान्तं भ्रामितं दृढधन्विभिः ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

हे महाराज ! विजयोन्मत्त पाण्डवों द्वारा आहत की गई तथा दृढ़ धनुर्धर पाण्डवों से चक्कर में डाली हुई कौरव सेना घबड़ाकर दिशाओं को भाग निकली ॥४०॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्य वध पर्व में
शल्य सेना के विनाश का अट्ठारहवां
अध्याय समाप्त हुआ।

उन्नीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे ।

तावकास्तवपुत्राश्च प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥१॥

सञ्जय कहने लगा—हे राजन् ! जब महारथी युद्ध में दुर्धर्ष मद्रराज राजा शल्य मारे गए-तो तुम्हारे सारे पुत्र प्रायः युद्ध से विमुख होगए ॥१॥

वणिजो नावि भिन्नायां यथाऽगाधे ल्पवेऽर्णवे ।

अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना ॥

मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥२॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ।

महावीर धर्मराज द्वारा शूरवीर शल्य के मारे जाने पर अपार और अगाध समुद्र में नौका के टूट जाने पर पार जाने की इच्छा वाले व्यापारियों की सी कौरव सेना की दशा होगई। हे महाराज ! जब मद्रराज शल्य मारे गए तो कौरव सैनिक बाणों से व्याकुल होकर बड़े घबड़ाए। वे अनाथ हुए, इस समय रक्षक की खोज में थे। इनकी दशा सिंह से अर्दित मृगों की सी हो रही थी ॥२॥

वृषा यथा भग्नशृङ्गा शीर्णदंता यथा गजाः ॥३॥

मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताऽजातशत्रुणा ।

टूटे सींग वाले वृषभ और टूटे दांत वाले गजों की तरह हम लोग अजात शत्रु धर्मराज से पराजित होकर रणभूमि से मध्यान्ह काल में लौट पड़े ॥३॥

न संधातुमनीकानि न च राजन्पराक्रमे ॥४॥
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित् ।

हे राजन ! राजा शल्य के मारे जाने पर सेना के व्यूह बनाने और पराक्रम दिखाने में किसी भी कौरव वीर की रुचि न रह गई थी ॥४॥

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ॥५॥
यद् दुःखं तव योधानां भयं चासीद्विशाम्पते ।

हे भारत ! भीष्म द्रोण और सूतपुत्र कर्ण मारे जाचुके थे । हे विशाम्पते ! अब तक तो तुम्हारे योद्धाओं को दुःख था अब वह दुःख भय में परिवर्तित हो गया ॥५॥

तद्भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत ॥६॥
निराशाश्च जये तस्मिन्हते शल्ये महारथे ।

वह भय और शोक राजा शल्य के मारे जाने पर और भी बढ़ गया और विजय में तो बिल्कुल ही निराशा होगई ॥६॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः ॥७॥
मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन्भयात् ।

हे राजन् ! जब राजा शल्य मारे गए-तो तीक्ष्ण बाणों से बहुत से कौरव वीर मारे गए, और बहुत क्षतविक्षत होकर गिर गए वे भयभीत होकर अब भाग खड़े हुए ॥७॥

अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ॥८॥
आरुह्य जवसंपन्नाः पादाताः प्राद्रवंस्तथा ।

बहुत से महारथी, अश्व, कुछ हाथी और कुछ रथों पर चढ़ कर वेग के साथ भाग निकले और कुछ पैदल ही भाग पड़े ॥८॥

द्विसाहस्राश्च मातंगा गिरिरूपाः प्रहारिणः ॥९॥
संप्राद्रवन्हते शल्ये अंकुशांगुष्ठनोदिताः ।

राजा शल्य के मरते ही प्रहार करने में कुशल, पर्वत के समान आकार धारी दो सहस्र हाथी, अकुंश रूपी अगूंठे के दबाते ही रणभूमि से भाग निकले ॥९॥

ते रणाद्भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन्दिशः ॥१०॥
धावतश्चाप्यपश्याम श्वसमानान् शराहतान् ।

हे भरतश्रेष्ठ ! अब तुम्हारे वीर रण छोड़कर दिशाओं को भाग गए। वे वीर कुत्ते के समान भागे जा रहे थे और बाणों से आहत थे ॥१०॥

तान्प्रभग्नान् द्रुतान्दृष्ट्वा हतोत्साहान्पराजितान् ॥११
अभ्यवर्त्तन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः ।

हे राजन ! तुम्हारे सैनिकों को हतोत्साह और पराजित होकर भागते देखकर विजोन्मत्त पाण्डव और पञ्चाल लौट पड़े ॥११॥

बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः ॥१२॥
शंखशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत ।

य नाण शब्द और पुष्कल सिंह नाद कर रहे थे। इन शूर-वीरों ने शंखों की ध्वनि, बहुत ही दारुण होउठी ॥१२॥

दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ॥१३॥

अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।

अद्य राजा सत्यधृतिर्हतामित्रो युधिष्ठिरः ॥१४॥

अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रियः ।

जब कौरव सेना को भयातुर होकर भागती देखा तो पञ्चाल और, पाण्डवों के साथ परस्पर इस तरह वार्तालाप करने लगे। कि आज सत्य धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर सारे शत्रुओं को मार चुके और आज राज लक्ष्मी से राजा दुर्योधन हीन हो चुका है ॥१३-१४॥

अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥१५॥

विह्वलः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम् ।

आज राजा धृतराष्ट्र, अपने पुत्र दुर्योधन की मृत्यु सुनकर व्याकुलता के साथ भूमि में गिर जावेंगे और मोह को प्राप्त होंगे॥

अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ॥१६॥

अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् ।

अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हि तम् ॥१७॥

आज सबको पता लग जावेगा, कि सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ अर्जुन ही था। आज दुर्मति पापात्मा धृतराष्ट्र अपनी निन्दा में

तत्पर होगा। आज उसे बार २ कहे हुए महात्मा विदुर के वचन याद आवेंगे ॥१६-१७॥

अद्य प्रभृति पार्थं च प्रेष्यभूत इवाचरन्।
विजानातु नृपो दुःखं यत्प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः ॥१८॥

आज से आगे वह पाण्डवों का दास हो जावेगा। अब उसको उन ही दुःखों का अनुभव होगा जो पाण्डुपुत्रों ने प्राप्त किए थे॥१८॥

अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं विजानातु महीपतिः।
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे ॥१९॥
अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे।
अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः ॥२०॥

राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के गौरव को आज पहचानेगा। और रण में अर्जुन के धनुष की टङ्कार कितनी घोर है-यह जान लेगा सारे अर्जुन के अस्त्रों का बल और रण में दिखाए हुए भुजाओं के बल के साथ महावीर भीमसेन के बल का भी उसे आज ही पता लगेगा ॥१९-२०॥

हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले।
यत्कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा ॥२१॥
नान्यः कर्ताऽस्ति लोकेऽस्मिन्नृते भीमान्महाबलात्।

जिस तरह असुरों के युद्ध में इन्द्र ने बलासुर को मारा उसी तरह युद्ध में राजा दुर्योधन के मार लेने पर तथा भीमसेन के दुःशासन के वध करलेने पर भीमसेन ने क्या किया-यह

पता लग जावेगा। इस भीषण वीर कर्म को संसार में भीमसेन के सिवा कोई नहीं कर सकता था—यह भी वह जान लेगा ॥२१॥

अद्य ज्येष्ठस्य जानीतां पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥२२॥
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम्।

मद्रराज शल्य देवों से भी दुर्जय थे। आज उनको मृत सुन कर राजा धृतराष्ट्र को धर्मराज युधिष्ठिर के पराक्रम का पता लगेगा ॥२२॥

अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ सुदुःसहौ ॥२३॥
निहते सौबले वीरे प्रवीरेषु च सर्वशः।

सारे वीरों के मध्य में महापराक्रमी माद्री पुत्र नकुल सहदेव द्वारा सुबल पुत्र शकुनि के मार लेने से उनके पराक्रम का उसे ज्ञान होगा ॥२३॥

कथं जयो न तेषां स्याद्येषां योद्धा धनंजयः ॥२४॥
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
द्रौपद्यास्तनयाः पंच माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥२५॥
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः।
येषां च जगतो नाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः ॥२६॥
कथं तेषां जयो न स्याद्येषां धर्मो व्यपाश्रयः।

जिनके पास धनञ्जय अर्जुन के समान योद्धा हो-उनकी कैसे विजय नहीं होगी। सात्यकि, भीमसेन पृषत वंश श्रेष्ठ, धृष्टद्युम्न,

द्रौपदी के पांचों पुत्र, माद्री पुत्र पाण्डव महाधनुर्धर शिखण्डी, राजा युधिष्ठिर तथा जगन्नाथ श्रीकृष्ण जिनके सहायक थे, एवं जो धर्म के पक्ष के आश्रय में थे, उनका विजय कैसे रुक सकता था ॥२४-२६॥

भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च ॥२७॥
तथाऽन्यान्नृपतीन्वीरान् शतशोऽथ सहस्रशः ।
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थाद् युधिष्ठिरात् ॥२८॥
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा सत्ययशोनिधिः ।

भीष्म, द्रोण, कर्ण, मद्रराज शल्य, तथा अन्य सैंकड़ों सहस्रों की संख्या में उपस्थित वीरों को कुन्ती पुत्र धर्मराज के अतिरिक्त कौन जीत सकता था । इनके तो स्वयं रक्षक सत्य और यश के निधि भगवान् कृष्ण थे ॥२७-२८॥

इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः ॥२९॥
प्रभग्नांस्तावकान्योधान्संहृष्टाः पृष्ठतोऽन्वयुः ।

हे राजन् ! इस प्रकार पाण्डव और पञ्चाल वीर महा हर्ष से युक्त होकर कह रहे थे । जब तुम्हारे योद्धा भाग निकले—तो हर्षोन्मत्त होकर उनके पीछे दौड़े ॥२९॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥३०॥
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ।

महावीर्यवान्, अर्जुन, रथ सेना पर झपटे। महारथी सात्यकि और माद्री पुत्र नकुल सहदेव, शकुनि पर झपटे ॥३०॥

तान्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ॥३१॥
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद्विजयाय च ।

भीमसेन के भय से व्याकुल होकर सारे वीरों को भागते देखकर राजा दुर्योधन अपने सारथि से अर्जुन की बाबत कहने लगा ॥३१॥

मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ॥३२॥
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान्प्रतिपादय ।

हे सूत ! मैं धनुष लेकर स्थित हूं-इससे अर्जुन मुझपर आक्रमण कर रहा है । अब तुम सारी सेना के पीछे मेरे रथ को ले चलो ॥३२॥

जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां समन्ततः ॥३३॥
नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ।

जब मैं सेना के पृष्ठ भाग से युद्ध करूंगा-तो अर्जुन सब ओर से मुझे घेर नहीं सकेगा । वह वेला को समुद्र की भांति मुझपर आक्रमण करने में सफल न होगा ॥३३॥

पश्य सैन्यं महत्सूत पांडवैः समभि द्रुतम ॥३४॥
सैन्यरेणुं समुद्भूतं पश्यस्वैनं समन्ततः ।

हे सूत ! तुम पाण्डवों से अभियुत सेना को देखो और यह देखो-सेना के भागने से किस तरह धूलि आकाश में छा गई है ॥

सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान् ॥२५॥
तस्माद्याहि शनैः सूत जघनं परिपालय ।

हे सारथे ! देखो ! कितना भीषण घोर सिंहनाद पाण्डव सेना में हो रहा है। अब तुम धीरे से सेना के पिछले भाग पर निकल चलो ॥२५॥

मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु ॥२६॥
पुनरावर्त्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा ।

जब पाण्डवों को रोककर मैं युद्ध के लिए डट जाऊंगा तो मेरी सेना शीघ्र तीव्र पराक्रम के साथ फिर लौट पड़ेगी ॥२६॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः ॥२७॥
सारथिर्हेमसञ्छन्नान् शनैरश्वानचोदयत् ।

हे राजन् ! जब आर्य शूरवीर के सदृश वीरता पूर्ण तुम्हारे पुत्र के वचन सुने तो कुरुराज के सारथि ने सुवर्णसे आच्छादित अश्वों को धीरे से इधर ही चलाया ॥२७॥

गजाश्च रथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः ॥२८॥
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे ।

रथियों से हीन गज और इक्कीस हज़ार पैदल वीर अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध के लिए स्थित हो गए ॥२८॥

नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः ॥२९॥
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद्यशः ।

अनेक देश के वीर और अनेक नगर निवासी, योद्धा विजय के यश को प्राप्त करने को वहां स्थित होगए ॥३६॥

तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ॥४०॥
संमर्दः सुमहान् जज्ञे घोररूपो भयानकः ।

दर्पोन्मत्त, होकर आक्रमण करते हुए, वीरों का परस्पर महान् युद्ध होने लगा, जो भयानक और बड़ा घोर था ॥४०॥

भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥४१॥
बलेन चतुरंगेण नानादेश्यानवारयत् ।

हे राजन् ! अब भीमसेन और पञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्न ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर इन कौरव वीरों को रोका ॥४१॥

भीमसेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः ॥४२॥
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः ।

इस समय वीर लोक को जाने के अभिलाषी, बहुत से पैदल वीर, ताल और जांघ फटकर तथा सिंहनाद करके भीमसेन पर झपटे ॥४३॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥४३॥
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यामकथयन्कथाम् ।
परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समंततः ॥४४॥

आवेश में भरे हुए युद्ध दुर्मद, कौरव वीर भीमसेन के पास पहुंचकर गरजने लगे। अब उनको कुछ अन्य कथा से ध्यान ही नहीं था। वे भीमसेन को घेर कर रण में सब ओर से मारने लगे ॥

स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः।
न चचाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः ॥४५॥

यद्यपि भीमसेन को ये कौरव सैनिक मार रहे थे और वह उन पैदलों के रण में फंस गया था, तो भी वह स्थान से मैनाक पर्वत की भांति बिल्कुल विचलित नहीं हुए ॥४५॥

ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम्।
निगृहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन् ॥४६॥

हे महाराज! क्रोध में भरे हुए कौरव वीर, पाण्डव महारथी भीमसेन के पकड़ने में प्रवृत्त हो रहे थे और वे अन्य पाण्डव वीरों को रोक रहे थे ॥४६॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं पदातिः समवस्थितः ॥४७॥

उन कौरव वीरों के घेर लेने पर रणक्षेत्र में भीमसेन झल्ला उठा। वह रथ से नीचे उतर कर पैदल ही खड़ा हो गया ॥४७॥

जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्।
अवधीत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥४८॥

भीमसेन ने सुवर्ण जटित अपनी महती गदा उठाई। वह तुम्हारे योद्धाओं को दण्डपाणि काल की तरह मारने लगा ॥४८॥

विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत्पुरुषर्षभः।
एकविंशति साहस्रान्पदातीन्समपोथयत् ॥४९॥

पुरुष श्रेष्ठ भीमसेन ने, रथ, अश्व आदि वाहनों से हीन उस इक्कीस सहस्र पैदल सेना को पीस डाला ॥४६॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥५०॥

सत्य पराक्रमी भीमसेन ने उस पैदल सेना का विध्वंस उड़ा दिया। वह भीमसेन को आगे करके बहुत देर तक रणाङ्गण में चमकता रहा ॥५०॥

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः ।
संभग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ॥५१॥

भीमसेन द्वारा आहत हुए, रुधिर में भीगे हुए, सैनिक, रण भूमि में इस तरह पड़े थे, जिस तरह वायु से उखाड़े हुए, पुष्पों से लदे हुए लाल कनेर के वृक्ष पड़े हों ॥५१॥

नानाशस्त्रसमायुक्ता नानाकुण्डलधारिणः ।
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः ॥५२॥

उनके पास अनेक प्रकार के शस्त्र थे और वे नाना प्रकार के कुंडल धारी थे। अनेक देश और अनेक जाति के वीर वहां मृत होकर पड़े हुए थे ॥५२॥

पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद्बलम् ।
निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयावहम् ॥५३॥

हे राजन्! इस पैदल सेना की सारी ध्वजा पताका कट चुकी थी। यह सात विक्षत पड़ी हुई बड़ी ही भयानक भीषण और घोर रूप दिखाई देती थी ॥५३॥

युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः ।
अभ्यधावन्महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ॥५४॥

अब धर्मराज आदि महारथी अपनी २ सेना लेकर तुम्हारे महारथी पुत्र राजा दुर्योधन पर झपटे ॥५४॥

ते सर्वे तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासान्पराङ्मुखान् ।
नात्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ॥५५॥

यद्यपि इन पाण्डव महारथियों ने, तुम्हारे बड़े २ धनुर्धरों को रण से विमुख हुए भागते देखा था, तो भी ये समुद्र को वेला की भांति तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन पर सफल आक्रमण नहीं कर सके ॥५५॥

तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम् ॥५६॥

हे महाराज ! इस समय तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन का बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा-जो बहुत से पाण्डव महारथी भी अकेले कुरुराज पर विजय प्राप्त नहीं कर सके ॥५६॥

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने ।
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद्भृशविक्षतम् ॥५७॥
न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ।
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ॥५८॥

राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को समीप में ही भागने की तत्परता में देखी-तो भी वह अत्यन्त घायल अपनी सेना से कहने लगा हे वीरो ! मैं तो ऐसी कोई जगह पर्वत या पृथिवी पर नहीं देखता हूँ-जहां पर चले जाने पर पाण्डव न मार सके । फिर तुम लोगों के भागने से लाभ ही क्या है ॥५७-५८॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ।
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ॥५९॥

अब कृष्ण और अर्जुन की थोड़ी सी सेना रह गई है और ये दोनों वीर बहुत ही घायल होरहे हैं । यदि हम सारे वीर यहां डटे रहे तो हमारा अवश्य विजय होगा ॥५९॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान्पाण्डवाः कृतविप्रियाः ।
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः ॥६०॥

पाण्डव तो हमारे विप्रिय में तत्पर हैं । जब तुम बिखर कर भागोगे तो वे पीछा करके तुम्हें मार लेंगे । इससे तो रणाङ्गण में मरना ही अच्छा है ॥६०॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यंतकः सदा ॥६१॥
को न मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम् ।
श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्याभिमुखे स्थितम् ॥६२॥

अब तुम जितने क्षत्रिय वीर यहां उपस्थित हो-वे सब सुनलो-जब काल-शूरवीर और डरपोक सबको मार ही लेता है तो कौन

ऐसा मूर्ख क्षत्रिय होगा, जो युद्ध से पराङ्मुख हो जावे । क्रोधातुर भीमसेन के सन्मुख उपस्थित होकर युद्ध करने में ही हमारा कल्याण है ॥६१-६२॥

सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ।
मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन ॥६३॥

क्षत्रिय धर्म के अनुसार युद्ध करते २ मृत्यु होना श्रेयस्कर है मनुष्य तो मरण धर्मा है उसे तो घर में भी अवश्य मरना ही है ॥६ ॥

युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः ।
हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत्फलम् ॥६४॥

यदि युद्ध करते २ मृत्यु हो तो क्षत्रिय का यह सनातन श्रेष्ठ मार्ग है। यदि शत्रु मार लिया-तो यहां सुख और स्वयं मर गए-तो परलोक में महान् सुखकी प्राप्ति होती है ॥६४॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान्वै पंथाः स्वर्गस्य कौरवाः ।
अचिरेणैव ताँल्लोकान्हतो युद्धे समश्नुते ॥६५॥

हे कौरव वीरो ! युद्ध धर्म के सिवा स्वर्ग प्राप्ति का कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। यदि क्षत्रिय युद्ध में मारा गया-तो वह बहुत शीघ्र स्वर्ग लोक को प्राप्त कर सकता है ॥६५॥

श्रुत्वा तद्वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः ।
पुनरेवाभ्यवर्त्तन्त पाण्डवानाततायिनः ॥६६॥

जब राजाओं ने कुरुराज के ये वचन सुने-तो उनकी बड़ी प्रशंसा की। वे आततायी (घातक) पाण्डवों पर फिर टूट पड़े ॥६६॥

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥६७॥

जब प्रहार करने में कुशल सेना का व्यूह बनाकर लड़ते हुए पाण्डव वीरों ने कौरवों को इस तरह लौटते देखा तो वे भी क्रोध में भरकर उनके जीतलेने की इच्छा से उनके सन्मुख आए ॥६७॥

धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान्।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन्गांडिवं धनुः ॥६८॥

तीनों लोकों में प्रसिद्ध वीर महाबली अर्जुन अपने गाण्डीव धनुप को खैंचते हुए रथ के द्वारा कौरवों की ओर घूमे ॥६८॥

माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः।
जवेनाभ्यपतन्हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम् ॥६९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

महाबली सात्यकि और माद्री पुत्र नकुल सहदेव बड़ी साव-धानी और प्रसन्नता के साथ शकुनि और तुम्हारी सेना पर वेग से टूट पड़े ॥६९॥

इति श्री महाभारत शल्य पर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में घोर युद्ध का उन्नीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— सन्निवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः

अभ्यवर्त्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद्बलम् ॥१॥

आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् ।

दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् ॥२॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब कौरव सेना लौट पड़ी तो म्लेच्छ सेना का अधिपति राजा शाल्व, क्रोध के साथ, पाण्डवों की विशाल सेना पर वेग से झपटा, वह पर्वत के समान विशाल आकार धारी गजराज पर बैठा था। यह गज बड़ा ही महोद्धत और इन्द्र के हाथी के सदृश दिखाई देता था ॥१-२॥

योऽसौ महान्भद्रकुलप्रसूतः सुपूजितो धार्त्तराष्ट्रेण नित्यम् ।

सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥

हे राजन ! यह गजराज हाथियों के शुभ कुल में उत्पन्न हुआ था। राजा दुर्योधन इसका सदा मान और पूजा करते थे। युद्ध शास्त्रों के जानने वाले वीरों ने इसे सजाया था। राजा शाल्व सारे योद्धाओं में उसको आगे रखते थे ॥३॥

तमास्थितो राजवरो बभूव यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते ।

स तेन नागप्रवरेण राजन्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान्समेतान् ॥

सितैः पृषत्कैर्विददार वेगैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः ।

हे राजेन्द्र ! रात्रि के अन्त होने पर जिस तरह उदय पर्वत पर सूर्य चढ़ता है, इसी तरह उस हाथी पर वह राजा शाल्व स्थित हुआ। वह उस राजा पर स्थित होकर सारे इकट्ठे ही पाण्डवों पर वेग से टूट पड़ा। इसने आते ही अपने चमकीले, वेगशाली इन्द्र के वज्र के समान भीषण, घोर बाणों से सबको चीर डाला।

ततः शरान्वै सृजतो महारणे योधांश्च राजन्नयतो यमालयम्
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः।

हे राजन ! इस प्रकार रण में बाणवर्षा करता हुआ, म्लेच्छराज शाल्व पाण्डव योद्धाओं को यमसदन पहुंचाने लगा। अपने या पराए वीर, इसके बाण चढ़ाने और फेंकने के अन्तर को इस तरह नहीं देख सके-जैसे पूर्वकाल में दैत्य इन्द्र के अन्तर को नहीं देख पाए थे ॥५॥

ऐरावणस्थस्य चमू विमर्दे दैत्याः पुरा वासवस्येव राजन् ॥
ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च तमेकनागं ददृशुः समंतात्

हे राजन् ! जिस तरह पूर्वकाल में ऐरावत हाथी के ऊपर अकेले बैठकर दैत्य सेना के सन्मुख युद्ध में पहुंचे हुए इन्द्र को दैत्य ने देखा, उसी तरह पाण्डव, सोमक और सृञ्जय वीर, गज-राज पर अकेले बैठे हुए म्लेच्छराज शाल्व को देखने लगे ॥६॥

सहस्रशो वै विचरंतमेकं यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥७॥
संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां परीतकल्पं विबभौ समन्ततः।

इस म्लेच्छराज राजा शाल्व के गज के पास पाण्डव वीर इस तरह घूम रहे थे-जैसे इन्द्र के हाथी के पास दैत्य चक्कर लगाते थे। शत्रु सेना सब ओर से पैर छोड़ कर भागती हुई ही दिखाई दी॥

नैरावतस्थे समरे भृशं भयाद्विमृद्यमानं तु परस्परं तदा॥
ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः सा पाण्डवी तेन नराधिपेन।
दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती॥

परस्पर एक दूसरे से विमर्दित हुए पाण्डव वीर भयभीत हो कर युद्ध भूमि में ठहरे रहने का साहस छोड़ चुके। अब राजा शाल्व ने एक दम पाण्डव सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। यह सेना एक दम भागी, क्योंकि उस हाथी के वेग को वे लोग सह नहीं सकते थे॥८-९॥

दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं दध्मुश्च शंखान् शशिसन्निकाशान्

हे राजन्! तुम्हारे मुख्य २ सारे योद्धा, युद्ध में इस वेग युक्त पाण्डव सेना को भागती देखकर म्लेच्छराज शाल्व की बड़ी प्रशंसा करने लगे और चन्द्रमा के तुल्य शङ्खों को बजाने लगे॥१०॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां हर्षाद्विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां पाञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात्

हर्षोल्लास द्वारा छोड़े हुए, शङ्ख शब्दों के साथ, कौरव वीरों की गर्जना सुनकर, सेनापति पञ्चाल पुत्र धृष्टद्युम्न कोप से उसे सह नहीं सका॥११॥

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय ।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥

अब महावीर धृष्टद्युम्न, बड़े वेग से उस हाथी के विजय के लिए इस तरह बढ़ा, जिस तरह जम्भासुर, इन्द्र के साथ युद्ध छिड़ने पर इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी के सन्मुख पहुंचा था ॥१२॥

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः ।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य ॥

हे राजन् ! जब म्लेच्छराज शाल्व ने, एक दम पञ्चाल पुत्र धृष्टद्युम्न को युद्ध में आगे बढ़ते देखा तो उसने उसके बध के निमित्त अपने हाथी को आगे बढ़ाया ॥१३॥

स तं द्विपेन्द्रं सहसाऽऽपतन्तमविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः ।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भिर्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥१४॥
ततोऽपरान्पञ्चशतान्महात्मा नाराचमुख्यान्विससर्ज कुम्भे ।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे ॥

जब वह गजराज आगे बढ़ा तो धृष्टद्युम्न ने अग्नि के समान बाण छोड़कर इसको बींधना आरम्भ किया। इसके बाद कारीगर से चमकाए हुए, तीक्ष्ण, जाज्वल्यमान, उग्र वेगधारी तीन बाण मारकर महावीर धृष्टद्युम्न ने फिर पचास मुख्य नाराच संज्ञक बाण गजराज के मस्तक पर मारे। वह गजराज, उन बाणों से क्षत विक्षत होकर युद्ध से मुख मोड़ बैठा और बड़े वेग से भाग निकला ॥१४-१५॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः
तोत्रांकुशैः प्रेषयामास तूर्णं पञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥

अपने हाथी को इस तरह एक दम घायल और भागते देख कर पञ्चालराज धृष्टद्युम्न के रथ की ओर तोमर और अंकुशों से उस हाथी को राजा शाल्व ने आगे बढ़ाना चाहा ॥१६॥

दृष्ट्वाऽऽपतन्तं सहसा तु नागं धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव ।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलांगः ॥१७॥

जब वीर धृष्टद्युम्न ने एक दम झपटते हुए, उस हाथी को देखा तो वह शीघ्र अपने रथ से कूद पड़ा। उसने तीव्र वेग से गदा उठाई और भय से अङ्ग सुकोड़ते हुए भूमि पर खड़ा होगया ॥

स तं रथं हेमविभूषितांगं साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य ।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन्महाद्विपो विपोथयामास वसुंधरातले ॥

इस महा गजने, गरजकर सुवर्ण विभूषित, धृष्टद्युम्न के रथ को अश्व और सारथि के साथ अपनी सूंड से उठा लिया और एक दम भूमि पर दे मारा ॥१८॥

पाञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा तदार्दितं नागवरेण तेन ।
तमभ्यधावत्सहसा जवेन भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥

उस गजराज द्वारा पाञ्चाल राज द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को अर्दित देखकर एक दम भीमसेन, शिखण्डी और शिनिनप्ता सात्यकि दौड़े ॥१९॥

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य तस्याभितो ह्यापततो गजस्य ।
स संग्रहीतो रथिभिर्गजो वै चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये ॥

अपने सन्मुख वेग से झपटते हुए, शाल्व ने गजराज के वेग को अपने बाणों से रोका। इन रथियों ने गज को घेर लिया, उनसे रोका हुआ वह हाथी रणागिर में कम्पित हो उठा ॥२०॥

ततः पृषत्कान्प्रववर्ष राजा सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् ।
तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः प्रदुद्रुवुः सहितास्तत्र तत्र ॥

इसके बाद राजा शाल्व ने इस तरह बाण छोड़ना आरम्भ किया, जिस तरह सब ओर सूर्य अपना किरण जाल फैंकता है। उसके तीव्रगामी बाणों द्वारा आहत किए गए रथ एक साथ जिधर तिधर को भाग निकले ॥२१॥

तत्कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे पाञ्चालपुत्रो नृप सृञ्जयाश्च ।
हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे द्विपं समन्ताद्रुरुधुर्नराग्र्याः ॥

हे नृप ! सारे सृञ्जय और पञ्चाल पुत्र धृष्टद्युम्न राजा शाल्व के इस वीर कर्म को देखकर हाहाकार करने और रणक्षेत्र में कौरव उद्धारक इस हाथी के रोकने को पाण्डवों के मुख्य २ वीर सब ओर से रोकने लगे ॥२२॥

पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम् ।
ससंभ्रमं भारत शत्रुघाती जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥

हे भारत ! पर्वत शिखर के सदृश, गदा को लेकर शत्रुघाती पाञ्चाल राज द्रुपद का पुत्र, शूरवीर धृष्टद्युम्न, बड़े वेग से सटपटाहट के साथ उस हाथी पर टूट पड़ा ॥२३॥

ततस्तु नागं धरणीधराभं मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् ।
गदां समाविध्य भृशं जघान पञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥

यह गजराज मेघ के समान मद धारा की वर्षा करता था। और यह पर्वत के समान ऊंचा था। अब वेगशाली पञ्चाल राजा पुत्र धृष्टद्युम्न ने, गदा घुमाकर उसपर प्रहार किया ॥२४॥

स भिन्नकुंभः सहसा विनद्य मुखात्प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् ।
पपात नागो धरणीधराभः क्षितिप्रकंपाच्चलितं यथाद्रिः ॥

इस गदा के प्रहार से उसका मस्तक फट गया और उसके मुख से रक्तधारा बह निकली। पर्वताकार धारी वह हाथी, इस गदा के प्रहार से इस तरह गिर गया-जैसे पृथिवी के कांपने से पर्वत चल पड़ता है ॥२५॥

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये ।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥

जब वह हाथी गिर गया-तो तुम्हारे पुत्र की सेना में हाहाकार मच गया। शिनि प्रवीर सात्यकि ने भल्ल संज्ञक एक तीक्ष्ण बाण छोड़कर शाल्वराज का शिर धड़ से पृथक् कर दिया ॥२६॥

हृतोत्तमांगो युधि सात्वतेन पपात भूमौ सह नागराज्ञा ।
यथाद्रिशृङ्गं सुमहत्प्रणुन्नं वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥२७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शाल्ववधे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

जब युद्ध में सात्वतवंश श्रेष्ठ, सात्यकि ने, शाल्वराज का मस्तक काट दिया-तो वह अपने गजराज के साथ इस तरह गिर गया जैसे देवाधिपति इन्द्र द्वारा फैंके हुए वज्र से कटा हुआ पर्वत शिखर गिर पड़ा हो ॥२७॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में राजाशाल्व के वध के वर्णन का बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इक्कीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने।

तत्राभज्यद्बलं वेगाद्वातेनेव महाद्रुमः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब युद्ध दुर्मद राजा शाल्व मारा गया-तो वायु से तोड़े हुए विशाल वृक्ष के समान वह पृथिवी में गिर गया। यह देखकर तुम्हारी सारी सेना वेगसे भाग निकली॥१॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः।

दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥२॥

जब तुम्हारी सेना को भागती हुई महारथी कृतवर्मा ने देखा तो वह महाबली शूर, रण में उसे रोकने लगा ॥२॥

सन्निवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे ।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि ॥३॥

हे राजन् ! जब महाबली कौरव वीर लौट पड़े, तो उन्होंने रणाङ्गण में सात्यक वीर कृतवर्मा को पर्वत के समान अचल देखा-यद्यपि बाणों से वह क्षतविक्षत हो रहा था, ॥३॥

ततः प्रवृत्ते युद्धे कुरूणां पाण्डवैः सह ।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥४॥

हे महाराज ! अब पाण्डव और लौटे हुए कौरव वीरों में घोर युद्ध होने लगा । उन्होंने मृत्यु का भय छोड़ कर युद्ध करना आरम्भ किया ॥४॥

तत्राश्चर्यमभूद्युद्धं सात्वतस्य परैः सह ।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदम् ॥५॥

इस समय सात्वत वीर कृतवर्मा का अद्भुत पराक्रम देखा गया । जो अकेले कृतवर्मा ने दुरासद पाण्डु सेना को वहीं रोक दिया ॥५॥

तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे ।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक्सुमहानभूत् ॥६॥

इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के सुहृदों ने दुष्कर कर्म कर दिखाया। अब उन उत्साह में भरे हुए वीरों का सिंहनाद आकाश को छूने लगा ॥६॥

तेन शब्देन वित्रस्तान्पञ्चालान् भरतर्षभ ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥७॥

हे भरतर्षभ ! जब इस कौरवों की घोर गर्जना से पञ्चाल वीर भयभीत हो गए-तो उनके पास महाबाहु शिनिनप्ता, सात्यकि पहुंचा

स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम् ।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥८॥

इसने पहुंचते ही महाबली राजा क्षेमधूर्ति पर आक्रमण किया और सात तीक्ष्ण बाण मार कर उसे यमराज के घर भेज दिया ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शितान् शरान् ।
जवेनाभ्यपतद्धीमान्हार्दिक्यः शिनिपुंगवम् ॥९॥

जब तीक्ष्ण बाण बरसाता हुआ महाबाहु शिनि वंश श्रेष्ठ, सात्यकि आगे बढ़ा-तो महा शक्तिशाली हृदिक पुत्र कृतवर्मा ने वेग से उसपर आक्रमण किया ॥९॥

सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ ।
अन्योन्यमभिधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ ॥१०॥

ये दोनों सात्वत वंश श्रेष्ठ, सात्यकि और कृतवर्मा सारे रथियों में श्रेष्ठ धनुर्धर थे। ये उत्तम शस्त्रधारी वीर, एक दूसरे पर वेग से झपटे ॥१०॥

पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः ।

प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥११॥

इन दोनों वीरों के उस घोर संग्राम में सारे पाण्डव और पाञ्चाल वीर तथा अन्य और राजा, चुपचाप दर्शक बनकर खड़े हो गए ॥११॥

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यंधकमहारथौ ।

अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ ॥१२॥

वृष्णि और अन्धक के वंश के महारथी, सात्यकि और कृत-वर्मा, नाराच और वत्स दन्त संज्ञक बाणों से मदोद्धत हाथियोंकी भांति एक दूसरे को मारने लगे ॥१२॥

चरन्तौ विविधान्मार्गान्हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ ।

मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥१३॥

कृतवर्मा और सात्यकि अनेक युद्ध मार्ग दिखाने लगे। ये परस्पर एक दूसरे के बाणों की वर्षा से थोड़ी २ देर में बाण-वर्षा से ढक जाते थे ॥१३॥

चापवेगबलोद्धूतान्मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः ।

आकाशे समपश्याम पतंगानिव शीघ्रगान् ॥१४॥

इन दोनों वृष्णि वीर, सात्यकि और कृतवर्मा के धनुष के वेग से छोड़े हुए बाण, आकाश में शीघ्रगामी पक्षियों की तरह उड़ते दिखाई देरहे थे ॥१४॥

ततोऽनेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः ।

अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥१५॥

अब सत्य पराक्रमी सात्यकि के सन्मुख पहुंचकर कृतवर्माने, उसके चारों अश्वों को चार तीक्ष्ण बाणों से बींध दिया ॥१५॥

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ।

अष्टभिः कृतवर्माणमविध्यत्परमेषुभिः ॥१६॥

अब दीर्घ बाहु सात्यकि भी तोमर से पीड़ित हाथी की भांति झल्ला उठा । उसने आठ उत्तम बाणों से कृतवर्मा को बींध दिया ॥

ततः पूर्णायसोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः ।

सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे ॥१७॥

कृतवर्मा ने भी बड़े लम्बे धनुष को खेंचकर शिला पर तीक्ष्ण किये हुए तीन बाण छोड़े । उन तीन बाणों से सात्यकि को बींध कर फिर एक बाण से उसके धनुष को काट डाला ॥१७॥

निकृत्तं तद्धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुंगवः ।

अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः ॥१८॥

छिन्न भिन्न हुए अपने धनुष को फैंककर शिनि वंश श्रेष्ठ सात्यकि ने वेग के साथ दूसरा बाण सहित धनुष ग्रहण किया ॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ।

आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः ॥१९॥

अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा ।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात् ॥२०॥

सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, महा शक्तिशाली, महाबली, सात्यकि ने दूसरा अच्छा सा धनुष उठाया और शीघ्र उसे प्रत्यञ्चापर चढ़ा लिया। कृतवर्मा द्वारा अपने धनुष के काट देने से वह बहुत ही क्रोध में भरा हुआ था। अब महारथी सात्यकि कुपित होकर बड़ी शीघ्रता से कृतवर्मा पर झपटा ॥१६-२०॥

ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुंगवः ।
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः ॥२१॥

शिनि वंश श्रेष्ठ, सात्यकि ने, दश तीक्ष्ण बाण छोड़े। उसने कृतवर्मा की ध्वजा अश्व और सारथि काट गिराये ॥२१॥

ततो राजन्महेष्वासः कृतवर्मा महारथः ।
हताश्वसूतं सम्प्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥२२॥
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष ।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसु शिनिपुंगवम् ॥२३॥

हे राजन्! महारथी महाधनुर्धर, कृतवर्माने, अपने अश्व और सारथि को मृत तथा सुवर्णोज्ज्वल रथ को चकनाचूर देख कर वह क्रोध में भर गया। हे मारिष! उसने अब शूल उठाया शिनिपुङ्गव, सात्यकि को मार देने के निमित्त उसने अपनी भुजाओं की शक्ति के द्वारा उस शूल को फेंका ॥२२-२३॥

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः ।
चूर्णितं पातयामास मोहयन्निव माधवम् ॥२४॥

कृतवर्मा के इस शूल को तीक्ष्ण बाणों से रणक्षेत्र में काटकर सात्यकि ने गिरा दिया, जिसको देखकर कृतवर्मा बहुत ही भौंचक रह गया ॥२४॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत् ।
युयुधे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः ॥२५॥

अब सात्यकि ने दूसरा भल्ल संज्ञक बाण छोड़कर कृतवर्मा के हृदय में प्रहार किया। कृतवर्मा भी सारथि और अश्वों से हीन होकर भी सात्यकि के साथ युद्ध करता रहा ॥२५॥

कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत ।
तस्मिन्सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथिकृते ॥२६॥

जब कृतवर्मा को सात्यकि ने रथ हीन बना दिया-तो वह पृथिवी पर आ खड़ा हुआ इस घोर युद्ध में सात्यकि ने कृतवर्मा को रथ हीन कर दिया ॥२६॥

समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद्भयम् ।
पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत ॥२७॥
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि ।

इस समय तुम्हारी सारी सेना और तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को बहुत ही भय तथा विषाद होगया अश्व और सारथि के मारे जाने पर और कृतवर्मा के रथहीन होजाने पर यह सब कुछ हुआ ॥

हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिन्दम ॥२८॥

अभ्यधावत्कृपो राजन् जिघांसुः शिनिपुंगवम् ।

हे अरिमर्दन ! राजन् ! जब कृपाचार्य ने कृतवर्मा के सारथि और अश्वों को मृत देखा- तो वह शिनि वंशश्रेष्ठ सात्यकि के वध के निमित्त वेग से झपटा ॥२८॥

तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥२९॥

अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि ।

सारे धनुर्धर देखते रहे, और कृपाचार्य रथ में बैठकर महा-बाहु कृतवर्मा को झटपट रणभूमि से दूर निकाल लेगया ॥२९॥

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन्विरथे कृतवर्मणि ॥३०॥

दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ।

हे राजन् ! जब सात्यकि तो विजयी होगया और कृतवर्मा रथहीन कर दिया गया-तो फिर कौरव सेना युद्ध से पराङ्मुख हो गई ॥३०॥

तत्परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसाऽऽवृताः ॥३१॥

तावकाः प्रद्रुता राजन्दुर्योधनमृते नृपम् ।

हे राजन् ! इस समय रणाङ्गण में धूलि बहुत उठ रही थी, इससे तुम्हारी सेना के भागने पर भी उसका शत्रुओं को पता न लगा इस समय केवल राजा दुर्योधन ही युद्धभूमि में डटाखड़ा रहा ॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥३२॥

जवेनाभ्यपतत्तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत् ।

पाण्डूंश्च सर्वान्संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥३४॥

जब राजा दुर्योधन ने, अपने समीप ही सेना को भागते देखा तो वह क्रोध-पूर्वक वेग से आगे बढ़ा और अकेला ही सारी सेना को रोकने लगा। उसने सारे पाण्डव और पर्षत वंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न, को भी रोक दिया ॥३२-३३॥

शिखण्डिनं द्रौपदेयान्पञ्चालानां च ये गणाः।
केकयान्सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष ॥३४॥
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत्।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः ॥३५॥

हे आर्य! राजा दुर्योधन ने बिना किसी घबराहट के तीक्ष्ण बाण छोड़कर शिखण्डी, द्रौपदीपुत्र, पञ्चालों के गण, केकय, सोमक और सृञ्जय वीरों को आच्छादित कर दिया। हे राजन्! इस समय तुम्हारा महाबली पुत्र राजा दुर्योधन ही प्रयत्न पूर्वक खड़ा हुआ वहां दिखाई देता था ॥३४-३५॥

यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत् ॥३६॥

जिस तरह यज्ञ में महान् मन्त्र पूत अग्नि प्रकाशित होता है, उसी तरह राजा दुर्योधन युद्ध में सब ओर दिखाई देरहा था ॥३६॥

तं परे नाभ्यवर्त्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि सात्यकिकृतवर्मयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

इस समय मृत्यु के समान भीषण कुरुराज पर किसी का आक्रमण करने का साहस नहीं होता था। अब रथ पर चढ़कर फिर रणाङ्गण में कृतवर्मा आ डटा ॥३७॥

इतिश्री महाभारत शल्यापर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में सात्यकि और कृतवर्मा के युद्धके वर्णन का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

बाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! रथियों में श्रेष्ठ, तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, रथ में स्थित था। उसको इस समय कोई इस तरह नहीं सकता था, जैसे प्रतापी रुद्र को कोई नहीं सहसकता है।१॥

तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही।
परांश्च सिषिचे बाणौर्धाराभिरिव पर्वतान् ॥२॥

राजा दुर्योधन के सहस्रों बाणों से पृथिवी भर गई। इसने शत्रुओं को बाणों से इस तरह आच्छादित कर दिया-जिस तरह मेघ अपनी धाराओं से पर्वतों को आच्छादित कर देता है ॥२॥

न च सोऽस्ति पुमान्कश्चित्पाण्डवानां बलार्णवे।
हयो गजो रथो वाऽपि यः स्याद्बाणैरविक्षतः ॥३॥

हे राजन् ! इस समय पाण्डव की सेना में कोई ऐसा वीर, हाथी या घोड़ा नहीं था जो कुरुराज के बाणों से घायल न हुआ हो ॥

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशाम्पते ।
स स बाणैश्चितोऽभूद्वै पुत्रेण तव भारत ॥४॥

हे विशाम्पते ! मैं तो इस युद्ध में जिस वीर को देखता था हे भारत ! वह तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के बाण से व्याप्त ही दिखाई देता था ॥४॥

यथा सैन्येन रजसा समुद्भूतेन वाहिनी ।
प्रत्यदृश्यत सञ्छन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ॥५॥

जिस तरह उठी हुई रज से सेना आच्छादित हो जाती है, उसी तरह इस महा वीर दुर्योधन के बाणों से सारी पाण्डव सेना आच्छादित हो गई ॥५॥

बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते ।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ॥६॥

हे पृथिवीपते ! शीघ्र हाथ फेंकने वाले, महा धनुर्धर राजा दुर्योधन ने इतने बाण फेंके, कि जिनसे सारी पृथिवी को हमने बाण मय ही देखा ॥६॥

तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च ।
एको दुर्योधनो ह्यासीत्पुमानिति मतिर्मम ॥७॥

हे राजन् ! तुम्हारे और पाण्डवों के सहस्रों वीर योद्धाओं में एक दुर्योधन ही पुरुष था, ऐसी मेरी बुद्धि होती थी ॥७॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम् ।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्त्तन्त भारत ॥८॥

हे भारत ! हमने उस समय तुम्हारे पुत्र का अद्भुत पराक्रम देखा, जो अकेला ही राजा दुर्योधन युद्ध कर रहा था और सारे पाण्डव, उसपर अधिकार नहीं कर पाते थे ॥८॥

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥९॥
नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः ।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् ॥१०॥

हे भरतर्षभ ! अब कुरुराज ने सौ बाणों से राजा युधिष्ठिर, सत्तर से भीमसेन, पांच से सहदेव, चौसठ से नकुल, पाँच से धृष्टद्युम्न, सात से द्रौपदी पुत्र और तीन बाणों से सात्यकि को बींध दिया ॥९-१०॥

धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥११॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः ॥१२॥

हे आर्य ! राजा दुर्योधन ने एक भल्ल बाण से सहदेव का धनुष काट डाला। प्रतापवान माद्री पुत्र सहदेव ने उस धनुष को फेंक कर राजा दुर्योधन पर आक्रमण किया। उस धनुष से दश बाण छोड़कर राजा दुर्योधन को घायल कर दिया ॥११-१२॥

नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥१३॥

महा धनुर्धर महावीर नकुल ने भी घोर रूपधारी नौ बाण छोड़ कर राजा दुर्योधन को वींध दिया। और बड़े जोर से गर्जना की ॥१३॥

सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ॥१४॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरैः राजानमार्पयन्।

सात्यकि ने भी नत पर्वधारी एक बाण से द्रौपदी पुत्रों ने तेहत्तर, धर्मराज ने पांच, और भीमसेन ने अस्सी बाण छोड़कर राजा दुर्योधन को आहत कर दिया ॥१४॥

समन्तात्कीर्यमाणस्तु बाणसङ्घैर्महात्मभिः ॥१५॥
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

हे महाराज! इस प्रकार इन पाण्डव महारथियों ने सब ओर से राजा दुर्योधन को बाणों से व्याप्त कर दिया परन्तु सारी सेना देखती रही, कि कुरुराज, वहां से तिल भर भी नहीं डिगा ॥१५॥

लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चापि महात्मनः ॥१६॥
अतिसर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः।

महाबली कुरुराज का लाघव (फुर्ती) कौशल और पराक्रम, सारे प्राणियों को उलांघ गया यह सारे सैनिक वीरों ने अनुभव किया ॥१६॥

धार्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र योधास्तु स्त्वल्पमन्तरम् ॥१७॥
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्त्तन्त दंशिताः।

हे राजेन्द्र! कौरव वीर, राजा दुर्योधन के बाण खेंचने और चढ़ाने में कितना अन्तर लगता था इसे देख ही नहीं पाते थे। वे बड़े सुसज्जित हुए राजा दुर्योधन की रक्षा को आगे बढ़े ॥१७॥

तेषामापततां घोरस्तुमुलः समपद्यत ॥१८॥
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः।

इन कौरव योद्धाओं के आगे बढ़ते ही महा घोर ध्वनि होने लगी जैसे वर्षाकाल में उछलते हुए समुद्र में ध्वनि हो रही है ॥१८॥

समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् ॥१९॥
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः।

किसी से पराजित नहीं होने वाले राजा दुर्योधन के पास पहुंचकर महा धनुर्धर कौरव ने आततायी पाण्डवों पर आक्रमण किया ॥१९॥

भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥२०॥
नानाबाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतो दिशम्।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः ॥२१॥

हे महाराज! रणमें कुपित हुए भीमसेनको द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सब दिशाओं में अनेक प्रकार के बाण छोड़कर रोका। इस समय वीरों को दिशा-प्रदिशा आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं था॥

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥२२॥
त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ।

हे भारत! अश्वत्थामा और भीमसेन दोनों ही क्रूर कर्मा दुःसह वीर थे। ये एक प्रहार का दूसरा उत्तर देते हुए परस्पर घोर युद्ध करने लगे, धनुष की प्रत्यञ्चा के खैंचनेसे इन दोनों की त्वचा कठिन हो चुकी थी। इन्होंने सारी दिशाओं को पीड़ित कर दिया॥

शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत् ॥२३॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो।
नादं चकार बलवत्सर्वसैन्यानि कोपयन् ॥२४॥

हे राजन्! एक ओर गान्धारराज शकुनि ने राजा युधिष्ठिर को पीड़ित करना आरम्भ किया। हे विभो! सुबलपुत्र, शकुनि ने धर्मराज के चारों अश्वोंको मारकर बड़े जोर से गर्जना की॥२३-२४॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम्।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥२५॥

इसी समय महाप्रतापी सहदेव आगे बढ़े-वे अपराजित वीर राजा युधिष्ठिर को अपने रथ में बैठाकर रण से दूर ले गया॥२५॥

अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥२६॥

ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ।

तत्र द्रुमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ॥२७॥

प्रेक्षतां प्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम् ।

अब धर्मराज युधिष्ठिर दूसरे रथ पर चढ़ गए। उन्होंने प्रथम नौ बाणों से शकुनि को बींध डाला। हे आर्य ! सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ, धर्मराज ने अब महाघोर गर्जना की। इस समय महा-अद्भुत घोर युद्ध होने लगा। जिसके देखने वाले वीरों को बड़ा आनन्द होता था। सिद्ध चारण आदि देवगण, इसे आनन्द के साथ देख रहे थे ॥२६-२७॥

उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ॥२८॥

अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः ।

हे राजन् ! अब महापराक्रमी शकुनी पुत्र उलूक ने महा-धनुर्धर, युद्ध दुर्मद नकुल पर सब ओर से बाणों की झड़ी लगाते हुए आक्रमण किया ॥२८॥

तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे ॥२९॥

शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयत् ।

अब शूरवीर नकुल ने, रण में शकुनि पुत्र उलूक पर महान् बाणवर्षा करके सब ओर से उसे घेर लिया ॥२९॥

तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ ॥३०॥

योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

क्षत्रियकुल में उत्पन्न, महारथी वीर नकुल और उलूक दोनों वीर, रणाङ्गण में युद्ध करने लगे। ये एक प्रहार का दूसरा उत्तर देते हुए दिखाई देरहे थे ॥३०॥

तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः ॥३१॥
योधयन् शुशुभे राजन्बलिं शक्र इवाहवे।

हे राजन! इसी तरह शत्रुतापी शिनि पुत्र, सात्यकि कृतवर्मा से युद्ध करते हुए इस तरह सुशोभित हुए, जैसे युद्ध में इन्द्र बलि दैत्य से युद्ध करते हुए सुशोभित हुए ॥३१॥

दुर्योधनो धनुश्छित्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ॥३२॥
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः।

राजा दुर्योधन ने भी, रणक्षेत्र में धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला और धनुषहीन धृष्टद्युम्न को तीन बाणों से बींध दिया ॥३२॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम् ॥३३॥
राजानं योधयामास प्रश्यतां सर्वधन्विनाम्।

धृष्टद्युम्न ने भी रणक्षेत्र में एक महाधनुष उठाया और सारे धनुर्धरों के देखते २ उसने राजा दुर्योधन से युद्ध करना आरम्भ किया ॥३३॥

तयोर्युद्धं महच्चासीत्संग्रामे भरतर्षभ ॥३४॥
प्रभिन्नयोर्यथासक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः।

हे भरतर्षभ! इन दोनों वीरों का मदस्रावी, मदोन्मत्त दो गजराजों के आवेश में होने वाले युद्ध के तुल्य युद्ध होने लगा ॥३४॥

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान्महाबलान् ॥२५॥
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ।

कृपाचार्य भी रण में कुपित होकर महाबली द्रौपदी पुत्रों पर झपटा। इस शूरवीर ने बहुत से नतपर्व धारी बाणों से इन्हें बींध डाला ॥२५॥

तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ॥२६॥
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्त्तत ।

अब दोनों वीरों का इस तरह युद्ध होने लगा-जैसे मुमुक्षु मनुष्य का इन्द्रियों से होता है। अब बड़ा घोर मर्यादा हीन युद्ध होने लगा, जिसे किसी तरह रोका नहीं जा सकता था ॥२६॥

ते च संपीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम् २७॥
स च तान्प्रतिसंरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे ।

द्रौपदी पुत्रों ने कृपाचार्य को इस तरह पीड़ित कर डाला। जिस तरह विषयी पुरुष को इन्द्रिय व्याकुल कर देती हैं । कृपाचार्य भी आवेश में भर कर रण में उनसे युद्ध करने लगा॥ २७॥

एवं चित्रमभूद्युद्धं तस्य तैः सह भारत ॥२८॥
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो ।

हे भारत ! कृपाचार्य और उन वीर द्रौपदी पुत्रों का बड़ा विचित्र युद्ध होने लगा । वे इस प्रकार उठ २ कर युद्ध कर रहे थे, जैसे महात्मा पुरुष, इन्द्रियों से झगड़ते रहते थे ॥२८॥

नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा ॥३९॥
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह ।
संकुलं चाभवद्भूयो घोररूपं विशाम्पते ॥४०॥

हे राजन ! अब मनुष्यों से मनुष्य, दन्तियों से दन्ती, अश्वों से अश्व और हाथियों से हाथी, रथियों से रथ, युद्ध करने लगे। हे विशाम्पते ! इस समय बड़ी गड़बड़ी मचगई और घोर रूप युद्ध होने लगा ॥३९-४०॥

इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
युद्धान्यासन्महाराज घोराणि च बहूनि च ॥४१॥

हे महाराज ! वह बड़ा विचित्र घोर रूप भयानक युद्ध होने लगा। इसी तरह अनेक घोर युद्ध स्थान स्थान पर होने लगे ॥४१॥

ते समासाद्य समरे परस्परमरिन्दमाः ।
व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥४२॥

ये शत्रु मर्दन, रण में परस्पर एक दूसरे का मुक़ाबिला पाकर गरजने लगे और रणक्षेत्र में समीप पहुंच कर प्रहार करने में तत्पर हुए ।४२॥

तेषां पत्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत ।
वातेन चोद्धूतं राजन्धावद्भिश्चाश्वसादिभिः ॥४३॥

हे राजन् ! इस समय इन योद्धाओं के वाहनों और दौड़ते हुए हुए सवारों तथा वायु से उड़ती हुई तीव्र रज, उठ खड़ी हुई ॥४३॥

रथनेमिसमुद्भूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम् ।
रजः सन्ध्याभ्रकलिलं दिवाकरपथं ययौ ॥४४॥

रथ की नेमि हाथियों के निःश्वास से उठी हुई सन्ध्या का के मेघ के समान रज, सूर्य मार्ग में छा गई ॥४४॥

रजसा तेन सम्पृक्तो भास्करो निष्प्रभः कृतः ।
सञ्छादिताऽभवद्भूमिस्ते च शूरा महारथाः ॥४५॥

इस रज से व्याप्त होकर सूर्य निष्प्रभ हो गया। सारी भूमि रज से व्याप्त हो गई तथा सारे शूरवीर महारथी, रजोध्वस्त हो गये ॥४५॥

मुहूर्त्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः ।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ॥४६॥

हे भरतसत्तम ! थोड़ी ही देर में सब ओर धूलि शान्त हो गई-क्योंकि वीरों के रक्त से भूमि सिंच जाने से गीली हो गई थी ॥४६॥

उपाशाम्यत्ततस्तीव्रं तद्रजो घोरदर्शनम् ।
ततोऽपश्यमहं भूयो द्वंद्वयुद्धानि भारत ॥४७॥

हे भारत ! जब वह घोर दिखाई देने वाली तीव्र धूलि शान्त हो गई तो फिर हमको उनके द्वन्द्व युद्धों के दर्शन होने लगे ॥४७॥

यथा प्राग्र्यं यथा श्रेष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणम् ।
वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः ॥४८॥

हे राजेन्द्र! जिस तरह मध्यान्ह काल में सूर्य का बल और चमक तीव्र हो जाती है। उसी चमक के अनुसार वीरों के कवचों की उज्ज्वलप्रभा दिखाई देने लगी ॥४२॥

शब्दश्च तुमुलः संख्ये शराणां पततामभूत्।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

जब ये बाण सनासन चल रहे थे, तो इस तरह की ध्वनि हो रही थी जैसे बांसों के महा वन में आग लगने पर ध्वनि होती है।४६॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में घोर युद्ध का बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।



तईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— वर्त्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन! जब इस प्रकार तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन का पाण्डवों के साथ घोर भयानक युद्ध होने लगा तो इस समय भी तुम्हारी सेना के पैर उखड़ गये ॥१॥

तांस्तु यत्नेन महता सन्निवार्य महारथान् ।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥२॥

उन अपने महारथियों को बड़े प्रयत्न से रोक कर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, पाण्डव सेना के साथ युद्ध करने लगा ॥२॥

निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः ।
सन्निवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥३॥
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत्कश्चित्पराङ्मुखः ॥४॥
अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम् ।
तेषां क्षयो महानासीद्युध्यतामितरेतरम् ॥५॥

हे राजन ! तुम्हारे पुत्र कुरुराज के जीत लेने को पाण्डव वीर भी लौट पड़े । जब वे लौट आए तो उनका परस्पर घोर दारुण युद्ध होने लगा । यह तुम्हारे वीर और पाण्डव वीरों में देवासुर संग्राम सा भीषण युद्ध था । शत्रु सेना या तुम्हारी सेना में इस समय कोई भी वीर पराङ्मुख नहीं होता था । इस तीव्र घमसान युद्ध में वीर अनुमान से युद्ध कर रहे थे । इनके परस्पर युद्ध करने पर अपने २ नाम सुन ने पर भी वीरों की पहचान होती थी । जब ये परस्पर प्रहार कर रहे थे । तो दोनों की सेनाओं का महान् विनाश हो गया ॥५॥

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः ।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्त्तराष्ट्रान्सराजकान् ॥६॥

अब राजा युधिष्ठिर, बड़े भारी क्रोध में भर गया। इसने राजा दुर्योधन सहित सारे कौरव पक्ष के राजाओं को जीत लेना चाहा ॥६॥

त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान्नाराचैः कृतवर्मणः ॥७॥

धर्मराजने, सुवर्ण मूलधारी, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए बाणों से शरद्वान पुत्र कृपाचार्य को बींध डाला और चार नाराच बाणों से कृतवर्मा के अश्वों को मार डाला ॥७॥

अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम् ।
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविध्यद्युधिष्ठिरम् ॥८॥

अब अश्वत्थामा, यशस्वी कृतवर्मा को अपने रथ से उठा ले गए और शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य ने आठ बाण राजा युधिष्ठिर पर छोड़े ॥८॥

ततो दुर्योधनो राजा रथान्सप्तशतान्रणे ।
प्रैषयद्यत्र राजाऽसौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥९॥

राजा दुर्योधन ने इस रण में सातसौ रथी योद्धाओं को लेकर मन और वायु वेग से रणक्षेत्र में कुन्ती पुत्र धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर स्थित थे ॥९॥

ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति ॥१०॥

वे रथ, अपने रथी योद्धाओं को लेकर मन और वायुवेग से रणक्षेत्रमें कुन्तीपुत्र धर्मराज के रथ की ओर झपटे ॥१०॥

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥११॥

हे महाराज ! इन वीरों ने राजा युधिष्ठिर को सब ओर से घेर लिया। इन्होंने अपने बाण जाल से धर्मराज को इस तरह अदृश्य कर दिया जैसे मेघ, सूर्य को ढक देते हैं ॥११॥

ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथाकृतम् ।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डीप्रमुखा रथाः ॥१२॥

जब शिखण्डी आदि पाण्डव महारथियों ने कौरव वीरों द्वारा राजा युधिष्ठिर को घिरा हुआ देखा-तो वे आवेश में भर गए और वे इस धर्षणा को सह नहीं सके ॥१२॥

रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः ।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१३॥

ये वीर, कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त, उत्तम उत्तम अश्वों से युक्त और किङ्किणी जाल से सुशोभित रथों से वहां पहुंचे ॥१३॥

ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ।
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥१४॥

अब कौरव पाण्डव वीरों का रुधिरधारा व्याप्त बड़ा भयानक युद्ध चल पड़ा जिस से यमराज्य की बहुत ही वृद्धि हुई ॥१४॥

रथान्सप्तशतान्हत्वा कुरूणामाततायिनाम् ।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् ॥१५॥

पाण्डव वीरों ने आततायी कौरव के सातसौ वीर मार डाले। पाञ्चालों को साथ लेकर पाण्डवों ने फिर आक्रमण किया ॥१५॥

तत्र युद्धं महच्चासीत्तव पुत्रस्य पाण्डवैः ।
न च तत्ताद्दर्शं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् ॥१६॥

हे राजन ! इस समय पाण्डवों का तुम्हारे पुत्रों के साथ बड़ा घोर युद्ध होने लगा जैसा युद्ध हमने आज तक न तो देखा और न सुना ही था ॥१६॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः ।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥१७॥
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः ।
उत्कुष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम् ॥१८॥
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु ।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥१९॥
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा ॥२०॥

जब सब ओर यह निमर्याद युद्ध हो रहा था और तुम्हारे तथा शत्रुओं के वीर मारे जा रहे थे। योद्धा गर्जना कर रहे थे और ओर से वायु भर कर शङ्ख बजा रहे थे। बड़े उच्च स्वर में

सिंहनाद हो रहे थे। धनुर्धर गरज रहे थे। अत्यन्त भीषण युद्ध चल रहा था। वीरों के मर्मस्थान कट रहे थे। सब ओर रण भूमि में संहार मचा हुआ था, जिससे सारी पृथिवी पर शोक छा रहा था, क्योंकि बहुत सी सुन्दर स्त्रियां विधवा हो रही थीं॥

निर्मर्यादे महायुद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे।
प्रादुरासन्विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः॥२१॥

अब इस दारुण निर्मर्याद महा युद्ध के चलने पर उनके विनाश के लिए बड़े उत्पात होने लगे॥२१॥

चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही।
सदण्डाः सोल्मुका राजन्कीर्यमाणाः समन्ततः॥२२॥
उल्काः पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम्।
विष्वग्वाताः प्रादुरासन्नीचैः शर्करवर्षिणः॥२३॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुश्चास्पृशन्भृशम्।

हे राजन! वन और पर्वतों के सहित शब्द करती हुई पृथिवी डगमगाने लगी, दण्ड और उल्मुक के सहित उल्कापात आकाश से पृथिवी पर होने लगे जो सब ओर फैल गए। उनसे सूर्यमण्डल भी फीका सा दिखाई देने लगा। सब ओर वायु चलने लगा और मिट्टी कंकर बरसाने लगी। हाथी, आंसू छोड़ने लगे और उनको अत्यन्त वेग से कंपकंपी आने लगी॥२२-२३॥

हे महाराज ! जिस तरह वायु बादलों को विदीर्ण कर देती है, उसी तरह पाण्डवों की विशाल सेना को शकुनि ने छिन्न भिन्न कर दिया ॥२३॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
अभ्यनोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥२४॥

जब राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना को अपने समीप ही छिन्न भिन्न देखा-तो धर्मराज ने बिना किसी घबराहट के महाबली सहदेव को आह्वान करके बुलाया ॥२४॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः ।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥२५॥

हे सहदेव ! तुम देखते नहीं हो, कि यह सुबल पुत्र शकुनि, सब तरह सुसज्जित होकर पीछे से हमारी सेना को नष्ट कर रहा है। तुम इस दुर्मति की ओर दृष्टि उठाकर तो देखो ॥२५॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि ।
रथानीकमहं धक्ष्ये पञ्चालसहितोऽनघ ॥२६॥

हे अनघ ! अब द्रौपदी पुत्रों को लेकर जाओ और इस सुबल पुत्र शकुनि का वध करो। मैं पञ्चाल सेना के साथ इस रथ सेना का नाश कर देता हूँ ॥२६॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया ।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि ॥२७॥

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥२६॥

अब शत्रुओं ने मद्र वीरों का विध्वंस करना आरम्भ किया । राजा दुर्योधन की सेना यह घटना देखकर फिर भाग खड़ीहुई॥२६॥

गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली ।
निवर्त्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥३०॥

महाबली गान्धारराज ने, फिर वचन कहा—अरे अधर्म परायण ! वीरों ! लौटो युद्ध करो भागने में क्या लोगे ॥३०॥

अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ ।
आसीद्गान्धारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम् ।

हे भरतर्षभ ! इस समय गान्धारराज शकुनि के पास बड़े २ विशाल प्रास आदि शस्त्रों के धारण करने वाले दश सहस्र घुड़सवार थे ॥३१॥

बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये ।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नान्निशितैः शरैः ॥३२॥

इस अश्व सेना को लेकर इस जन संहार कारी युद्ध में पराक्रम करके बड़े तीखे बाणों से पीछे से पाण्डव सेना का मारना आरम्भ किया ॥३२॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः ।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद्बलम् ॥३३॥

हे महाराज ! जिस तरह वायु बादलों को विदीर्ण कर देती है, उसी तरह पाण्डवों की विशाल सेना को शकुनि ने छिन्न भिन्न कर दिया ॥२३॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात् ।
अभ्यनोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥२४॥

जब राजा युधिष्ठिर ने अपनी सेना को अपने समीप ही छिन्न भिन्न देखा तो धर्मराज ने बिना किसी घबराहट के महाबली सहदेव को आह्वान करके बुलाया ॥२४॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः ।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥२५॥

हे सहदेव ! तुम देखते नहीं हो, कि यह सुबल पुत्र शकुनि, सब तरह सुसज्जित होकर पीछे से हमारी सेना को नष्ट कर रहा है । तुम इस दुर्मति की ओर दृष्टि उठाकर तो देखो ॥२५॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि ।
रथानीकमहं धक्ष्ये पञ्चालसहितोऽनघ ॥२६॥

हे अनघ ! अब द्रौपदी पुत्रों को लेकर जाओ और इस सुबल पुत्र शकुनि का वध करो । मैं पञ्चाल सेना के साथ इस रथ सेना का नाश कर देता हूँ ॥२६॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया ।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि ॥२७॥

तुम्हारे साथ ही सारे हाथी और घोड़े चले जावेंगे। तीन सहस्र पैदल भी लेजाओ और उनसे युक्त होकर इस दुष्ट शकुनि को मार गिराओ ॥३७॥

ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः।
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान् ॥३८॥
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ॥३९॥

हे राजन्! अब धनुर्धर सवारों से युक्त सात सौ हाथी, पांच सहस्र घुड़ सवार तीन सहस्र पैदल और द्रौपदी पुत्र युद्ध दुर्मद शकुनि पर टूट पड़े ॥३८-३९॥

ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य तान् रथान्।
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान् ॥४०॥

हे राजन्! इसके बाद महाप्रतापी विजयाभिलाषी शकुनि ने उन महारथियों पर आक्रमण करके उनको पीछे से मारना आरम्भ किया ॥४०॥

अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनाम्।
प्राविशन्सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान् रथान् ॥४१॥

अत्यन्त वेगवाले पाण्डवों के अश्वारोही वीर, बड़े आवेश में भरे हुए थे। वे उन महारथियों का अतिक्रमण करके सुबल पुत्र शकुनि की सेना में घुसते चले गये ॥४१॥

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद्बलम् ।
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन् ॥४२॥

वे घुड़सवार वीर, शकुनि की विशाल सेना में घुस कर रण के मध्य में स्थित हो गये और बाण वर्षा से उनको आच्छादित करने लगे ॥४२॥

तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम् ।
प्रावर्त्तत महद्युद्धं राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥४३॥

हे राजन् ! तुम्हारे अविचार से उत्पन्न हुई परिस्थिति में गदा-प्रास उठाए हुए वीर पुरुषों से सेवित यह महा युद्ध घोर रूप में चल पड़ा ॥४३॥

उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ।
नहि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥

अब अन्य वीरों के धनुषों की प्रत्यञ्चा के शब्द बन्द हो गए सारे महारथी खड़े होकर युद्ध का कौतुक (तमाशा) देखने लगे इस समय अपने और शत्रुओं के वीरों में कोई विशेष (फर्क) दिखाई नहीं देता था ॥४४॥

शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ ।
ज्योतिषामिव सम्पातमपश्यन्कुरुपाण्डवाः ॥४५॥

हे भरतर्षभ ! कौरव और पाण्डव वीर, शूरवीरों की भुजाओं से उठाकर फेंकी हुई, शक्तियों के प्रपात को इस तरह देखने लगे जैसे बिजली पड़ रही हो ॥४५॥

ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशाम्पते ।
सम्पतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥४६॥

हे विशाम्पते ! इस घोर युद्ध में जिधर तिधर गिरती हुई चमकीली ऋष्टियों से सारा आकाश आवृत होकर बहुत सुशोभित दिखाई देने लगा ॥४६॥

प्रासानां पततां राजन्रूपमासीत्समन्ततः ।
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम ॥४७॥

हे भरत वंश श्रेष्ठ ! राजन ! इस समय युद्ध में उछटते हुए प्रास शस्त्रों का आकार आकाश में गिरते हुए टीड़ी दल के समान सब ओर दिखाई देने लगा ॥४७॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥४८॥

अश्वों के सवार बाणों से विंधे हुए थे । उनको लेकर रुधिर में भीगे हुए लाखों की संख्या में रणक्षेत्र में अश्व पड़े थे ॥४८॥

अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम् ।
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः ॥४९॥

एक दूसरे से टकराकर एक दूसरे को पीस रहे थे । ये अश्व इतने क्षत-विक्षत हो रहे थे, कि उनके मुख से रुधिर की धारा बह रही थी ॥४९॥

ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसाऽवृते ।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद्देशादरिन्दम ॥५०॥

हे अरिमर्दन ! सेनाकी भाग दौड़ में उठी हुई, रज से आवृत रणस्थल के होने पर बड़ा ही घोर अन्धकार हो गया । इस समय हमने बहुत से अश्वों को उस स्थान से भाग कर जाते देखा ॥५०

अश्वान् राजन्मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति ।
भूमौ निपतितांश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ॥५१॥

हे राजन ! इस प्रकार रज से आवृत होने पर अश्व और मनुष्यों को हमने रण भूमि में पड़े हुए देखा जो रुधिर की वमन कर रहे थे ॥५१॥

केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नराः ।
अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ॥५२॥

कोई महाबली वीर, परस्पर एक दूसरे के बाल पकड़ कर अश्वों पर खेंचातानी मचा रहे हैं, परन्तु अश्वों की पीठ पर से नीचे खेंच लेने में कोई भी सफल नहीं हो रहे हैं ॥५२॥

मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् ।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ॥५३॥

ये वीर मल्ल (पहलवान) की भांति एक दूसरे से गुत्थम गुत्था होकर एक दूसरे पर प्रहार करने में संलग्न हैं। बहुत से मृत वीरों को अश्व घसीटे लिए फिरते हैं ॥५३॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ॥५४॥

बहुत से विजयी वीर, पृथिवी में गिर गए। इस रणभूमि में जिधर देखो उधर ही शूरवीर होने के अभिमानी पुरुष, दिखाई देरहे हैं ॥५४॥

रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरवकृष्टशिरोरुहैः ।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः ॥५५॥

रक्त में भीगे हुए कटी भुजा वाले और बाल उमड़े हुए लाखों वीरों से सारी रणभूमि व्याप्त दिखाई देरही थी ॥५५॥

दूरं न शक्यं तत्रासीद्गन्तुमश्वेन केनचित् ।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥५६॥
रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः ।
नाना प्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैपिभिः ॥५७॥
सुसन्निकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः ।

कोई भी वीर इस रणभूमि में अपने अश्व के द्वारा दूर तक निकल कर जाने में समर्थ नहीं हो पाता था क्योंकि अश्वारोही वीरों के साथ मरे पड़े हुए अश्वों से रणभूमि बहुत ही व्याप्त हो रही थी। रुधिर में भीगे हुए कवच वाले शस्त्र धारी, उठाए हुए आयुधों से युक्त अनेक घोर शस्त्र धारी परस्पर वध के अभिलाषी पास २ पड़े हुए बहुत से मृतक सैनिकों से संग्राम भूमि भरी पड़ी थी ॥५६-५७॥

समुहूर्त्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते ॥५८॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ।

हे विशाम्पते ! थोड़ी देर तक गान्धार राज शकुनि ने बहुत ही घोर युद्ध किया। अब उसके पास छः सहस्र घुड़ सवार शेष रह गए-तो वह इनको लेकर युद्ध भूमि से खसक गया ॥५८॥

तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ॥५६॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् ।

इसी तरह पाण्डवों की सेना में भी, रुधिर में लथपथ छः सहस्र अश्वारोही बचे थे। उनके अश्व थके थे। वे भी रणभूमि से पीछे हट गए ॥५६॥

अश्वारोहाश्च पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः ॥६०॥
सुसन्निकृष्टे संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः ।
न हि शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः ॥६१॥
रथानेव रथा यांतु कुञ्जराः कुञ्जरानपि ।

अब पाण्डवों के रुधिर में भीगे हुए अश्वारोही वीर कहने लगे, कि संग्राम भूमि में बहुत ही समीप २ शत्रु पड़े हैं। अधिकांश वीरों के प्राण जा चुके हैं। अब तो रथों से भी युद्ध नहीं किया जा सकता-बड़े२ हाथियों से तो युद्ध होही कैसे सकता है॥६०॥ अब रथों पर रथी और हाथियों पर गजारोही आक्रमण करें॥

प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ॥६२॥
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति ।

इस समय शकुनि लौटकर अपनी सेना में स्थित हो गया है। अब वह लौट कर युद्ध करने को नहीं आ सकता है ॥६२॥

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ॥६३॥
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः ।

इसके बाद द्रौपदी पुत्र और वह मदोन्मत्त हाथी, उधर चल दिए, जिधर महारथी धृष्टद्युम्न स्थित थे ॥६३॥

सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते ॥६४॥
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! रज के मेघ के उठने पर अकेला सहदेव भी उधर चल दिया-जिधर राजा युधिष्ठिर स्थित थे ॥६४॥

ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः ॥६५॥
पार्श्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् ।

जब ये वीर आगे निकल गए-तो सुबल पुत्र शकुनि ने फिर पीछे से आक्रमण कर दिया और उसने धृष्टद्युम्न की सेना के पार्श्व भाग का विनाश कर दिया ॥६५॥

तत्पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाऽभ्यवर्त्तत ॥६६॥
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम् ।

हे राजन् ! इस समय फिर तुम्हारे और शत्रुपक्ष के परस्पर वध कर देने की अभिलाषा वाले, वीरों में घोर युद्ध चल पड़ा । अब इन्होंने प्राणों का मोह बिलकुल छोड़ दिया ॥६६॥

ते चान्योन्यमवैक्षन्त तस्मिन्वीरसमागमे ॥६७॥
योधाः पर्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ।

हे राजन्! इस वीरों के संग्राम में वे वीर परस्पर एक दूसर की ओर देखने लगे। इस समय सैंकड़ों हजारों की संख्या में वीर आकर वहां टूट पड़े ॥६७॥

असिभिच्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये ॥६८॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दस्तालानां पततामिव।
विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि ॥६९॥
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशाम्पते।
आसीत्कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥७०॥

जब यह वीरों के विनाश रूप युद्ध में खड्गों से शिर काटे जा रहे थे तो इस तरह मान शब्द उठ रहा था जैसे तालफल टूट २ कर पड़ रहे हों। हे विशाम्पते! मस्तकोंसे विहीन शरीर कट २ कर वहां गिर रहे थे। शस्त्रों सहित भुजाएं और जंघा भी कट २ कर गिर रही थी। और महान लोम हर्षण कट कटा शब्द हो रहा था।

निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन्पुत्रान्सखीनपि।
योधाः परिपतन्ति स्म यथाऽऽमिषकृते खगाः ॥७१॥

इस समय अपने भाई, पुत्र और मित्रों को तीक्ष्ण शस्त्रों से मारते हुए योद्धा इस तरह झपट रहे थे, जैसे मांस पर चील झपटती हों ॥७१॥

अन्योन्यं प्रति संरब्धाः समासाद्य परस्परम्।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति निघ्नन्सहस्रशः ॥७२॥

बहुत से वीर आवेश में भरे हुए, एक दूसरे के सन्मुख पहुंच रहे थे। प्रथम मैं प्रहार करूंगा इस तरह करते हुए सहस्त्रों वीरों को परस्पर मार २ कर गिरा रहे थे ॥७२॥

संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥७३॥

भीषण प्रहार से आसन से भ्रष्ट हुए बहुत से मृतक वीर गिर गिए तो सैंकड़ों हजारों की संख्या में अश्व, बिना सवारों के ही भागे फिरते हैं ॥७३॥

स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रगामिनाम् ।
स्तनतां च मनुष्याणां सन्नद्धानां विशाम्पते ॥७४॥
शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समपद्यत ।
भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मंत्रिते तव ॥७५॥

हे विशाम्पते ! कुचले हुए तड़फड़ाते हुए शीघ्रगामी अश्वों तथा युद्ध सामग्री से सुसज्जित गरजते हुए वीरों के शक्ति ऋष्टि प्रास आदि शस्त्रों का घोर शब्द होने लगा। हे राजन् ! बहुत से वीरों के मर्मस्थान इस तुम्हारे दुर्मन्त्रणासे खड़े किए हुए युद्ध में कटते चले गए ॥७४-७५॥

श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासवः ।
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः ॥७६॥

हे भरतर्षभ ! इस समय परिश्रम से थके हुए, आवेशातुर, प्यासे और थके हुए वाहनों से युक्त एवं तीक्ष्ण शस्त्रों से क्षत-विक्षत तुम्हारे पक्ष के वीर लौट पड़े ॥७६॥

—

मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः ।
जघ्नुः परान्स्वकांश्चैव प्राप्तान्प्राप्ताननन्तरान् ॥७७॥

बहुत से वीर तो हाथियों के मद गन्ध को सूंघ कर ही अचेत हो गए। वे अपने समीप पहुंचते हुए अपने या पराए सारे वीरों को बिना पहचान मारने लगे ॥७७॥

बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः ।
भूमावभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिरावृताः ॥७८॥

हे राजन ! विजय लोलुप, बहुत से क्षत्रिय वीर, प्राण विहीन हो गए। वे बाण वर्षा से व्याकुल होकर भूमि में गिर गए ॥७८॥

वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद्बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥७९॥

आज भेड़िये, गीध और शृगाल बड़े प्रसन्न हो रहे थे। तुम्हारे पुत्र के देखते २ तुम्हारी सेना का बहुत ही विनाश हो गया॥

नराश्वकायैः सञ्छन्ना भूमिरासीद्विशाम्पते ।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी ॥८०॥

हे विशाम्पते ! इस समय रुधिर से विचित्र, वीर और अश्वों के शरीरों से सारी रण भूमि व्याप्त हो गई, जिसको देख कर कायरों को भय चढ़ बैठता था ॥८०॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत ॥८१॥

प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत्प्राणस्य धारणम् ।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः ॥८२॥

हे भारत ! खड्ग, पट्टिश और शूल से बार २ आहत किए गए तुम्हारे और पाण्डव वीर युद्ध भूमि से पीछे नहीं हटते थे और वे जब तक प्राण थे तब तक यथा शक्ति प्रहार ही करते रहते थे। इस घोर संग्राम में योद्धागण अपने व्रणों से रुधिर का वमन करते हुए पड़े हुए थे ॥८१-८२॥

शिरो गृहीत्वा केशेषु कबंधः स्म प्रदृश्यते ।
उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ॥८३॥

कबन्धों ने शत्रु वीरों के केश पकड़ रखे हैं और रुधिर में भीगे हुए खड्ग उठा रखे थे ॥८३॥

तथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु नराधिप ।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन् ॥८४॥

हे नराधिप ! जब इस प्रकार रणक्षेत्र में बहुत से कबन्ध उठे हुए दिखाई दे रहे थे उसी भीषण समय में रुधिर की गन्धसे बहुतसे योद्धाओं को मूर्छा आ गई ॥८४॥

मंदीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद्बलम् ।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्त्तत सौबलः ॥८५॥

जब रण में कोलाहल मन्द पड़गया तो पाण्डवों की विशाल सेना और थोड़े से घुड़सवारों को लेकर सुबल पुत्र शकुनि रण भूमि से चल पड़े ॥८५॥

ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः ।
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ॥८६॥

शकुनि की सेना को देखकर विजयोन्मत्त पाण्डव, तथा गजारोही अश्वारोही और पैदल सैनिक वीर वेग से दौड़े ॥८६॥

कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः ।
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥८७॥

पाण्डव वीरों ने मण्डल बना कर शकुनि को घेर लिया । और युद्ध को समाप्त कर देने की अभिलाषा से अनेक शस्त्रों से उसपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥८७॥

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान् ।
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः ॥८८॥

जब तुम्हारे पक्ष के रथी, अश्वारोही और गजारोही वीरों ने सब ओर से पाण्डव वीरों को झपटते देखा-तो वे भी वेग से उनपर टूट पड़े ॥८८॥

केचित्पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् ।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन् ॥८९॥

कुछ पैदल सैनिक-पैदल सैनिकों से मुष्टि मार २ कर लड़ रहे थे । इन शूर वीरों के शस्त्र समाप्त होगए थे अब ये व्याकुल होकर रणभूमि में गिरने लगे ॥८९॥

रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः ।
विमानेभ्यो दिवो भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षयादिव ॥९०॥

रथों से रथी और गजों से गजारोही वीर, इस तरह गिरने लगे-जैसे पुण्य के क्षय होने पर सिद्ध लोग, विमानों से गिरते हैं ॥६०॥

एवमन्योन्यमायत्ता योधा जघ्नुर्महाहवे ।
पितृभ्रातृन्वयस्यांश्च पुत्रानपि तथाऽपरे ॥६१॥

इस प्रकार बड़े प्रयत्न के साथ इस घोर युद्ध में योद्धागण, अपने पिता भ्राता, मित्र और पुत्रों को भी मार २ कर गिरा रहे थे ॥६१॥

एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम ।
प्रासासिबाणकलिलं वर्तमाने सुदारुणे ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हे भरतसत्तम ! इस समय प्रास, खड्ग और बाण समूह से व्याप्त होकर दारुण निर्मर्याद युद्ध चल पड़ा ॥६२॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में घोर युद्ध के वर्णन का तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ



चौबीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— तस्मिन् शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्त्तत सौबलः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन! जब युद्ध का कोलाहल कुछ कोमल पड़ गया-तो पाण्डवों ने बहुत सी कौरव सेना मार डाली तो शेष-भूत सात सौ अश्वों को लेकर सुबल पुत्र शकुनि लौट पड़ा ॥१॥

स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत्त्वरयन्युधि।
युध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिन्दमाः ॥२॥
अपृच्छत्क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महाबलः।

इसने सेना में पहुंच कर रणाङ्गण में बड़ी शीघ्रता में कहा-कि हे शत्रुशातक वीरो! तुम लोग प्रसन्न होकर बार २ आक्रमण करो, इसने उन क्षत्रिय वीरों से पूछा कि महाबली राजा दुर्योधन कहां है॥२॥

शकुनेस्तद्वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ ॥३॥
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः।
यत्रैतत्सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥४॥
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठंति दंशिताः।
यत्रैष तुमुलः शब्दः पर्जन्यनिनदोपमः ॥५॥
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम्।

हे भरतर्षभ ! शकुनि के ये वचन सुन कर उन वीरों ने कहा-ये रण के मध्य में महाबली राजा दुर्योधन उपस्थित हैं । यह जो पूर्णचन्द्र के समान उज्ज्वल छत्र चमक रहा है-ये कवच पहने हुए सुसज्जित रथ खड़े हैं, जहां पर यह मेघ गर्जना तुल्य घोर ध्वनि हो रही है । हे राजन् ! तुम वहां शीघ्र चले जाओ-वहां पर तुम राजा दुर्योधन को देख सकोगे ॥३-५॥

एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा ॥६॥
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप ।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः ॥७॥

हे नराधिप ! जब उन योद्धाओं ने इतना कहा—तो सुबल पुत्र शकुनि, वहीं पहुंचा जहां पर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाले वीरों से रणभूमि में घिरे हुए खड़े थे ॥६-७॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम् ।
सरथांस्तावकान्सर्वान्हर्षयन् शकुनिस्ततः ॥८॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशाम्पते ।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ॥९॥

हे विशाम्पते ! राजा दुर्योधन को रथ सेना के मध्य में स्थित देखकर सारे रथी वीरों के सहित सारे योद्धाओं को हर्षित करते हुए और प्रसन्नता में भरे हुए शकुनि ने अपने को कृतकृत्य मान कर राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥८-९॥

जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया।

नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः ॥१०॥

हे राजन्! आप इस रथ सेना का नाश करो मैंने सारे अश्वारोही मार लिए हैं। इस युद्ध में प्राणों का मोह छोड़े बिना राजा युधिष्ठिर जीता नहीं जा सकता है ॥१०॥

हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते।

गजानेतान्हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥११॥

पाण्डु पुत्र धर्मराज द्वारा सुरक्षित इस रथ सेना का जब तुम नाश कर लोगे-तो इस गज सेना, पैदल और अन्य वीरों को मैं मार लूंगा ॥११॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः।

जवेनाभ्यपतन्हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥१२॥

हे राजन्! विजयाभिलाषी, तुम्हारे महारथी, गान्धारराज शकुनि के ये वचन सुनकर बड़े उल्लास में भरे हुए पाण्डवों की सेना पर वेग से टूट पड़े ॥१२॥

सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः।

शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान्प्रणेदिरे ॥१३॥

सबने अपने २ तूणीरों के मुख खोल रखे थे और धनुष उठा रखे थे। ये अपने २ धनुषों को घुमाते हुए सिंह नाद करने लगा ॥१३॥

ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद्विशाम्पते ।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः ॥१४॥

हे विशाम्पते ! अब फिर धनुष की प्रत्यञ्चा की ध्वनि होने लगी। और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणों का दारुण शब्द होने लगा ॥१४॥

तान्समीपगतान्दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकः ।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥१५॥

इन कौरव वीरों को समीप में आए हुए देखकर कुन्ती पुत्र अर्जुन ने भी वेग से अपना धनुष सम्हाला और देवकी पुत्र श्री-कृष्ण से कहा ॥१५॥

चोदयाश्वानसंभ्रान्तः प्रविशैतद्बलार्णवम् ।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः ॥१६॥

हे कृष्ण ! आप विना किसी घबराहट के अश्वों को हांको और इस सेना में घुस चलो । मैं आज अपने तीक्ष्ण बाणों से इन शत्रुओं का अन्त कर देना चाहता हूँ ॥१६॥

अष्टादशदिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन ।
वर्त्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् ॥१७॥
अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम् ।
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् ॥१८॥

हे जनार्दन ! आज महा युद्ध को प्रारम्भ हुए अठारह दिन व्यतीत होचुके, जिसमें परस्पर वीरों का महान् विनाश हो चुका

है। कौरव वीरों की सेना प्रथम दिन अनन्त सी दिखाई देती थी, परन्तु आज युद्ध में नष्ट होचुकी है। आप देव की शक्ति का अवलोकन करो ॥१७-१८॥

समुद्रकल्पं च बलं धार्त्तराष्ट्रस्य माधव।
अस्मानासाद्य सञ्जातं गोष्पदोपममच्युत ॥१९॥

हे माधव! धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की सेना समुद्र की तरह उछल रही थी। हे अच्युत! परन्तु वही सेना हमारे सन्मुख गौ के पद के समान क्षुद्र होगई ॥१९॥

हते भीष्मे तु सन्दध्याच्छिवं स्यादिह माधव।
न च तत्कृतवान्मूढो धार्त्तराष्ट्रः सुबालिशः ॥२०॥

हे माधव! जब भीष्म मारे गए-तो हमने समझा था, कि अब सन्धि हो जावेगी जिस से सारे जगत् का कल्याण होगा, परन्तु मन्दबुद्धि दुर्मति, राजा दुर्योधनने सन्धि की चर्चा भी नहीं चलाई ॥२०॥

उक्तं भीष्मेण यद्वाक्यं हितं तथ्यं च माधव।
तच्चापि नासौ कृतवान्वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥२१॥

हे जनार्दन! भीष्म ने तो समय २ पर दुर्योधन के हितकारी सत्य वचन कहे थे, परन्तु राजा दुर्योधन ने उन्हें नहीं माना, क्योंकि उसकी बुद्धि का दिवाला निकला हुआ था ॥२१॥

तस्मिंस्तु तुमुले भीष्मे प्रच्युते धरणीतले।
न जाने कारणं किं तु येन युद्धमवर्त्तत ॥२२॥

जब घोर युद्ध में भीष्म पितामह रणभूमि में गिर गए-तो फिर न जाने किस कारण से युद्ध चलता रहा ॥२२॥

मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्त्तराष्ट्रान्सुबालिशान् ।
पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥२३॥

हे कृष्ण ! मैं तो धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि को बहुत ही निपट मूर्ख मानता हूँ जो शान्तनु पुत्र महारथी भीष्म पितामह के रण-क्षेत्र में गिर जाने पर भी युद्ध करते ही रहे ॥२३॥

अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे ।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२४॥

इसके बाद जब ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, द्रोणाचार्य मर गए-तथा राधा पुत्र कर्ण और विकर्ण भी यमलोक चले गए-तो भी न जाने यह मार काट क्यों नहीं शान्त हो सकी ॥२४॥

अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते ।
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२५॥

जब नर व्याघ्र सूतपुत्र कर्ण अपने पुत्र सहित मार लिए गए और कौरव सेना बहुत ही थोड़ी शेष रहगई-तो फिर भी यह विनाश शान्त नहीं हो सका ॥२५॥

श्रुतायुषि हते वीरे जलसन्धे च पौरवे ।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२६॥

वीरश्रेष्ठ, श्रुतायु पुरुवंशी जलसन्ध और राजा श्रुतायुध के मारे जाने पर भी यह महाभारत बन्द नहीं किया गया ॥२६॥

भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन ।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२७॥

हे जनार्दन, भूरिश्रवा, मद्रराज शल्य म्लेच्छ राज शाल्व तथा आवन्त्य वीरों के नष्ट होने पर भी इस युद्ध की शान्ति नहीं हुई ॥

जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे ।
बाल्हिके सोमदत्ते च नैवाश्याम्यत वैशसम् ॥२८॥

सिन्धुराज, बाल्हिक राज और राजा सोमदत्त के मार लेने पर भी यह युद्ध चलता ही रहा ॥२८॥

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे ।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥२९॥

राजा भगदत्त काम्बोजाधिपति सुदक्षिण और दुःशासन के मार लेने पर भी इस युद्ध की समाप्ति नहीं हुई ॥२९॥

दृष्ट्वा विनिहतान् शूरान् पृथङ्माण्डलिकान्नृपान् ।
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम् ॥३०॥

राजा दुर्योधन ने, भिन्न २ देशों के माण्डलिक महाबली शूर-वीर राजा इस युद्ध में मरते देखे-तो भी उसने युद्ध के बन्द करने की घोषणा नहीं की ॥३०॥

अक्षौहिणीपतीन् दृष्ट्वा भीमसेननिपातितान् ।
मोहाद्वा यदि वा लोभान्नैवाशाम्यत वैशसम् ॥३१॥

भीमसेन ने बहुत से अक्षौहिणी पति राजा मार २ कर बिछा दिए-तो भी लोभ या मोह से उसने युद्ध को शान्त नहीं किया ॥३१॥

को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः ।
निरर्थकं महद्वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥३२॥

ऐसा कौन सा समझ व्यक्ति राज कुल में उत्पन्न होगा, जो इस प्रकार निरर्थक वैर को आगे बढ़ाता रहे। राजा दुर्योधन तो सर्वश्रेष्ठ, कुरुवंश में उत्पन्न हुआ था- तो भी उसने युद्ध नहीं रोका तो इससे अधिक कौन मूर्ख होगा ॥३२॥

गुणतोऽभ्यधिकान् ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोपि वा ।
अमूढः को नु युद्ध्येत जानन्प्राज्ञो हिताहितम् ॥३३॥

हे कृष्ण ! पाण्डवों को वीरता बल और गुणों में भी अधिक जानकर अपने हित अहित के पहचानने वाला कौन बुद्धिमान व्यक्ति उनसे युद्ध कर सकता था ॥३३॥

यन्न तस्य मनो ह्यासीत्त्वयोक्तस्य हितं वचः ।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात्कथम् ॥३४॥

हे जनार्दन ! जब तुमने दुर्योधन के हितकारी वचन कहे और उसका मन उस समय भी नहीं पिघला-तो फिर पाण्डवों से सन्धि करने को वह किसके वचन सुन सकता था ॥३४॥

येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च ।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम् ॥३५

जिसने शान्तनु पुत्र भीष्म, वीर द्रोण और महात्मा विदुर को सन्धि के लिए निषेध कर दिया-उसकी फिर चिकित्सा हो ही क्या सकती थी ॥३५॥

मौर्ख्यादनेन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन ।
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी ॥३६॥
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद्वचः ।

हे जनार्दन ! जिसने अपनी मूर्खता से वृद्ध पिता को भी निषेध कर दिया और हित चाहने वाली हितकारी बात कहती हुई माता गान्धारी को भी अनादर के साथ रोक दिया उसको किस का वचन रोचक प्रतीत हो सकता है ॥३६॥

कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ॥३७॥
तथाऽस्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशाम्पते ।
नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत ॥३८॥

हे जनार्दन ! राजा दुर्योधन तो कुरुवंश के विनाश के लिए ही उत्पन्न हुआ-यह स्पष्ट होता जा रहा है । हे विशाम्पते ! इसकी चेष्टा और नीति स्पष्ट तो दिखाई देरही है । हे अच्युत ! यह हम को जीवित रहता हुआ कभी राज्य नहीं देने वाला है । यह मुझे जंच गया है ॥३७ ३८॥

उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना ।
न जीवन्दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद ॥३९॥

हे तात ! मानद ! मुझे तो महात्मा विदुर ने बार २ कहा था कि राजा दुर्योधन जीता हुआ कभी तुम्हें अपना भाग नहीं दे सकता है ॥३९॥

यावत्प्राणा धरिष्यन्ति धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः

तावद्युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम् ॥४०॥

जब तक दुर्योधन के शरीर में प्राण रहेंगे तब तक यह नीच हम निरपराधियों पर अत्याचार करता ही रहेगा ॥४०॥

न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव ।

इत्यब्रवीत्सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥४१॥

हे माधव ! यह बिना युद्ध के जीता नहीं जा सकता है इस तरह सत्यवादी विदुर ने मुझे बार २ कहा था ॥४१॥

तत्सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः ।

यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥४२॥

जो पूर्व काल में महात्मा विदुर ने मुझसे वचन कहा था, आज मैंने इस दुरात्मा दुर्योधन की वे चेष्टाएं स्पष्ट देख ली हैं ॥

यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद्यथातथम् ।

अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥४३॥

जिसने जमदग्नि पुत्र परशुराम के ठीक २ हितकारी वचन सुनकर भी उनकी अवहेलना करदी, वह दुर्बुद्धि अवश्य मृत्यु के मुख में पहुंच चुका है ॥४३॥

उक्तं हि बहुशः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने ।

एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥४४॥

जब राजा दुर्योधन उत्पन्न हुआ था, तो बहुत से सिद्ध योगियों ने बार २ कहा था, कि इस दुरात्मा पुत्र के कारण से सारे क्षत्रियों का विनाश होकर रहेगा ॥४४॥

तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन ।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम् ॥४५॥

हे जनार्दन ! जो वचन इन महात्माओं ने कहे थे, वे सत्य हो रहे हैं। आज दुर्योधन के कारण से ही यह सारी क्षत्रिय जाति नष्ट हो रही है ॥४५॥

सोऽद्य सर्वान्रणे योधान्निहनिष्यामि माधव ।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते ॥४६॥
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति ।
तदन्तं हि भवेद्वैरमनुमानेन माधव ॥४७॥

हे माधव ! अब मैं आज इस रणाङ्गण में सारे योद्धाओं को मार बिछाता हूँ, जो मैं झटपट क्षत्रिय वीरों को मारलूंगा और शिबिर को शून्य बनादूंगा-तब ही यह अपने वध के निमित्त हम से तत्पर होगा। हे माधव ! जब दुर्योधन का अन्त हो जावेगा तब ही यह वैर शान्त होगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है ॥४६-४७॥

एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन्प्रज्ञया स्वया ।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ॥४८॥

तस्माद्याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः ।
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे ॥४९॥

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव ।
हत्वैतद्दुर्बलं सैन्यं धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥५०॥

हे वार्ष्णेय ! मैं अपनी बुद्धि से विचार करने पर यही निश्चित कर पाता हूँ। महात्मा विदुर के वाक्य भी ऐसे ही थे और इस दुष्ट दुर्योधन की चेष्टा भी ऐसी ही हो रही है। हे महाबाहो ! वीर ! अब तुम इस सेना में घुसो। मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से आज युद्ध में राजा दुर्योधन और उसकी सेना को नष्ट किए देता हूँ। हे माधव ! राजा दुर्योधन के देखते २ मैं आज इस दुर्बल कौरव सेना का विध्वंस करदूंगा और धर्मराज के लिए कल्याण का मार्ग परिमार्जित बना दूंगा ॥४८-५०॥

सञ्जय उवाच— अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना
तद्बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद्बलात् ॥५१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अश्वों की रास पकड़े हुए दशार्ह वंश श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण से जब सव्यसाची अर्जुन ने इतना कहा-तो वे निडर हुए शत्रु सेना में बल पूर्वक घुसते चले गए ॥५१॥

कुन्तखड्गशरैर्घोरं शक्तिकंटकसंकुलम् ।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥५२॥
हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः ।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना ॥५३॥

भाले, खड्ग और बाणों से भयानक, शक्ति कण्टक आदि शस्त्रों से व्याप्त, गदा परिघ, जैसे शस्त्रों के मार्ग वाली, रथ हाथी

यादि बड़े २ वृक्षों से सम्पन्न, अश्व, पैदल आदि लताओं से आकीर्ण शत्रु सेना को महा यशस्वी, श्रीकृष्ण, अपने पताका से सुशोभित रथ से आलोडित करके उसमें घूमने लगे ॥५२-५३॥

ते हयाः पाण्डुरा राजन्वहतोऽर्जुनमाहवे ।

दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः ॥५४॥

हे राजन् ! दशार्ह वंश श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण द्वारा हांके हुए श्वेत अश्व, अर्जुन को लेजाते हुए रणाङ्गण में सब दिशाओं में दिखाई देने लगे ॥५४॥

ततः प्रायाद्रथेनाजौ सव्यसाची परन्तपः ।

किरन् शरशतांस्तीक्ष्णान्वारिधारा घनो यथा ॥५५॥

हे भारत ! इस समय शत्रुतापी सव्यसाची अर्जुन, मेघ जैसे जलधारा बरसाता है, उसी तरह बाण धारा बरसाते हुए रणभूमि में रथ के द्वारा घूमने लगे ॥५५॥

प्रादुरासीन्महान्शब्दः शराणां नतपर्वणाम् ।

इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना ॥५६॥

सव्यसाची अर्जुन द्वारा छोटे २ बाणों के साथ छोड़े हुए नतपर्व वाले बाणों का महान् शब्द रणभूमि में छाता हुआ चला गया ॥५६॥

असज्जन्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि ।

इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः ॥५७॥

यह बाणों का समूह शत्रु वीरों के कवचों में टकरा २ कर पृथिवी में गिरने लगे। गाण्डीव से छोड़े हुए इन बाणों की चोट इन्द्र के वज्र के समान होती थी ॥५७॥

नरान्नागान्समाहत्य हयांश्चापि विशाम्पते।
अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गाः इव घोषिणः ॥५८॥

हे विशाम्पते! मनुष्य. हाथी और अश्वों का हनन करके बाण, शब्द करने वाले पक्षियों की तरह रणभूमि में गिरने लगे॥

आसीत्सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा ॥५९॥

गाण्डीव से फैंके हुए बाणों से सारी रणभूमि, व्याप्त होगई। इस समय रण में दिशा प्रदिशा कुछ भी ज्ञात नहीं होती थी ॥५९॥

सर्वमासीज्जगत्पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥६०॥

अब अर्जुन के नाम से अङ्कित बाणों से सारा जगत् भरता चला गया। ये बाण सुवर्ण के मूलधारी तेल से मांजे हुए और कारीगर से तीक्ष्ण किए हुए थे ॥६०॥

ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः।
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः ॥६१॥

यद्यपि अर्जुन द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से आहत हुए हाथी, इस तरह जल रहे थे, मानों आग से जल रहे हो-तो भी वे अर्जुन, का पीछा नहीं छोड़ रहे थे ॥६१॥

शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः ।
ददाह समरे योधान्कत्तमग्निरिव ज्वलन् ॥६२॥

अर्जुन गाण्डीव धनुष और बाण धारण किए हुए थे प्रचण्ड सूर्य के तुल्य दिखाई देरहे थे। उन्होंने, युद्ध में योद्धाओं को इस तरह जला डाला जैसे प्रज्वलित अग्नि तृण समूह को जला डालती है॥ २॥

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः कक्षं दहेत्कृष्णगतिः सुघोषः ।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥
एवं स नाराचगणप्रतापो शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः ।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेनाममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥६४॥

जिस तरह वन में वनचारी किरातों से लगाई हुई चट चट शब्द करने वाली धूम वर्ण, प्रज्वलित प्रचण्ड, भीषण आग, बहुत से वृक्ष, सूखे लता समूह और तृण जाल को जला डालता है, उसी तरह नाराच बाणों से प्रचण्ड, बाण रूपी लपटों से युक्त, अत्यन्त तीक्ष्ण तेज धारी महा वेगशाली किसी को अपने तेज से नहीं सहने वाले अर्जुन रूपी अग्नि ने तुम्हारे पुत्र की सेना को दग्ध कर डाला ॥६३-६४॥

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता नासज्जन्वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः ।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं नरे हये वा परमद्विपे वा ॥

सुवर्ण मूलधारी प्राणापहारक, गाण्डीव धनुष से अच्छी तरह छोड़े हुए अर्जुन के बाण कवचों पर भी नहीं रुकते थे ।

अर्जुन को मनुष्य, अश्व या किसी गजराज पर दूसरा बाण नहीं छोड़ना पड़ता था। उसकी एक ही बाण में समाप्ति हो जाती थी ॥

अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणैर्महारथानीकमनुप्रविश्य ।
स एव एकस्तव पुत्रस्य सेनां जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

हे राजन्! जिस तरह वज्र पाणि इन्द्र, दैत्यों को मार देता है, उसी तरह अनेक आकृति धारी बाणों से महारथियों की सेना में घुस कर, तुम्हारे पुत्र की सेना को नष्ट भ्रष्ट कर डाला॥६६॥

इतिश्री महाभारत शल्य पर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
घोर युद्ध वर्णन का चौबीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



पच्चीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
सङ्कल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतवंशश्रेष्ठ! युद्ध से नहीं हटने वाले प्रयत्न शील, शूरवीरों को सन्मुख ही युद्ध करते हुए जब अर्जुन ने देखा-तो उसने अपने गाण्डीव धनुष द्वारा उनके संकल्पों को निरर्थक बना दिया ॥१॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान्महौजसः ।

विसृजन् दृश्यते बाणान्धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥२॥

अर्जुन, इन्द्र के वज्र के समान स्पर्श वाले, असह्य महाओजस्वी बाणों को छोड़ता हुआ ऐसा दिखाई देने लगा-जैसे मेघ जल धारा बरसा रहा हो ॥२॥

तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना ।

सम्प्रदुद्राव संग्रामात्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥३॥

पितॄन् भ्रातॄन्परित्यज्य वयस्यानपि चापरे ।

हे राजन ! जब अर्जुन ने तुम्हारी सेना का हनन करना आरम्भ किया-तो वह सेना संग्राम से एक दम भाग उठी और तुम्हारा पुत्र दुर्योधन देखता ही रह गया। ये वीर, अपने पिता, भ्राता और मित्रों को भी छोड़ छाड़ गये ॥३॥

हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथाऽपरे ॥४॥

भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन्विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! अर्जुन के बाणों से बहुत रथों के अश्व और बहुत रथों के सारथि मारे गए। कुछ रथों के अक्ष, जूड़े चक्र और ईषा टूट गई ॥४॥

अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथाऽन्ये बाणपीडिताः ॥५॥

अक्षता युगपत्केचित्प्राद्रवन् भयपीडिताः ।

बहुत से वीरों के बाण समाप्त हो गए तथा कुछ वीर बाणों से पीड़ित होकर और कुछ तो किसी प्रकार का आघात खाए बिना ही एक दम भय से पीड़ित होकर भाग निकले ॥५॥

केचित्पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठबान्धवाः ॥६॥
विचुक्रुशुः पितॄंस्त्वन्ये सहायानपरे पुनः ।

कोई पिता अपने पुत्रों को सम्बोधित करके चिल्ला रहा है। इनके बहुत से बन्धु बान्धव नष्ट हो चुके हैं। कहीं पर पुत्र ही पिता को आवाज़ देरहा है और कहीं पर कोई अपने सहायकों को बुला रहा है ॥६॥

बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन्सम्बन्धिनस्तथा ॥७॥
दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशाम्पते ।

हे नर व्याघ्र! विशाम्पते! बहुत से वीर तो जहां तहां अपने बान्धव, भ्राता और सम्बन्धि छोड़कर वेग से भाग गए ॥७॥

बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः ॥८॥
निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः ।

बहुत से महारथी वीर तो इतनी गाढ़ी रीति से बिंध गए कि मूर्च्छित हो गए और बहुत से अर्जुन के बाणों से आहत पुरुष, हांपते हुए दिखाई देरहे थे ॥८॥

तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्त्तकम् ॥९॥
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे ।

उन व्याकुल वीरों को अन्य वीर अपने रथ में बैठा कर थोड़ी देर आश्वासन देते रहे। जब उन घायल वीरों को कुछ विश्राम मिल गया और इन्होंने पानी से प्यास बुझा ली-तो वे पूर्वोक्त वीर फिर युद्ध के लिए चल दिए ॥६॥

तानपास्य गताः केचित्पुनरेव युयुत्सवः ॥१०॥
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः।

हे राजन्! युद्ध के अभिलाषी युद्ध दुर्मद कौरव वीर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन की आज्ञा में तत्पर हुए उन घायल आश्वासित वीरों को छोड़कर फिर युद्ध में तत्पर होगए ॥१०॥

पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम् ॥११॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद्भरतसत्तम।
समाश्वास्यापरे भ्रातॄन्निक्षिप्य शिविरेऽपि च ॥१२॥
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन्।

हे भरतसत्तम! कुछ वीर पानी पीकर और अपने अश्वों की थकान निकाल कर तथा कवच पहन कर युद्ध को चले। इन्होंने अपने घायल भ्राता आदि को सान्त्वना दी और उन्हें शिबिर में पहुंचा दिया। इस तरह किन्हीं वीरों ने अपने पुत्र और किन्हीं ने अपने पिता को सान्त्वना देकर शिबिर में पहुंचाया और आप युद्ध के लिए चल पड़े ॥११-१२॥

सज्जयित्वा रथान्केचिद्यथा मुख्यं विशाम्पते ॥१३॥
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन्।

हे विशाम्पते ! बहुत से वीरों ने जितना होसका बड़ी उत्तमता से रथ को रण सामग्री से सजाया और वे कूद कर फिर पाण्डव सेना के मध्य में पहुंच कर युद्ध में जुट गए ॥१३॥

ते शूराः किंकिणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे ॥१४॥
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः ।

ये शूरवीर किंकणी (घुघंरू) जाल से व्याप्त हुए ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे त्रिलोकी के विजय में दैत्य और दानव जुटे हों ॥१४॥

आगम्य सहसा केचिद्रथैः स्वर्णविभूषितैः ॥१५॥
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् ।

बहुत से कौरव वीर, स्वर्ण विभूषित अपने रथों को लेकर एक दम पाण्डव सेना में आधमके और सेनापति धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे ॥१५॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ॥१६॥
नाकुलिस्तु शतानीको रथानीकमयोधयन् ।

इधर भी पञ्चाल राज धृष्टद्युम्न महारथी शिखण्डी, नकुल पुत्र शतानीक इस रथ सेना से युद्ध करने लगे ॥१६॥

पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्ध सैन्येन महता वृतः ॥१७॥
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तावकान्हन्तुमुद्यतः ।

अब पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न भी क्रोध में भर गया और बड़ी भारी सेना लेकर क्रोध के साथ तुम्हारी सेना के विध्वंस करने को वेग के साथ झपटा ॥१७॥

ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ॥१८॥
बाणसंघाननेकान्वै प्रेषयामास भारत ।

हे जनाधिप भारत ! जब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने, धृष्टद्युम्न को झपटते देखा-तो उसने अपने बाण समूह को बड़े वेग से छोड़ना आरम्भ किया ॥१८॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ॥१९॥
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः ।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः ॥२०॥
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

हे राजन ! इस समय महाधनुर्धर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने, नाराच, अर्धनाराच बाण बहुत से शीघ्र वध करदेने में समर्थ वत्सदन्त संज्ञक बाण तथा कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किए गए बाणों से धृष्टद्युम्न के चारों अश्व मार कर उसकी भुजा और छाती में प्रहार किया ॥१९-२०॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥२१॥
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥२२॥

जब कुरुराज के बाणों से महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न तोमर शस्त्र से आहत हाथी की तरह व्याकुल हो उठा-तो उसने भी बाण छोड़े, जिनसे कुरुराज के चारों अश्वों को यमपुरी भेज दिया। तथा इसके सारथि का शिर भी भल्ल संज्ञक शर से शरीर पृथक् कर दिया ॥२१-२२॥

ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः ।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिन्दमः ॥२३॥

अब अरिन्दम् राजा दुर्योधन, अश्व की पीठ पर चढ़ गया उसका रथ नष्ट भ्रष्ट होगया था। वह युद्ध स्थान से हटकर समीप ही स्थित होगया ॥२३॥

दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः ।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥२४॥

हे महाराज! जब तुम्हारे पुत्र महाबली राजा दुर्योधन ने पराक्रम हीन अपनी सेना को देखा-तो वह सुबल पुत्र शकुनि के पास पहुंचा ॥२४॥

ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः ।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान्समन्तात्पर्यवारयन् ॥२४॥

जब रथ सेना वहां से हट गई-तो तीन सहस्र गजारोही वीरों ने पाण्डवों की रथ सेना को घेर लिया ॥२५॥

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत ।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥२६॥

हे भारत! इस गज सेना से घेरे हुए ये पांचों पाण्डव ऐसे दिखाई पड़े-जैसे मेघों में पांच ग्रह घिरे हुए हों ॥२६॥

ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्षो महाभुजः ।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥२७॥

हे महाराज! महाभुज धारी अर्जुन, जिधर बाण मारता था उधर ही लक्ष्य को बेंध लेता था। अब कृष्ण को सारथि बनाए हुए श्वेत अश्व वाले अर्जुन अपने रथ के द्वारा आगे बढ़े ॥२७॥

तैः समन्तात्परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥२८॥

अब पर्वत के समान आकारधारी हाथियों से घिरा हुआ अर्जुन अपने तीक्ष्ण चमकीले बाणों से गज सेना से युद्ध करने लगा ॥२८॥

तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान् ।
पतितान्पात्यमानांश्च निर्भिन्नान्सव्यसाचिना ॥२९॥

हे राजन्! वहां हमने सव्यसाची अर्जुन द्वारा एक बाण से ही मारे हुए गिरे हुए या गिराये जाते हुए घायल हाथी देखे ॥२९॥

भीमसेनस्तु तान्दृष्ट्वा नागान्मत्तगजोपमः ।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद्बली ॥३०॥
अथाप्लुत्य रथात्तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः ।

हे भारत ! मदोन्मत्त हाथी के समान महाबली, भीमसेन, उनको देखकर और विशाल गदा को हाथ से उठा कर रथ से दण्ड पाणि यमराज की तरह रथ से बड़े वेग से कूदकर उनपर टूट पड़ा ॥३०॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ॥३१॥
वित्रेसुस्तावका: सैन्या: शकृन्मूत्रे च सुस्रवुः ।
आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥३२॥

पाण्डवों के महारथी भीमसेन को गदा उठाए देखकर तुम्हारी सेना के वाहन वित्रासित हो गए और वे मलमूत्र छोड़ने लगे वृकोदर भीमसेन के गदा हाथ में लेते ही सारी सेना में खलबली मच गई ॥३१-३२॥

गदया भीमसेनेन भिन्नकुंभान् रजस्वलान् ।
धावमानानपश्याम कुंजरान्पर्वतोपमान् ॥३३॥

जब भीमसेन ने, पर्वत के समान आकार धारी हाथियों के धूलि से युक्त मस्तकों पर गदा का प्रहार किया-तो उनके मस्तक फट गए और वे भागते ही दिखाई दिए ॥३३॥

प्राद्रवन्कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः ।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥३४॥

भीमसेन की गदा से आहत हुए हाथी आर्तनाद करके पक्ष कटे हुए पर्वत के समान रणभूमि में गिरने लगे ॥३४॥

प्रभिन्नकुम्भांस्तु बहून्द्रवमाणानितस्ततः ।
पतमानांश्च सम्प्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥३५॥

छिन्न भिन्न मस्तक वाले, गज राजों को इधर उधर भागते हुए तथा रणभूमि में गिरते देखकर तुम्हारे सैनिक भयभीत हो उठे ।

युधिष्ठिरोपिऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम् ॥३६॥

क्रोध में भरे हुए राजा युधिष्ठिर और माद्रीपुत्र नकुल सहदेव भी गृध्र पक्षी के पंख से युक्त चमकीले बाणों से उन हाथियों को यमपुरी पहुंचाने लगे ॥३६॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम् ।
अपक्रान्ते तत्र सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥३७॥
दृष्ट्वा च पाण्डवान्सर्वान्कुञ्जरैः परिवारितान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत् ॥३८॥
पुत्रः पञ्चालराजस्य जिघांसु कुञ्जरान्ययौ ।

हे महाराज ! धृष्टद्युम्न ने राजा दुर्योधन को पराजित कर दिया था। तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, जब अश्व पर चढ़कर रणभूमि से खसक गए थे, जब पाञ्चाल राज के पुत्र धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों को गज सेना में घिरे हुए देखा-तो वह एक दम उस सेना पर टूटपड़ा और हाथियों को मार२ कर बिछाने लगा॥३७-३८॥

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम् ॥३९॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।

अपृच्छन्क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः ॥४०॥

जब अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वत वंशश्रेष्ठ, कृतवर्मा ने अरिमर्दन राजा दुर्योधन को गज सेना में नहीं देखा-तो वे क्षत्रिय वीरों से पूछने लगे, कि राजा दुर्योधन कहां चले गए ॥३९-४०॥

तेऽपश्यमाना राजानं वर्त्तमाने जनक्षये ।

मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ॥४१॥

विवर्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम् ।

आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः ॥४२॥

हित्वा पञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ।

इस घोर युद्ध में जब उन्होंने कुरुराज को नहीं देखा-तो उन महारथियों ने, तुम्हारे पुत्र को मरा हुआ समझ लिया। इनके मुख की रंगत बदल गई। वे वीरों से बार २ तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को पूछने लगे। किसी ने बता दिया, कि सारथि के मारे जाने पर वे सुबल पुत्र शकुनि के पास चले गए। वह पञ्चाल राज धृष्टद्युम्न की दुःसह सेना के सहन में समर्थ नहीं होसके ॥४१-४२॥

अपरेत्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥४३॥

दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति ।

युध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्यति ॥४४॥

अत्यन्त क्षतविक्षत हुए कुछ वीर कहने लगे, कि राजा दुर्योधन को ढूँढ कर ही क्या करना है। यदि जीता होगा-तो सब देख लेना तुम सब लोग इकट्ठे रहकर युद्ध करो राजा दुर्योधन तुम्हारी क्या [illegible] करेगा ॥४३-४४॥

ते क्षत्रियाः शरौघार्तैर्हतभूयिष्ठवाहनाः ।
शरैः संपीड्यमानास्तु नातिव्यक्तमथाऽब्रुवन् ॥४५॥

इन क्षत्रिय वीरों के शरीर क्षतविक्षत हो रहे थे। बहुतों के वाहन मारे जा चुके थे। ये बाणों से व्याकुल हुए स्पष्ट बोल भी नहीं सकते थे ॥४५॥

इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः ।
एते सर्वे गजान्हत्वा उपयांति स्म पाण्डवाः ॥४६॥

अब हम लोग, इस सारी सेना को मार लेना चाहते हैं जिस ने हमें घेर रक्खा है। ये पाण्डव, सारी गज सेना को मार कर आगे बढ़े चले आते हैं ॥४६॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः ।
भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ॥४७॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः ।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः ॥४८॥

महाबली अश्वत्थामा, उनके वचन सुनकर पाञ्चाल राज धृष्टद्युम्न की दुश्छेद्य सेना को चीरकर वहां पहुंचे, जहां पर सुबल

पुत्र शकुनि स्थित थे। इन के साथ २ दृढ़ धनुर्धर शूरवीर कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अपनी गज सेना को छोड़कर वहां पहुंचे ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः ।
आययुः पाण्डवा राजन्विनिघ्नन्तः स्म तावकान् ॥

हे राजन्! जब तुम्हारे वीर, चल दिये-तो धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव वीर, तुम्हारी सेना को मारते हुए आगे बढ़े ॥४९॥

दृष्ट्वा तु तानापततः सम्प्रहृष्टान्महारथान् ।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा ॥५०॥

उत्साह में भरे हुए, इन पाण्डव महारथियों को झपटते देख कर कौरव वीर पराक्रम दिखाने लगे यद्यपि उनको अपने जीवन में निराशा हो चुकी थी ॥५०॥

विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत्तावकं बलम् ।
परिक्षीणायुधान्दृष्ट्वा तानहं परिवारितान् ॥५१॥
राजन्बलेन व्यंगेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
आत्मना पंचमोऽयुद्धयं पाञ्चालस्य बलेन ह ॥५२॥
तस्मिन्देशे व्यवस्थाय यत्र शारद्वतः स्थितः ।
सम्प्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः ॥५३॥
धृष्टद्युम्नं महारौद्रं तत्र नाभूद्रणो महान् ।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात्ततः ॥५४॥

हे राजन ! जब हम लोगों ने तुम्हारी सेना के मुख की रक्षक मरी हुई देखी, इनके शस्त्र समाप्त हो चुके थे और उनको पाण्डव सेना ने घेर लिया था तो भी हम लोग, टूटी फूटी सेना लेकर अपने जीवन की अभिलाषा छोड़कर पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न की सेना से चार अन्य महारथियों को लेकर मैं पांचवा सञ्जय भी युद्ध में जुट गया। हम लोग उस स्थान में स्थित हुए-जहां पर शारद्वान् पुत्र कृतवर्मा स्थित थे। किरीटधारी अर्जुन के बाणों से घायल होकर हम पांचों महा भयानक रूपधारी धृष्टद्युम्न की ओर बढ़े। वहां अधिक युद्ध नहीं हुआ। हम सबको उस धृष्टद्युम्न ने जीत लिया-तो हम वहाँ से भी चलते बने ॥५१-५४॥

अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम् ।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे ॥५५॥

अब आते हुए महारथी सात्यकि को हम लोगों ने देखा जिसके साथ चार सौ रथी वीर थे। उसने संग्राम में मुझपर ही आक्रमण कर दिया ॥५५॥

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथंचिच्छ्रान्तवाहनात् ।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ॥५६॥
तत्र युद्धमभूद्घोरं मुहूर्त्तमतिदारुणम् ।

धृष्टद्युम्न के वाहन कुछ थक चुके थे, इससे मैं उससे तो प्राण बचाकर निकल आया, परन्तु सात्यकि की सेना में इस तरह गिर गया जैसे पापी नरक में जा पड़ता है। उस समय थोड़ी देर में महा घोर युद्ध होने लगा ॥५७॥

सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम् ॥५७॥
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि ।

महाबाहु सात्यकि ने मेरी सारी सेना मार गिराई और पृथिवी में मूर्छित पड़े हुए मुझे जीवित ही पकड़ लिया ॥५७॥

ततो मुहूर्त्तादिव तद्गजानीकमविध्यत ॥५८॥
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च ।
अभिपिष्टैर्महानागैः समन्तात्पर्वतोपमैः ॥५९॥
नातिप्रसिद्धैवगतिः पाण्डवानामजायत ।
रथमार्गं ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः ॥६०॥
पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान् ।

हे महाराज! थोड़ी ही देर में भीमसेन ने गदा और अर्जुन ने अपने नाराचों से इस गज सेना को घायल बना दिया। रणाङ्गण में सब ओर पड़े हुए पर्वताकार हाथियों से पाण्डवों के रथों की कुछ गति रुक सी गई। महाबली भीमसेन ने हाथियों को हटा २ कर पाण्डवों के रथों को मार्ग बनाया ॥५८-६०॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥६१॥
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिन्दमम् ।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ॥६२॥

अश्वत्थामा कृपाचार्य, सात्वत वंश श्रेष्ठ, कृतवर्मा ने अरिमर्दन तुम्हारे पुत्र महारथी राजा दुर्योधन को नहीं देखा। तो वे उन्हें खोजने लगे ॥६१-६२॥

परित्यज्य च पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः।
राज्ञोऽदर्शनसंविग्ना वर्त्तमाने जनक्षये ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अब ये पञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न को छोड़ कर वहां चले जहां पर सुबल पुत्र शकुनि स्थित थे। इस जन संहार युक्त घोर संग्राम में कुरुराज के दर्शनों के विना वे व्यग्र हो रहे थे ॥६३॥

इति श्रीमहाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में दुर्योधन के युद्ध के वर्णन का पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



छब्बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—गजानीके हते तस्मिन्पाण्डुपुत्रेण भारत।
बध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे ॥१॥
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिन्दमम्।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम् ॥२॥

समेत्य समरे राजन्हतशेषाः सुतास्तव ।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव ॥३॥
सोदर्याः सहितो भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन् ।
दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिवलो रविः ॥४॥
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा ।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च ॥५॥
श्रुतर्वा च महावाहुः सर्वे युद्धविशारदाः ।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः ॥६॥
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतो दिशम् ।

सञ्जय कहने लगे—हे भारत ! पाण्डु पुत्र अर्जुन ने गज सेना और भीमसेन ने रण में पैदल सेना मार भगाई। अब अरिमर्दन प्राणापहारक, क्रोधातुर दण्डधारी काल के तुल्य रणाङ्गण में भीमसेन को देखकर मारने से बचे हुए तुम्हारे पुत्र सहोदर भ्राता तुम्हारे पुत्र कुरुराज दुर्योधन को युद्ध भूमि में न देखकर एक दम भीमसेन पर टूट पड़े। दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिवल, रवि, जयत्सेन, सुजात, अरिमर्दन, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष, श्रुतर्वा ये इनके नाम थे। ये सारे बड़ी बड़ी भुजा वाले युद्ध विशारद वीर थे। इस प्रकार इकट्ठे होकर तुम्हारे पुत्रों ने सब ओर से भीमसेन पर आक्रमण करके उसको घेर लिया ॥१-६॥

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः ॥७॥

मुमोच निशितान्बाणान्पुत्राणां तव मर्मसु ।

हे महाराज ! अब भीमसेन अपने रथ में चढ़ गया । और तुम्हारे पुत्रों के मर्मस्थानों में तीक्ष्ण बाणों के प्रहार करने लगा ॥७॥

ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे ॥८॥

भीमसेनमुपासेदुः प्रवणादिव कुञ्जरम् ।

हे राजन् ! इस महा रण में भीमसेन द्वारा छेदे हुए तुम्हारे पुत्र, भीमसेन पर इस तरह दौड़े जैसे ढालू भूमि से हाथी पर झपटे हों ॥८॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह ॥९॥

क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले ।

अब रण में क्रुद्ध हुए भीमसेन ने, दुर्मर्षण के शिर को क्षुर के समान बाण से काट कर भूमि में गिरा दिया ॥९॥

ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना ॥१०॥

श्रुतान्तमवधीद्भीमस्तव पुत्रं महारथः ।

इसके बाद महारथी भीमसेन ने, सारे शरीर के आवरणों को बींध जाने वाले, दूसरे बाण से तुम्हारे पुत्र श्रुतान्त का वध कर डाला ॥१०॥

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव ॥११॥

पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिन्दमः ।

स पपात रथाद्राजन् भूमौ तूर्णं ममार च ॥१२॥

हे राजन्! अरिमर्दन भीम ने हंसते हंसते नाराच बाण से, कुरुवंश वीर जयत्सेन को रथ में से बींध कर रण में मार गिराया वह रथ से नीचे भूमि में गिर गया और फौरन मर गया ॥

श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष ।
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम् ॥१३॥

हे आर्य! अब श्रुतर्वा नामक तुम्हारे पुत्र ने क्रोध में भरकर भीमसेन को नतपर्व धारी गृध्र के पंखों से युक्त, सौ बाणों से बींध डाला ॥१३॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम् ।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद्विषाग्निप्रतिमैः शरैः ॥१४॥

अब रण में भीमसेन, क्रुद्ध हो गया। उसने जैत्र, भूरिवल और रवि नामक तीन तुम्हारे पुत्रों को विष और अग्नि के तुल्य तीन बाणों से बींध दिया ॥१४॥

ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः ।
वसन्ते पुष्पशवला निकृत्ता इव किंशुकाः ॥१५॥

ये महारथी, मारे जाकर अपने २ रथों से इस तरह गिर गए जैसे बसन्त में पुष्पों से लदे हुए किंशुक (ढ़ाक) वृक्ष कट कर गिर गए हों ॥१५॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परन्तपः ।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥१६॥

स हतः प्रापतद्भूमौ स्वरथाद्रथिनां वरः ।

गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः ॥१७॥

अथ शत्रुतापी भीमसेन ने एक और भल्ल नामक तीक्ष्ण बाण छोड़ा, जिससे दुर्विमोचन को मार कर मृत्यु के पास पहुंचा दिया वह मारा हुआ रथि श्रेष्ठ दुर्विमोचन इस तरह अपने रथ से भूमि में गिर गया-जैसे वायु से उखाड़ा हुआ पर्वत की शिखर पर उत्पन्न वृक्ष गिर गया हो ॥१६-१७॥

दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव ।

एकैकं न्यहनत्संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे ॥१८॥

तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ ।

इसके बाद दुष्प्रधर्ष और सुजात नामक तुम्हारे पुत्रों को सेना के मध्य में दो दो बाण मार कर रणभूमि में मार गिराया बाणों से विधकर ये दोनों रथी वीर गिरते ही दिखाई दिए ॥१८॥

ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव ॥१९॥

भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे ।

स पपात हतो वाहात्पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥२०॥

जब भीमसेन ने तुम्हारे पुत्र को रणभूमि में गिरते देखा-तो उसने एक बाण और छोड़कर दुर्विषह को रण में जा गिराया। सारे धनुर्धर देखते रहे और वह बाण के लगते ही अपने अश्व से नीचे गिर गया ॥१९-२०॥

दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातृन्बहूनेकेन संयुगे।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥२१॥

जब श्रुतर्वा ने अकेले भीम द्वारा अपने बहुत से भ्राताओं का वध देखा-तो वह क्रोध में भर गया और उसने भीम पर आक्रमण किया ॥२१॥

विक्षिपन्सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
विसृजन्सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान्बहून् ॥२२॥

वह सुवर्ण विभूषित विशाल धनुष को खैंचकर विष और अग्नि के समान बहुत से बाणों को छोड़ने लगा ॥२२॥

स तु राजन्धनुश्छित्वा पाण्डवस्य महामृधे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत् ॥२३॥

हे राजन्! इस घोर युद्ध में पाण्डु पुत्र भीमसेन का धनुष काट कर धनुषहीन भीमसेन पर बीस बाणों का प्रहार किया ॥२३॥

ततोऽन्यद्धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
अवाकिरत्तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२४॥

महाबली भीमसेन ने दूसरा धनुष उठाया और उससे तुम्हारे पुत्र को आच्छादित करके ठहर २ इस तरह कहने लगा ॥२४॥

महदासीत्तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम्।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि ॥२५॥

अब इन दोनों में भयानक विचित्र युद्ध होने लगा, जैसा घोर संग्राम पूर्वकाल में जम्भ और इन्द्र में हुआ था ॥२५॥

तयोस्तत्र शितैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शरैः ।
समाच्छन्ना धरा सर्वा खं दिशो विदिशस्तथा ॥२६॥

इन दोनों के छोड़े हुए यमदण्डोपम चमकीले बाणों से सारी पृथिवी आकाश, दिशा और विदिशा व्याप्त होगई ॥२६॥

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः ।
भीमसेनं रणे राजन्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥२७॥
सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना ।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः ॥२८॥

हे राजन् ! अब श्रुतर्वा भी क्रोध में भर गया और उसने धनुष उठाया । इसने रण में भीमसेन की भुजा और हृदय में बाण मारे । हे महाराज ! भीमसेन, धनुर्धर तुम्हारे पुत्र द्वारा बिंधता चला गया और वह इस तरह क्षुभित हो उठा, जैसे पर्व काल में समुद्र क्षुभित हो जाता है ॥२७-२८॥

ततो भीमो रुषाऽऽविष्टः पुत्रस्य तव मारिष ।
सारथिं चतुरश्चाश्वान् शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२९॥

हे आर्य ! अब भीमसेन ने रोष में भर कर तुम्हारे पुत्र, सारथि, और चारों अश्वों को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥२९॥

विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥३०॥

पंखधारी बाणों से तुम्हारे पुत्र के रथहीन होजाने पर अपरिमित बलशाली, भीमसेन ने, अपने पाणिलाघव को दिखाते हुए उसे आच्छादित करने लगे ॥३०॥

श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी ।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत् ॥३१॥
क्षुरप्रेण शिरः कायात्पातयामास पाण्डवः ।

हे राजन्! जब श्रुतर्वा, रथहीन होगया-तो उसने ढाल तलवार उठाई। ज्योंही इसने खड्ग उठाया और सूर्यवत चमकीली ढाल ग्रहण की त्योंही पाण्डुपुत्र भीमसेन ने उसका शिर क्षुरोपम बाण से शरीर से पृथक काट गिराया ॥३१॥

छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मना ॥३२॥
पपात कायः स रथाद्वसुधामनुनादयन् ।

महाबली भीमसेन द्वारा क्षुरोपम बाण से मस्तक के कट जाने पर उनका शरीर रथ से नीचे शब्द करता हुआ गिरगया॥३२॥

तस्मिन्निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ॥३३॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः ।

उस वीर के गिर जाने पर तुम्हारे वीरों को भय खड़ा होगया वे भीमसेन से युद्ध को अभिलाषा से रणक्षेत्र में उसपर टूटपड़े॥३३॥

तानापतत एवाशु हतशेषाद्बलार्णवात् ॥३४॥
दंशितान्प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान् ।
ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ॥३५॥

मारी गई सेना से बचे हुए सेना समुद्र से जो सुसज्जित वीर सन्मुख आए महाप्रतापी भीमसेन उनको लपेटने लगा उन कौरव वीरों ने भीमसेन के पास पहुंचकर उन्हें घेर लिया ॥३४-३५॥

ततस्तु संवृतो भीमस्तावकाग्निशितैः शरैः ।
पीडयामास तान्सर्वान्सहस्राक्ष इवासुरान् ॥३६॥

उन तुम्हारे वीरों से घिरे हुए भीमसेन ने, तीक्ष्ण बाणों से उन सबको इस तरह पीड़ित कर दिया-जैसे इन्द्र असुरों को कर देता है ॥३६॥

ततः पञ्चशतान्हत्वा सवरूथान्महारथान्
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥३७॥

भीमसेन ने प्रथम तो रथ सहित पांच सौ महारथी मार गिराए और फिर युद्ध में गजसेना के सात सौ गजारोही वीर गिरा दिए ॥३७॥

हत्वा शतसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः ।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते ॥३८॥

भीमसेन ने, अपने तीखे बाणों से लाखों वीरों को मार दिया और आठ सौ अश्वारोही मार डाले। इतना करके भीमसेन रण-क्षेत्र में देदीप्यमान हो उठा ॥३८॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव ।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥३९॥

हे प्रभो ! कुन्ती पुत्र भीमसेन ने, युद्ध में तुम्हारे पुत्रों को मार कर अपनी आत्मा और जन्म को सफल माना ॥३९॥

तं तथा युद्धयमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान् ।
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्या नराधिप ॥४०॥
विद्राव्य च कुरून्सर्वास्तांश्च हत्वा पदानुगान् ।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान् ॥४१॥

हे नराधिप ! इस समय युद्ध करते हुए और तुम्हारे सैनिकों को मारते हुए भीमसेन को तुम्हारी सेना के वीर देखने को भी समर्थ नहीं होसके। भीमसेन ने सारे कौरवों को भगा दिया और साथी वीरों को मार गिराया। इसने अपनी भुजाओं को इस तरह फटकारा, जिससे बड़े २ गज भयभीत हो गए ॥४०-४१॥

हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशाम्पते ।
किञ्चिच्छेषा महाराज कृपणं समपद्यत ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि एकादशधार्तराष्ट्रवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

हे विशाम्पते ! अब तुम्हारी सेना के अधिकांश वीर मारे गए हे महाराज ! जो कुछ शेष रहे-वे बहुत ही हीन से हो गए ॥४२॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में धृतराष्ट्रपुत्रों के वध का छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ

सत्ताईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।

हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! तुम्हारे दो पुत्र राजा दुर्योधन और सुदर्श अभी तक बचे हुए थे, जो अश्व सेना के मध्य में स्थित थे ॥१॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।

उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥२॥

राजा दुर्योधन को अश्वों के मध्य में स्थित देखकर देवकी पुत्र श्रीकृष्ण कुन्ती पुत्र अर्जुन से बोले ॥२॥

शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।

गृहीत्वा सञ्जयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ॥३॥

हे अर्जुन! शिनि वंशश्रेष्ठ सात्यकि ने बहुत से शत्रु मार लिए अपने जाति वीरों की रक्षा कर दी अब यह सञ्जय को पकड़ कर चला आरहा है ॥३॥

परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।

योधयित्वा रणे पापान्धार्तराष्ट्रान्सहानुगान् ॥४॥

हे भारत ! इस युद्ध में सेना सहित पापी धृतराष्ट्र पुत्रों से घोर युद्ध करके नकुल और सहदेव भी थक चुके हैं ॥४॥

दुर्योधनसमित्यज्य यत्र एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥५॥

इन महारथियों ने वहीं पर घोर युद्ध किया है, जहां पर राजा दुर्योधन से बिछुड़े हुए महारथी, कृपाचार्य, कृतवर्मा और द्रोण पुत्र अश्वत्थामा थे ॥५॥

असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः ।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥६॥

यह पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न अपनी शान्ति से देदीप्यमान होकर चमक रहे हैं। इन्होंने राजा दुर्योधन की सारी सेना प्रभद्रक वीरों के साथ मार गिराई है ॥६॥

असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥७॥

हे पार्थ ! यह राजा दुर्योधन अश्व सेना के मध्य में स्थित है। इसके मस्तक पर श्वेत छत्र विराजमान है। यह बार २ इधर उधर देख रहा है ॥७॥

प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि ॥८॥

इसने अपनी सेना का व्यूह बना रखा है और यह रण के मध्य में स्थित है। इसको तीक्ष्ण बाणों से मार कर तुम कृतकृत्य हो जाओगे ॥८॥

गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिन्दम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ॥९॥

हे अरिमर्दन ! यह गजसेना को नष्ट और तुमको यहां आया हुआ देखकर ये वीर भाग न जावें- इससे पहले ही तुम शीघ्र इस दुर्योधन को मार लो ॥९॥

यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी ॥१०॥

हे तात ! अब कोई वीर जावे और शीघ्र धृष्टद्युम्न को बुला लावे । इस समय राजा दुर्योधन की सेना थक चुकी है । कहीं यह पापी बच न निकले ॥१०॥

हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान्पाण्डुसुतान्मत्वा रूपं धारयते महत् ॥११॥

इस धृतराष्ट्र पुत्र, दुर्योधन ने, संग्राम में तुम्हारी बहुत सी सेना मार गिराई है । यह पाण्डवों को जीता ही समझ रहा है इसी से अकड़ा हुआ खड़ा है ॥११॥

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृप ॥१२॥

हे नृप ! यह अपनी सेना को पाण्डवों से नष्ट होती हुई या पीड़ित होती हुई देखकर अपने वध के निमित्त अवश्य युद्ध में आगे आवेगा ॥१२॥

एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव ॥१३॥
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यति ।

जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से इतना कहा—तो अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे माधव ! भीमसेन ने सारे धृतराष्ट्र पुत्र मार लिए हैं । हे कृष्ण ! अब ये दो पुत्र और बचे हैं । ये भी आज न बच पावेंगे ॥१३॥

हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः ॥१४॥
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः ।
हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च ॥१५॥
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन ।
दंतिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः ॥१६॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥१७॥
एतद्बलमभूच्छेषं धार्त्तराष्ट्रस्य माधव ।
मोक्षो न नूनं कालात्तु विद्यते भुवि कस्यचित् ॥१८॥

हे कृष्ण ! भीष्म द्रोण, सूर्यपुत्र कर्ण मद्रराज शल्य, और राजा जयद्रथ, मारे गए । सुबल पुत्र शकुनि के पास पांच सौ अश्वारोही बचे हैं । हे जनार्दन ! अब रथ तो केवल दो सौ ही शेष रहे हैं । उत्तम गजारोही एक सौ और तीन हजार पैदल

अवशिष्ट हैं। हे माधव ! अश्वत्थामा, कृप त्रिगर्ताधिप सुशर्मा, उलूक, शकुनि और सात्वतवंश श्रेष्ठ कृतवमो महारथी बचे हैं। बस ? इतनी ही राजा दुर्योधन की सेना बचपाई है। इस पृथिवी पर काल से किसी का छुटकारा नहीं है ॥१४-१८॥

तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम् ।
अद्याहा हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति ॥१६॥

कौरव सेना तो बहुत सी मारी गई अब तुम रणाजित राजा दुर्योधन को देखो। आज तुम देख लोगे कि महाराज युधिष्ठिर के सारे शत्रु-नष्ट हो चुकेंगे ॥१६॥

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित्परेषामिह चिन्तये ।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति मदोत्कटाः ॥२०॥
तान्वै सर्वान्हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः ।

हे कृष्ण ! जो अपने वल का अभिमान करके युद्ध भूमि न छोड़ जावेंगे उन शत्रुओं में आज कोई भी न बच पावेगा। मैं उन सबको मार गिराऊंगा-चाहे-वे मनुष्यातिरिक्त देव दानव ही क्यों न होवें ॥२०॥

अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् ॥२१॥
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः ।

आज मैं युद्ध में कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से गान्धारराज-पुत्र शकुनि को मार कर राजा युधिष्ठिर का लम्बा रात्रि जागरण नष्ट कर दूंगा ॥२१॥

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः ॥२२॥
सभायामहरद्य ते पुनस्तान्याहराम्यहम् ।

जिस दुराचारी सुबलपुत्र शकुनि ने जिन रत्नों को अपने छल से सभा में द्यूत द्वारा प्राप्त किया था, आज उन सबको फिर दुबारा मैं छीन लूंगा ॥२२॥

अद्य ता अपि रोत्स्यंति सर्वा नागपुरे स्त्रियः ॥२३॥
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान्युधि ।

आज हस्तिनापुर की सारी स्त्रियां अपने पति और पुत्रों को युद्ध में पाण्डवों द्वारा मृतक सुनकर रोने लगेंगी ॥२३॥

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति ॥२४॥
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति ।

हे कृष्ण ! आज हमारा सारा यह कृत्य समाप्त हो लेगा। आज राजा दुर्योधन भी अपनी प्रदीप्त राज्य लक्ष्मी और प्राणों को छोड़ देगा ॥२४॥

नापयाति भयात्कृष्ण संग्रामाद्यदि चेन्मम ॥२५॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्त्तराष्ट्रं सुबालिशम् ।

हे वृष्णिवंश श्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण ! यदि दुर्मति धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आज रण छोड़कर भाग न निकला–तो मैं आज उसे अवश्य मार डालूंगा—तुम यह निश्चय समझो ॥२५॥

मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिन्दम ॥२६॥
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम् ।

हे अरिमर्दन ! यह अश्व सेना मेरी प्रत्यञ्चा के शब्द के भी सुनने में समर्थ न हो सकेगी अब तुम चलो—मैं इसे अभी मार गिराता हूं ॥२६॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना ॥२७॥
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति ।

हे राजन ! जब यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुन ने श्रीकृष्ण से इतना कहा-तो श्रीकृष्ण ने राजा दुर्योधन को सेना की ओर अपने अश्वों को चलता किया ॥२७॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः ॥२८॥
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष ।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥२९॥

हे आर्य ! राजा दुर्योधन की सेना को देखकर भीमसेन, अर्जुन और सहदेव ये तीन पाण्डव महारथी, सुसज्जित होकर सिंहनाद करते हुए राजा दुर्योधन के मार लेने को चल पड़े ॥

तान्प्रेक्ष्य सहितान्सर्वान् जवेनोद्यतकार्मुकान् ।
सौबलोऽभ्यद्रवद्य द्धे पाण्डवानाततायिनः ॥३०॥

हे नराधिप ! जब सुबलपुत्र शकुनि ने वेग के साथ धनुष उठा २ कर एकदम दुर्योधन पर आक्रमण करते हुए इन पाण्डवों को देखा—तो इन आततायी पाण्डवों पर वेग से झपटा ॥३०॥

सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात् ।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ॥२१॥

हे राजेन्द्र ! इस समय तुम्हारे पुत्र सुदर्शन ने, भीमसेन पर आक्रमण किया और किरीटधारी अर्जुन के साथ सुशर्मा और शकुनि ने युद्ध करना आरम्भ किया ॥२१॥

सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात् ।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप ॥२२॥
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद्भृशम् ।
सोऽपाविशद्रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥२३॥
रुधिराप्लुतसर्वांग आशीविष इव श्वसन् ।

हे जनाधिप ! तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, अश्व पर चढ़ा हुआ सहदेव की ओर बढ़ा । अब यत्न के साथ तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने सहदेव के शिर पर अत्यन्त बल के साथ प्रास नामक शस्त्र का प्रहार किया। तुम्हारे पुत्र के इस प्रहार से रथ के मध्य में वह मूर्छित होगया । उसका सारा शरीर रुधिर से भीग गया और वह आशीविष सर्प की तरह श्वास लेने लगा ॥२२-२३॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशाम्पते ॥२४॥
दुर्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत् ।

हे विशाम्पते ! थोड़ी देर में सहदेव को चेत आया । अब उसने क्रोध में भरकर तीक्ष्ण बाणों से राजा दुर्योधन को आच्छादित करना आरम्भ किया ॥२४॥

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥३५॥
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह ।

कुन्ती-पुत्र धनञ्जय अर्जुन ने, युद्ध में पराक्रम करके अश्व पृष्ठ पर स्थित शूरवीरों के मस्तक काट २ कर गिरा दिए ॥३५॥

तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद्बहुभिः शरैः ॥३६॥
पातयित्वा हयान्सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान्ययौ ।

अर्जुन ने, अपने बहुत से बाणों से उस अश्व सेना को काट २ कर बिछा दिया यह सारे अश्वों को गिराकर त्रिगर्तों की सेना में पहुंचा ॥३६॥

ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः ॥३७॥
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन् ।

अब त्रिगर्तों के महारथी, इकट्ठे होकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को बाण वर्षा से ढकने लगे ॥३७॥

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः ॥३८॥
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः ।

महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन ने, क्षुरोपम बाण से सत्य कर्मा महारथी पर आक्रमण किया और इसके रथ की ईषा को झपट कर खण्डित कर डाला ॥३८॥

शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः ॥३९॥
शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम् ।

इसके अनन्तर महा तेजस्वी अर्जुन ने शिला पर तीक्ष्ण किये हुए क्षुरोपम बाण से तप्त सुवर्ण कुण्डलों से विभूषित उसके मस्तक को बड़ी तीव्रता से काट गिराया ॥३९॥

सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः ॥४०॥
यथा सिंहो वने राजन्मृगं परिबुभुक्षितः ।

हे राजन्! सारे योधाओं के देखते २ अर्जुन ने अब सत्येषु वीर पर इस तरह आक्रमण किया । जैसे वन में भूखा सिंह मृग पर टूट पड़ता है ॥४०॥

तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः ॥४१॥
विद्ध्वा तानहनत्सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान् ।

इसको मारकर अर्जुन ने तीन बाण सुशर्मा पर छोड़े । उसको बींध कर सुवर्ण विभूषित अन्य भी बहुत से रथों को नष्ट कर डाला ॥४१॥

ततः प्रायात्त्वरन्पार्थो दीर्घकालं सुसंवृतम् ॥४२॥
मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति ।

अब अर्जुन दीर्घकाल से सुरक्षित, प्रस्थलाधिपति पर तीक्ष्ण क्रोधरूपी विष छोड़ता हुआ, बड़े वेग से झपटा ॥४२॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ ॥४३॥
पूरयित्वा ततो वाहान्प्राहरत्तस्य धन्विनः ।

हे भरतर्षभ, अर्जुन ने प्रथम सौ बाण छोड़ कर उसके अश्वों को पाट दिया और उस धनुर्धर पर भी प्रहार किया ॥४३॥

ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा ॥४४॥
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव ।

इसके बाद, यमदण्डोपम बाण ग्रहण करके हंसते २ अर्जुन ने राजा सुशर्मा को लक्ष्य बनाकर उसपर वेग से बाण छोड़ा ॥

स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना ॥४५॥
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे ।

महाधनुर्धर क्रोधातुर अर्जुन द्वारा छोड़ा हुआ बाण राजा सुशर्मा की छाती में जाकर लगा और उसको चीरता चला गया ॥

स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले ॥४६॥
नन्दयन्पाण्डवान्सर्वान् व्यथयंश्चापि तावकान् ।

हे महाराज ! इस बाण के लगते ही राजा सुशर्मा मरकर पृथिवी में गिर गया जिससे सारे पाण्डवों में आनन्द और तुम्हारी सेना में शोक छा गया ॥४६।

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान् ॥४७॥
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत् क्षयम् ।

हे राजन् ! राजा सुशर्मा को रण में मार कर इसके सात, आठ और तीस अर्थात् पैंतालीस महारथी पुत्रों को भी अपने बाणों से यमराज के घर भेज दिया ॥४७॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान्हत्वा पदानुगान् ॥४८॥
अभ्यगाद्भारतीं सेनां हतशेषां महारथः ।

इसके बाद अपने तीक्ष्ण बाणों से इसके पदानुचर सारे सैनिकों को तीक्ष्ण बाणों से मार कर महारथी अर्जुन मारने से बची हुई अन्य कौरव सेना में पहुंचा ॥४८॥

भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप ॥४६॥

सुदर्शनमदृश्यन्तं शरैश्चक्रे हसन्निव ।

हे जनाधिप ! भीमसेन भी इस घोर युद्ध में कुपित हो रहे थे उसने भी तुम्हारे पुत्र सुदर्शन को हंसते २ अपने बाणों से अदृश्य कर दिया ॥४६॥

ततोऽस्य प्रहसन् क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत् ॥५०॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद्भुवि ।

अब भीमसेन ने क्रोध और हंसी के साथ अपने तीक्ष्ण शर से उसके शिर को शरीर को पृथक् कर दिया। वह मृतक होकर भूमि में गिर गया ॥५०॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः ॥५१॥

परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधान् शरान् ।

जब वीर सुदर्शन मारा गया तो रण में दौड़कर अनेक बाण बरसाते हुए उसके साथी वीरों ने भीमसेन को घेर लिया ॥५१॥

ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः ॥५२॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात्पर्यवाकिरत् ।

ततः क्षणेन तद्भीमो न्यहनद्भरतर्षभ ॥५३॥

हे भरतर्षभ ! इसके बाद वृकोदर भीम ने, इन्द्र के वज्र के तुल्य, तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारी सेना को सब ओर से आच्छादित कर दिया और उसे क्षण भर में मार गिराया ॥५२-५३॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षा महारथाः ।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुद्धयन्त भारत ॥५४॥

हे भारत ! जब तुम्हारे सैनिक वीर भाग गए तो महारथी सेनाध्यक्ष भीमसेन के सन्मुख पहुंचे और वे युद्ध करने लगे ॥५४॥

स तान्सर्वान् शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः ।
तथैव तावका राजन्पाण्डवेयान्महारथान् ॥५५॥
शरवर्षेण महता समन्तात्पर्यवारयन् ।

अब पाण्डु पुत्र भीमसेन ने भी अपने घोर बाणों से तुम्हारे सारे वीरों को व्याप्त कर दिया। हे राजन ! इसी तरह पाण्डव महारथियों को भी तुम्हारे वीरों ने बाण वर्षा से सब ओर से पाट दिया ॥५५॥

व्याकुलं तदभूत्सर्वं पाण्डवानां परैः सह ॥५६॥
तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सताम् ।

इस तरह पाण्डवों की सेना तुम्हारी सेना और तुम्हारी सेना पाण्डवोंकी सेना-सेना से टकराकर रणमें व्याकुल हो गई क्योंकि ये दोनों ही सेना युद्ध के उत्साह में भरी हुई थी ॥५६॥

तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः ।
उभयोः सेनयो राजन्संशोचन्तः स्म बान्धवान् ॥५७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वणि सुशर्मवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

हे राजन् ! इस समय दोनों सेना के वीर अपने २ बान्धवों की चिन्ता करते हुए परस्पर घायल होकर रण भूमि में गिरने लगे ॥५७॥

इति श्रीमहाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में
अर्जुन द्वारा राजा सुशर्मा और भीम द्वारा सुदर्शन
के वध का सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ ।

अठाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ।
शकुनिः सौबलो राजन्सहदेवं समभ्ययात् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब हाथी घोड़े और मनुष्यों के संहार में परायण महाघोर युद्ध चल रहा था, उसी समय सुबल पुत्र शकुनि ने सहदेव पर आक्रमण किया ॥१॥

ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान् ।
शरौघान्प्रेषयामास पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥२॥

जब महाप्रतापी सहदेव ने शकुनि को अपने ऊपर झपटते देखा तो उसने टीडी दल की भांति शीघ्रगामी बाण जाल छोड़ना आरम्भ किया ॥२॥

उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ॥३॥
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत्।

हे महाराज! शकुनि पुत्र उलूक ने दश बाण मारकर भीमसेन को बींध दिया और स्वयं शकुनि ने भी भीमसेन पर तीन बाण छोड़े। इस तरह नब्बे बाण छोड़कर सहदेव को बिल्कुल आच्छादित कर दिया ॥३॥

ते शूराः समरे राजन्समासाद्य परस्परम् ॥४॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः ॥५॥

हे राजन्! ये शूरवीर, रणाङ्गण में एक दूसरे के सन्मुख पहुंचकर कङ्क और मयूर पत्ती के पङ्खों से युक्त सुवर्ण मूलधारी शिलापर तीक्ष्ण किये हुए और कान तक धनुष खेंचकर छोड़े हुए तीक्ष्ण बाणों से परस्पर घायल करने लगे ॥४-५॥

तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशाम्पते।
आच्छादयद्दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः ॥६॥

हे विशाम्पते ! इन महारथियों की भुजा और धनुष से छोड़ी बाण वृष्टि ने इस तरह दिशाओं को आच्छादित कर लिया, जैसे मेघ से छोड़ी जलधारा सारी दिशाओं को ढक लेती है ॥६॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत ।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥७॥

हे भारत ! इसके बाद भीमसेन और सहदेव ये दोनों वीर भी कुपित हो उठे । इन महाबली योद्धाओं ने रणक्षेत्र में तुम्हारी सेना का विध्वंस करते हुए विचरना आरम्भ किया ॥७॥

ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद्बलं तव भारत ।
सान्धकारमिवाकाशमभवत्तत्र तत्र ह ॥८॥

हे भरतर्षभ ! उन दोनों पाण्डव वीर भीम और सहदेव के सैंकड़ों बाणों से तुम्हारी सेना के वीर व्याप्त होगए । उस स्थान में आकाश में जहां तहां अन्धेरी छागई ॥८॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशाम्पते ।
तत्र तत्र वृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान्बहून् ॥९॥

हे विशाम्पते ! बाणों से व्याप्त हुए अश्व, रणक्षेत्र में दौड़ लगा रहे थे । ये बहुत से मृतक वीरों को खैंच लेते थे, जो रणभूमि में मार्ग को आवृत किए हुए पड़े थे ॥९॥

निहतानां हयानां च सहैव हयसादिभिः ।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ॥१०॥

ऋष्टिभिः शक्तिभिश्चैव सासिप्रासपरश्वधैः ।
सञ्छन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥११॥

हे आर्य ! मारे हुए अश्व, अश्वारोही, कटे फटे कवच, खण्डित प्रास, ऋष्टि, शक्ति, खड्ग, परश्वध आदि शस्त्रों से पृथिवी भरी हुई पुष्पों से व्याप्त सी दिखाई देरही थी ॥१०-११॥

योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् ।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥१२॥

हे महाराज ! इस समय रण में योद्धा गण, एक दूसरे के सन्मुख पहुंच कर परस्पर एक दूसरे को मार कर क्रोध के साथ घूम रहे थे ॥१२॥

उद्वृत्तनयनै रोषात्सन्दष्टौष्ठपुटैर्मुखैः ।
सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसन्निभैः ॥१३॥

क्रोध से चढ़े हुए नेत्र वाले, ओष्ठ पुट चबाते हुए, कुण्डल धारी, कमल के मृदु के शर के समान कोमल मुखों से सारी रणभूमि व्याप्त होगई ॥१३॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः ।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः ॥१४॥

हे महाराज ! हाथी की सूंड के तुल्य, अङ्ग कवच, असि, प्रास और परश्वधों से युक्त भुजाओं से सारी रणभूमि भरती चली गई ॥१४॥

कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।

क्रव्यादगणसञ्छन्ना घोराऽभूत्पृथिवी विभो १५॥

हे विभो ! इस युद्ध में उठे हुए कबन्धों के दो टुकड़े कर दिए गए। बहुत कबंध नांच सा कर रहे थे। इस समय इन कबन्धों और मांस भोजी जन्तुओं से सारी युद्धभूमि भयङ्कर दिखाई देने लगी ॥१५॥

अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान्महाहवे ।

प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम् ॥१६॥

इस घोर युद्ध में कौरवों की सेना बहुत थोड़ी बची हुई थी। अब युद्धोत्साह में भरे हुए पाण्डव, उन कौरव वीरों को भी यमराज के भवन में भेजने लगे ॥१६॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।

प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम् ॥१७॥

स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।

इसी बीच में महाप्रतापी शूरवीर शकुनि ने, सहदेव के शिर में प्रास नामक शस्त्रका तीव्र प्रहार किया। हे महाराज ! उस आघात से सहदेव व्याकुल होकर रथ के मध्य में मूर्च्छित सा होकर बैठ गया ॥१७॥

सहदेवं तथा दृष्टवा भीमसेनः प्रतापवान् ॥१८॥

सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत ।

हे भारत ! प्रतापी भीमसेन सहदेव की यह दशा देखकर क्रोध में भड़क उठा । उसने सारी सेना को वहीं रोक दिया ॥१८॥

निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१६॥
विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिन्दमः ।

अरिमर्दन भीमसेन ने सैंकड़ों हजारों की संख्या में बाण छोड़े । इसने कौरव सेना को छेद कर बड़ा भारी सिंहनाद किया ॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः ॥२०॥
प्राद्रवन्सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ।

भीमसेन के सिंहनाद से सारे अश्वारोही और गजारोही, शकुनि के सहचर वीर भयभीत होकर एक दम भाग पड़े ॥२०॥

प्रभग्नानथ तान्दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥२१॥
निवर्त्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ।
इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान्समश्नुते ॥२२॥
प्राणान् जहाति यो धीरो युद्धे पृष्ठमदर्शयन् ।

शकुनि के वीरों को भागते देखकर राजा दुर्योधन ने कहा हे वीरो ! लौटो। तुम धर्म को क्या बिल्कुल ही भूल गए । युद्ध करो—भागने से क्या होगा । यदि तुम विजयी हुए तो तुम्हें यहां कीर्ति मिलेगी और मर कर लोकों को प्राप्त करोगे क्योंकि जो वीर युद्ध में पीठ न दिखाकर प्राण छोड़ता है, उसे अवश्य स्वर्ग लोक मिलता है ॥२१-२२॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ॥२३॥
पाण्डवानभ्यवर्त्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ।

जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा—तो सुबल पुत्र शकुनि के पदानुचर मृत्यु का भय छोड़कर पाण्डवों पर टूट पड़े ॥२३॥

द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः ॥२४॥
क्षुब्धसागरसङ्काशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन् ।

हे राजेन्द्र ! इन आक्रमण करते २ वीरों ने ऐसा दारुण शब्द किया, कि जिससे विपक्षी सारे वीर विक्षुभित हुए समुद्रकी भांति सब ओर से विचलित हो उठे ॥२४॥

तांस्ततः पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ॥२५॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः ।

हे महाराज ! इस तरह शकुनि के वीर सैनिकों को अपने सन्मुख देखकर विजयोन्मत्त पाण्डव, उनपर टूट पड़े ॥२५॥

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशाम्पते ॥२६॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव ॥२७॥

हे विशाम्पते ! दुर्धर्ष सहदेव ने कुछ श्वास लेकर दश बाण छोड़े, जिनसे शकुनि को और तीन बाणों से उसके अश्वों को बींध डाला । तथा हंसते २ शकुनि का धनुष अपने बाणों से काट गिराया ॥२६-२७॥

अथान्यद्धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः ।

विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः ॥२८॥

अब युद्ध दुर्मद शकुनि ने दूसरा धनुष उठाया। जिससे साठ बाण छोड़कर नकुल और सात बाणों से भीमसेन को व्याकुल कर दिया ॥२८॥

उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः ।

सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन्पितरं रणे ॥२९॥

हे महाराज! अपने पिता के प्राण बचाने के अभिप्राय से उलूक ने भी भीमसेन पर सात और सहदेव पर सत्तर बाण छोड़े ॥२९॥

तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः ।

शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥३०॥

भीमसेन ने भी नौ बाणों से उलूक को बींध दिया। चौसठ बाणों से शकुनि और तीन २ बाणों से अगल बगल के वीरों को आहत कर दिया ॥३०॥

ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।

सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयन् शरवृष्टिभिः ॥३१॥

पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः ।

हे राजन्! तेल से चमकाए हुए बाणों से भीमसेन द्वारा आहत किए गए शकुनि वीरों ने क्रोधातुर होकर अपनी बाणधारा

से उनको अत्यन्त आच्छादित कर दिया जैसे बिजली युक्त, बादल जल धारा से पर्वत को ढक देता है ॥२१॥

ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान् ॥२२॥
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ।

हे महाराज ! ज्योंही वेग से उलूक ने सहदेव पर आक्रमण किया—उसी समय महाप्रतापी शूरवीर सहदेव ने, उलूक का शिर भल्ल से काट गिराया ॥२२॥

स जगाम रथाद्भूमिं सहदेवेन पातितः ॥२३॥
रुधिराप्लुतसर्वांगो नन्दयन्पाण्डवान्युधि ।

इस प्रहार से उलूक का शरीर रक्त में भीग गया । सहदेव से गिराया हुआ उलूक अपने रथ से रणभूमि में नीचे गिर गया, जिस को देखकर युद्ध में पाण्डव, बड़े आनन्दित हुए ॥२३॥

पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत ॥२४॥
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् ।

हे भारत ! जब शकुनि ने अपने पुत्र को मृत देखा—तो उस ने श्वास मारी । उसका कण्ठ आंसुओं से भरगया और वह महात्मा विदुर के वाक्य का स्मरण करने लगा ॥२४॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ॥२५॥
सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ।

थोड़ी देर तक श्वास मार कर आंसुओं से नेत्र भर कर शकुनि ने अपने पुत्र का शोक किया। अब तीन बाण मार कर उसने सहदेव को गाढ़ रीति से बींध दिया ॥३५॥

तानपास्य शरान्मुक्तान् शरसंघैः प्रतापवान् ॥३६॥
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे।

हे महाराज! महाप्रतापी सहदेव ने अपने बाण जाल से उन शकुनि के बाणों को काट गिराया और रण के मध्य में उसका धनुष भी काट दिया ॥३६॥

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ॥३७॥
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत्।

हे राजेन्द्र! जब शकुनि का धनुष कट गया-तो सुबल पुत्र शकुनि ने एक विशाल खड्ग उठाया और सहदेव पर उसका प्रहार किया ॥३७॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते ॥३८॥
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव।

हे विशाम्पते! सुबल पुत्र शकुनि के इस घोर खड्ग के आक्रमण को देखकर सहदेव ने हंसतेर उसके दो टुकड़े कर दिए॥

असिं दृष्ट्वा तथा च्छिन्नं प्रगृह्य महतीगदाम् ॥३९॥
प्राहिणोत्सहदेवाय सा मोघा न्यपतद्भुवि।

जब शकुनि की करवाल भी खण्डित होगई-तो उसने एक विशाल गदा उठाई। और सहदेव पर फैंका परन्तु उसका प्रहार खाली गया और वह व्यर्थ होकर नीचे गिरगई ॥३६॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रीमिवोद्यताम् ॥४०॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः ।

अब शकुनि ने, काल रात्रि के तुल्य महाघोर शक्ति को क्रोध के साथ सहदेव पर छोड़ा ॥४०॥

तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः ॥४१॥
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव ।

कनक से विभूषित, शरों से युक्त उस शक्ति को आते देखकर सहदेव ने हंसते २ रणक्षेत्र में उसके तीन टुकड़े करके गिरा दिए ॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना भूमौ कनकभूषणा ॥४२॥
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद्वै शतह्रदा ।

वह सुवर्णोज्वल शक्ति तीन स्थान से छिन्न भिन्न होकर इस तरह बिखर कर गिर गई-जैसे आकाश से बिजली गिरी हो ॥४२॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम् ॥४३॥
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः ।

इस शकुनि की शक्ति के छिन्न भिन्न होते ही शकुनि-भयातुर होगया। इसको भयभीत देखकर शकुनि की सेना के साथ तुम्हारी सारी कौरव सेना भी भाग खड़ी हुई क्योंकि उसको बड़ा ही भय खड़ा होगया था ॥४३॥

अथोत्कृष्टं महच्चासीत्पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥४४॥
धार्त्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाऽभवन् ।

अब विजयोन्मत्त पाण्डवों ने घोर सिंह नाद किया । इस समय धृतराष्ट्र वीरों की सारी सेना भाग निकली ॥४४॥

तान्वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥४५॥
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे।

इन कौरव वीरों को व्याकुल देखकर महाप्रतापी माद्री पुत्र सहदेव, कई सहस्र बाण छोड़कर रण में उसे रोकने लगा ॥४५॥

ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम् ॥४६॥
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम् ।

अब गान्धार वीर और बड़े २ पुष्ट अश्वों से सुरक्षित होकर विजयेच्छुक रण में आगे बढ़ते हुए सुबल पुत्र शकुनि पर सहदेव ने आक्रमण किया ॥४६॥

स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप ॥४७॥
रथेन कांचनांगेन सहदेवः समभ्ययात् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा व्याक्षिपन्सुमहद्धनुः ॥४८॥

हे नृप ! सहदेव ने, अपने अंश में आए हुए शकुनि को अभी तक बचा हुआ देखकर सुवर्णोज्ज्वल रथ से उस पर आक्रमण किया । इसने अपने विशाल धनुष पर बलपूर्वक डोरी चढ़ाकर उसका खैंचना आरम्भ किया ॥४७-४८॥

स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भृशमभ्यहनत्क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥४६॥

सहदेव ने सुबल पुत्र शकुनि पर गृध्र पक्षी के पंखों से युक्त, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए, बाणों से क्रोधपूर्वक इस तरह आक्रमण किया-जैसे तीव्र शस्त्र से मद गजराज पर प्रहार किया जाता है ॥४६॥

उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव ।
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥५०॥

अब मेधावी सहदेव ने उससे युद्ध करते हुए उसको याद दिलाते हुए कहा—हे शकुनि तुम क्षत्रिय धर्म में स्थित होकर युद्ध करो और वीर पुरुष बने रहो ॥५०॥

यत्तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले ।
फलमद्य प्रपश्य स्वकर्मणस्तस्य दुर्मते ॥५१॥

हे मूढ़ ! दुर्मते ! सभा के मध्य में पासों से खेलते हुए बड़ा प्रसन्न हुआ था, आज तुम उस कुकर्म का परिणाम देख लेना ॥५१॥

निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन्पुरा ।
दुर्योधनः कुलांगारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः ॥५२॥

जिन दुष्टों ने प्रथम हमारा उपहास किया था, वे मारे जाचुके अब कुलांगार राजा दुर्योधन और तुम उसके मातुल शेष रहेहो॥५२॥

अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः ।
वृक्षात्फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ॥५३॥

जिस तरह कोई प्रमाथी पुरुष वृक्ष से लकड़ी मार कर फल गिराता है, उसी तरह आज मैं भी क्षुरोपम बाण से तेरा शिर काट कर नीचे गिरादूंगा ॥५३॥

एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः ।
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम् ॥५४॥

हे महाराज ! इतना कहकर महाबली रणसिंह सहदेव क्रोध में भर गया और उसने वेग से शकुनि पर आक्रमण किया ॥५४॥

अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः ।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव ॥५५॥

योद्धाओं में श्रेष्ठ, दुर्धर्ष, सहदेव, उसके सन्मुख, पहुंच कर क्रोध से जल उठे और बलपूर्वक धनुष खैंचने लगे ॥५५॥

शकुनिं दशभिर्विध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः ।
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य च्छित्वा सिंह इवानदत् ॥५६॥

सहदेव ने दश बाणों से शकुनि, चार बाणों से उसके चारों अश्व, और एक २ बाण से इसके छत्र ध्वजा और धनुष को काट कर सिंह की भांति गर्जना की ॥५६॥

छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः ।
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ॥५७॥

जब सुबल पुत्र शकुनि के ध्वज, धनुष और छत्र काटे जाचुके तो फिर मर्मस्थानों में बाण मार २ कर सहदेव ने उसे बहुत ही बींध डाला ॥५७॥

ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ॥५८॥

हे महाराज ! इसके बाद महाप्रतापी सहदेव ने शकुनि के ऊपर दुरासद बाण वर्षा करना आरम्भ किया ॥५८॥

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे ।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ॥

हे जनाधिप ! इस घोर युद्ध में सुबल पुत्र शकुनि बहुत ही क्रुद्ध होगया । उसने माद्री पुत्र सहदेव के मार देने के निमित्त शीघ्रता से सुवर्ण विभूषित, प्रास शस्त्र उठाया और वह अकेला ही सहदेव पर टूट पड़ा ॥५९॥

माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे ।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत्संचकर्त्त ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये ॥

माद्री पुत्र सहदेव ने, भी उसके ऊपर उठे हुए भाले और गोल भुजाओं को रण में एक दम तीन बाण छोड़ कर काट डाला और फिर उसने बड़े वेग से उच्चस्वर के साथ संग्राम के मध्य में सिंह नाद किया ॥६०॥

तस्याशुकारी सुसमाहितेन सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन ।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन शिरः शरीरात्प्रममाथ भूयः ॥

हे राजन् ! शीघ्रता दिखाने वाले, सहदेव ने अच्छी तरह धनुष पर चढ़ाए हुए सुवर्ण मूलधारी दृढ़ लोह निर्मित्त, सबको

आच्छादित करके चलने वाले भल्ल संज्ञक शर से शकुनि का शिर शरीर से दूर कर दिया ॥६१॥

शरेण कार्त्तस्वरभूषितेन दिवाकराभेण संहितेन ।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥

सुवर्णोज्ज्वल सूर्यवत् चमकीले, अच्छी तरह संधान किए हुए बाण से पाण्डु पुत्र सहदेव ने रणाङ्गण में शकुनि का शिर काट दिया । मस्तक के कटते ही सुबल पुत्र शकुनि रणभूमि में गिर गया ॥६२॥

स तच्छिरो वेगवता शरेण सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन ।
प्रावेरयत्कुपितः पाण्डुपुत्रो यत्तत्कुरूणामनयस्य मूलम् ॥

पाण्डु पुत्र सहदेव ने, क्रोध में भर कर शकुनि के शिर को सुवर्ण मूलधारी शिलापर तीक्ष्ण किए हुए वेग वाले बाण से काट कर उड़ा दिया । यही शिर कौरवों की अनीति का मूल कारण था ॥६३॥

भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त्त वीरः पश्चात्कबन्धं रुधिरावसिक्तम् ।
विस्पन्दमानं निपपात घोरं रथोत्तमात्पार्थिव पार्थिवस्य ॥

हे राजन् ! इस वीर सहदेव ने उसकी गोल भुजाएं भी काट डाली इसके पश्चात् गान्धारराज शकुनि का रुधिर में भींगा हुआ भयानक कबन्ध (रुण्ड) तड़फड़ाता हुआ रथ से नीचे गिर गया ॥

हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम्
योधास्त्वदीया भयनष्टसत्वा दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥

हे नृपते ! जब तुम्हारे पक्ष के वीरों ने शकुनि का मस्तक छिन्न-भिन्न और रुधिर में भीगा हुआ शरीर रणभूमि में पड़ा हुआ देखा तो वे बड़े ही भयभीत हुए। उनका सारा पराक्रम उड़ गया। वे अपने शस्त्रों को लिए हुए दिशाओं को भाग निकले ॥

प्रविद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा गाण्डीवघोषेण समाहताश्च ।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः पदातयश्चैव सधार्त्तराष्ट्राः ॥

जब ये कौरव वीर, भागे तो इनके मुख सूख गए और ये संज्ञाहीन होगए। नष्ट भ्रष्ट हुए रथ अश्व और हाथी तथा पैदल और राजा दुर्योधन ये सब, गाण्डीव घोष से आहत होकर भयातुर होगए ॥६६॥

ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः ।
शङ्खान्प्रदध्मुः समरेऽतिहृष्टाः सकेशवाः सैनिकान्हर्षयन्तः ॥

हे भारत ! रथ से नीचे शकुनि को गिराकर पाण्डव बड़े ही प्रफुल्लित हुए। उल्लास में भरकर उन्होंने रण में शङ्ख बजाए। श्रीकृष्ण ने भी अपना शंख बजाया। जिसको सुनकर सारे सैनिक बड़े ही आनन्दित हुए ॥६७॥

तं चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो दृष्ट्वा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको महात्मा सहात्मजो वीर रणे त्वयेति

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि शकुन्युलूकवधे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अब सारे वीर रण के मध्य में सहदेव की प्रशंसा करने लगे। हे वीर! तुमने छली वीर शकुनि को पुत्र सहित मार लिया, यह बड़ा ही अच्छा किया ॥६६॥

इति श्रीमहाभारत शल्यपर्वान्तर्गत शल्याभिषेक पर्व में शकुनि और उलूक के वध का अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ। और यहीं पर शल्याभिषेक पर्व भी सम्पूर्ण होगया।



अथ हृदप्रवेशपर्व ।

उन्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच— ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः ।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान्पर्यवारयन् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! शकुनि के मरते ही उसके पदानुचर, सैनिक, इस युद्ध में अपने प्राणों का मोह छोड़कर पाण्डवों पर टूट पड़े ॥१॥

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात्सहदेवो जये धृतः ।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥२॥

इन आक्रमण करने वाले गान्धार वीरों को अर्जुन, विजयशील सहदेव तथा अत्यन्त तेजस्वी, क्रोधाविष्ट सर्प के समान भीषण, भीमसेन ने रोका ॥२॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् ।
सङ्कल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनञ्जयः ॥३॥

शक्ति, ऋष्टि, प्रास हाथ में धारण करने वाले इन घातक गान्धार वीरों के सङ्कल्प को अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से निष्फल कर दिया ॥३॥

संगृहीतायुधान्बाहून्योधानामभिधावताम् ।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि ॥४॥

साथ लेकर दौड़ते हुए इन वीरों की भुजाओं और शिरों तथा अश्वों को भी अर्जुन ने अपने भल्ल संज्ञक बाणों से काट कर गिरा दिया ॥४॥

ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः ।

चरता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना ॥५॥

संसार के प्रसिद्ध वीर सव्यसाची रण में घूमते हुए अर्जुन द्वारा आहत हुए अश्व, प्राणविहीन हो हो कर पृथिवी में गिरने लगे ॥५॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् ।

हतशेषान्समानीय क्रुद्धो रथगणान्बहून् ॥६॥

कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च समन्ततः ।

उवाच सहितान्सर्वान्धार्तराष्ट्र इदं वचः ॥७॥

अब राजा दुर्योधन अपनी सेना का संक्षय देखकर क्रोधातुर होगया। उसने मरने से बचे हुए बहुत से रथों को साथ लिया सब ओर से इकट्ठे हुए, महारथी, अश्व और सारे पैदल वीरों को धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने यह वचन कहा ॥७॥

समासाद्य रणे सर्वान्पाण्डवान्ससुहृद्गणान् ।

पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्तत ॥८॥

हे वीरो! अब तुम अपने मित्रों के साथ स्थित सारे पाण्डवों तथा सेना सहित पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न को मार कर शीघ्र लौटो।

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः ।
अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तत्र पुत्रस्य शासनात् ॥९॥

युद्ध दुर्मद, वीर, तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के वचन को शिर से ग्रहण करके रण में अर्जुन के ऊपर वेग से झपटे ॥९॥

तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान्महारणे ।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन् ॥१०॥

जब मारने से बचे हुए कौरव वीरों को शीघ्रता से अर्जुन ने इस घोर युद्ध में अपने ऊपर झपटते देखा-तो उसने सर्प के आकार वाले बाणों से उन्हें आच्छादित कर दिया ॥१०॥

तत्सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्त्तेन महात्मभिः ।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ॥११॥
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम् ।

हे भरत श्रेष्ठ ! इन अर्जुन आदि पाण्डव महारथियों ने थोड़ी ही देर में मार गिराया, क्योंकि रण के मध्य में इनका इस समय कोई भी रक्षक ही नहीं था कोई भी ऐसा महारथी नहीं रहा जो स्थित हो और उस सुसज्जित वीर के पास भय के कारण जाकर खड़े होजावें ॥११॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसावृते ॥१२॥
न प्राज्ञायन्त समरे दिशः स प्रदिशस्तथा ।

रणाङ्गण में भागते हुए अश्व और पैदल सैनिकों ने इतनी धूलि उठाई कि सर्वत्र अन्धेरा छागया। इस समय रण में उन्हें दिशा प्रदिशा का कुछ भी ज्ञान शेष नहीं रहगया था ॥१२॥

ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः ॥१३॥
अभ्यघ्नंस्तावकान्युद्धे मुहूर्तादिव भारत ।

हे भारत! अब पाण्डव सेना से बहुत से वीर निकले, जो युद्ध में तुम्हारे वीरों को थोड़ी ही देर में मार डालते थे ॥१३॥

ततो निःशेषमभवत्तत्सैन्यं तव भारत ॥१४॥
अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत ।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥१५॥

हे भरत श्रेष्ठ! प्रभो! अब तुम्हारी सारी सेना मार डाली गई हे भारत! तुम्हारे पुत्र के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना इकट्ठे हुई थी। वह सारी सेना इस युद्ध में पाण्डव और सृञ्जयों ने मार गिराई ॥१४-१५॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु ।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥१६॥

हे राजन्! तुम्हारे पक्ष के सहस्रों महावीर राजाओं में अब अकेला राजा दुर्योधन दिखाई देरहा था, परन्तु वह भी बहुत घायल हो रहा था ॥१६॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम् ।
विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान्वीक्ष्य संयुगे ॥१७॥

मुदितान्सर्वतः सिद्धान्नदमानान्समन्ततः ।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥१८॥
दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः ।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥१९॥

हे महाराज ! अब राजा दुर्योधन ने सब ओर दृष्टि उठाई-तो उसे सारी पृथिवी शून्य दिखाई देने लगी। वह सारे योद्धाओं से विहीन हो चुका था। उसने रणाङ्गण में सब ओर सिंहनाद करते हुए आनन्द में भरे हुए विजयोन्मत्त पाण्डवों को देखा। जब राजा दुर्योधन ने उन वीरों के धनुष की टङ्कार या बाणों के सन्नाटे सुने तो उसे बहुत ही क्लेश हुआ। अन्त में सेना और वाहनों से हीन होकर उसने भाग जाने की ठानी ॥१७-१९॥

धृतराष्ट्र उवाच— निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते ।
पाण्डवानां बले सूत किं नु शेषमभूत्तदा ॥२०॥
एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि सञ्जय ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब हमारी सेना मारी जाचुकी और सारे शिबिर शून्य होगए तो उस समय पाण्डवों की कितनी सेना बची रही। हे सञ्जय ! तुम बड़े कुशल हो, इससे मैं तुमसे यह प्रश्न कर रहा हूँ ॥२०॥

यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम ॥२१॥
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः ।

हे सूत ! अब तुम यह भी बताओ-कि मेरा मूर्ख पुत्र राजा दुर्योधन अकेला रहगया था। उसने अपनी सेना का बिल्कुल क्षय देखकर आगे क्या किया ॥२१॥

सञ्जय उवाच— रथानां द्वे सहस्रे तु सप्तनागशतानि च ॥

पंच चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः।

एतच्छेपसभूद्राजन्पाण्डवानां महद्बलम् ॥२३॥

परिगृह्य हि यद्युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः।

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! पाण्डवों के पक्ष में इस समय दो सहस्र रथ, सात सौ हाथी, पांच हजार अश्व और दश हजार पैदल सैनिक थे। इस प्रकार पाण्डवों की अभी तक बहुत सी बची हुई थी। इस सेना को अपने साथ लिए हुए धृष्टद्युम्न स्थित था ॥२२-२३॥

एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ॥२४॥

नापश्यत्समरे कंचित्सहायं रथिनां वरः।

हे भरत श्रेष्ठ ! इस समय तुम्हारे पक्ष में केवल अकेला रथि श्रेष्ठ राजा दुर्योधन बचा हुआ था। अब इसको रण में कोई अपना सहायक नहीं दिखाई दिया ॥२४॥

नर्दमानान्परान्दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम् ॥२५॥

तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः।

हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥२६॥

हे महाराज! अपने शत्रुओं को गरजते हुए तथा अपने बल को विनष्ट देखकर अकेला राजा दुर्योधन अपने मृत अश्व को छोड़कर भयातुर हुआ पूर्व दिशा को भाग चला ॥२५-२६॥

एकादशचमूभर्त्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो हृदम् ॥२७॥

हे राजन्! तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, थोड़े दिन पूर्व एकादश अक्षौहिणी सेना का अधिपति था । आज वह अकेला ही तेजस्वी कुरुराज पैदल ही किसी ह्रद की ओर चल दिया ॥२७॥

नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः ।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥२८॥

राजा दुर्योधन पैदल थोड़ी ही दूर गया होगा कि उसको बुद्धिमान धर्मशाली महात्मा विदुर के वचन याद आए ॥२८॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान्पुरा ।
महद्वैशसमस्माकं क्षत्रियाणाँ च संयुगे ॥२९॥

महा बुद्धिमान विदुर ने तो इस युद्ध में होने वाला हम क्षत्रियों का महा विनाश पूर्व से ही देख लिया था ॥२९॥

एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन्बलक्षयम् ॥३०॥

हे राजन्! इस प्रकार विचारते हुए राजा दुर्योधन ने उस प्रसिद्ध ह्रद में प्रवेश किया । अपनी सेना का विनाश देखकर कुरुराज दुर्योधन बहुत ही दुःख से सन्तप्त हो रहा था ॥३०॥

पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तत्र राजन्बलंप्रति ॥३१॥

हे महाराज ! अब धृष्टद्युम्न आदि, पाण्डव महावीर, क्रोधातुर होकर तुम्हारी सेना पर वेग से झपटे ॥३१॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥३२॥

हमारी सेना भी शक्ति, ऋष्टि और प्रास आदि शस्त्र हाथों में लिए हुए गर्जना कर रही थी । इस सेना की इच्छा को धनञ्जय ने अपने गाण्डीव धनुष से कुचल डाला ॥३२॥

तान्हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान्सहबन्धुभिः
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत ॥३३॥

अपने बन्धु बान्धव और अमात्यों सहित इन महारथियों को मारकर श्वेत अश्वधारी रथ में अर्जुन बहुत ही सुशोभित होने लगा ॥३३॥

सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे ।
महावनमिवछिन्नमभवत्तावकं बलम् ॥३४॥

अश्व, रथ और हाथियों की सेना के सहित सुबल पुत्र, शकुनि के मारे जाने पर तुम्हारी सेना इस तरह काट डाली गई जैसे तक्षा महा वन को काट फेंकते हैं ॥३४॥

अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह ।
नान्यो महारथो राजन् जीवमानो व्यदृश्यत ॥३५॥

हे राजन् ! कई लाख राजा दुर्योधन की सेना में अब कोई भी महारथी वीर दिखाई नहीं देता था ॥३५॥

द्रोणपुत्रादृते वीरात्तथैव कृतवर्मणः ।
कृपाच्च गौतमाद्राजन्पार्थिवाच्च तवात्मजात् ॥३६॥

हे राजन ! अब तो केवल, गौतमगोत्रोत्पन्न कृपाचार्य द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, महारथी कृतवर्मा और तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन छोड़कर अन्य कोई महारथी वीर शेष नहीं रहा था ॥३६॥

धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन्सात्यकिमब्रवीत् ।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीविता ॥३७॥

हे राजन् ! जब धृष्टद्युम्न ने सात्यकि के रथ में बन्धा हुआ मुझे देखा तो हंसकर सात्यकि से कहा—हे वीर इस सञ्जय के पकड़ने से क्या लाभ है। इसके जीवित रहने से ही क्या लाभ है॥

धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः ।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा ॥३८॥

धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर शिनिनप्ता, महारथी सात्यकि ने तीक्ष्ण खड्ग निकाला और उसे उठाकर मेरा वध कर देना चाहा॥

तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
मुच्यतां सञ्जयो जीवन्न हन्तव्यः कथञ्चन ॥३९॥

इसी समय दैवात् महाप्राज्ञ कृष्ण द्वैपायन व्यास वहां आ पहुँचे। उन्होंने कहा—सञ्जय को जीवित ही छोड़ दो। इसको कभी नहीं मार देना ॥३९॥

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः।

ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय ॥४०॥

कृष्णद्वैपायन के वचन सुनकर शिनिनप्ता, सात्यकि ने मुझे खोल दिया और कहा—हे सञ्जय तुम्हारे प्राण बचे—अब तुम अपनी इच्छानुसार जाओ ॥४०॥

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः।

प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः ॥४१॥

मेरा कवच और मेरे आयुध छीन लिए गए और मुझे जाने की आज्ञा दी। मैं सायङ्काल में रक्त में भीगा हुआ हस्तिनापुर की ओर चल दिया ॥४१॥

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम्।

एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥४२॥

हे राजन! मैं रणभूमि से एक कोश की दूरीपर पहुंचा हूँगा, कि मैंने अत्यन्त क्षत विक्षत, गदा हाथ में लिए हुए वहां स्थित मैंने अकेले राजा दुर्योधन को देखा ॥४२॥

स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम्।

उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम् ॥४३॥

कुरुराज की आंखें अश्रुओं में भरी हुई थीं। वह मेरी ओर देख भी नहीं सका। मैं दीनता से उनके समीप स्थित हो गया उन्होंने मुझे देख कर मेरे समीप आकर मुझे टकटकी बांधकर देखा ॥४३॥

तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः ॥४४॥

इस रणक्षेत्र में अकेले शोकातुर राजा दुर्योधन को देखकर मैं दुःख में निमग्न होकर देखने को समर्थ न हो सका ॥४४॥

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥४५॥

मैंने भी-अपने पकड़े जाने और कृष्ण द्वैपायन द्वारा जीवित छुड़ा देने की सारी घटना सुनाई ॥४५॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम्।
भ्रातृंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः ॥४६॥

उसने थोड़ी देर विचार किया, और कुछ चेत में आया। उसने सारे भ्राता और सेना के विषय में पूछा ॥४६॥

तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
भ्रातृंश्च निहतान्सर्वान्सैन्यं च विनिपातितम् ॥४७॥

मैंने जो कुछ प्रत्यक्ष देखा था, वह सारा वृत्तान्त उसको सुना दिया कि इस तरह तुम्हारे सारे भ्राता मारे जा चुके और सारी सेना गिरायी जा चुकी है ॥४७॥

त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप ।

इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥४८॥

हे नराधिप ! अब तो तुम्हारे केवल तीन महारथी अवशिष्ट हैं। यह बात भी मुझे युद्धभूमि से चलते समय महात्मा कृष्ण द्वैपायन व्यास ने बताई है ॥४८॥

स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः ।

असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥४६॥

अब राजा दुर्योधन ने लम्बी श्वास ली और बार २ मेरी ओर देखा, और मुझे हाथ से छूकर यह वचन बोला ॥४६॥

त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति सञ्जय ।

द्वितीयं नेह पश्यामिससहायाश्च पाण्डवाः ॥५०॥

हे सञ्जय ! मुझे तो तुम्हारे सिवा अन्य कोई भी युद्ध में बचा हुआ दिखाई नहीं देता है । पाण्डव तो अभी अपने सहायकों के साथ अवशिष्ट दिखाई देते हैं ॥५०॥

ब्रूयाः सञ्जय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।

दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥५१॥

हे सञ्जय ! तुम प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र से कह देना, कि तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन ह्रद में घुस गया है ॥५१॥

सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च ।

पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥५२॥

उन उत्तम २ सुहृद पुत्र और माताओं से हीन होकर मेरे सदृश मनस्वी पुरुष कौन जीवित रह सकता है। मेरा राज्य भी पाण्डवों ने छीन लिया है ॥५२॥

आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात्।
अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥५३॥

यह सारा समाचार तुम पिता जी को सुना देना, कि मैं रण क्षेत्र से छुटकारा पाकर आ गया हूँ। मैं अत्यन्त घायल होकर इस जल पूर्ण सरोवर में जीवन की अभिलाषा से छुप गया हूँ ॥५३॥

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशच्चं महाह्रदम्।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥५४॥

हे महाराज! इतना कहकर राजा दुर्योधन, उस महा ह्रद में छुप गया। अब कुरुराज दुर्योधन ने अपने मन्त्र बल से तालाब का पानी बांध दिया ॥५४॥

तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन्रथान् श्रान्तवाहनान्।
अपश्यं सहितानेकस्तां देशं समुपेयुषः ॥५५॥

जब राजा दुर्योधन, उस ह्रद में घुस गये, तो थके वाहनों से युक्त तीन महारथी इकट्ठे ही उस स्थान पर पहुंचे हुए दिखाई दिए।

कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम्।
भोजं च कृतवर्माणं सहितान् शरविक्षतान् ॥५६॥

शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य, रथि श्रेष्ठ वीर वर अश्वत्थामा, भोज वंशोद्भव कृतवर्मा इकट्ठे ही पहुंचे, जो बड़े ही क्षत विक्षत हो रहे थे ॥५६॥

ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन् ।

उपायाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि सञ्जय ॥५७॥

जब उन वीरों ने मुझे देखा-तो वेग से अश्व भगाए और वे मेरे पास आकर कहने लगे-हे सञ्जय ! तुम जीवित हो-यह बड़ी प्रसन्नता की बात है ॥५७॥

अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम् ।

कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति सञ्जय ॥५८॥

उन सबने मुझसे राजा दुर्योधन के समाचार पूछे-कि हे सञ्जय ! शीघ्र बताओ ! राजा दुर्योधन अभी तक जीवित है या मारे गए ॥५८॥

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम् ।

तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥५९॥

ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः ।

मैंने उन महारथियों को कहा—कि अभी कुरुराज दुर्योधन जीवित हैं । राजा दुर्योधन ने जो मुझसे कहा था, मैंने वह भी सब कुछ उनको सुना दिया। राजा दुर्योधन जिस ह्रद में घुसे थे, वह ह्रद भी मैंने उनको बता दिया ॥५९

अश्वत्थामा तु तद्राजन्निशम्य वचनं मम ॥६०॥

तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत् ।

हे राजन् ! अश्वत्थामा मेरे ये वचन सुनकर उस विशाल ह्रद की ओर देखकर बड़ी करुणा से रोने लगा ॥६०॥

अहो धिक् स न जानाति जीवतोऽस्मान्नराधिपः ॥
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ।

हाय ? बड़े कष्ट की बात है, कि राजा दुर्योधन को यह पता नहीं है, कि हम तीन महारथी अभी शेष हैं। हमतो राजा दुर्योधन को साथ लेकर अभी सारे पाण्डव वीरों से युद्ध करने को पर्याप्त हैं ॥६१॥

ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः ॥६२॥
प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान्रणे ।

ये महारथी योद्धा बहुत देर तक वहां चिल्ला कर लौट पड़े, क्योंकि इन्होंने रण में घूमते हुए पाण्डवों को देखा ॥६२॥

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥६३॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ।

इन तीनों महारथियों ने मुझे कृपाचार्य के रथ में बैठा दिया मरने से बचे हुए ये तीनों वीर अपने सेना शिविर में आकर पहुंचे ॥६३॥

तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति ॥६४॥
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ।

जब सूर्य छुप गया तो छोटे मोटे पहरेदार अपने २ पहरे पर जा पहुंचे। उन लोगों ने हमसे तुम्हारे पुत्रों के विनाश की कथा सुनी। तो सारे रोने चिल्लाने लगे ॥६४॥

तत्र वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः ॥६५॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

हे महाराज ! स्त्रियों के रक्षक वृद्ध पुरुष, राजकुल की स्त्रियों को लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिए ॥६५॥

तत्र विक्रोशमानानां रुदतीनां च सर्वशः ॥६६॥
प्रादुरासीन्महान् शब्दः श्रुत्वा तद्बलसंक्षयम् ।

तुम्हारी सेना के संक्षय को सुनकर ये सारी स्त्रियां भी रोने चिल्लाने लगी, जिससे वहां महान कोलाहल उठखड़ा हुआ ॥६६॥

ततस्ता योषितो राजन् रुदत्यो वै मुहुर्मुहुः ॥६७॥
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ।

हे राजन् ! अब वे कुरुकुल की स्त्रियां बार २ चिल्ला २ कर रोने लगी । इन्होंने कुररी पक्षिणी की तरह सारे महीतल को अपने शब्द से भर दिया ॥६७॥

आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ॥६८॥
लुलुचुश्च तदा केशान् क्रोशत्यस्तत्र तत्र ह ।

ये स्त्रियां अपने नख और हाथों से शिर पीटने लगी । ये रोती चिल्लांती अपने २ बालों को नोचने लगी ॥६८॥

हाहाकारनिनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च ॥६९॥
शोचन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! ये हाहाकार करती हुई चिल्ला रही थी और और छाती पीटती जाती थी । ये आर्तनाद करके पुकारती हुई शोक-पूर्वक होरही थी ॥६९॥

ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः ॥७०॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

हे राजन् ! इसके बाद राजा दुर्योधन के अमात्य अश्रु पूर्ण कण्ठ वाले होकर अत्यन्त दुःख के साथ, राज दाराओं को लेकर नगर के प्रति चल दिए ॥७०।

वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशाम्पते ॥७१॥
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
समादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः ।७२॥

हे विशाम्पते ! बेंत की छड़ी हाथ में रखने वाले स्त्रियों के रक्षक द्वारपाल, सुन्दर २ शयन लेकर चल दिए जिन पर उत्तम २ बिछाने के वस्त्र थे ॥७१-७२॥

आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः ।
स्वान्स्वान्दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥७३॥

अब अन्य राज पुरुष उत्तम २ घोड़ियों से युक्त रथों पर अपनी २ स्त्रियों का लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिए ॥७३॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।
ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति ॥७४॥

हे महाराज ! जिन स्त्रियों को पूर्व में सूर्य भी नहीं देख पाता था उन स्त्रियों को नगर की ओर चलने के समय सारे मनुष्य देखने लगे ॥७४॥

ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः ।

प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥७५॥

हे भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त सुकुमारता से सम्पन्न ये राज स्त्रियां, अपने २ बन्धु बान्धवों के मारे जाने से व्याकुल होकर बड़ी शीघ्रता से हस्तिनापुर की ओर चल पड़ी ॥७५॥

आगोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति ।

ययुर्मनुष्याः संभ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः ॥७६॥

गौ और भेड़ बकरी पालने वाले मनुष्य भी भीमसेन के भय से व्याकुल होकर घबराहट के साथ अपने पुर की ओर चलदिए ॥

अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत्सुदारुणम् ।

प्रेक्षमाणास्तदाऽन्योन्यमाधावन्नगरं प्रति ७७॥

इन लोगों को पाण्डवों से बहुत ही दारुण भय होरहा था। ये एक दूसरे को देखते हुए अपने २ नगर की ओर चलदीं ॥७७॥

तस्मिंस्तथा वर्त्तमाने विद्रवे भृशदारुणे ।

युयुत्सुः शोकसंमूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ७८॥

इस प्रकार अत्यन्त दारुण भाग दौड़ के होने पर राजा धृतराष्ट्र का दासी पुत्र) युयुत्सु शोकातुर होकर समयानुकूल यह सोचने लगा ॥७८॥

जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः ॥

एकादशचमूभर्त्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ॥७९॥

हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद्यदृच्छया ॥८०॥

भयानक पराक्रमी पाण्डवों ने ग्यारह अक्षौहिणी सहित राजा दुर्योधन को रणाङ्गण में जीत लिया और इसके भ्राता मार लिए गए। भीष्म द्रोण आदि सारे कौरव वीर मारे गए। मैं भी अपने भाग्य के योग से अकेला बच निकला हूँ ॥७९-८०॥

विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः ।
इतस्ततः पलायन्ते हतनाथा हतौजसः ॥८१॥

अब सब ओर से सेना के पड़ाव में भाग दौड़ मची हुई है। ये अपने स्वामी के मारे जाने से असहाय और हतओज होकर इधर उधर भाग रहे हैं ॥८१॥

अदृष्टपूर्वा दुःखार्त्ता भयव्याकुललोचनाः ।
हरिणा इव वित्रस्ता वीक्षमाणा दिशो दश ॥८२॥

ये लोग, दुःख से व्याकुल होकर भयभीत हुए दिशाओं को इधर उधर देखने लगे। ऐसा भय इन लोगों को पूर्व में कभी उपस्थित नहीं हुआ था। ये दशों दिशाओं को चकित हुए हिरन की भांति देख रहे थे ॥८२॥

दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥८३॥
प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभो ।

राजा दुर्योधन के जो भी सचिव बचे हुए थे वे राजदाराओं को लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिए। हे प्रभो! मैंने भी इन ही लोगों के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश करना उत्तम समझा ॥८३॥

युधिष्ठिरमनुज्ञाय भीमसेनं तथैव च ॥८४॥

एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत् ।

हे राजन्! इस समय महाबाहु युयुत्सु ने, अपने इस विचार को धर्मराज और भीमसेन को सुनाया और उनसे जाने की आज्ञा ली ॥८४॥

तस्य प्रीतोऽभवद्राजा नित्यं करुणवेदिता ॥८५॥

परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् ।

राजा युधिष्ठिर उसपर प्रसन्न थे। नित्य उसपर कृपा का बर्ताव करते थे। महाबाहु धर्मराज ने वैश्या पुत्र युयुत्सु का आलिङ्गन करके उसे जाने की आज्ञा दी ॥८५॥

ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ॥८६॥

संवाहयितवांश्चापि राजदारान्पुरं प्रति ।

अब युयुत्सु रथ में चढ़ गया और उसने शीघ्र २ अश्व हांकना आरम्भ किया। यह भी अपने रथ में राजदाराओं को लेकर हस्तिनापुर की ओर चल दिया ॥८६॥

तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ॥८७॥

प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।

अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साऽश्रुलोचनम् ॥८८॥

राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम् ।

सूर्य के अस्त होने पर युयुत्सु आंसुओं से कण्ठ और लोचन भरे हुए उन सबके साथ हस्तिनापुर में घुसा उसने वहां माहप्राज्ञ, अश्रुलोचन, शोक से व्याप्त, राजा धृतराष्ट्र के समीप से आते हुए महात्मा विदुर को देखा ॥८७ ८८॥

तमब्रवीत्सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम् ॥८९॥

दिष्ट्या कुरुक्षये वृत्ते अस्मिंस्त्वं पुत्र जीवसि ।

सत्य के धारण करने वाले महात्मा विदुर ने, शिर झुकाकर अपने आगे स्थित युयुत्सु को देखकर, कहने लगे हे पुत्र! कुरुकुल के नष्ट होने पर जो तू जीवत है, यह बड़ी ही अच्छी बात है ॥८९॥

विना राज्ञः प्रवेशाद्वै किमसि त्वमिहागतः ॥९०॥

एतद्वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय ।

हे युयुत्सु! राजा युधिष्ठिर के प्रवेश के विना तुम कैसे प्रथम चले आए इसका भी सारा वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनाओ ॥९०॥

युयुत्सुरुवाच— निहते शकुनौ तत्र सज्ञातिसुतबान्धवे ॥९१॥

हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः ।

स्वकं स हयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद्भयात् ॥९२॥

युयुत्सु ने कहा—हे महात्मन् ! ज्ञाति सुत और बान्धवों के साथ शकुनि के मारे जाने पर सारे परिवार के मारे जाने पर राजा दुर्योधन, अपने अश्वों को छोड़ कर पूर्व की ओर भय से खिसक गए। ॥६१-६२॥

अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात् ।
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥६३॥

राजा दुर्योधन के स्कन्धावार से इस तरह चले जाने पर सारा परिवार भय से व्याकुल होकर हस्तिनापुर की ओर चल दिया ॥६३॥

ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातृणां चास्य सर्वतः ।
वाहनेषु समारोप्य अध्यक्षाः प्राद्रवन्भयात् ॥६४॥

अब राजा दुर्योधन और उसके भ्राताओं की स्त्रियां अपने २ वाहनों पर चढ़कर अपने अध्यक्षों के साथ नगर की ओर चल पड़ी ॥६४॥

ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षन्लोकान्प्रधावितान् ॥६५॥

मैंने भी श्रीकृष्ण सहित राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेली ! अब इन भाग कर आते हुए रनिवास की रक्षा करता हुआ मैं भी हस्तिनापुर चला आया हूं ॥६५॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम् ।
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित् ॥६६॥
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत् ।

वैश्या पुत्र युयुत्सु के ये वचन सुनकर-यह समयानुसारी बात थी, यह जान कर सब धर्मों का ज्ञाता विदुर कहने लगा उसने युयुत्सु की बड़ी प्रशंसा की और यह वचन कहा ॥९६॥

प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये ॥९७॥
रक्षितः कुलधर्मश्च सानुक्रोशतया त्वया ।

हे युयुत्सो ! भरतवंश के विनाश होने पर तुमने जो कुछ कहा-वह ठीक ही है। तुमने-अनुग्रह करके यह कुल धर्म की रक्षा की है ॥९७॥

दिष्ट्या त्वामिह संग्रामादस्माद्वीरक्षयात्पुरम् ॥९८॥
समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः ।

जिस युद्ध में वीरों का क्षय हो चुका, उससे बचकर तुम हस्तिनापुर म आ पहुंचे। आज तुम को इस तरह देख रहे हैं जैसे उदय होते हुए सूर्य को प्रजा देखती है। ॥९८॥

अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥९९॥
बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः ।
त्वमेको व्यसनार्त्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा ॥१००॥
अद्य त्वमिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् ।

हे वीर ! तुम, अदीर्घदर्शी, अन्धे लालची पिता की एक लकड़ी, सी बच रहे हो, हे पुत्र ! हमने बहुत तरह इसकी याचना की, परन्तु इसको दैव ने नष्ट कर रखा था। अब

विपत्ति ग्रस्त राजा धृतराष्ट्र के तुम अकेले पुत्र बच रहे हो आज तुम यहां विश्राम करो और कल राजा युधिष्ठिर के समीप चले जाना। ॥९९-१००॥

एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः साश्रुलोचनः ॥१०१॥
युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम्।
पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृश नादितम् ॥१०२॥
निरानन्दं गतश्रीकं हृतारामभिवाशयम्।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद् दुःखतरोऽभवत् ॥१०३॥

इतना कह कर विदुर की आंखों में आंसू भर आए। वे युयुत्सु को साथ लेकर नृप प्रासाद में प्रविष्ट हुए। पुर और राष्ट्रवासी जनों के करुणा क्रन्दन से यह भवन, शब्दायमान हो रहा था। इसमें न तो कोई आनन्द था और न कोई शोभा ही दिखाई देती थी। यह तो उपवन के कट जाने पर बचा हुआ जलाशय सा दिखता था। इस नष्ट भ्रष्ट शून्य भवन को देखकर विदुर और भी दुःखी हुए। ॥१०१-१०३॥

विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनांतरात्मना।
विवेश नगरे राजन्निशश्वास शनैः शनैः ॥१०४॥

हे राजन्! अब सब धर्मों के ज्ञाता, विदुर, अन्तरात्मा में दुःखी होकर नगर में घुसे, वे धीरे २ श्वास मार रहे थे। ॥१०४॥

युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत्तदा ।

वंद्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत्सुदुःखितः ॥

चिन्तया नः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ॥१०५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

समाप्तं च ह्रदप्रवेशपर्व

युयुत्सु ने भी उस रात में वहीं अपने भवन में निवास किया। अपने सेवकों ने इसकी बहुत वन्दना की, परन्तु इसको चैन नहीं पड़ा। यह तो इसी चिन्ता में था, कि हमारे भरतवंश का परस्पर के युद्ध में बहुत ही तीव्र विनाश होगया ॥१०५॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गत ह्रद प्रवेश पर्व में राजा दुर्योधन के ह्रद करने का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ और यहीं पर ह्रदप्रवेश पर्व भी समाप्त होगया



गदायुद्धपर्व ।

तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच— हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे ।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत सञ्जय ॥१॥
कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत्तदा ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! इस घोर युद्ध में पाण्डु पुत्रों द्वारा हमारी सारी सेना के विनाश कर देने पर मेरी सेना के अवशिष्ट वीर और वीर्यवान् कृतवर्मा, कृपाचार्य द्रोण पुत्र अश्वत्थामा और मन्द बुद्धि, राजा दुर्योधन ने क्या किया ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—सम्प्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम्
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः ॥३॥
निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनम् ।
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः ॥४॥
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! महावीर क्षत्रियों की स्त्रियां जब कौरव शिविर से चली गई और शिविर में खल बली मच गई तो तीनों महारथी अत्यन्त उद्विग्न हो गए । अब इन्होंने विजयों-

न्मत्त पाण्डवों की हर्ष ध्वनि सुनी। सारे शिविर को भागा देख कर सायङ्काल में राजा दुर्योधन को खोज लेना चाहा। इन्होंने वहां ठहरना उचित न समझा और वे उसी ह्रद की ओर चले॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे ॥५॥
हृष्टः पर्यचरद्राजन् दुर्योधनवधेप्सया।

धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर भी अपने भाइयों के साथ, रण में प्रसन्नता से घूम रहे थे। वे राजा दुर्योधन को खोज कर उसे मार लेना चाहते थे ॥५॥

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तत्र पुत्रं जयैषिणः ॥६॥
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यन् जनाधिपम्।

ये विजयाभिलाषी, क्रोधातुर हुए तुम्हारे पुत्रको खोज रहे थे उन्होंने बड़े प्रयत्न से अन्वेषण किया, परन्तु वे राजा दुर्योधनको खोज न पाए ॥६॥

स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ॥७॥
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया।

राजा दुर्योधन तो गदा हाथ में लेकर तीव्र वेग से दौड़ आया था और अपनी माया से ह्रद का जल स्तम्भित करके उसमें स्थित था ॥७॥

यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ॥८॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठंत ससैनिकाः।

जब सारे पाण्डवों के वाहन थक गए और राजा दुर्योधन न मिले तो पाण्डव अपने शिविर में आए और वहां सैनिकों सहित स्थित हो गए ॥८॥

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ॥९॥
सन्निविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ।

अब कृपाचार्य, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, सात्वत वंश श्रेष्ठ कृतवर्मा भी पाण्डवों के अपने शिविरों में घुस जाने पर धीरे से उस ह्रद पर पहुंचे ॥९॥

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ॥१०॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमंभसि ।

ये वीर, उस तालाब पर वहां पहुंचे जहां पर राजा दुर्योधन सो रहे थे । इन्होंने सोते हुए दुर्धर्ष राजा दुर्योधन से यह वचन कहा ॥१०॥

राजन्नुत्तिष्ठ युद्धयस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम् ॥११॥
जित्वा वा पृथिवीं भुंक्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।

हे राजन् ! उठो और युद्ध करो । हमारे साथ राजा युधिष्ठिर उपस्थित हैं । यदि तुम इनसे जीते गये तो पृथिवी का भोग करोगे और मारे गए तो स्वर्ग प्राप्त कर लोगे ॥११॥

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया ॥१२॥
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः ।

हे दुर्योधन ! तुमने पाण्डवों की सेना का बहुत बड़ा भाग नष्ट कर दिया है और जो सैनिक बचे हुए थे उनकी भी अधिक संख्या को तुमने बींध डाला ॥१२॥

न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते ॥१३॥

अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत ।

हे विशाम्पते ! ये शत्रु तुम्हारे वेग के सहन कर लेने में समर्थ नहीं हैं। इसपर हम लोग तुम्हारी रक्षा में तत्पर हैं, हे भारत ! इससे तुम खड़े हो जाओ ॥१३॥

दुर्योधन उवाच–दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात्पुरुषक्षयात्

पाण्डुकौरवसम्मर्दाज्जीवमानान्नरर्षभान् ।

दुर्योधन बोले–हे वीरों ! तुम इस जन संहारक कौरव पाण्डवों के घोर युद्ध से भी बच निकले, इसका बड़ा हर्ष है, उत्तम वीरों को जीवित देखकर बड़ा ही आनन्द हो रहा है ॥१४॥

विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः ॥१५॥

भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृश विक्षताः ।

उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥१६॥

अब हम अवश्य विजयी होंगे, क्योंकि हम विश्राम ले चुके और हमारी थकान उतर चुकी है। हम लोग बड़े घायल थे, आप भी थके हुए थे। पाण्डवों की सेना बहुत उद्धत थी इससे हमने युद्ध करना पसन्द नहीं किया ॥१५-१६॥

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद्वो महदिदं मनः।
अस्मासु च परो शक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥१७॥

हे वीरों! यह कोई अद्भुत बात नहीं है, जो तुम्हारा यह मन हमारी ओर है। हम लोगों में बड़ी शक्ति है, परन्तु वह समय पराक्रम का नहीं था ॥१७॥

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून् श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥

आज मैं एक रात आप लोगों के साथ विश्राम करलूं, कल मैं शत्रुओं से युद्ध कर लूंगा-इसमें सन्देह न समझो ॥१८॥

सञ्जय उवाच— एवमुक्तोऽब्रवीद्द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम्।
उत्तिष्ठ राजन्भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान् ॥१९॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अब युद्ध दुर्मद राजा दुर्योधन ने इतना कहा—तो अश्वत्थामा बोले—हे राजन्! उठो-तुम्हारा कल्याण हो, हम लोग, अब शत्रुओं को जीते लेते हैं ॥१९॥

इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जयेन च।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान् ॥२०॥

हे राजन्! मैं अपने इष्टापूर्त यज्ञ, दान, सत्य और जय की शपथ से कहता हूँ, कि मैं आज सोमक वीरों का नाश करके रहूंगा ॥२०॥

मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम्।
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे ॥२१॥

मैं सज्जनों के योग्य यज्ञ-प्रीति को प्राप्त न कर सकूं जो इस रात के व्यतीत होते ही रण में शत्रुओं को न मार गिराऊंगा ॥२१॥

नाहत्वा सर्वपाञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो ।
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे श्रृणु जनाधिप ॥२२॥

हे विभो ! ! मैं सारे पञ्चालों के मारे बिना कवच ही नहीं खोलूंगा। हे जनाधिप ! यह मैं तुम से सत्य कहता हूँ। तुम इसे ध्यान से सुन लो ॥२२॥

तेषु संभाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः ।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥२३॥

ये इस तरह बातें कर रहे थे, कि वहां कुछ व्याध चले आए वे मांस के बोझे से थके हुए थे और अचानक पानी पीने वहां आए थे ॥२३॥

ते हि नित्यं महाराज भीमसेनस्य लुब्धकाः ।
मांसभारानुपाजह्रुर्भक्त्या परमया विभो ॥२४॥

हे महाराज ! ये सारे भीमसेन के नौकर व्याध थे। ये बड़ी भक्ति से उसके लिए मांस के बोझे ला रहे थे ॥२४॥

ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद्वचनं रहः ।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥२५॥

ये वहां आकर स्थित हुए और उन्होंने इनके सारे वचन सुने। ये सारे परस्पर मिलकर बैठ गए और इन्होंने राजा दुर्योधन के भी वचन सुने ॥२५॥

ते ऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे।

निर्बन्धं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकांक्षिणः ॥२६॥

इन तीनों महारथियों ने देखा कि, राजा दुर्योधन को लड़ने की इच्छा नहीं। ये तो युद्ध के लिए उत्सुक थे, इससे बड़ा आग्रह दिखा रहे थे ॥२६॥

तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान्।

अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमंभसि ॥२७॥

तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः।

व्याधाऽभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम् ॥२८॥

हे राजेन्द्र! इस प्रकार कौरवों के तीनों महारथियों को देख कर व्याधों ने जल स्थित राजा दुर्योधन को युद्ध से उदासीन जान लिया। जल में स्थित राजा दुर्योधन का उन्होंने सारा सम्वाद सुना वे समझ गए कि यहां जल में राजा दुर्योधन छुप रहे हैं ॥२७-२८॥

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव।

यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता ॥२९॥

हे राजन! इन व्याधों से पूर्व में राजा युधिष्ठिर ने दुर्योधन का पता पूछा था। ये राजा का पता पाना ही चाहते थे कि अचानक वहां आपहुंचे ॥२९॥

ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद्भाषितं तदा।

अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव ॥३०॥

दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः ।
अव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः ॥३१॥

हे राजन ! इन मृग-व्याधों को पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर की वह बात याद आगई अब वे परस्पर एक दूसरे से धीरे २ कहने लगे। कि यदि हम धर्मराज को राजा दुर्योधन की सूचना दे देंगे-तो वह हमको बहुत धन देगा। हम लोगों को चुपचाप यह बता देना चाहिए, कि ह्रद में राजा दुर्योधन छुपा है ॥३०-३१॥

तस्माद्गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम् ॥३२॥

अब हम लोगों को वहीं पर चलना चाहिए-जहां पर राजा दुर्योधन है और वहां पहुंच कर असहिष्णु सलिल में शयन करते हुए राजा दुर्योधन की सूचना देनी चाहिए ॥३२॥

धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते ।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते ॥३३॥
स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत ।
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा ॥३४॥

अब हमको चल कर बुद्धिमान धनुर्धर भीमसेन के लिए धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की सूचना देनी चाहिए कि वह पानी में सो रहा है। जब वह प्रसन्न हो जावेगा तो हमको बहुत सा धन देडालेगा इस सूखे दुःखदायी, कृशाकर मांस के ढोने से क्या होगा ॥३३-३४॥

एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः ।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति ॥३५॥

हे राजन ! इतना परस्पर कहकर धनार्थी वे व्याध, बड़ी प्रसन्नता से अपने २ मांसों के बोझों को उठाकर पाण्डवों के शिविरों की ओर चल दिए ॥३५॥

पाण्डवाऽपि महाराज लब्धलक्षाः प्रहारिणः ।
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम् ॥३६॥

निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः ।
चारान्संप्रेषयामासुः समन्तात्तद्रणाजिरे ॥३७॥

हे महाराज ! पाण्डव भी अपने लक्ष्य के बींधने वाले प्रहार कुशल वीर थे। जब उन्होंने रणक्षेत्र में राजा दुर्योधन को स्थित नहीं देखा-वे उस पापी के छल का फल देने के निमित्त उन्होंने रणक्षेत्र में इधर उधर दूतों को भेज रखा था ॥३६-३७॥

आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम् ।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः ३८॥

धर्मराज के सैनिक इधर उधर घूमकर आपहुंचे, और उन सबने इकट्ठे ही राजा युधिष्ठिर से निवेदन किया कि राजा दुर्योधन नहीं अलक्षित होगए हैं ॥३८॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ ।
चिन्तामभ्यगमत्तीव्रां निशश्वास च पार्थिवः ॥३९॥

हे भरतर्षभ ! इन इधर उधर खोजने वालों के वचन सुनकर धर्मराज को बड़ी तीव्र चिन्ता हुई और उन्होंने लम्बी श्वास मारी॥

अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ ।
तस्माद्देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो ॥४०॥
आजग्मुः शिविरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम् ।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥४१॥

हे भरत श्रेष्ठ ! जहां पर इस उदासीन दशा में पाण्डव स्थित थे वहां से उलांघ कर बड़ी शीघ्रता में वे बड़े हर्ष के साथ शिविरों में पहुंचे ये राजा दुर्योधन को देखकर आए ही थे। इनको पहरेदारों ने रोका परन्तु ये घुसे चले गए। भीमसेन इस घटना को देख रहे थे ॥४०-४१॥

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम् ।
तस्मै तत्सर्वमाचख्युर्यद्वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥४२॥

ये महाबली पाण्डु पुत्र भीमसेन के पास पहुंचे। वहां पहुच कर उन्होंने सारा वृत्तान्त उनको सुना दिया-जो ह्रद पर सुना था ॥

ततो वृकोदरो राजन् दत्वा तेषां धनं बहु ।
धर्मराजाय तत्सर्वमाचचक्षे परन्तपः ॥४३॥

हे राजन् ! वृकोदर भीम ने उनको बहुत सा धन दिया और परन्तप भीम ने यह सारी घटना राजा युधिष्ठिर को सुनाई ॥४३॥

असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः ।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥४४॥

हे राजन् ! मेरे लुब्धकों ने दुर्योधन का पता लगा लिया है। तुम जिसके लिए चिन्ता कर रहे हो-वह जल का संस्तम्भन करके हद में सो रहा है ॥४४॥

तद्वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत्सहसोदरैः ॥४५॥

हे विशाम्पते ! भीमसेन के ये प्रिय वचन सुनकर अपने भ्राताओं के साथ कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए।४५॥

तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलहृदे ।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छन्पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥४६॥

जब उन्होंने सुना कि महाधनुर्धर राजा दुर्योधन सरोवर के जल में घुसे पड़े हैं। ये जनार्दन कृष्ण को आगे करके बड़ी शीघ्रता से वहां पहुंचे ॥४६॥

ततः किलकिला शब्दः प्रादुरासीद्विशाम्पते ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥४७॥

हे विशाम्पते ! अब वहां पर हर्षोन्मत्त पाण्डव और पाञ्चालों का बड़ा ही कोलाहल हो चला ॥४७॥

सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भरतर्षभ ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजन् जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥४८॥

हे भरतर्षभ! ये लोग बड़ी भारी गर्जना और सिंहनाद कर रहे थे। हे राजन! ये क्षत्रिय वीर बड़ी शीघ्रता से द्वैपायन ह्रद पर जाने को तय्यार हुए ॥४८॥

ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे।

आक्रोशन् सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः ॥४९॥

पापी दुर्योधन का पता लग गया। इसी रणक्षेत्र के ह्रद पर हमारे मनुष्यों ने उसे अच्छी तरह देखा है। इस तरह आनन्द में भरे हुए सोमक वीर, बड़े उच्चस्वर से कोलाहल करने लगे ॥४९॥

तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम्।

बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् पृथिवीपते ॥५०॥

हे पृथिवीपते! जब इन वेग शाली वीरों के रथ वहां बड़े वेग से चले तो इतना घोर शब्द हुआ जो आकाश में छा गया ॥५०॥

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम्।

अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः ॥५१॥

यद्यपि पाण्डव वीरों के वाहन थके पड़े हैं तो भी वे राजा युधिष्ठिर के पीछे २ कुरुराज दुर्योधन की खोज में वेग से चल पड़े ॥५१॥

अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।

धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः ॥५२॥

उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः।

पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ॥५३॥
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः ।

हे भारत ! इस समय अर्जुन, भीमसेन, माद्री पुत्र नकुल सहदेव, पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न अपराजित शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, द्रौपदी पुत्र तथा अन्य बचे हुए पञ्चाल वीर, सैंकड़ों हाथी, घोड़े, और पैदल चल पड़े ॥५२-५३॥

ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान् ॥५४॥
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत् ।

हे महाराज ! जिस घोर द्वैपायन ह्रद में राजा दुर्योधन छुपा था, वहां पर महाप्रतापी धर्मराज युधिष्ठिर जा पहुंचे ॥५४॥

शीतामलजलं हृद्यं द्वितीयमिव सागरम् ॥५५॥
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत्ते स्थितः सुतः ।

इस ह्रद का पानी बड़ा शीतल और निर्मल था। वह दूसरा सागर सा प्रतीत होता था। उसी ह्रद के जल को माया से स्तम्भित करके वहां तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन स्थित था ॥५५॥

अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ॥५६॥
सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित्प्रभो ।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ॥५७॥

हे भारत ! गदाधारी राजा दुर्योधन, दैवयोग से प्राप्त किसी अद्भुत विधि को करके पानी के भीतर इस तरह सो रहा था। जिससे किसी भी मनुष्य को दिखाई नहीं देता था ॥५६-५७॥

ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् ।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम् ॥५८॥

हे राजन्! अब पानी के भीतर रहते हुए राजा दुर्योधन ने मेघ ध्वनि के सदृश यह महा घोर ध्वनि श्रवण की ॥५८॥

युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सहसोदरैः ।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥५९॥

हे महाराज! अपने भ्राताओं के साथ, राजा युधिष्ठिर भी तुम्हारे पुत्र के वध के लिए वहीं आ पहुंचे ॥५९॥

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
उर्ध्वं धुन्वन्महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥६०॥

अब बड़ी भारी शङ्ख ध्वनि होने लगी और रथ नेमि के शब्द के साथ बहुत अधिक रेणु आकाश में छा गई। पृथिवी कांपने लगी ॥६०॥

यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥६१॥

जब कृतवर्मा कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने राजा युधिष्ठिर की सेना की ध्वनि सुनी तो वे कुरुराज दुर्योधन से यह वचन बोले ॥६१॥

इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥६२॥

हे राजन! ये विजयोन्मत्त पाण्डव दौड़े चले आ रहे हैं। अब आप हमको आज्ञा दें—हम यहां से भाग जाना चाहते हैं॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययाऽस्तंभयत्प्रभो॥६३॥

हे राजन! राजा दुर्योधन ने भी इन वेगशाली पाण्डवों की बात सुनकर इनको जाने की आज्ञा दी और वह आप माया से उस ह्रद के जल को थाम कर उसमें बैठ गया॥६३॥

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः॥६४॥

हे महाराज! राजा दुर्योधन से आज्ञा लेकर कृपाचार्य आदि तीनों महारथी शोक परायण होकर इस स्थान से बहुत दूरी पर जाकर स्थित हो गए॥६४॥

ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति॥६५॥

हे आर्य! इन महारथियों ने दूर मार्ग पर जाकर एक बड़ का वृक्ष देखा। ये थके हुए तो थे ही-राजा दुर्योधन के विषय में चिन्ता करते हुए उस वृक्ष के नीचे बैठ गए॥६५॥

विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवाश्चापि सम्प्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः॥६६॥

उधर महाबली धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन, ह्रद के जल को स्तम्भित करके उसमें सोगए। युद्ध के अभिलाषी पाण्डव भी उसी प्रदेश में आ पहुंचे ॥६६॥

कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति ।
कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यंति कौरवम् ॥६७॥

हे राजन ! ये तीनों महारथी, यही सोच रहे थे, कि न जाने कैसे युद्ध होगा। राजा दुर्योधन की क्या दशा होगी। ये पाण्डव कुरुराज दुर्योधन के साथ न मालूम कैसा व्यवहार करेंगे ॥६७॥

इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान्विमुच्य ते ।
तत्रासाञ्चक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ॥६८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

हे राजन् ये इस प्रकार चिन्ता में निमग्न हुए रथों से उतर पड़े। इन्होंने अश्व खोल दिए। अब ये कृपाचार्य आदि तीनों महारथी वहीं पर बैठ गए ॥६८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदायुद्धपर्व में पाण्डवों के ह्रद पर पहुँचने के वर्णन का तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



इकत्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः ।

ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! जब ये तीनों कृप आदि कौरव महारथी, वहां से चले गए तो जिस ह्रद में राजा दुर्योधन स्थित था, पाण्डव भी उसी ह्रद पर पहुंच गए ॥१॥

आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम् ।

स्तम्भितं धार्त्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् ॥२॥

वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्कुरुनन्दनः ।

हे कुरु श्रेष्ठ ! पाण्डवों ने इस द्वैपायन ह्रद पर पहुंचकर धृत-राष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन द्वारा स्तम्भित किए हुए उस जलाशय को देखा। वहां पर कुरुनन्दन धर्मराज ने वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से यह वचन कहा ॥२॥

पश्येमां धार्त्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम् ॥३॥

विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम् ।

हे कृष्ण ! तुम देखो ! दुर्योधन ने जल में अपनी कैसी माया फैला रखी है। यह जल को बांधकर इस जलाशय में सो रहा है जिस में इसे मनुष्य से कोई भय नहीं है ॥३॥

दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम्

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन्विमोक्ष्यते ।

यह किसी दैवीमाया का आश्रय लेकर धोखे से जल के भीतर प्रविष्ट हो रहा है। यह छल करने में बड़ा ही कुशल है। आज मैं इसे जीवित न छोड़ूंगा ॥४॥

यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत्स्वयम् ॥५॥

तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव ।

हे माधव ! यदि आज इसकी युद्ध में स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी रक्षा करेगा तो भी आज इसको लोग रणभूमि में मृतक ही देखेंगे॥

वासुदेव उवाच—मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत ॥

मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद्युधिष्ठिर ।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भारत ! अब तुम इस मायावी की माया को अपनी माया से नष्ट करो। हे युधिष्ठिर ! मायावी मनुष्य तो माया से ही वश में आता है यह सत्य समझो ॥६॥

क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ॥७॥

जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम् ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम अपनी अनेक क्रिया लगाओ या जल में माया फैलाओ, परन्तु आज इस मायावी दुर्योधन को अवश्य मार डालो ॥७॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ॥८॥
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः ॥९॥
हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः ॥१०॥

इन्द्र ने अनेक छल करके दैत्यदानव मारे, महात्मा वामन ने छल के द्वारा ही बलि दैत्य को बांधा था। अनेक क्रियाओं से भगवान् विष्णु ने, महासुर हिरण्याक्षको मारा। छल से ही हिरण्यकशिपु का वध किया गया। ये दोनों असुर छल पूर्ण क्रिया से ही मारे जा सके। हे राजन्! वृत्रासुर भी छल क्रिया से ही मारा जा सकता था ॥८-१०॥

तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः ॥११॥

हे राजसत्तम! पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न, रावण नामक राक्षस रामचन्द्रजी ने सेना और परिवार सहित किसी ढङ्ग से ही मार गिराया था ॥११॥

क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम।
क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन्पुरातनौ १२॥
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।

तुम भी क्रिया के साथ किसी उपाय का अवलम्बन करके पराक्रम कर दिखाओ। हे राजन ! मैंने भी बड़ी क्रिया और ढङ्ग से पुराने महा दैत्य वीर्यवान् तारकासुर और विप्रचित्ति मारे थे ॥

वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो ॥१३॥
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ ।

हे विभो ! वातापी, इल्वल, त्रिशिरा, सुन्द, उपसुन्द, आदि असुर भी, एक विशेष क्रिया से ही मारे जा सके थे ॥१३॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो ॥१४॥
क्रिया बलवती राजन् नान्यत्किंचिद्युधिष्ठिर ।

हे प्रभो ! अपनी चतुराई से ही इन्द्र स्वर्ग का राज्य भोगता है हे राजन् ! युधिष्ठिर ! संसार में सब से अधिक बलवती क्रिया है अन्य कुछ भी नहीं है ॥१४॥

दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा ॥१५॥
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात्समाचर ।

दैत्य, दानव, राक्षस और राजा लोग, विशेष २ क्रियाओं से ही मारे गए हैं, इससे तुम को भी बुद्धिमत्ता का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥१५॥

सञ्जय उवाच— इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः ॥
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम् ।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत ॥१७॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! जब वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने इतना कहा—तो भरतराजगण, कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर ने, हंसते २ जल स्थित तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन से कहा ॥१६-१७॥

सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया ।
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशाम्पते ॥१८॥

हे सुयोधन ! तुमने जल में शयन करने का यह क्या ढोङ्ग रचा है। हे विशाम्पते ! तुमने सारे क्षत्रियों और अपने कुल तक का नाश कर दिया ॥१८॥

जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वांछन्जीवितमात्मनः ।
उत्तिष्ठ राजन्युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन ॥१९॥

हे सुयोधन ! आज तुम अपना जीवन बचाने को जलाशय में आ घुसे हो। हे राजन ! उठो और हमसे आकर युद्ध करो ॥

स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः ।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः ॥

हे नर श्रेष्ठ ! तुम्हारा वह दर्प और अभिमान आज कहां चला गया जो तुम जल को स्तम्भित करके भयके कारण इसमें आ पड़े हो ॥२०॥

सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि ।
व्यर्थं तद्भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः ॥२१॥

सारे मनुष्य वीरों की सभाओं में तुम्हें शूरवीर बताया करते हैं। आज जब तुम छुप कर जल में आ घुसे-तो शौर्य व्यर्थ ही समझना चाहिए ॥२१॥

उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः ।
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर ॥२२॥

हे राजन्! उठो और युद्ध करो, तुम तो कुलोत्पन्न क्षत्रिय हो इस पर भी तुम्हारा जन्म सर्वश्रेष्ठ कुरु वंश में हुआ है। अब तुम अपने कुल और जन्म की उत्तमता का तो स्मरण करो ॥२२॥

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसन् जन्म चात्मनः ।
युद्धाद्भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि ॥२३॥

तुम तो अपने जन्म को कुरुवंश में बताकर अपना गौरव बताया करते थे। आज युद्ध से डर कर और जल में प्रविष्ट होकर कैसे स्थित हो रहे हो ॥२३॥

अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन्पलायनम् ॥२४॥

युद्ध नहीं करना या युद्ध के लिए डटे नहीं रहना, सनातन धर्म नहीं है। हे राजन! युद्ध से भागना तो अनार्य सेवित, स्वर्ग से गिराने वाला मार्ग है ॥२४॥

कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः ।
इमान्निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा ॥

सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान्बान्धवांस्तथा ।
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि साम्प्रतम् ॥२६॥

हे राजन् ! तुम अभी तक युद्ध का पार पाकर विजयी नहीं हुए हो फिर कैसे जीवन धारण करना चाहते हो। तुम इन पुत्र, भ्राता पिता, सम्बन्धी वयस्य, मातुल, बान्धव आदि क्षत्रिय वीरों को नष्ट करवा कर कैसे अभी तक प्राण धारण किए बैठे हो ॥२५-२६॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत ।
शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः ॥२७॥
न हि शूराः पलायन्ते शत्रून्दृष्ट्वा कथञ्चन ।
ब्रूहि वा त्वं यया धृत्या शूर त्यजसि संगरम् ॥२८॥

हे भारत ! तुम तो शूरवीर होने का अभिमान करते थे, वास्तव में शूरवीर नहीं थे। हे दुर्बुद्धे ! तुम कहा करते थे, कि मैं तो शूर हूँ-और यह सब लोग सुनते थे। शूरवीर शत्रुओं को देखकर कभी भागा नहीं करते। हे शूर ! यह तो बताओ कि तुम किस विचार से रण को छोड़ आए हो ॥२७-२८॥

स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः ।
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातृंश्चैव सुयोधन ॥२९॥

हे सुयोधन ! अब तुम उठो और अपना भय छोड़ कर युद्ध करो। तुमने अपनी सारी सेना और भ्राता कटवा डाले हैं ॥२९॥

नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया ।
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन ॥३०॥

हे सुयोधन ! अब जो धर्मानुसार क्षत्रिय धर्म का अवलम्बन करना चाहते हो-तो तुम जैसे योद्धा को अपने जीवन में मोह नहीं करना चाहिए ॥३०॥

यत्तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम् ।
अमर्त्य इव संमोहात्त्वमात्मानं न बुद्धवान् ॥३१॥

तुमने महारथी कर्ण, और सुवल पुत्र शकुनि का आश्रय लेकर अज्ञान से अपने को मनुष्यों से अधिक समझ लिया और अपने वास्तविक स्वरूप का तुम्हें ज्ञान नहीं रहा ॥३१॥

तत्पापं सुमहत्कृत्वा प्रतियुध्यस्व भारत ।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद्रोचयेत पलायनम् ॥३२॥

हे भारत ! तुमने इस प्रकार बहुत बड़ा पाप कर डाला है, अब तो तुम्हें युद्ध ही करना चाहिए। तुम जैसे बलवान् योद्धा को कायरता से भाग नहीं जाना चाहिए ॥३२॥

क्व ते तत्पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन ।
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत् ॥

क्व ते कृतास्त्रता याता किं च शेषे जलाशये ।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत ॥३४॥

हे सुयोधन ! तुम्हारा वह पुरुषार्थ और मान कहां चलागया कहां तुम्हारी पराक्रम शीलताकारी और कहां तुम्हारी वे गर्जना चली गई, तुम्हारी अस्त्र कुशलता कहां । आज तुम कैसे इस जलाशय में सोरहे हो । हे भारत ! अब तुम उठो और क्षत्रिय धर्मानुसार युद्ध करो ॥३३-३४॥

अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत ॥३५॥

हे भारत ! आज या तो तू हमको मार कर फिर से इस पृथिवी का शासन कर या स्वयं हमसे मारा जाकर सदा के लिए रणभूमि में शयन कर जा ॥३५॥

एष ते परमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मनः ।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ ॥३६॥

हे महारथी ! तुम तो महावीर हो इससे तुम्हारा परमधर्म विधाता ने यही बनाया है । अब तुम उसका ठीक तरह से निर्वाह करो और फिर निष्कण्टक राजा बन जाओ ॥३६॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता ।
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत् ॥३७॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब बुद्धिमान् धर्मराज ने इतना कहा—तो जल में स्थित तुम्हारा पुत्र दुर्योधन यह वचन कहने लगा ॥३७॥

दुर्योधन उवाच—नैतच्चित्रं महाराज यद्भीः प्राणिनमाविशेत् ।

न च प्राणभयाद्भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत ॥३८॥

दुर्योधन बोला—हे महाराज ! यह कोई विचित्र बात नहीं है, जो प्राणी के हृदय में भय का सञ्चार होजाता है। हे भारत ! परन्तु मैं प्राणों के भय-से रण छोड़कर नहीं आया हूँ ॥३८॥

अरथश्चानिषंगी च निहतः पार्ष्णिसारथिः ।

एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम् ॥३९॥

अब न तो मेरे पास रथ है न तूणीर ही है। मेरे पार्ष्णि रक्षक और सारथि मारे जाचुके। अब मैं अकेला सेना रहित रह गया हूँ-इससे कुछ थकान उतारने को यहां चला आया हूँ ॥३९॥

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद्विशाम्पते ।

इदमंभः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात्त्विदमनुष्ठितम् ॥४०॥

हे विशाम्पते ! मैंने प्राणों के मोह भय या विषाद से इस जलाशय का आश्रय नहीं लिया है। मैंने तो निद्राश्रम के कारण यह सब कुछ किया है ॥४०॥

त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव ।

अहमुत्थाय वः सर्वान्प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥४१॥

हे कौन्तेय ! तुम लोग धैर्य रखो अपने साथियों को समझा दो मैं निद्रा से उठकर तुम सबसे रण में फिर युद्ध मचाऊंगा ॥४१॥

युधिष्ठिर उवाच—आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरंत्वां मृगयामहे।

तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥४२॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे राजन्! हम तो सब आश्वासन प्राप्त किए हुए हैं तुमको बहुत देर से खोज रहे हैं। हे सुयोधन ! तुम अब उठ आओ और हमारे साथ युद्ध करो॥४२॥

हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि।

निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥४३॥

अब तुम पाण्डवों को मार कर या तो इस विशाल राज्य के स्वामी बन जाओ या रण में हमसे नष्ट होकर वीरलोक प्राप्त करो॥

दुर्योधन उवाच—यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन।

त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर ॥४४॥

दुर्योधन ने कहा—हे कुरुनन्दन! जनेश्वर! जिनके लिए मैं इस कुरुराज्य की इच्छा करता था, वे सब मेरे भ्रात' मारे जा चुके ॥४४॥

क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।

न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम् ॥४५॥

इस पृथिवी के रत्न क्षीण हो चुके। उत्तम २ क्षत्रिय वीर मारे गए। अब मैं विधवा स्त्री की तरह स्थित इस पृथिवी का भोग करना नहीं चाहता हूँ ॥४५॥

अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर ।

भंक्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ ॥४६॥

हे भरतर्षभ युधिष्ठिर ! परन्तु मेरे मनमें अभी तक यह वाञ्छा विद्यमान है कि मैं पाञ्चाल और पाण्डवों का उत्साह भंग करके तुमको जीतलूं ॥४३॥

न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित् ।

द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे ॥४७॥

अब यद्यपि युद्ध से मुझे कोई भी प्रयोजन नही रह गया है क्योंकि द्रोण, कर्ण और भीष्म पितामह शान्त होकर नष्ट हो चुके ॥४७॥

अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव ।

असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत्प्रशासितुम् ॥४८॥

हे राजन् ! अब कोरी पृथिवी को तुम सम्हालो । अपने साथियों के विना कौन योग्य राजा इस पृथिवी का शासन करना चाहेगा ॥४८॥

सुहृदस्तादृशान्हित्वा पुत्रान्भ्रातृन्पितृनपि ।

भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥४९॥

अच्छे अच्छे सुहृदों से वियुक्त होकर पुत्र भ्राता और पिताओं केमारे जाने पर एवं तुम्हारे राज्य छीन लेने पर मुझ जैसा मनस्वी वीर कैसे जीने की इच्छा कर सकता है ॥४९॥

अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः ।

रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥५०॥

हे भारत ! यदि मैं विजयी भी होगया-तो भी राज्योपभोग नहीं करूंगा। मृगचर्म धारण करके वन में चला जाऊंगा। जब मेरा परिवार ही मारा गया-तो अब मुझे राज्य भोग में लालसा नहीं है ॥५०॥

हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा ।

एषा ते पृथिवी राजन् भुंक्ष्वैनां विगतज्वरः ॥५१॥

हे राजन ! इस पृथिवी के लिए मेरे बहुत से बान्धव मारे गए, उत्तम २ अश्व और हाथी भी समाप्त होगए। अब यह शून्य पृथिवी तुम्हारे अधीन है, तुम निश्चिन्त होकर इसका उपभोग करो॥

वनमेव गमिष्यामि वसानो मृगचर्मणी ।

न हि मे निर्जनस्यास्ति जीवितेऽद्य स्पृहा विभो ॥५२॥

मैं तो मृग-चर्म धारण करके वन में चला जाऊंगा। अब परिवार विहीन होकर मुझे राज्योपभोग से जीवन बिताने की इच्छा नहीं है ॥५२॥

गच्छ त्वं भुंक्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम् ।

हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम् ॥५३॥

हे राजेन्द्र ! अब तुम जाओ और ऐश्वर्यशाली वीरों से रहित इस पृथिवी का उपभोग करो। इसके उत्तम २ योद्धा

रत्न समाप्त हो चुके। अब तुम स्वल्प ऐश्वर्य युक्त होकर सुख से इसपर विचरण करो ॥५३॥

सञ्जय उवाच—दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः।

श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः ॥५४॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! जब महायशस्वी धर्मराज ने, जलस्थित तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन का यह करुणापूर्ण वार्तालाप सुना तो वे इस प्रकार वचन बोले ॥५४॥

युधिष्ठिर उवाच—आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः

नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव ॥५५॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे तात! अब तुम इस करुणा पूर्ण वचनों को जल में स्थित होकर न कहो। मेरे मन में पक्षी को फैंके हुए दाने के तुल्य इस पृथिवी के भोगने की इच्छा नहीं है ॥५५॥

यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन।

नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ॥५६॥

हे सुयोधन! यदि तू इस पृथिवी के दान करने में समर्थ भी होवे तो भी तुमसे प्रदान की हुई इस पृथिवी के उपभोग की मैं इच्छा नहीं करता हूं ॥५६॥

अधर्मेण न गृह्णीयास्त्वया दत्तां महीमिमाम्।

न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः ॥५७॥

हे राजन ! यदि तुम इस पृथिवी का दान करो तो मैं अधर्म के कारण इसको ग्रहण नहीं करूंगा, क्योंकि क्षत्रिय को कभी दान लेने का अधिकार नहीं है ।।५७।।

त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम् ।

त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्ताऽस्मि वसुधामिमाम् ।।

मैं तो तुमसे प्रदान की हुई इस पृथिवी को लेना ही नहीं चाहता हूं। हां ? जो तुमको युद्ध में मैंने जीत लिया-तो फिर मैं इस पृथिवी के भोगने का अधिकारी हूँ ।।५८।।

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि ।

त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि ।।५६।।

धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः ।

हे राजन ! आज तो तुम इस पृथिवी के देने में असमर्थ हो। जब तुम इसके देने में समर्थ थे, तब तुमने क्यों नहीं इस को प्रदान किया। हमने अपने कुल के विनाश को बचाने के निमित्त तुमसे धर्मपूर्वक अपने भाग को याचना भी की थी ।।५६।।

वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम् ।।६०।।

किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः ।

हे राजन् ! महाबलवान् श्रीकृष्ण को भी तुमने पृथिवी देने को निषेध कर दिया। अब तुम्हारे पास क्या है, यह तुम्हारे चित्त का उन्माद है ।।६०।।

अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम् ॥६१॥
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन।
आच्छेत्तं वा बलाद्राजन् स कथं दातुमिच्छसि ६२॥
मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम्।

जब राजा पकड़ लिया जाता है तब उसका पृथिवी देना क्या अर्थ रखता है। हे कौरव नन्दन! अब तो तुम्हें इस भूमि के देने या लेने की शक्ति ही नहीं है। हे राजन्! फिर तुम कैसे देने को उद्यत होरहे हो, अब तुम संग्राम में मुझे जीत कर इस भूमि की पालना करो ॥६१-६२॥

सूच्यग्रेणापि यद्भूमेरपि भिद्येत भारत ॥६३॥
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान्।

हे भारत! आप तो प्रथम सूची के अग्र भाग से जितनी भूमि जीती जा सके उतनी भी मुझे देने को तय्यार नही थे ॥६३॥

स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते ॥६४॥
सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम्।

हे विशाम्पते! अब तुम सारी ही पृथिवी देने को कैसे तय्यार होगए प्रथम तो सूची के अग्र भाग की बराबर भूमि भी नहीं दी गई और अब सारी भूमि कैसे छोड़ने लगे ॥६४॥

एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ॥६५॥
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धराम्।

तुमने इतने बड़े ऐश्वर्यशाली होकर सारी पृथिवी का शासन किया, उसी पृथिवी को शत्रु को देने को कौन मूर्ख उद्यत हो सकता है ॥६५॥

त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुध्यसे ॥६६॥
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेन विमोक्ष्यसे ।

तुम तो इस समय बहुत ही घबरा गए हो, इससे कुछ भी ज्ञान नहीं कर पाते हो। और दूसरी ओर प्राणों तक से वञ्चित होने जारहे हो ॥६६॥

अस्मान्वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥६७॥
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान् ।

अब तुम हमको जीत कर इस पृथिवी का शासन करो या हम लोगों द्वारा मारे जाकर सर्व श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त करो ॥६७॥

आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम् ॥६८॥
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति।

हे राजन्! मेरे और तेरे हम दोनों के जीवित रहने पर सारे प्राणियों को यह संशय हो रहेगा, कि हममें से विजय किसकी हुई है ॥६८॥

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्तते ॥६९॥
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः ।

हे दुर्बुद्धे ! अब तो तेरा जीवन मेरे अधिकार में है मैं तो अपनी इच्छा पर जीवित हूँ, परन्तु तू अपनी इच्छा से जीवित रहने में समर्थ नहीं है ॥६९॥

दहने हि कृतो यत्नस्त्वयाऽस्मासु विशेषतः ॥७०॥
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः ।
त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च ॥७१॥
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च ।
एतस्मात्कारणात्पाप जीवितं ते न विद्यते ॥७२॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति ।

हे राजन् ! तूने हमारे जला देने का विशेप रूप से प्रयत्न किया। सर्प, विष, जल में डुबोना आदि बहुत से कुकर्म किए फिर अन्त में राज्य का अपहरण करके तुमने हमको बहुत ही अपमानित किया। बड़े अप्रिय वचन कहे और द्रौपदी के बालों का अपकर्षण किया। हे पापी ! इनही कारणों से अब तुम्हें जीवित नहीं छोड़ा जा सकता, उठो २ उठो ? युद्ध करो अब तो युद्ध से ही तुम्हारा कल्याण होगा ॥७०-७२॥

एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ॥
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप ॥७३॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यांतर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः

हे जनाधिप ! वहां इस प्रकार की विजय युक्त अनेक प्रकार की बातें वे वीर करने लगे ॥७३॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदा पर्व में सुयोधन और युधिष्ठिर के सम्वाद का इकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

बत्तीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—एवं सन्तर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः।
प्रकृत्या मन्युमान्वीरः कथमासीत्परन्तपः ॥१॥
न हि सन्तर्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत् ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब इस प्रकार शत्रुतापी स्वभाव से ही क्रोध में भर जाने वाले मेरे पुत्र राजा दुर्योधन से धर्मराज ने कहा तो उसकी क्या दशा हुई। उसने तो ऐसी फटकार कभी पूर्वकाल में सुनी नहीं थी। सारा संसार इसे चक्रवर्ती राजा मानता था इससे इस की बड़ी प्रतिष्ठा थी ॥१-२॥

यस्यातपत्रच्छायाऽपि स्वका भानोस्तथा प्रभा।
खेदायैवाभिमानित्वात्सहेत्सैवं कथं गिरः ॥३॥

इसके छत्र की कान्ति भी सूर्य की प्रभा सी चमकती थी बड़ा अभिमानी होने के कारण यह फटकार तो इसके बड़े खेद का कारण बनी होगी। इसने ऐसी वाणी का सहन कैसे किया ॥३॥

इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम्।
प्रसादाद्ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव सञ्जय ॥४॥

हे सञ्जय! यह तो तुम्हारे सामने की बात है, कि म्लेच्छ और वन पालक राजाओं के सहित यह सारी पृथिवी राजा दुर्योधन के अनुग्रह से ही शान्ति में थी ॥४॥

स तथा तर्जमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ॥५॥
स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः।
किमब्रवीत्पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥६॥

हे सञ्जय! जब पाण्डु पुत्रों ने दुर्योधन को विशेष रीति से फटकारा था, यह अपने भृत्यों से विहीन होचुका, और निर्जन वन में शत्रुओं से अच्छी तरह घिरा था, तो फिर इसने इस समय विजयोन्मत्तता से कही गई पाण्डवों को कटु वाणी सुनकर उनसे क्या कहा—मुझे यह बताओ ॥५-६॥

सञ्जय उवाच—तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ॥७॥
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः।
दीर्घमुष्णं च निश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः ॥८॥

सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः ।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥९॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! अपने भाइयों के सहित राजा युधिष्ठिर ने जल में स्थित तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को जब इस तरह ललकारा—तो विषम स्थिति में पहुंचे हुए कुरुराज ने इन कटु वचनों को सुनकर जल में ही लम्बी सांस ली । इसने पानी में ही अपने हाथ बार २ मले, और फिर युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर धर्मराज से इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥७-९॥

यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः ।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥१०॥
आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः ।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥११॥

हे पार्थो ! तुम तो अपने सुहृद रथी और वाहनों के साथ तय्यार होरहे हो और मैं अकेला थका हुआ रथ तथा अन्य वाहनों से हीन हूं। तुम अपने २ रथों में बैठे हुए बहुत से शस्त्रों से सुसज्जित हो और मैं अकेला पैदल हूँ। इस दशा में विना शस्त्र तुमसे कैसे युद्ध कर सकता हूं ॥१०-११॥

एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर ।
नह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि ॥१२॥
विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः ॥१३॥

हे युधिष्ठिर ! तुम एक २ पाण्डव मुझसे आकर निपटते जाओ अकेले वीर के साथ बहुत से योद्धाओं का लड़ना न्याय नहीं है। इसपर मैं कवच शस्त्र हीन थका हुआ आपद्ग्रस्त हूँ। मेरा शरीर क्षत विक्षत होरहा है और मेरे वाहन और वीर सारे समाप्त हो चुके हैं ॥१२-१३॥

न मे त्वत्तो भयं राजन्न च पार्थाद्वृकोदरात् ।
फाल्गुनाद्वासुदेवाद्वा पञ्चालेभ्योऽथ वा पुनः ॥१४॥
यमाभ्यां युयुधानाद्वा ये चान्ये तव सैनिकाः ।
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः ॥१५॥

हे राजन ! तुम युधिष्ठिर कुन्ती पुत्र भीमसेन, अर्जुन, वसुदेव पुत्र कृष्ण ! पञ्चाल वीर नकुल सहदेव, सात्यकि तथा अन्य वीरों से मुझे कुछ भय नहीं है। जब मैं क्रोध में भर कर युद्ध में स्थित होऊंगा-तो अकेला ही तुम सबको पर्याप्त हूं ॥१४-१५॥

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप ।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन्प्रब्रवीम्यहम् ॥१६॥
अहमुत्थाय सर्वान्वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे ।
अनुगम्यागतान्सर्वानृतून्संवत्सरो यथा ॥१७॥

हे जनाधिप ! मनुष्यों की कीर्ति धर्म से होती है। मैं धर्म और कीर्ति का ध्यान रखता हुआ यह कहता हूं, कि इस रण में उठकर यहां उपस्थित तुम सबसे मैं युद्ध करूंगा और ऋतुओं का संवत्सर की भांति तुम्हारा अतिक्रमण कर जाऊंगा ॥१६-१७॥

अद्य: व: सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन् ।
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये ॥१८॥
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरी भवत पाण्डवाः ।

हे पाण्डवों ! आज तुम रथ और अश्वों से सुसज्जित हो और मैं शस्त्र और रथ आदि से रहित हूँ, तो भी रात्रि के व्यतीत होने पर सारे नक्षत्रों को सूर्य की भांति मैं तुमको अपने तेज से फीका करदूंगा, तुम अब ज़रा खड़े रहो ॥१८॥

अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ॥१९
वाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः ।
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ॥२०॥
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च ।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ॥२१॥
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च ।
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ॥२२॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः ।

हे भरतश्रेष्ठ ! आज मैं भाइयों सहित तुमको मार कर यशस्वी क्षत्रिय वीर, वाल्हीक, द्रोण, भीष्म, महावीर कर्ण, राजा जयद्रथ, शूरवीर भगदत्त, मद्रराज शल्य, भूरिश्रवा, सुबल पुत्र शकुनि, शकुनि पुत्र उलूक तथा अन्य मित्र सुहृद और बन्धु बान्धवों से उऋण हो जाऊंगा। हे राजेन्द्र ! इतना कहकर राजा दुर्योधन चुप होगया ॥१९-२२॥

युधिष्ठिर उवाच—दिष्टया त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन
दिष्टया ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज ।
दिष्टया शूरोऽसि कौरव्य दिष्टया जानासि सङ्गरम् ॥
यस्त्वमेको हि नः सर्वान्संगरे योद्धुमिच्छसि ।

युधिष्ठिर कहने लगे—हे महाभुजधारी सुयोधन ! यह बड़े आनन्द की बात है, कि तुम क्षत्रिय धर्म को जानते हो और तुम अभी युद्ध के लिए सन्नद्ध हो । हे कुरुराज ! तुम शूरवीर होकर युद्ध करना जानते हो-यह भी हर्ष की बात है, इसी से तो अकेले भी होकर हम सबसे युद्ध के लिए उत्साह कररहे हो ॥२३-२४॥

एक एकेन सङ्गम्य यत्ते संमतमायुधम् ॥२५॥
तत्त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः ।

हे दुर्योधन ! अब तुमको जिस शस्त्र की आवश्यकता हो-उस को लेकर एक २ पाण्डव से युद्ध करलो-हम अन्य सब केवल दर्शक रूप में खड़े रहेंगे ॥२५॥

स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ॥२६॥
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।

हे वीर ! तुम भी चाहते हो और हम भी यह उचित ही समझते हैं । इसके सिवा यह और कह देना चाहते हैं, कि यदि तुमने हम पाण्डवों में एक को भी मार लिया-तो सारा राज्य तुम्हारा ही होगा और यदि मारे गए, तो स्वर्ग पहुंच ही जाओगे ॥

दुर्योधन उवाच—एकश्चेद्योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्

आयुधानामियं चापि वृता त्वत्सम्मते गदा ।

दुर्योधन ने कहा—हे युधिष्ठिर ! यदि इस युद्ध में तुमने एक का एक के साथ युद्ध करना स्वीकार कर लिया-तो अपना 'वीर भेजो। शस्त्रों में तो मेरे पास मेरी गदा विद्यमान है। यदि तुम को स्वीकार हो-तो गदा युद्ध होने दो ॥२७॥

हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते ॥२८॥

पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह ।

अब तुम में से जो मेरे सन्मुख युद्ध करने में समर्थ हो-वही निकल आवे। वह पैदल रहकर गदा द्वारा मेरे साथ युद्ध करने को तय्यार होना चाहिए ॥२८॥

वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे ॥२९॥

इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत् ।

आज तक बहुत से विचित्र रथ युद्ध होचुके । अब तो यह अत्यन्त अद्भुत गदा युद्ध ही होना चाहिए ॥२९।

अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः ३०॥

युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव ।

गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम् ॥३१॥

पञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः ।

न हि मे सम्भ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर ॥३२॥

हे युधिष्ठिर ! शूरवीर मनुष्य, युद्ध में शस्त्र भी बदलना चाहते हैं, वे भी तुम्हारे वीर बदल सकेंगे, योद्धाओं का भी परिवर्तन तुम्हारी अनुमति से हो सकेगा। हे महाबाहो ! परन्तु मैं तो अकेला ही केवल एक लेकर तुम्हारे भाइयों के साथ तुमको जीतने का साहस करता हूँ। पश्चात सृञ्जय, तथा अन्य सैनिकों को भी मैं जीतने की शक्ति रखता हूँ। हे राजन ! मुझे इन्द्र से भी कभी भय नहीं हो सकता है ॥३०-३२॥

युधिष्ठिर उवाच—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन।

एक एकेन सङ्गम्य संयुगे गदया बली ॥३३॥

पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः।

अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोऽपि तवाश्रयः ॥३४॥

युधिष्ठिर बोले—हे गान्धारी पुत्र ! सुयोधन उठो उठो और तुम मुझसे युद्ध करो। एक २ बलवान इस युद्ध में अपनी २ गदा लेकर भिड़ने को सन्नद्ध हैं। अब तुम अपने पुरुषार्थ का अवलम्बन करो। आज तुम्हारी सहायता यदि इन्द्र भी करेगा-तो भी तुम्हारे प्राण नहीं बच सकेंगे ॥३३-३४॥

सञ्जय उवाच—एतत्स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः।

सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन् ॥३५॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् जब धर्मराज ने इतना कहा—तो तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन उबल उठा। बिल में स्थित सर्प की तरह वह जल में ही क्रोध के सांस मारने लगा ॥३५॥

तथाऽसौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः ।
वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव ॥३६॥

हे राजन ! धर्मराज की वाणीरूपी चाबुक से बार २ पीड़ित हुए कुरुराज ने चाबुक को चञ्चल अश्व की तरह धर्मराज के वचन नहीं सही जा सके ॥३६॥

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद्गदामादाय वीर्यवान् ।
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनांगदभूषणाम् ॥३७॥
अन्तर्जलात्समुत्तस्थौ नागेन्द्र इव निःश्वसन् ।

इस महावीर्यवान दुर्योधन ने लोह निर्मित सुवर्णके अङ्गदों से विभूषित गदा उठाई और वेग के साथ ह्रदके जल को विक्षोभित कर दिया। वह सर्प की तरह श्वास मारता हुआ जल के भीतर निकल आया ॥३७॥

स भित्त्वास्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वाऽऽयसीं गदाम् ।
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन्रश्मिवानिव ।

इसने स्तम्भित जल का भेदन किया और लोह निर्मित गदा कन्धे पर उठाई। हे राजन् ! अब तुम्हारा पुत्र सुयोधन, चमकते हुए सूर्य के सदृश जल से बाहर निकल खड़ा हुआ ॥३८॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम् ॥३९॥
गदां परामृशद्धीमान्धार्त्तराष्ट्रो महाबलः ।

इसके अनन्तर आदरार्थ छींके पर रखी रहने वाली लोह की भारी सुवर्णोज्ज्वल गदा को महाबली, गदायुद्ध कुशल धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन, घुमाने लगा ॥३९॥

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ॥४०॥
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ।
सगदो भारतो भाति प्रतपन्भास्करो यथा ॥४१॥

गदा हाथ में लिए हुए दुर्योधन शिखर धारी पर्वत और प्रजा पर संक्रुद्ध हुए शूलपाणि शिव की भांति दिखाई दे रहा था । गदा धारण किए हुए राजा दुर्योधन चमकते हुए सूर्य की भांति दिखाई दिया ॥४०-४१॥

तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिन्दमम् ।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥४२॥

महाबाहु, गदाधारी, अरिमर्दन, जल से निकले कुरुराज को जब लोगों ने दण्ड धारी यमराज सा देखा ॥४२॥

वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् ।
ददृशुः सर्वपञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ॥४३॥

हे जनाधिप ! सारे पञ्चालों ने अब वज्रधारी इन्द्र, और शूलधारी शिव की भांति तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को देखा ॥४२

तमुत्तीर्णं तु सम्प्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः ।
पाञ्चालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान्ददुः ॥

जल से बाहर निकले हुए राजा दुर्योधन को देखकर सब ओर पञ्चाल और पाण्डव, प्रफुल्लित हो उठे, और परस्पर ताली बजाने लगे ॥४४॥

अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥४५॥

राजा दुर्योधन ने इनका यह नीचता पूर्ण उपहास समझा। उसने क्रोध से अपनी आंख इस तरह बदली जैसे पाण्डवों को दग्ध कर देगा ॥४५॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सन्दष्टदशनच्छदः ।
प्रत्युवाच ततस्तान्वै पाण्डवान्सहकेशवान् ॥४६॥

अब राजा दुर्योधन अपनी भ्रुकुटी पर त्रिबली डाल कर दांत और ओष्ट चवाने लगा। इसके बाद इसने कृष्ण सहित पाण्डवों से यह वचन कहा ॥४६॥

दुर्योधन उवाच—अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम् ॥४७॥

दुर्योधन बोले—हे पाण्डवों! तुम इस नीचता पूर्ण उपहास का अभी फल भोगे लेते हो। अब तुम मारे जाकर पञ्चालों के सहित यमपुरी जाने वाले हो ॥४७॥

सञ्जय उवाच—उत्थितश्च जलात्तस्मात्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥४८॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन ! उस जल से निकल कर गदा हाथ में लिए हुए व्रणस्थित रक्त से युक्त हुआ तुम्हारा पुत्र दुर्योधन, वहां खड़ा होगया ॥४८॥

तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम् ।
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥४९॥

राजा दुर्योधन, रक्त में सना हुआ पानी से भीगा हुआ था। इस समय इसका शरीर झरने बहाने वाले पर्वत की भांति दिखाई देता था ॥४९॥

तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः ।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं किङ्करोद्यतपाणिनम् ॥५०॥
समेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थान्गदया युधिवीर्यवान् ॥५१॥

इस समय पाण्डवों ने गदा उठाए हुए वीर दुर्योधन को क्रोधातुर तथा कुछ करने को उद्यत हाथ उठाए हुए यमराज के समान देखा, पूर्णवीर्यवान् दुर्योधन ने मेघ के समान गर्जना की और फिर सांड की तरह डाटने लगा। उसने युद्ध में गदा फिराते हुए सारे पाण्डवों को युद्ध के लिए ललकारा ॥५१॥

दुर्योधन उवाच—एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि ॥५२॥

दुर्योधन बोले—हे युधिष्ठिर ! अब तुम एक २ वीर मुझ से निबटते चलो। अकेले वीर के साथ बहुत योद्धाओं का युद्ध करना अन्याय माना गया है ॥५२॥

न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥५३॥

मेरा कवच नष्ट होचुका और मैं थकान के कारण जल में स्थित था। मेरा शरीर क्षतविक्षत हो रहा है और, सैनिक तथा वाहन नष्ट होचुके ॥५३॥

अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह।
युक्तं त्वयुक्तमित्येतद्वेत्सि त्वं चैव सर्वदा ॥५४॥

यह ठीक है, कि मुझे सबसे युद्ध करना चाहिए परन्तु किस तरह युद्ध करना उचित है-किस तरह अनुचित है, इसे आप खूब समझते हैं ॥५४॥

युधिष्ठिर उवाच—मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन।
यदाऽभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः ॥५५॥

युधिष्ठिर बोले—हे सुयोधन ! तुम्हारी तो ऐसी बुद्धि नहीं है यदि ऐसा मानते हो-तो कैसे तुमने बहुत से महारथियों ने मिलकर अभिमन्यु को मार गिराया ॥५५॥

क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम्।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथागतम् ॥५६॥

तुमने क्षत्रिय धर्म को अत्यन्त क्रूर निर्दयता पूर्ण और निरपेक्ष (बे लिहाज) बना दिया। यदि यह बात नहीं थी, तो फिर शस्त्रहीन अभिमन्यु को तुमने कैसे मार गिराया ॥५६॥

सर्वे भवंतो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।
न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा ॥५७॥

तुम लोग सारे ही तो युद्ध धर्मों के जानने वाले, रण में शरीर छोड़ देने में समर्थ वीर थे। जो मनुष्य न्याय के साथ युद्ध कर करता है, उसको इन्द्रलोक की गति प्राप्त होती है ॥५७॥

यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु ।
तदाऽभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम् ॥५८॥

जब अकेले वीर को, अनेक वीरों को नहीं मारना चाहिए तब बहुत से वीरों द्वारा अभिमन्यु का मार लेना-तुम्हारे मत में कैसे उचित था ॥५८॥

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् ।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति ॥५९॥

हे सुयोधन ! मनुष्य, जब कठिनाई में फंसा होता है, तभी धर्म की ओर देखता है, जब वह किसी अधिकार पर स्थित होता है, तब तो उसे परलोक के द्वार बन्द दिखाई देते हैं ॥५९॥

आमुंच कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च ।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत ॥६०॥

हे भरतवंश श्रेष्ठ! वीर! अब तुम कवच पहनलो और वालों को बाधों इसके सिवा जो शस्त्र तुम्हारे पास नहीं हैं, वे भी लेलो ।।६०।।

इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ।
पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि ।।६१।।
तं हत्वा वैभवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।
ऋते च जीविताद्वीर युद्धे किं कुर्म ते प्रियम् ।।६२।।

हे वीर! फिर मैं तुमको एक अन्य और कामना प्रदान करता हूँ, कि तुम पांचों पाण्डवों में जिससे लड़ना चाहो-लड़ो। यदि तुमने उसको मार लिया-तो तुमको तुम्हारे वैभव प्राप्त हो जावेंगे और यदि तुम मारे गए-तो स्वर्ग प्राप्त करोगे ही। हे वीर! प्राण मोचन के सिवा इस युद्ध में हम आपकी अन्य क्या सेवा करें-उसे बताओ ।।६१-६२।।

सञ्जय उवाच—ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम् ।
विचित्रं च शिरस्त्राणं जांबूनदपरिष्कृतम् ।।६३।।

संजय ने कहा-हे राजन! इसके बाद राजा दुर्योधन ने सुवर्ण का कवच पहना और सुवर्णोज्ज्वल विचित्र शिरस्त्राण अपने शिर पर ओढ़ा ।।६३।।

सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकांचनवर्मभृत् ।
रराज राजन्पुत्रस्ते कांचनः शैलराडिव ।।६४।।

हे राजन् तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, शिरस्त्राण बांधकर और सुन्दर कवच धारण करके सुवर्ण के पर्वत के सदृश चमक उठा ॥६४॥

सन्नद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि ।
अब्रवीत्पाण्डवान्सर्वान्पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥६५॥

हे राजन्! गदा धारण करके तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, सुसज्जित रूप से खड़ा होकर सारे पाण्डवों से कहने लगा ॥६ ॥

भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया ।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥६६॥
अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ ।
योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे ॥६७॥

हे भरतर्षभ! आज गदा लेकर तुम भ्राताओं में से कोई सा भी एक भ्राता मुझ से युद्ध करलो। सहदेव, भीम, नकुल, अर्जुन या तुम युधिष्ठिर कोई भी आजाओ। मैं आज इस युद्ध में तुमसे लड़ूंगा और सब के देखते २ रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करूंगा ॥६६-६७॥

अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् ।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया ॥६८॥

हे पुरुष व्याघ्र! मैं आज अपने वैर का दुर्लभ अन्त सुवर्ण पट्ट से सुशोभित इस गदा द्वारा प्राप्त करूंगा ॥६८॥

गदायुद्धे न मे कश्चित्सदृशोऽस्तीति चिन्तये।

गदया वो हनिष्यामि सवानिव समागतान् ॥६९॥

हे राजन्! गदायुद्ध में मेरे तुल्य कोई नहीं है-यह मुझे निश्चय है। आज तुम सबको मैं गदा से मार कर नष्ट कर डालूँगा ॥६९॥

न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं नान्ये न केचन।

न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः।

अथवा सफलं ह्येतत्करिष्ये भवतः पुरः ॥७०॥

तुम लोग या वे अन्य तथा कोई भी मुझ से गदायुद्ध करने में समर्थ नहीं है, परन्तु अपने अभिमान पूर्ण वचन मनुष्य को स्वयं कहने नहीं चाहियें। जो भी कुछ हो-मैं आज इन हीं अपने वचनों को तुम्हारे सन्मुख सफल किए देता हूँ ॥७०॥

अस्मिन्मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वतद्भविष्यति।

गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह ॥७१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यांतर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

इस मुहूर्त में ये वचन सत्य सिद्ध होवें या मिथ्या सिद्ध हो जावें-परन्तु तुममें से एक वीर गदा उठा लो-जो मेरे साथ युद्ध करना चाहता हो ॥७१॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में सुयोधन युधिष्ठिर सम्वाद का बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—एवं दुर्योधने राजन्गर्जमाने मुहुर्मुहुः।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन्! धर्मराज के वचन सुनकर राजा दुर्योधन बार २ गरजने लगा-यह देखकर श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर पर कुपित होउठे और कहने लगे ॥१॥

यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत्त्वां युधिष्ठिर।
अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा ॥२॥
किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम्।
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति ॥३॥

हे युधिष्ठिर! यदि राजा दुर्योधन तुम्हें, अर्जुन नकुल या सहदेव को गदा युद्ध के लिए आह्वान करले-तो क्या दशा हो—हे राजन्! तुमने यह क्या साहस की बात कह डाली कि तुम हममें से किसी एक को भी यदि युद्ध में मार लोगे-तो कौरवों के राजा बन जाओगे ॥२-३॥

न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे।
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश ॥४॥

आयसे पुरुषे राजन्भीमसेनजिघांसया ।
कथं नाम भवेत्कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ ॥५॥

हे राजन् ! राजा दुर्योधन ने लोह के पुरुष बनाकर तेरह वर्ष तक उनके साथ युद्ध का अभ्यास भीमसेन के वध की इच्छा से किया है। रण में गदा युद्ध के प्रवृत्त होने पर कोई भी दुर्योधन के सन्मुख युद्ध करने को समर्थ नहीं है। इसने तेरह वर्ष तक बहुत बड़ी कसरत की है। हे भरतर्षभ ! इस तरह हमारे कार्य की कैसे सिद्धि हो सकती है ॥४-५॥

साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम ।
नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ॥६॥
ऋते वृकोदरात्पार्थात्स च नातिकृतश्रमः ।
तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ॥७॥
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशांपते ।

हे नृपोत्तम ! तुमने तो अपनी दयालु प्रकृति के कारण यह साहस कर लिया परन्तु मैं रण में किसी अन्य को दुर्योधन की बराबरी का योद्धा नहीं समझता हूँ। हे विशाम्पते ! हां एक भीमसेन दुर्योधन की जोट का है परन्तु उसने अधिक व्यायाम नहीं कर रखा है। आज तुमने फिर पूर्वकाल का सा जुआ छेड़ दिया है, जैसा शकुनि और आप में पूर्वकाल में हुआ था ॥६-७॥

बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः ॥८॥
बलवान्वा कृती वेति कृती राजन्विशिष्यते ।

हे राजन्! भीमसेन बली और शक्ति शाली है, परन्तु राजा दुर्योधन गदा युद्ध के कौशल (दावपेच) को जानने वाला है। बलवान् और कुशल योद्धा में कुशल ही योद्धा सर्वदा विजयी रहता है ॥८॥

सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः ॥९॥
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम् ।

हे राजन्! आज आपने अपने शत्रु को सीधे मार्ग पर खड़ा कर दिया। तुमने अपने को कठिन परिस्थिति में डाल कर हम को भी उलझन में उलझा दिया ॥९॥

को नु सर्वान्विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा ॥१०॥
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद्राज्यमागतम् ।
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम् ॥११॥

ऐसा कौन वीर होगा-जो सारे शत्रुओं को मार कर एक अपने वीर के मारे जाने पर अपना प्राप्त हुआ सारा राज्य वापिस करने को उद्यत हो, कौन एक ऐसा पण (दाव) लगा कर युद्ध करना उत्तम मानेगा ॥१०-११॥

न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधनं रणे ।
गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि ह ॥१२॥

मेरी तो दृष्टि में कोई ऐसा देवता भी दिखाई नहीं देता जो गदा युद्ध में दुर्योधन के जीतने में समर्थ हो सके ॥१२॥

न त्वां भीमो नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः ।
जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः ॥१३॥

आज युद्ध में भीम, नकुल सहदेव, अर्जुन या तुम धर्मराज राजा दुर्योधन को न्याय से जीतने में समर्थ नहीं हो सकते क्योंकि यह गदा युद्ध में बड़ा ही चतुर है ॥१३॥

स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि ।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत ॥१४॥

हे भारत ! फिर तुमने यह कैसे कह दिया, कि अच्छी बात है गदा युद्ध ही होने दो और जिस किसी भी पाण्डव से युद्ध करके किसी एक को मार लो-तो तुमको तुम्हारा राज्य मिल जावेगा ॥१४॥

वृकोदरं समासाद्य संशयो नौ जये हि नः ।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः ॥१५॥
एकं वास्मान्निहत्य त्वं भव राजेति नौ पुनः ।

वृकोदर भीम से भी यदि न्याय पूर्वक युद्ध होगा-तो विजय में संशय ही है, क्योंकि राजा दुर्योधन महाबली और गदा युद्ध की कला में निपुण है। तुमने जो यह कहा, कि हममें से एक को मार कर राज्य के भागी बन जाओ-यह समझ में नहीं आता कि तुमने यह क्या सोचकर कह दिया है ॥१५॥

नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च सन्ततिः ॥
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः ।

पाण्डु और कुन्ती की संतान के भाग्य में राज्य पाना ही नहीं लिखा है। इनको वनवास और भिक्षा मांगने को ही विधाता ने रचा है-ऐसा प्रतीत होता है ॥१६॥

भीमसेन उवाच— मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन ॥
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृश दुर्गमम् ।
अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ॥१८॥

भीमसेन बोले—हे मधुसूदन ! तुम कोई चिन्ता न करो मैं इस वैर के अत्यन्त दुर्गम समुद्र को आज पार कर जाऊंगा मैं आज दुर्योधन को युद्ध में मार लूंगा-इसमें सन्देह न समझो ॥

विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ।
अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ॥१६॥

हे कृष्ण ! अब तो धर्मराज को निश्चय जय होने चली है। हमारी गदा दुर्योधन की गदा से ड्योडी भारी समझो ॥१६॥

न तथा धार्तराष्ट्रस्य माऽकार्षीर्माधव व्यथाम् ।
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे ॥२०॥
भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन्नानाशस्त्रधरान्युधि ॥२१॥
योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम् ।

हे माधव ! तुम चिन्ता न करो-दुर्योधन की गदा इतनी भारी नहीं है। हे जनार्दन ! आज युद्ध में गदा से मैं इससे भिड़ जाना

चाहता हूँ। अब आप सब लोग खड़े २ कौतुक (तमाशा) देखते रहें। हे कृष्ण ! आज मैं अनेक शस्त्र धारी देवों के साथ त्रिलोकी के वीरों से युद्ध कर सकता हूँ, फिर अकेले दुर्योधन की तो गिनती ही क्या है ॥२०-२१॥

सञ्जय उवाच—तथा सम्भाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम्।

हृष्टः सम्पूजयामास वचनं चेदमब्रवीत्।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब भीमसेन ने इतना कहा तो वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण, बड़े प्रसन्न हुए और वे भीमसेन की प्रशंसा करके यह वचन कहने लगे ॥२२॥

त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥२३॥

निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः।

हे महाबाहो ! तुम्हारे आश्रय से तो धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने शत्रुओं को मार गिराया है और अपनी जाज्वल्यमान राज्य लक्ष्मी को प्राप्त किया है। इसमें सन्देह नहीं है ॥२३॥

त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे ॥२४॥

राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातिताः।

कलिङ्गमागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा ॥२५॥

त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन।

हे वृकोदर ! तुमने ही तो रण में सारे धृतराष्ट्र पुत्र मार गिराए तथा बहुत से राजा, राज पुत्र और हाथी मार डाले। हे पाण्डु-

नन्दन मागध, प्राच्य, गान्धार, कुरु आदि क्षत्रिय वीर भी तुम्हारे सन्मुख पहुंच कर ही नष्ट हुए हैं ॥२४-२५॥

हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम् ॥२६॥
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः ।

हे कौन्तेय ! अब तुम इस दुर्योधन को भी मार कर धर्मराज को पृथिवी इन्द्र को विष्णु की भांति समर्पित करो ॥२६॥

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनंक्ष्यति ॥२७॥
त्वमस्य सक्थिनी भंक्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि ।

आज तुम रण में इस पापी दुर्योधन का नाश करदोगे और तुम ही इसकी जंघा की हड्डी तोड़ कर प्रतिज्ञा के पालन करने में समर्थ हो सकोगे ॥२७॥

यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः ॥२८॥
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा ।

हे पार्थ ! तुम धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन से बड़े प्रयत्न के साथ युद्ध करना क्योंकि राजा दुर्योधन, बड़ा बलवान् निपुण और युद्ध दुर्मद है ॥२८॥

ततस्तु सात्यकी राजन्पूजयामास पाण्डवम् ॥२९॥
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः ।
तद्वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन् ॥३०॥

हे राजन ! अब सात्यकि पञ्चाल, धर्मराज आदि पाण्डवों ने भीमसेन की बड़ी प्रशंसा और सब लोगों ने भीमसेन के इस वचन की बड़ी प्रतिष्ठा की ॥२९-३०॥

ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ।
सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥३१॥

इसके बाद अत्यन्त बलशाली भीमसेन ने, सृञ्जयों के साथ स्थित सूर्य के समान देदीप्यमान धर्मराज से यह वचन कहा ॥३१॥

अहमेतेन सङ्गम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे ।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः ॥३२॥

हे राजन ! आज मैं इस संग्राम में दुर्योधन से भिड़ कर युद्ध करूंगा । यह पुरुषाधम दुर्योधन मुझे रण में जीतने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥३२॥

अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम् ।
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ॥३३॥

मेरे हृदय में तो ज्वाला बहुत दिन से धधक रही है, उसे धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन पर इस तरह छोड़ूंगा-जिस तरह अर्जुन ने खाण्डव वन में अग्नि को छोड़ दिया था ॥३३॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ।
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव ॥३४॥

हे धर्मराज ! तुम्हारे हृदय में गड़े हुए बाण को आज मैं गदा द्वारा इस पापी दुर्योधन को मार कर निकाल दूंगा । हे राजन् ! तुम सुखी हो जाओ ॥३४॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ ।
प्राणान् श्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः ॥

हे अनघ ! आज मैं तुम्हारे गले में कीर्तिमयी माला डालूंगा और इसके साथ ही राजा दुर्योधन अपने प्राण, लक्ष्मी और राज्य से हीन हो जावेगा ॥३५॥

राजा य धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम् ।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥३६॥

राजा धृतराष्ट्र मुझ द्वारा अपने पुत्र को जब नष्ट हुआ सुनेगा-तो वह शकुनि की बुद्धि से उत्पन्न अपने दुष्कर्मों का अवश्य स्मरण करेगा ॥३६॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥३७॥

हे राजन् ! इतना कहकर भरतवंश श्रेष्ठ, भीमसेन, ने गदा उठाली और वृत्रासुर को इन्द्र की तरह दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारने लगा ॥३७॥

तदाह्वानममृष्यन्वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान् ।
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥३८॥

हे जनाधिप! तुम्हारे पुत्र अत्यन्त वीर्यवान दुर्योधन इस ललकार को कैसे सह सकता था। वह मदोन्मत्त हाथी पर मदोन्मत्त गजराज को तरह झटपट झपटा ॥३८॥

गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम् ।
ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥३९॥

गदा हाथ में लेकर युद्ध के लिए उपस्थित तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन शृङ्गधारी कैलास पर्वत की भांति सारे पाण्डवों को दिखाई देने लगा ॥३९॥

तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम् ।
वियूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः ॥४०॥

महाबली धृतराष्ट्र पुत्र, दुर्योधन को अपने यूथ से भ्रष्ट हाथी की तरह अकेला देखकर सारे पाण्डव, बड़े ही प्रसन्न हुए ॥४०॥

न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा ।
आसीद्दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे ॥४१॥

राजा दुर्योधन को अब न तो कोई घबराहट थी, और न कोई भय ग्लानि या व्यथा थो। वह तो इस युद्ध में सिंह की तरह आकर उपस्थित होगया ॥४१॥

समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥४२॥

हे राजन् ! शिखर धारी कैलास के समान गदाधारी दुर्योधन को देखकर भीमसेन कहने लगा ॥४२॥

राज्ञाऽपि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत्कृतम् ।
स्मर तद्दुष्कृतं कर्म यद्भूतं वारणावते ॥४३॥

हे दुर्योधन ! राजा धृतराष्ट्र या तुमने जो हमारे साथ अनुचित व्यवहार किया तथा जो दुष्कर्म वारणावत नगर में हुआ उसका जरा स्मरण तो करो ॥४३॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ।
द्यूते यद्विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात् ॥४४॥

तुमने रजस्वला द्रौपदी को सभा के मध्य में अपमानित किया तथा शकुनि की चालबाज़ी से द्यूत में धर्मराज को जीत लिया ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि ।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत्फलम् ॥४५॥

हे दुष्टात्मन् ! दुर्योधन ! तुमने जो अपराध हीन पाण्डवों पर बहुत से अत्याचार किए हैं, अब तुम उनका फल देखो ॥४५॥

त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः ।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ॥४६॥

अरे दुर्मति ! तेरे कुकर्म से ही हम सबके पितामह भरत वंशश्रेष्ठ गङ्गा पुत्र भीष्म, भी आज शर शय्या पर सोरहे हैं ॥४६॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान् ।
वैरस्य चादिकर्ताऽसौ शकुनिर्निहतो रणे ॥४७॥

द्रोण, कर्ण और प्रतापी शल्य भी मारा गया तथा सारे वैर का बीज, शकुनि भी मारा जाकर रणभूमि में लेट रहा है ॥४७॥

भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः ।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः ॥४८॥

तुम्हारे सारे भ्राता पुत्र और सैनिक भी मारे गए एवं युद्ध से नहीं हटने वाले शूरवीर राजा भी नष्ट होचुके ॥४८॥

एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः ।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ॥४९॥

इस प्रकार बहुत से क्षत्रिय वीर और मदोद्धत द्रौपदी के केश खैंचने वाला पापी दुःशासन भी मारा गया ॥४९॥

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः ।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥५०॥

हे दुर्योधन ! अब तू केवल कुलनाशक अकेला नीच पुरुष बचा हुआ है, जिसको मैं आज अपनी गदा से मार गिराऊंगा इसमें संशय न समझना ॥५०॥

अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप ।
राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम् ॥५१॥

हे नृप ! आज मैं तेरे सारे युद्ध के अभिमान को चूर करदूंगा इसी के साथ राज्य की महती आंकाक्षा और पाण्डवों के साथ किए गए अन्यायों का भी अन्त हो जावेगा ॥५१॥

दुर्योधन उवाच—किं कत्थितेन बहुना युद्धयस्वाद्य मया सह

अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ॥५२॥

दुर्योधन कहने लगे—हे वृकोदर ! अधिक डींग मारने से क्या है, अब तुम युद्ध के लिए तय्यार होजाओ । मैं तेरी युद्ध की श्रद्धा को आज नष्ट किए देता हूँ ॥५२॥

किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम् ।

हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥५३॥

हे पापी ! क्या तू मुझे गदा युद्ध में उपस्थित नहीं देख रहा है, जो विशाल गदा पकड़े हुए हिमालय की शिखर की भांति अचल खड़ा है ॥५३॥

गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः ।

न्यायतो युद्धयमानस्य देवेष्वपि पुरन्दरः ॥५४॥

हे पापी ! कौन गदाधारी शत्रु मेरे गदाधारण करलेने पर मुझसे युद्ध कर सकता है। देवों में इन्द्र भी न्याय पूर्वक युद्ध करता हुआ मुझे गदा युद्ध में जीत नहीं सकता ॥५४॥

मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम् ।

दर्शय स्वबलं युद्धे यावत्तत्तेऽद्य विद्यते ॥५५॥

हे भीमसेन ! जल हीन शरद् ऋतु के मेघों की तरह वृथा क्यों गर्ज रहा है। अब तुम अपने उस सारे बल को दिखालो जो तुममें विद्यमान है ॥५५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृञ्जयाः।
सर्वे सम्पूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः ॥५६॥

पाण्डव और सृञ्जय राजा दुर्योधन के इस वचन को सुनकर उसकी बहुत प्रशंसा करने लगे, क्योंकि वे उसको जीत लेना चाहते थे ॥५६॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः।
भूयः संहर्षयामासू राजन्दुर्योधनं नृपम् ॥५७॥

हे राजन ! जिस तरह उन्मत्त हाथी को ताली बजा कर चमका देते हैं, उसी तरह ताली बजाकर राजा दुर्योधन को उत्साहित किया ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि सम्प्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥५८॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि भीमसेनदुर्योधनसंवादे
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

हे राजन ! इस समय यहां हाथी चिघाड़ रहे थे और घोड़े लगातार हिनहिनाते थे। तथा विजयाभिलाषी पाण्डव वीरों के शस्त्र चमक रहे थे ॥५७॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदायुद्ध पर्व में भीम दुर्योधन सम्वाद का तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—तस्मिन्युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे ।

उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु ॥१॥

ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते ।

श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! जब इस दारुण गदायुद्ध का प्रारम्भ होने लगा और महावीर सारे पाण्डव बैठ गए-तो ताल वृक्ष के चिन्ह से अङ्कित ध्वजा धारण किए हुए उस युद्ध में हलधर बलराम आ उपस्थित हुए । इनको किसी प्रकार कहीं अपने दोनों शिष्य इन भीम और दुर्योधन के होने वाले गदायुद्ध की सूचना मिल गई थी ॥१-२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः ।

उपगम्योपसंगृह्य विधिवत्प्रत्यपूजयन् ॥३॥

बलराम को देखकर केशव सहित पाण्डव, बड़े प्रसन्न हुए वे उनके पास पहुंचे और उनको लेकर उनकी विधि पूर्वक पूजा करने लगे ॥३॥

पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन् ।

शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव ॥४॥

बलराम की पूजा करने के बाद पाण्डवों ने कहा—हे क्षत्रिय पूज्य राम ! आज तुम अपने शिष्यों का इस गदायुद्ध में कौशल देखो ॥४॥

अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम् ।
दुर्योधनं च कौरव्य गदापाणिमवस्थितम् ॥५॥

हे कौरव्य ! पाण्डवों के सहित श्रीकृष्ण को तथा गदाधारी राजा दुर्योधन को वहां उपस्थित देखकर उनसे कहने लगा ॥५॥

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥६॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ।

हे महाभागो ! मुझे आज वहां से गए बयालीस दिन होगए । मैं पुष्य नक्षत्र में गया था और आज श्रवण में आया हूँ । हे माधव ! बड़ी बात है मैं भी अपने शिष्यों के इस गदा युद्ध को देखूंगा ॥६॥

ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥७॥
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेत्र रराजतुः ।

अब दोनों वीर राजा दुर्योधन और वृकोदर अपनी २ गदा लेकर युद्ध भूमि में पहुंचे जो वहां बड़े ही सुशोभित होने लगे ॥७॥

ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम् ॥८॥
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद्यथातथम् ।

अब धर्मराज ने, हलधारी बलराम का आलिङ्गन किया, और उन की कुशल पूछकर उनकी ठीक २ स्वागत किया ॥८॥

कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम् ॥९॥
सस्वजाते परिप्रीतौ प्रियमाणौ यशस्विनौ ।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी हलधर बलराम का बड़ा स्वागत किया ॥९॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पंच चात्मजाः ॥१०॥

अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम् ।

हे राजन् ! इसी तरह माद्री पुत्र शूरवीर नकुल सहदेव और द्रौपदी के पांचों पुत्रों ने रोहिणी पुत्र महाबली बलराम का अभिवादन किया ॥१०॥

भीमसेनोऽथ बलवान्पुत्रस्तव जनाधिप ॥११॥

तथैव चोद्यतगदा पूजयामासतुर्बलम् ।

हे जनाधिप ! बलवान भीमसेन और तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने भी अपनी २ गदा उठाकर बलराम को सैनिक प्रणाम किया ॥११॥

स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य समंततः ॥१२॥

पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन् ।

एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥१३॥

इस तरह सब ओर से बलराम का जब स्वागत होचुका-तो सबने बलराम से कहा—हे महाबाहो ! अब आप इस गदायुद्ध को देखें। इसी तरह अन्य वहां स्थित राजाओं ने भी रोहिणी पुत्र बलराम से ऐसा ही कहा ॥१२-१३॥

परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान्सहृस्ंजयान् ।

अपृच्छत्कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः ॥१४॥

बलराम ने भी सृञ्जयों सहित सबका आलिङ्गन, किया और सारे अत्यन्त ओजस्वी राजाओं से कुशलता पूछी ॥१४॥

तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम् ।
प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः ॥१५॥
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः ।
जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे ॥१६॥
मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत ।

उन सारे राजाओं ने भी एकदम बलराम से कुशल प्रश्न किया। बलराम ने उन सारे महावीर क्षत्रियों का आदर सत्कार किया। उनकी कुशल पूछी और आयु के अनुसार उनसे यथायोग्य वार्तालाप किया। इसके अनन्तर वे जनार्दन कृष्ण और सात्यकि से प्रेम के साथ लिपट गए तथा इनके मस्तक सूंघ कर इनकी कुशलता पूछी ॥१५-१६॥

तौ च तं विधिवद्राजन् पूजयामासतुर्गुरुम् ॥१७॥
ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ ।

हे राजन ! उन दोनों श्रीकृष्ण और सात्यकि ने भी अपने पूज्य बलराम की इस तरह पूजा की जिस तरह आनन्द में भरे हुए इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) देवेश ब्रह्मा की पूजा करते हैं ॥१७॥

ततोऽब्रवीद्धर्मसुता रौहिणेयमरिन्दमम् ॥१८॥
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत ।

हे भारत ! इसके अनन्तर धर्मराज ने अरिमर्दन रोहिणी पुत्र बलराम से कहा—हे राम ! अब आप इन दोनों भ्राताओं के इस महायुद्ध को देखो ॥१८॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान्केशवपूर्वजः ॥१९॥
न्यविशत्परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः ।

इनके मध्य में श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता, श्रीमान् बलराम, महारथियों से समादृत होकर बड़ी प्रसन्नता से आगे बढ़े ॥१९॥

स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ॥२०॥
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ।

राजाओं के मध्य में नील वस्त्रधारी, श्वेत कान्ति समन्वित, बलराम इस तरह सुशोभित हुआ-जैसे द्युलोक में नक्षत्रों से आवृत चन्द्रमा दिखाई देता है ॥२०॥

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥२१॥
आसीदन्तकरो राजन्वैरस्य तव पुत्रयोः ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवागमने
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

हे राजन् ! इसके बाद वैर का अन्त कर देने वाला, लोमहर्षण युद्धकरने में समर्थ, तुम्हारे इन दोनों पुत्र भीमसेन और दुर्योधन का महाघोर गदायुद्ध होने लगा ॥२१-२२॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलराम के युद्ध स्थल में आने के वर्णन का चौंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

पैंतीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन्युद्ध उपस्थिते।
आमंत्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः ॥१॥
साहाय्यं धार्त्तराष्ट्रस्य न च कर्ताऽस्मि केशव।
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम् ॥२॥
एवमुक्त्वा तदा रामो यातः क्षत्रनिबर्हणः।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मन् शंसितुमर्हसि ॥३॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! जब पूर्वकाल में यह युद्ध उपस्थित हुआ तब श्रीकृष्ण से सम्मति करके बहुत से वृष्णियों के साथ बलराम यहां से चल दिए। उन्होंने कहा था। हे केशव! मैं न तो धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन की सहायता करना चाहता हूँ और न पाण्डवों की ओर से युद्ध करने की मेरी इच्छा है। इतना कहकर क्षत्रिय वीरों के रोकने में समर्थ, शक्तिशाली बलराम यहां से चलेगए थे॥

आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः।
कथं च दृष्टवान्युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ॥४॥

हे सत्तम ! अब आप विस्तार से यह बताओ-कि बलराम कैसे आगए। उन्होंने इस युद्ध के देखने की क्यों इच्छा प्रकट की, क्योंकि तुम वृत्तान्त सुनाने में बहुत कुशल हो इससे मैं पूछता हूँ ॥४॥

वैशंपायन उवाच—उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु।

प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ॥५॥

शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम्।

वैशम्पायन बोले—हे महाबाहो ! युद्ध से पूर्व, महावीर पाण्डव उपप्लव्य (छावनी) नगर में जब पहुंच गए-तो उन्होंने राजा धृतराष्ट्र के समीप मधुसूदन को सन्धि के निमित्त भेजा, जिससे सारे संसार का हित होसके ॥५॥

स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ॥६॥

उक्तवान्वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः।

न च तत्कृतवान् राजा यथाऽऽख्यातं हि तत्पुरा ॥

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुंचे और राजा धृतराष्ट्र से मिले। वहां उन्होंने सत्य और हितकारी वचन सभा के मध्य में कहे, परन्तु राजा धृतराष्ट्र ने वे नहीं माने, जो चर्चा तुमसे पूर्व की जा चुकी ॥६-७॥

अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः।

आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप ॥८॥

हे जनाधिप ! जब महाशत्रु, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, सन्धि कराने में असफल रहे-तो वे लौट कर पाण्डवों की उपप्लव्य नगर में पहुँचे ॥८॥

ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः ।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥६॥

हे नरव्याघ्र ! धृतराष्ट्र से विदा होकर श्रीकृष्ण, अकृतार्थ रूप में लौट आए और वहां आकर पाण्डवों से बोले ॥६॥

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः ।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥१०॥

हे पाण्डवों ! कौरव वीर काल के वश में हो रहे हैं, इससे उन्होंने मेरे वचन नहीं माने । अब तुम लोग पुष्य नक्षत्र में युद्ध यात्रा के लिए चल पड़ो ॥१०॥

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः ।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥११॥

जब सेनाओं का विभाग होने लगा-तो बलवानों में श्रेष्ठ, महामनस्वी रोहिणी पुत्र बलराम, अपने भ्राता श्रीकृष्ण से बोले ॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन ।
क्रियतामिति तत्कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥१२॥

हे महाबाहो ! मधुसूदन ! तुम दुर्योधन की भी कुछ सहायता करो-परन्तु श्रीकृष्ण ने उनके वचन नहीं माने ॥१२॥

तती मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः ।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ॥१३॥

श्रीकृष्ण के इस व्यवहार से महायशस्वी यदुनन्दन हलधर बलराम क्रोध में भर गए और सरस्वती तीर्थ पर यात्रा के लिए चलते बने ॥१३॥

मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः ।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिन्दमः ॥१४॥

उस दिन मित्र नक्षत्र था। अरिमर्दन भोजवंशोद्भव, बलराम ने जाकर दुर्योधन के पास निवास किया ॥१४॥

युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान् ।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥१५॥

जब बलराम चले गए-तो पुष्य नक्षत्र में मधुसूदन श्रीकृष्ण सात्यकि को साथ लेकर पाण्डवों के पास गए ॥१५॥

पाण्डवेयान्पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ।
गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ॥१६॥

श्रीकृष्ण, पाण्डवों को आगे करके कौरवों पर चढ़ दौड़े। बलराम ने मार्ग में जाते २ अपने अनुचरों से यह वचन कहा ॥

संभारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च ।
आनयध्वं द्वारकायामग्नीन्वै याजकांस्तथा ॥१७॥

सुवर्णरजतं चैव धेनुर्वासांसि वाजिनः ।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ॥१८॥
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम् ।
परिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः ॥१९॥
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान् ।

तुम लोग द्वारका जाओ और तीर्थयात्रा के उपयोगी सामग्री अग्नि और याचक ब्राह्मणों को लाओ। सुवर्ण, चांदी, धेनु, वस्त्र अश्व, हाथी, रथ, खर (गुजराती अश्व) ऊंट, वाहन तथा तीर्थोपयोगी, ओढ़ने बिछाने के वस्त्र लेते आओ। तुम शीघ्रगामी यानों से सरस्वती नदी के तट पर चले आना और सैकड़ों उत्तम ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऋत्विजों का लाना ॥१७-१९॥

एवं संदिश्य तु प्रेष्यान्बलदेवो महाबलः ॥२०॥
तीर्थयात्रां ययौ राजन्कुरूणां वैशसे तदा ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समंतादभिजग्मिवान् ॥२१॥

हे राजन्! महाबली बलराम अपने सेवकों को यह आदेश देकर कौरवों के इस विनाशकारी युद्ध के समय तीर्थ यात्रा को चले गए थे। ये अच्छी तरह से सरस्वती नदी के प्रत्येक प्रसिद्ध तट पर पहुंचे ॥२०-२१॥

ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथाऽन्यैर्द्विजसत्तमैः ।
रथैर्गजैस्तथाऽश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ॥२२॥
गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः ।

हे भरतर्षभ ! इनके साथ ऋत्विक्, सुहृद्, उत्तम २ ब्राह्मण रथ, गज, अश्व, दास, बैल खच्चर, ऊंट आदि से युक्त बहुत से यान थे ॥२२॥

श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम् ॥२३॥
देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च ।
अर्चायै चार्थिनां राजन् क्लृप्तानि बहुशस्तथा ॥२४॥

हे राजन ! ये जिस प्रदेश में पहुंचते-वहीं पर श्रान्त, दुःखी, बालक और वृद्धों को विविध प्रकार के दान देते थे । इन्होंने पात्रकों की पूजा के लिए बहुत सा सामान दान का साथ लेरखा था ॥

तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत ।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥२५॥

हे भारत ! जिस देश में लोग, जिन २ वस्तुओं की इच्छा रखते थे-वे सब वहां दान को पहुंच जाती थी और बुभुक्षित लोगों को सर्वत्र अन्न के सदावर्त लगा दिए गए थे ॥२५॥

यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा ।
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजह्रुस्तदा नृप ॥२६॥

हे नृप ! जहां २ जो २ ब्राह्मण, जिस २ पदार्थ के भोजन की आकांक्षा करता था, उस के निमित्त उसी २ स्थान में वे ही पदार्थ मंगा दिए जाते थे ॥२६॥

तत्र तत्र स्थिता राजन्रौहिणेयस्य शासनात् ।
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥२७॥

हे राजन् ! रोहिणी-पुत्र बलराम के शासन से सेवक गण जहां तहां उपस्थित रहते थे, जो खाने पीने की सामग्री के ढेर सर्वत्र लगा देते थे ॥२७॥

वासांसि च महार्हाणि पर्यङ्कास्तरणानि च ।
पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम् ॥२८॥

सुखेच्छुक ब्राह्मण पूजा के लिए बहुमूल्य वस्त्र, पलंग, बिस्तर जहां तहां बलराम ने प्रत्येक स्थान पर रखवा दिए थे ॥२८॥

यत्रः यः स्वदते विप्रः क्षत्रियो वाऽपि भारत ।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥२६॥
यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा

हे भारत ! जिस स्थान पर जिस जिस ब्राह्मण या ...
...स वस्तु के खाने की इच्छा होती थी, वहां वहां वे सारी
मिलती थी अपने २ सुख को देखकर सारे मनुष्य,
...नों पर ठहरते और कार्य-वश फिर आगे चल देते थे ॥२६॥

यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च ॥३०॥
बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ ।
उपजह्रुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥३१॥

हे भरतर्षभ ! जो मार्ग में यात्रा करता था उस पथिक को यान, प्यासे को पानी, भूखे को स्वादु अन्न, वस्त्र आभरण आदि सब कुछ आवश्यक वस्तु मिल जाती थी ॥३०-३१॥

स पन्थाः प्रबभौ राजन्सर्वस्यैव सुखावहः ।
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम् ॥३२॥

हे राजन ! जो मनुष्य, बलराम के मार्ग से निकलते थे उनको वह मार्ग, स्वर्ग के समान सुखदायी हो रहा था ॥३२॥

नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः ।
विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः ।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥३३॥

इस मार्ग में सदा प्रसन्न पथिक दिखाई देते थे। बड़े २ स्वादु अन्न पान थे जो देखने में ही आकर्षक थे। दुकान, बाज़ार और मण्डियों के मार्गों में सैंकड़ों मनुष्यों की भीड़ लगी रहती थी। इन मार्गों में अनेक वृक्ष लगा दिए। मार्ग में अनेक प्रकार के रत्न लगा दिए गए थे ॥३३॥

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन्
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च यदुप्रवीरो हलभृत्प्रतीतः ॥

हे राजन ! इस तरह महात्मा बलराम, नियमस्थित होकर पवित्र तीर्थों में धन दान कर रहे थे। यदुवंश श्रेष्ठ, हलधर बलराम ने बड़े उत्साह से पवित्र तीर्थों में यज्ञ किए, जिन में ब्राह्मणों को अच्छी दक्षिणाएँ दीं ॥३४॥

दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः ।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्यानानि दासांश्च शुभान्द्विजेभ्यः ॥

सुन्दर वस्त्रों से आच्छादित सुवर्ण से सुमण्डित, सींगों वाली तथा दूध देने वाली सहस्रों गाय, एवं अनेक देशों में उत्पन्न अश्व यान, और उत्तम २ दास ब्राह्मणों को प्रदान किए ।।३५।।

रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं चाप्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुद्धम् ।
अयस्मयन्ताम्रमयं च भाण्डं ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥

रत्न, मुक्ता, मणि, उत्तम प्रवाल, शुद्ध सुवर्ण, रजत, कड़ाही आदि लोहे और तांबे के पात्र बलराम ने उत्तम २ ब्राह्मणों को दिए ॥३६॥

एवं स चित्तं प्रददौ महात्मा सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि ।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभावस्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः ॥३७॥

इस प्रकार महात्मा, उदार वृत्तिधारी, बलराम ने सरस्वती नदी के तीर पर बहुत सा दान किया । इसके बाद अपरिमित प्रभाव शाली बलराम कुरुक्षेत्र पहुंचा ॥३७॥

जनमेजय उवाच—सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च ॥३८॥
यथाक्रमेण भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः ।
ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥३९॥

जनमेजय ने कहा—हे भगवन्! वीरश्रेष्ठ, सरस्वती प्रदेश पर कौन २ तीर्थ थे, उनके गुण, फल और कर्म की निवृत्ति हमको सुनाओ। हे ब्रह्मन्! आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, इससे सरस्वती तपवर्ती तीर्थों का क्रम से वर्णन करो, जिसके सुनने की मुझे परम अभिलाषा है ॥३८-३९॥

वैशम्पायन उवाच—तीर्थानां च फलं राजन्गुणोत्पत्तिं स सर्वशः
मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः ॥४०॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! तीर्थों के फल उनके गुणों की उत्पत्ति, आदि विषयों को मैं विस्तार से सुनाता हूं। तुम उसको ध्यान से सुनो ॥४०॥

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर ऋत्विग्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम्।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम यत्रोडुराड्यक्ष्मणा क्लिश्यमानः॥
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः सर्वं जगद्भासयते नरेन्द्र।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां प्रभासनात्तस्य ततः प्रभासः॥

हे महाराज! यदुवंशश्रेष्ठ बलराम, ऋत्विक्, सुहृद् और विप्र गणों के साथ सबसे प्रथम पवित्र प्रभास क्षेत्र में पहुंचे जहां पर चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग का शाप लगा था। हे नरेन्द्र! कुछ दिन में प्रभास क्षेत्र के प्रभाव से चन्द्रमा का वह शाप निवृत्त होगया और वह सारे जगत् को प्रभासित करने लगा। इस तरह इस तीर्थ प्रवर ने पृथिवी पर चन्द्रमा को प्रभासित किया जिससे इसका नाम प्रभास क्षेत्र पड़ा ४१-४२॥

जनमेजय उवाच—कथं तु भगवान्सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चंद्रोन्वमज्जत ॥४३॥
कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥४४॥

जनमेजय बोले—हे महामुने ! भगवान् चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग ने कैसे पकड़ा और कैसे इस उत्तम तीर्थ में चन्द्रमा ने स्नान किया। उस प्रभास तीर्थमें स्नान करने से किस तरह फिर चन्द्रमा प्रभावित हो उठा-इन सारे वृत्तान्तों को तुम मुझे सुनाओ ॥४३-४४॥

वैशम्पायन उवाच—दक्षस्य तनयास्तात प्रादुरासन्विशाम्पते ।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ ॥४५॥
नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थं च ताऽभवन् ।
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः ॥४६॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे तात ! विशाम्पते ! दक्ष प्रजापति के सत्ताईस कन्या उत्पन्न हुई थीं। उन कन्याओं को उसने चन्द्रमा को प्रदान किया। हे राजेन्द्र ! उन सबकी गिनती नक्षत्रों में होती है। ये शुभ कर्म करने वाले चन्द्रमा की पत्नी मानी गई हैं ॥

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अत्यरिच्यत तासां तु रोहिणी रूपसंपदा ॥४७॥

ये सारी कन्या विशाल नेत्रों वाली रूप में अद्वितीय थी, परन्तु अपने रूप के गौरव से रोहिणी इन सबका उल्लंघन कर गई ॥४७॥

ततस्तस्यां स भगवान्प्रीतिं चक्रे निशाकरः ।
साऽस्य हृद्या बभूवाथ तस्मात्तां बुभुजे सदा ॥४८॥

भगवान् चन्द्रमा की इस में बड़ी प्रीति होगई । उसने चन्द्रमा के हृदय को पकड़ लिया ! वह भी उसे भोगने में संलग्न होगया ॥४८॥

पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसत्परम् ।
ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः ॥४९॥

ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतंद्रिताः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥५०॥

हे राजेन्द्र ! पूर्वकाल में एक बार चन्द्रमा रोहिणी के घर पर निवास कर रहे थे, कि महात्मा चन्द्रमा पर शेष सारी दक्ष कन्याएँ कुपित होगई । उन सब ने सावधानी से अपने पिता दक्ष प्रजापति के पास जाकर शिकायत की, कि चन्द्रमा हमारे पास कभी नहीं आता वह सर्वदा रोहिणी को भजता रहता है ॥४९-५०॥

ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वरः ।
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ॥५१॥

हे प्रजेश्वर ! अब हम आपके ही पास रहेंगी और नियत आहार करती हुई तपस्या करेंगी ॥५१॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वाऽधर्मो महान्स्पृशेत् ॥५२॥

दक्ष प्रजा-पति इनके वचन सुनकर चन्द्रमा से कहने लगा— हे सौम्य ! तुम अपनी सारी भार्याओं में समान वर्ताव करो जिससे तुम को महान अधर्म का स्पर्श न हो सके ॥५२॥

तास्तु सर्वाऽब्रवीद्दक्षो गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम् ।
समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात् ॥५३॥

अब दक्ष ने उन कन्याओं से कहा-तुम सब चन्द्रमा के पास जाओ मैंने चन्द्रमा को आज्ञा देदी है वह तुम्हारे साथ समान ही व्यवहार करेगा ॥५३॥

विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा ।
तथाऽपि सोमो भगवान्पुनरेव महीपते ॥५४॥
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः ।

हे महीपते ! दक्ष द्वारा भेजी हुई वे कन्याएं चन्द्रमा के भवन पर पहुंची परन्तु भगवान् चन्द्रमा तो रोहिणी पर ही अत्यन्त आसक्त थे, इससे प्रेमपूर्वक उसके साथही रहते रहे ॥५४॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवीन् ॥५५॥
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवांतिके ।
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद्वचनं तव ॥५६॥

वे फिर सारी इकट्ठी ही पिता के पास पहुंची और पिता से बोली । कि चन्द्रमा हमारे पास नहीं आया और उसने तुम्हारी आज्ञा भी नहीं मानी । अब तो हम तुम्हारी सेवा करती हुई, तुम्हारे ही पास रहेंगी ॥५५-५६॥

तासां तद्वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन ॥५७॥

उन कन्याओं के ये वचन सुनकर दक्ष ने चन्द्रमा से कहा—हे विरोचन्! या तो तुम अपनी भार्याओं से समान व्यवहार करो-अन्यथा मैं तमको शाप देदूंगा ॥५७॥

अनादृत्य तु तद्वाक्यं दक्षस्य भगवान् शशी ।
रोहिण्या सार्धमवसत्ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥५८॥

दक्ष के वचनों की फिर अवहेलना करके भगवान् चन्द्रमा रोहिणी के साथ ही रहते रहे इससे वे कन्याएं फिर कुपित हो उठी ॥५८॥

गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा ।
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव ॥५९॥
रोहिण्यामेव भगवान्सदा वसति चन्द्रमाः ।
न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति ॥६०॥
तस्मान्नास्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत् ।

वे फिर अपने पिता के पास पहुंची और शिर झुका कर प्रणाम पूर्वक यह वचन कहा—कि चन्द्रमा तो हमारे पास आता ही नहीं है-अब तो तुमही हमारे रक्षक बनो। भगवान चन्द्रमा तो सर्वदा रोहिणी के पास ही पड़ा रहता है। वह न तो तुम्हारे वचन मानता और न हम से कोई स्नेह करता है अब तुम हमारी इस तरह रक्षा करो-जिससे चन्द्रमा हमारे पास भी आने लगे ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ॥६१॥
ससर्ज रोषात्सोमाय स चोडुपतिमाविशत् ।
स यक्ष्मणाऽभिभूतात्माक्षीयताहरहः शशी ॥६२॥

हे पृथिवी पते ! इतना सुनकर भगवान् दक्ष प्रजापति कुपित हो उठे। और उन्होंने क्रोध से चन्द्रमा के निमित्त यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति की। वह यक्ष्मा रोग चन्द्रमा के पास पहुंचा। उसी यक्ष्मा रोग से अभिभूत हुआ चन्द्रमा, प्रतिदिन क्षीण होता रहता है ॥६१-६२॥

यत्नं चाप्यकरोद्राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः ।
इष्ट्वेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ॥६३॥
न चामुच्यत शापाद्वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत ।

हे महाराज ! अब चन्द्रमा ने, उस यक्ष्मा रोग से छुटकारा पाने के लिए अनेक यज्ञ किए, परन्तु उसे उस शाप से मुक्ति न मिली। और प्रतिदिन क्षीण ही होता रहा ॥६३॥

क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ॥६४॥
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः ।
ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ॥६५॥
कृशाश्चासन्प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे ।

जब चन्द्रमा क्षीण, होगया-तो ओषधियों की उत्पत्ति बन्द होगई। सारी ओषधियों के स्वाद और प्रभाव नष्ट हो गए।

ओषधियों के क्षय होने पर सारे प्राणियों का क्षय होने लगा चन्द्रमा के क्षीण होने से ही सारी प्रजा क्षीण होगई ॥६४-६५॥

ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ॥६६॥
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते ।
कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद्भयम् ॥६७॥
श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो वयम् ।

हे महीपते ! अब देवगण, चन्द्रमा के पास आकर बोले—हे सोम ! तुम्हारा रूप पूर्व की भांति अब क्यों नहीं प्रकाशित होता है। तुम अपने इस महान् भय का हमको कारण सुनाओ हम लोग, आपके वचन सुनकर उसका उपाय करेंगे ॥६६-६७॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्तान् शशलक्षणः ॥६८।
शापस्य लक्षणं चैव यक्ष्माणं च तथाऽऽत्मनः ।

जब देवों ने इतना कहा—तो चन्द्रमा ने अपनी सारी कथा सुनाई। जिस तरह उसे शाप हुआ था, और यक्ष्मा रोग लगा था ॥

देवास्तथा वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन् ॥६९॥
प्रसीद भगवन्सोमे शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।

देवों ने जब चन्द्रमा के वचन सुने तो वे दक्ष प्रजापति के पास जाकर बोले—हे भगवन् ! आप चन्द्रमा पर प्रसन्न हो जाइए और उसपर से शाप का बन्धन दूर कर दीजिए ॥६९॥

असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किंचिच्छेषो हि लक्ष्यते ॥
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चैव गताः क्षयम् ।
वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च ॥७१॥
तेषां क्षये क्षयोऽस्माकं विनास्माभिर्जगच्च किम् !
इति ज्ञात्वा लोकगुरो प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७२॥

अब चन्द्रमा क्षीण होचुका है और वह बहुत ही थोड़ा शेष है। हे देवेश ! इसके क्षय से सारी प्रजा क्षय होने लग गई है। लता ओषधि और अनेक बीज नष्ट हो गए। इसके क्षय से हमारा विनाश और हमारे विनाश से जगत् ही कैसे रह सकता है। हे लोक पूज्य ! अब तुम सब कुछ समझ गए होगे। आप हम पर कृपा करो ॥७०-७२॥

एवमुक्तस्ततो देवान्प्राह वाक्यं प्रजापतिः ।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा ॥७३॥
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित् ।
समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः ॥७४॥

हे राजन् ! जब देवों ने इतना कहा—तो दक्ष प्रजापति कहने लगे—कि मेरा वचन कभी विपरीत नहीं किया जा सकता हां ? उसमें एक शर्त लगी हुई है। कि यदि वह सारी भार्याओं में समान व्यवहार करे-तो वह शाप लौट सकता है ॥७३-७४॥

सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जन्शशलक्षणः ।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद्वै सत्यं वचो मम ॥७५॥

हे देवों ! इतना कहने पर यदि वह सरस्वती नदी के प्रभास क्षेत्र में स्नान करलेगा-तो वह फिर वृद्धि को प्राप्त हो जावेगा-यह मेरा सत्य वचन समझो ॥७५॥

मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति ।
मासार्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद्वचो मम ॥७६॥

एक पक्ष तक चन्द्रमा क्षय होता रहेगा। और फिर एक पक्ष तक उसकी वृद्धि होगी यह मेरा सत्य वचन है ॥७६॥

समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसंगमम् ।
आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति ॥७७॥

चन्द्रमा पश्चिम समुद्र पर जावे, जहां पर सरस्वती का समुद्र के साथ संगम हो रहा है। वहां पर वह शिव की पूजा करे-तो उसका काम बन सकता है ॥७७॥

सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात् ।
प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ॥७८॥

दक्ष की आज्ञा से सोम सरस्वती के तट पर पहुंचा। वह सर्व प्रथम सरस्वती के प्रभास तीर्थ पर पहुंचा ॥७८॥

अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन्महाद्युतिः ।
लोकान्प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च ॥७९॥

महा कान्तिमान तेजस्वी चन्द्रमा ने वहां अमावस्या को स्नान किया। उसने लोकों को प्रभासित किया और चन्द्रमापन प्राप्त किया ॥

देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम् ।
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन् ॥८०॥

हे राजेन्द्र ! देवता भी विशाल प्रभास क्षेत्र में पहुंचे । और चन्द्रमा को साथ लेकर दक्ष प्रजापति के सन्मुख गए ॥८०॥

ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः ।
सोमं च भगवान्प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत् ॥८१॥

अब भगवान् प्रजापति ने सारे देवता भेज दिए और वह प्रसन्न होकर फिर चन्द्रमा से कहने लगा ॥८१॥

माऽवमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान्कदाचन ।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु वै शासनं मम ॥८२॥

हे पुत्र ! तुम अब आगे कभी अपनी स्त्रियों का अपमान मत करना । और न कभी ब्राह्मणों के तिरस्कार की सोचना अब तुम जाओ और सावधानी के साथ मेरे शासन को करते रहो ॥८२॥

स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम् ।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा ॥८३॥

हे महाराज ! चन्द्रमा दक्ष प्रजापति से विदा होकर अपने घर गए और प्रजा भी आनन्दित होकर फिर पूर्ववत् व्यवहार करने लगी ॥८३॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः ।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं महत् ॥८४॥

हे राजन् ! जिस तरह चन्द्रमा को शाप हुआ वह सब मैंने तुमको सुना दिया। इसके साथ ही तुम यह भी समझ गए, कि प्रभास तीर्थ किस कारण से तीर्थप्रवर होगया ।८४॥

अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः ।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान् प्रभासे तीर्थ उत्तमे ॥८५॥

हे महाराज ! अमावस्या के दिन सर्वदा कान्ति मय चन्द्रमा उत्तम प्रभास तीर्थ में स्नान करके पुष्ट होजाते हैं ॥८५॥

अतश्चैतत्प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप ।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः ॥८६॥

हे भूमिपते ! यह तीर्थ प्रभास इसी कारण से कहाता है, कि चन्द्रमा ने इस में स्नान करके अत्यन्त प्रभा प्राप्त की है ॥८६॥

ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद्बली ।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयंत्युत ॥८७॥

इसके बाद महाबली बलराम, चमसोद्भेद तीर्थ पर पहुंचे । यह तीर्थ चमसोद्भेद नाम से जगत् में बहुत सी प्रसिद्ध है ॥८ ॥

तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः ।
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा ॥८८॥

हलधर बलराम ने वहां पर एक रात निवास किया और वहां पर विधिपूर्वक स्नान करके उत्तम २ दान किए ॥८८॥

उदपानमथागच्छत्त्वरावान्केशवाग्रजः ।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत्फलम् ॥८९॥

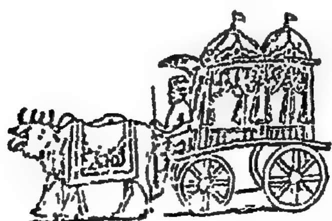
फिर के ज्येष्ठ भ्राता बलराम वहां से चलकर उदपान तीर्थ पर शीघ्रता से पहुंचे। जहां उत्तम रीति से स्वस्ति वाचन श्रवण किया स्वस्त्ययन पर जिससे उनको महान फल की प्राप्ति हुई ॥८९॥

स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥९०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां
प्रभासोत्पत्तिकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

हे जनमेजय! भूमि के चिकनापन और ओषधियों की उत्तमता को देखकर सिद्ध व्यक्ति सरस्वती के लुप्त होजाने पर भी उस के प्रवाह स्थान और तीर्थों को जान लेते हैं ॥९०॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तिर्गत गदा पर्व में बलदेव
तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में सरस्वती तटवर्ती तीर्थों के
वर्णन का पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



छत्तीसवां अध्याय

वैशंपायन उवाच—तस्मान्नदीगतं चापि ह्युदपानं यशस्विनः

त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः ॥१॥

तत्र दत्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान् ।

उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः ॥२॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज! सरस्वती नदी के तट पर उदपान (कूप) तीर्थ में स्नान करके हलधर बलराम महायशस्वी त्रितमुनि के आश्रम में पहुंचे. वहां पर उन्होंने बहुत सा दान दिया और ब्राह्मणों की पूजा की। वहां पर स्नान आचमन करके मुसलधारी बलराम बड़े प्रसन्न हुए ॥१-२॥

तत्र धर्मपरो भूत्वा त्रितः स सुमहातपाः ।

कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ॥३॥

उसी सरस्वती के कूप तीर्थ पर महायशस्वी, त्रितमुनि रहते थे, जिन महात्मा ने वहां यज्ञ करके सोम का पान किया था ॥३॥

तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।

ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ॥४॥

त्रितमुनि को छोड़ कर उसके दो भ्राता घर चले गए-इसमे उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उन अपने दोनों भाइयों को शाप दे डाला था ॥

जनमेजय उवाच—उदपानं कथं ब्रह्मन् कथं च सुमहातपाः ।

पतितः किं च सन्त्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तम ॥

कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।
कथं च याजयामास पपौ सोमं च वै कथम् ॥६॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतव्यं यदि मन्यसे ।

वैशम्पायन बोले—हे ब्रह्मन् ! यह उदपान क्या था और महातपस्वी कौन है । हे द्विज सत्तम ! यह कैसे उस उदपान [कूप] में गिर गया और उसके दोनों भ्राता उसे कैसे छोड़कर घर चले गए । भ्राताओं ने उसे छोड़ा ही क्यों था । यह यज्ञ कैसे करवाया और उसने सोमपान कैसे किया । हे ब्रह्मन् ! यदि तुम सुनाने में कोई हानि नहीं समझते हो-तो यह सब मुझे सुनाओ ॥५-६॥

वैशम्पायन उवाच—आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ।
सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च ॥८॥
ब्रह्मलोकजिताः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! पूर्व युग में तीन मुनि भ्राता थे उनके नाम एकत, द्वित और त्रित थे, जो सूर्य के समान तेजस्वी थे । ये प्रजापति के समान ज्ञानी और सन्तान वाले थे । इन्होंने अपने तप से ब्रह्मलोक जीत रखा था । ये सारे ही ब्रह्मवादी थे ॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥९॥
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ।

इन तीनों मुनियों के तप नियम और इन्द्रिय दमन से इनका धर्मात्मा पिता गौतम बहुत ही प्रसन्न था ॥९॥

स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च ॥१०॥
जगाम भगवान्स्थानमनुरूपमिवात्मनः ।

बहुत दिन तक इनसे प्रसन्न रहकर भगवान् गौतम, अपने पुण्य के अनुरूप लोकों को चला गया ॥१०॥

राजानस्तस्य ये ह्यासन्याज्या राजन्महात्मनः ॥११॥
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन् ।

हे राजन् ! इस महात्मा के जितने यजमान राजा थे, वे गौतम के स्वर्ग चले जाने पर उसके पुत्रों को पूजने लगे ॥११॥

तेषां तु कर्मणा राजंस्तथा चाध्ययनेन च ॥१२॥
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा ।

हे राजन् ! इन तीनों भ्राताओं में कर्मनिष्ठता और वेदाध्ययन के कारण त्रित अपने पिता के समान सब से श्रेष्ठ था ॥१२॥

तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः ॥१३॥
अपूजयन्महाभागं यथाऽस्य पितरं तथा ।

महाभाग पुण्यात्मा अन्य मुनि लोग की महानुभाव त्रित का इसी तरह आदर करते थे, जिस तरह उस के पिता की पूजा करते थे ॥१३॥

कदाचिद्धि ततो राजन्भ्रातरावेकतद्वितौ ॥१४॥
यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च ।

हे राजन्! एक बार एकत और द्वित नामक दोनों भ्राता यज्ञ करने का विचार करने लगे। यज्ञ के लिए त्रित कहां से आते अब उनको यह चिन्ता हुई ॥१४॥

तयोर्बुद्धिः सयभवत्त्रितं गृह्य परन्तप ॥१५॥

याज्यान्सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः।

सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम् ॥१६॥

हे परन्तप! इन दोनों का विचार हुआ, कि हमको त्रित को भी साथ लेना चाहिए। त्रित को साथ लेकर सारे यजमानों के पास चलें और उनसे पशु, दान में ग्रहण कर लावें। उसके बाद आनन्द पूर्वक यज्ञ का महा फल प्राप्त करके सोम का पान करें ॥

चक्रुश्चैवं तथा राजन्भ्रातरस्त्रय एव च।

तथा ते तु परिक्रम्य याज्यान्सर्वान्पशून्प्रति ॥१७॥

हे राजन्! ये तीनों भ्राता मिल गए और उन्होंने वैसा ही किया। ये तीनों यजमानों के पास पहुंचे। और पशु ग्रहण करने के निमित्त उन यजमानों को यज्ञ करवाया ॥१७॥

याजयित्वा ततो याज्यान्लब्ध्वा तु सुबहून्पशून्।

याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः ॥१८॥

प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः।

त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद्याति हृष्टवत् ॥१९॥

एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन्पशून्।

उन्होंने यजमानों को यज्ञ करवाया और उनसे बहुत से पशु ग्रहण किए। यज्ञ कर्म द्वारा सारे यजमानों से विधि-पूर्वक प्रतिग्रह लिया। अब ये तीनों महर्षि, महात्मा पूर्व दिशा में आए। हे महाराज! उनमें त्रित मुनि प्रसन्नता के साथ सबसे आगे चलता था एकत और द्वित मुनि उनके पीछे २ पशुओं को हांकते चले आते थे ॥१८-१६॥

तयोश्चिन्ता समभवद् दृष्ट्वा पशुगणं महत् ॥२०॥
कथं च स्युरिमा गाव आवाभ्यां हि विना त्रितम्।

इन बहुत से पशुओं को देखकर उनको चिन्ता हुई कि ये गवादि पशु हम दोनों पर ही कैसे रहसकेंगे। त्रित को कुछ भी नहीं देना चाहिए ॥२०॥

तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह ॥२१॥
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर।

इन दोनों पापी एकत और द्वित मुनि ने परस्पर बात चीत निश्चित करके जो बातें की, वे मैं तुमको सुनाता हूँ-हे जनेश्वर! तुम ध्यान से सुनो ॥२१॥

त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः ॥२२॥
अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपलप्स्यते।
तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे ॥२३॥
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विना कृतः।

त्रित यज्ञ में कुशल है, और त्रित ही वेद में निष्ठित है। त्रित तो अन्य बहुत सी गायें प्राप्त कर सकता है, हम दोनों इन गायों को हांक कर इकट्ठे ही अन्यत्र चले जावें। और त्रित भी हमसे बिछुड़ कर जहां इसकी इच्छा होगी-वहीं चला जावेगा ॥२२-२३॥

तेषामागच्छतां रात्रौ पथिस्थानां वृकोऽभवत् ॥२४॥
तत्र कूपो विदूरेऽभूत्सरस्वत्यास्तटे महान् ।

ये जब रात में चल रहे थे, तो मार्ग में इनके पशुओं पर भेड़िए ने आक्रमण किया। सरस्वती नदी के तट पर पास में ही एक महान कूप था ॥२४॥

अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः ॥२५॥
तद्भयादपसर्पन्वै तस्मिन्कूपे पपात ह ।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयङ्करे ॥२६॥

जब त्रित ने अपने आगे मार्ग में पड़ा हुआ भेड़िया देखा वह उसके भय से पीछे हटा और उस पास वाले कुवें में गिर गया जो कूप बड़ा अगाध, महाभयङ्कर और महाघोर था ॥२५-२६॥

त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ॥२७॥

हे महाराज ! जब वह मुनि श्रेष्ठ, त्रित कूप में गिर गया, तो वह चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट उन दोनों मुनियों ने सुनी ॥

तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः ॥२८॥

अब वे दोनों भ्राता एकत और द्वित समझ गए कि त्रित भेड़िए के भय से कूप में गिर गया-तो वे भी लोभ से उसे छोड़ कर चलते बने ॥२८॥

भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः ।
उदपाने तदा राजन्निर्जले पांसुसंवृते ॥२९॥
त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते ।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती यथा ॥३०॥
स बुद्ध्याऽगणयत्प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः ।
सोमः कथं तु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ॥३१॥

हे राजन् ! जब पशु लोभी भ्राताओं ने उस महातपस्वी को उस निर्जल मिट्टी से भरे हुए कुवे में छोड़ दिया तो त्रित ने अपने को लता झाड़ियों से आवृत कूप में इस तरह देखा-जैसे पापी नरक में पड़ा होता है। हे भरतर्षभ ! उसने मृत्यु से डर कर बुद्धि से विचारा कि सोमपान के विना मृत्यु का भय होता है । अब यहां स्थित रहने पर मुझे सोमपान कैसे प्राप्त हो सकता है। २९-३१॥

स एवमभिनिश्चित्य तस्मिन्कूपे महातपाः ।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया ॥३२॥

हे राजन् ! महातपस्वी त्रित ने कूप में यह निश्चय किया ही था, कि उसने अचानक लटकती हुई वहां एक लता देखी ॥३२॥

पांशुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः ।
अग्नीन्सङ्कल्पयामास होत्रे चात्मानमेव च ॥३३॥
ततस्तां वीरुधं सोमं सङ्कल्प्य सुमहातपाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसाऽचिन्तयन्मुनिः ॥३४॥
ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेभिषवं नृप ।
आज्यं च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ॥३५॥
सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार विपुलं ध्वनिम् ।
स चाविशद्दिवं राजन्पुनः शब्दस्त्रितस्य वै ॥३६॥
समवाप्य च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।

उस मिट्टी के शुष्क कूप में मुनि ने पानी का विचिन्तन किया। तथा अग्नि का संकल्प किया और अपने आपको होता समझा। उस महातपस्वी ने उस लता को सोम कल्पना किया और ऋक् यजु तथा सामवेद का मन से चिन्तन किया। हे नृप ! उस कूप की शर्करा को ग्रावा (चक्की के पाट) मान कर उस लता का मानसिक अभिषव [अर्क] निकाला। वहां जो थोड़ा पानी था, उसे घृत मान लिया। इससे देवताओं के तीन भाग निकाले। इस तरह उसने सोमरस का अभिषव करके बहुत अधिक हर्ष ध्वनि की। हे राजन् ! त्रित मुनि का वह शब्द, द्युलोक में छागया। ब्रह्मवादियों से कहे हुए यज्ञ के तुल्य उस यज्ञ को देवों ने प्राप्त किया ॥३३-३६॥

वर्तमाने महायज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ॥३७॥
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुध्यते ।

महात्मा त्रित के इस यज्ञ के प्रवृत्त होने पर सारे स्वर्गलोक में खलबली मच गई ॥३७॥

ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ॥३८॥
श्रुत्वा चवाब्रवीत्सर्वान्देवान्देवपुरोहितः ।

यह महान शब्द स्वर्गलोक में देव पुरोहित बृहस्पति ने सुना उसने उस शब्द को सुनकर सारे देवों से कहा ॥३८॥

त्रितस्य वर्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः ॥३९॥
स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान्देवानपि महातपाः ।

हे देवो ! त्रित नामक मुनि का यज्ञ होरहा है, वहां हम लोगों को चलना चाहिए । यदि वह महातपस्वी कुपित होगया-तो अन्य देवों की रचना कर लेगा ॥३९॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ॥४०॥
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते ।

सारे देवों ने जब उसका वचन सुना-तो वे सारे इकट्ठे होकर वहां पहुंचे, जहां पर त्रित मुनि यज्ञ कर रहा था ॥४०॥

ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः ॥४१॥
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु ।

ये देवता; उसी कूप पर गए जिस में त्रित मुनि पड़ा था। वहां उन्होंने यज्ञ कर्म की दीक्षा में निमग्न त्रित मुनि को देखा ४१॥

दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम् ॥४२॥
ऊचुश्चैनं महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ।

अत्यन्त कान्ति से देदीप्यमान त्रित मुनि को देखकर उस महाभाग त्रित मुनि से कहने लगे, कि हम यज्ञ भागी देवता आ पहुंचे हैं ॥४२॥

अथाब्रवीदृषिर्देवान्पश्यध्वं मां दिवौकसः ॥४३॥
अस्मिन्प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् ।

अब त्रित नामक ऋषि ने देवों से कहा—हे देवो ! तुम देखो कि मैं इस भयङ्कर कूप में अचेतन हुआ पड़ा हुआ हूं ॥४३॥

ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ॥४४॥
मंत्रयुक्तान्समददत्ते च प्रीतास्तदाऽभवन् ।

हे महाराज ! अब त्रित ने भी उनको यथाविधि भाग समर्पित किया । जब मन्त्र युक्त भाग उन देवों को प्राप्त हुआ-तो वे बड़े प्रसन्न हुए ॥४४॥

ततो यथाविधिप्राप्तान्भागान्प्राप्य दिवौकसः ॥४५॥
प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान्यान्मनसेच्छति ।

इस तरह विधि पूर्वक अपने २ भागों को देवता प्राप्त करके बड़े प्रसन्न हुए और वे प्रसन्न होकर उन वरों को देने को उद्यत हुए जिनकी त्रित को अभिलाषा थी ॥४५॥

स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः ॥४६॥

यश्चेहोपस्पृशेत्कूपे स सोमपगतिं लभेत् ।

हे राजन्! सब से प्रथम त्रित ने यह वरदान मांगा, कि तुम इस अन्ध कूप से मेरी रक्षा करो तथा जो मनुष्य, इस कूप में आचमन करे-उसको सोमपान का पुण्य प्राप्त होवे ॥४६॥

तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती ॥४७॥

तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः ।

हे राजन! इसी समय लहराती हुई सरस्वती नदी, उमड़ पड़ी उसकी लहरों से त्रित बाहर निकल आया और देवों का धन्यवाद देता हुआ बाहर स्थित हो गया।४७॥

तथेति चोक्ता विबुधा जग्मू राजन्यथागताः ॥४८॥

त्रितश्चाभ्यागमत्प्रीतः स्वमेव निलयं तदा ।

हे राजन! देवता भी उसको वरदान देकर जैसे आए थे वैसे ही चले गए। महामुनि त्रित भी प्रसन्न होकर अपने घर को चल दिए ॥४८॥

क्रुद्धस्तु स समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा ॥४९॥

उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः ।

हे राजन्! क्रोध में भरे हुए महातपस्वी त्रित ने अपने दोनों भ्राता एकत और द्विज मुनि को जा पकड़ा और कठोर वचन कहकर उन्हें शाप दे डाला ॥४९॥

पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ ॥५०॥
तस्माद्वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणावभितश्चरौ ।

हे मूर्खो ! तुम पशुओं के लोभ से मुझे छोड़कर चले आए इससे तुम वृक (भेड़िये) की सी आकृति धारण करके दांत वाले बनेहुए भयङ्कर रूप से पृथिवी पर घूमो ॥५०॥

भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा ॥५१॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलांगूलर्क्षवानराः ।

इस पाप से मैंने तुमको शाप दिया है, कि तुम भेड़िये बनोगे इसके बाद वानर जाति में लंगूर और रीछ की योनि में दोनों जन्म पाओगे ॥५१॥

इत्युक्तेन तदा तेन क्षणादेव विशाम्पते ॥५२॥
तथाभूतावदृश्येतां वचनात्सत्यवादिनः ।

हे विशाम्पते ! इतना कहने की देर थी, कि उस सत्यवादी के वचनानुसार उसी क्षण, वे भेड़िए की सूरत में दिखाई देने लगे ॥

तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः ॥५३॥
दत्त्वा च विविधान्दायान्पूजयित्वा च वै द्विजान् ।

अत्यन्त पराक्रमी हलधर बलराम ने वहां भी उस कूप का जलपान किया । वहां उन्होंने बहुत से दान दिए और ब्राह्मणों का पूजन किया ॥५३॥

उदपानं च तं वीक्ष्य प्रशस्य च पुनः पुनः ।
नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो विनशनं तदा ॥५४॥

इति श्रीमहाभारतेशतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवत्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

प्रसन्नात्मा बलराम ने उस नदीगत कूप को देखकर उसकी बार २ प्रशंसा की और फिर वे वहां से विनशान तीर्थ की ओर चल दिए ॥५४॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदायुद्ध पर्व में त्रित मुनि के उपाख्यान का छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सैंतीसवां अध्याय

वैशंपायन उवाच—ततो विनशनं राजन्जगामाथ हलायुधः ।
शूद्राभीरान्प्रतिद्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ॥१॥
तस्मात्तु ऋषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च ।

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अब हलधर विनशान तीर्थ की ओर चले । यह वही स्थान है, जहां पर शूद्र आभीरों के द्वेष से सरस्वती नदी अलक्षित होगई, इसी कारण से उस स्थान को ऋषि लोग विनशान तीर्थ कहने लगे ॥१॥

यत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः ॥२॥

सुभूमिकं ततोऽगच्छत्सरस्वत्यास्तटे वरे ।

तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतंद्रिताः ॥३॥

क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः ।

महाबली बलराम ने सरस्वती के इस तट पर भी आचमन किया। सरस्वती के तट पर से फिर बलराम सुभूमिक तीर्थ की ओर चले। इस तीर्थ पर नित्य नियमानुसार सुन्दरी अप्सराएँ आ २ कर बहुत सी निर्मल क्रीड़ा करती थी ॥२-३॥

तत्र देवाः सगंधर्वा मासि मासि जनेश्वर ॥४॥

अभिगच्छन्ति तत्तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम् ।

हे जनेश्वर ! गन्धर्व और देवता प्रतिमास उस ब्राह्मण से सेवित पवित्र तीर्थ पर आते रहते थे ॥४॥

तत्रादृश्यन्त गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥५॥

समेत्य सहिता राजन्यथाप्राप्तं यथासुखम् ।

हे राजन ! इस सुभूमिक तीर्थ पर इकट्ठे होकर गन्धर्व और अप्सराओं के गण अपने २ सुख के ध्यान से समय २ पर आए हुए दिखाई देते रहते थे ॥५॥

तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सुवीरुधः ॥६॥

पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः ।

यहां पर देवता और पितर, आनन्द करते थे, क्योंकि यहां पर सर्वदा सुन्दर २ लताएँ-सदा दिव्य पुष्पों से लदी रहकर बार २ अपने उन पुष्पों को बखेरती रहती हैं ॥६॥

आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा ॥७॥
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे।

हे राजन्! यह तीर्थ, इन अप्सराओं की क्रीड़ा भूमि होगया इसीसे इस सरस्वती तट के इस तीर्थ का नाम सुभूमिका पड़गया ॥७॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः ॥८॥
श्रुत्वा गीतं च तद्दिव्यं वादित्राणां च निःस्वनम्।
छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥९॥

वहां पर बलराम जी ने स्नान करके ब्राह्मणों को दान दिया वहां पर उन्होंने दिव्य गीत और बाजे सुने। उनको बहुत से देव गन्धर्व राक्षसों की छाया दिखलायी दी ॥८-९॥

गंधर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद्रोहिणीसुतः।
विश्वावसुमुखास्तत्र गंधर्वास्तपसाऽन्विताः ॥१०॥
नृत्यवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम्।
तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ॥११॥
अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा।

इसके अनन्तर रोहिणी सुत बलराम गन्धर्वों के तीर्थ पर पहुंचे। वहां पर विश्वावसु आदिक तपस्वी, गन्धर्व विद्यमान थे।

वे वहां पर बड़ा मनोहर नांचना-गाना करते थे वहां पर भी हलधर ने ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान में दिया। भेड़ बकरी गौ, खर, ऊंट, सुवर्ण चांदी, आदिका दान किया ॥१०-११॥

भोजयित्वा द्विजान्कामैः संतर्प्य च महाधनैः ॥१२॥
प्रययौ सहितो विप्रै स्तूयमानश्च माधवः।
तस्माद्गंधर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिन्दमः ॥१३॥
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली।

इस तरह ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन कराके और उनको बहुत से धनसे सन्तर्पित करके ब्राह्मणों से प्रशंसित होकर बलराम वहां से चल दिए। उस गन्धर्व तीर्थ से चलकर अरिमर्दन, महाबाहु, एक कुण्डल धारी बलराम, गर्गस्रोत महातीर्थ पर पहुंचे ॥१३॥

तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥१४॥
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः।
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥१५॥
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना।
तस्य नाम्ना च तत्तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ॥१६॥

हे जनमेजय! इसी स्थान पर तप से पवित्र आत्मा वाले वृद्ध गर्ग ने काल का ज्ञान और नक्षत्रों की गति का पता लगाया। बड़े २ उत्पात तथा कल्याण कारण चिन्हों का ज्ञान भी यहीं सरस्वती के तट पर गर्ग मुनि ने किया था। इसी से उनके नाम से यह तीर्थ गर्गस्रोत कहलाया ॥१४-१६॥

तत्र गर्गं महाभागं ऋषयः सुव्रता नृप ।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो ॥१७॥

हे नृप ! इसी स्थान पर गर्ग मुनि के पास बहुत से ऋषिमुनि काल ज्ञानकी गति सीखने के लिए आया करते थे ॥१७॥

तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।
विधिवद्धि धनं दत्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥१८॥
उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान्विप्रेभ्यो विप्रदाय सः ।
नीलवासास्तदा गच्छाच्छंखतीर्थं महायशाः ॥१९॥
तत्रापश्यन्महाशंखं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशं ऋषिसंघैर्निषेवितम् ॥२०॥

हे महाराज ! वहां से श्वेत चन्दन लगाए हुए बलराम आगे चल दिए। वहां पर उन्होंने महात्मा मुनियों को विधि-पूर्वक धन प्रदान किया। अच्छे २ भोजन पान ब्राह्मणों को किए। इस तरह महायशस्वी नील वस्त्र धारी, बलराम शंख तीर्थ पर पहुंचे। वहां उन्होंने महामेरु को भांति महाशंख पर्वत को देखा। यह श्वेत पर्वत के तुल्य ऊंचा और ऋषि समूह से सुसेवित था ॥१८-२०॥

सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।
यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥२१॥
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः ।
ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः ॥२२॥

व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते ।
प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरंतः पृथक् पृथक् ॥२३॥
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन्पुरुषर्षभ ।
एवं ख्यातो नरव्याघ्र लोकेऽस्मिन्स वनस्पतिः ॥२४॥

हे राजन् ! उसी सरस्वती नदी के तट पर ताल वृक्ष की ध्वजा वाले महाबली बलराम ने एक वृक्ष देखा। इस स्थान पर यक्ष विद्याधर अत्यन्त ओजस्वी राक्षस अत्यन्त बलवान् पिशाच तथा सहस्रों सिद्ध, भोजन छोड़कर इस वृक्ष के फल खाते थे। वे लोग भी व्रत नियम परायण थे, इससे समय २ पर ही फल खाते थे। हे पुरुषर्षभ ! ये लोग बहुत से नियमों का आचरण करते हुए, पृथक् २ घूमते थे। जिन को मनुष्य, नहीं पाते थे। हे नरव्याघ्र ! इस तरह वह तीर्थ, वृक्ष, लोक में बहुत ही प्रसिद्ध था ॥२१-२४॥

ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् ।
तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे पयस्विनी ॥२५॥
ताम्रायसानि भांडानि वस्त्राणि विविधानि च ।

वहां सरस्वती के तट पर ही लोक प्रसिद्ध पावन नामक तीर्थ था, उस तीर्थ पर यदुवंश श्रेष्ठ बलराम ने बहुत सी दुग्ध देने वाली गायों का दान किया। बहुत से तांबे के वर्तन और अनेक प्रकार के वस्त्र दान में दिए ॥२५॥

पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः ॥२६॥
पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः ।
तत्र गत्वा मुनीन्दृष्ट्वा नानावेषधरान्बलः ॥२७॥
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान् ।
तथैव दत्त्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान् ॥२८॥

हे राजन् ! इस तरह ब्राह्मणों की पूजा करके और उनसे प्रशंसा प्राप्त करके हलधर पवित्र द्वैतवन में आए। वहां पर भी बलराम ने अनेक रूप धारी मुनियों को देखा । और जल में स्नान करके ब्राह्मणों को पूजा की । उसी तरह यहां भी ब्राह्मणों को उत्तम भोग के वस्तुओं का दान किया गया ॥२६-२८॥

ततः प्रायाद्बलो राजन्दक्षिणेन सरस्वतीम् ।
गत्वा चैव महाबाहुर्नातिदूरे महायशाः ॥२९॥
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः ।
यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः सन्निवेशनम् ॥३०॥
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम् ।
ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश ॥३१॥
यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम् ।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिंचन्यथाविधि ॥३२॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर सरस्वती के दक्षिण मार्ग से बलराम चले। वहां चलकर महायशस्वी, महाबाहु, धर्मात्मा अच्युत,

बलराम नाग धन्वा तीर्थ पर पहुंचे हे महाराज ! उस तीर्थ पर महाद्युतिमान् सर्पराज वासुकि का मन्दिर बना हुआ था जिसके साथ अन्य भी बहुत से सर्प थे। वहां नित्य चौदह हजार ऋषि और देवता आकर सारे सर्पों के राजा वासुकि की यथा विधी पूजा करते थे ॥२६-३२॥

पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म पौरव ।
तत्रापि विधिवद्दत्वा विप्रेभ्यो रत्नसंचयान् ॥३३॥

हे पौरव ! वहां पर स्नान करने से सर्पों का भय नष्ट हो जाता था। वहां भी उन्होंने विधि पूर्वक ब्राह्मणों को रत्न राशि का दान किया ॥३३॥

प्रायात्प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः ।
सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे ॥३४॥
आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः ।
कृत्वोपवासनियमं दत्त्वा दानानि सर्वशः ॥३५॥
अभिवाद्य मुनींस्तान्वै तत्र तीर्थनिवासिनः ।
उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती ॥३६॥

वहां से बलराम जी सरस्वती के पूर्वी तट पर चले, वहां भी बहुत से तीर्थ थे। उन तीर्थों की लाखों की संख्या होगी। पद पद पर तीर्थ ही तीर्थ प्रसिद्ध थे। उन तीर्थों पर उन्होंने स्नान किए और ऋषियों के कथनानुसार उपवास नियम करके सबको दान

दिया। इसके अनन्तर उन तीर्थवासी मुनियों को प्रणाम करके फिर अपनी इच्छानुसार सरस्वती नदी के तट पर चल दिए ॥

प्राङ्मुखं वै निववृते वृष्टिर्वातहता यथा।
ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम् ॥३७॥

वे वहां से महात्मा नैमिषारण्य के ऋषियों के दर्शनों के लिए पूर्व मुख होकर इस तरह चले-जैसे वायु से उड़ायी वर्षा चलती है ॥३७॥

निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लांगली।
बभूव विस्मितो राजन्बलः श्वेतानुलेपनः ॥३८॥

हे राजन्! हलधारी श्वेत चन्दन लिप्त बलराम ने वहां पर लुप्त हुई सरस्वती देखी। जिसे देखकर वह बड़ा अचम्भित हुआ ॥

जनमेजय उवाच—कस्मात्सरस्वती ब्रह्मन्निवृत्ता प्राङ्मुखी भवत्
व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम ॥३९॥
कस्मिंश्चित्कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः।
निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरिद्वरा ॥४०॥

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन्! पूर्व की ओर बहती हुई सरस्वती नदी कैसे प्रवृत्त होगई। हे अध्वर्यु सत्तम! मैं इस बात की व्याख्या सुनना चाहताहूं। यदुनन्दन बलराम वहां पर किस कारण से अचम्भित हुए और नदी सरस्वती किस हेतु से वहां प्रवाहित होगई ॥३९-४०॥

वैशम्पायन उवाच—पूर्वं कृतयुगे राजन्नैमिषेयास्तपस्विनः ।

वर्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके ॥४१॥

ऋषयो बहवो राजंस्तत्सत्रमभिपेदिरे ।

उषित्वा च महाभागास्तस्मिन्सत्रे यथाविधि ॥४२॥

निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके ।

आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ॥४३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! पूर्वकाल में सत्युग के समय नैमिषारण्य निवासी तपस्वी बारह वर्ष का लम्बा यज्ञ ले बैठे। जब वह यज्ञ चल पड़ा-तो बहुत से ऋषि, उस यज्ञ में पहुंचे उन महानुभावों ने उस यज्ञ में विधि पूर्वक निवास किया। जब वह नैमिषारण्यका बारह वर्ष का यज्ञ व्यतीत हुआ-तो बहुतसे ऋषि मुनि, तीर्थ भावना से वहां पर आए ॥४१-४३॥

ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशाम्पते ।

तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥४४॥

हे विशाम्पते ! ऋषियों की अधिक संख्या होने के कारण सरस्वती नदी के दक्षिण तट के तीर्थ नगर के समान बसे हुए दिखाई देने लगे ॥४४॥

समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः ।

तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः ॥४५॥

जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम् ।

स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः ॥४६॥

हे नर व्याघ्र ! जहां तक समन्त पञ्चक तीर्थ था वहां तक ब्राह्मण आए हुए थे। ये लोग तीर्थ के लोभ से नदी के तीर पर ही पड़े थे। जब ये महात्मा ऋषि लोग, मन्त्रोच्चारण करके हवन करने लगे-तो उनके इस महान् वेदाध्ययन से सारी दिशाएँ गूंज उठी ॥४५-४६॥

अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम् ।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समंततः ॥४७॥

इन महात्मा मुनियों के किए गए देदीप्यमान अग्नि होत्र से सब ओर उत्तम सरस्वती नदी सुशोभित होगई ॥४७॥

वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः ।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये प्रसंख्यानास्तथा परे ॥४८॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः ।
नानानियमयुक्ताश्च तथास्थण्डिलशायिनः ॥४९॥
आसन्वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः ।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः ॥५०॥

हे महाराज ! वालखिल्य, तपस्वी अश्मकुट्टः दन्तोलूखली प्रसंख्यान वायुभक्षी जलाहारी, पर्णभक्षी तपस्वी वहां विद्यमान थे बहुतों ने अनेक नियम धारण कर रखे थे। उनमें बहुत से भूमि-शायी थे। सरस्वती के तट पर बहुत से मुनि थे। उनसे सरस्वती नदी देवों से गङ्गा के समान सुशोभित थी ॥४८-५०॥

शतशश्च समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः ।
तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः ॥५१॥

यहां पर यजन करने वाले सैंकड़ों की संख्या में ऋषि मुनि आए-उन व्रतशील महात्माओं के यहां कुछ भी अवकाश दिखाई नहीं देता था। सारा सरस्वती तट भर चुका था ॥५१॥

ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै ।
जुहुवुश्चाग्निहोत्रांश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ॥५२॥

अब ऋषियों ने यज्ञोपवीत धारण किए और उस स्थान को तीर्थ मान कर अग्निहोत्र तथा अन्य बहुत सी वैदिक क्रिया करने लगे ॥५२॥

ततस्तमृषिसङ्घातं निराशं चिन्तयान्वितम् ।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥५३॥
ततः कुञ्जान्बहून्कृत्वा सन्निवृत्ता सरस्वती ।
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ॥५४॥

हे राजेन्द्र! जब सरस्वती ने ऋषि समूह को निराश और चिन्तान्वित देखा—तो उनके लिए सरस्वती ने दर्शन दिए। सरस्वती ने वहां पर बहुत सी कुंजे बना दी। हे जनमेजय! ऋषियों पर कृपा करके सरस्वती वह निकली ॥५३-५४॥

ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी प्रसुस्राव सरिद्वरा ॥५५॥

हे राजन ! उन ऋषियों के निमित्त प्रवाहित होकर सरस्वती नदी फिर पश्चिम को वह निकली ॥५५॥

अमोघागमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजान्यहम् ।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन्महानदी ॥५६॥
एवं स कुञ्जो राजन्वै नैमिषीय इति स्मृतः ।

हे राजन ! इस महा नदी ने समझा, कि इन मुनियों के आगमन को सफल करके मैं फिर लौट चलूंगी । इस प्रकार उस सरस्वती ने आश्चर्य जनक कार्य कर दिखाया । हे राजन् ! इसीसे वह कुञ्ज नैमिषीय नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५६॥

कुरुश्रेष्ठ कुरुक्षेत्रे कुरुष्व महतीं क्रियाम् ॥५७॥
तत्र कुञ्जान्बहून्दृष्ट्वा निवृत्तां च सरस्वतीम् ।
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ॥५८॥

हे कुरुवंश श्रेष्ठ ! इस तरह कुरुक्षेत्र में भी बहुत सी क्रिया करके और वहां पर बहुत सी कुंजों और सरस्वती नदी को चक्कर खाकर बहती देखकर महात्मा बलराम को विस्मय हुआ था ॥

उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद्यदुनन्दनः ।
दत्त्वा दायान् द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च ।
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च ।

यदुनन्दन बलराम ने, विधि पूर्वक वहां पर भी आचमन किया और ब्राह्मणों को देने योग्य बहुत सा द्रव्य और अनेक प्रकार के पात्र दान में दिए ॥५६॥

ततः प्रायाद्बलो राजन्पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥६०॥
सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् ।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ॥६१॥
कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा ।
सरस्वतीतीर्थरुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा ॥६२॥
करूषकवरैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा ।
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम् ॥६३॥
कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम् ।
वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ॥६४॥
तथाऽश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् ।
स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ॥६५॥
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ॥६६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थ सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

हे राजन्! इस प्रकार द्विजातियों से आदरमान पाकर महाबली बलराम सरस्वती के तटवर्ती तीर्थ पर पहुंचे। इस तीर्थ

पर अनेक पक्षी शब्द कर रहे थे। बेर, इंगुदी, काश्मरी, प्लक्ष, अश्वत्थ, बहेड़ा, कङ्कोल, पलाश, करीर, पीलु आदि सरस्वती नदी के तट वर्ती अनेक प्रकार के अन्य वृक्ष, करूषक, बिल्व, आंवले, अति मुक्तक वृक्षों का समूह, और पारिजात, इन वृक्षों से वह तट सुशोभित था। जहां तक दृष्टि जाती थी, वह तट बहुत ही सुन्दर दिखाई देता था। जगह २ पर कदली वनों से सुमण्डित था। वायु, जल, फल, और पत्ते खाने वाले, दांतोंसे चाबने ऊखल से कूट कर खाने या पत्थर पर कुचल कर खाने वाले वनवासी बहुत से मुनियों से वह तट भरा पड़ा था। इस तीर्थ पर वेदाध्ययन की ध्वनि होरही थी, सैंकड़ों प्रकार के मृग फिरते थे अहिंसा व्रत धारी, धर्मात्मा मुनियों से वह बहुत ही सुसेवित था। इस सप्तसारस्वत नामक तीर्थ पर बलराम पहुंचे जहां पर पूर्वकाल में मङ्कणक सिद्ध ऋषि ने तपस्या की थी ॥६०-६३॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदा युद्ध पर्व में
सरस्वती नदी के तीर्थों पर बलराम की यात्रा के
वर्णन का सैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



अड़तीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—सप्तसारस्वतं कस्मात्कश्च मङ्कणको मुनिः

कथं सिद्धः स भगवान्कथास्य नियमोऽभवत् ॥१॥

कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद् द्विजसत्तम ॥२॥

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन्! यह तीर्थ सप्त सारस्वत क्यों कहलाया। मङ्कणक नामक महर्षि कौन था। यह महात्मा सिद्ध कैसे होगया। इसका क्या नियम था यह मुनि किस वंश में उत्पन्न हुआ और इसने क्या पढ़ा था। हे द्विजसत्तम! मैं इन सब बातों को सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥

वैशम्पायन उवाच—राजन्सप्तसरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत्

आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥३॥

सुप्रभा कांचनाक्षी च विशाला च मनोरमा।

सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका ॥४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! सरस्वती सात नदी मानी गई हैं। जिन से जगत् व्याप्त होरहा है। जो २ बलवान् व्यक्ति हुआ उसी ने अपने २ आश्रम में सरस्वती का आह्वान किया। सुप्रभा काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, सरस्वती ओघवती सुरेणु और विमलोदका-ये सात सरस्वती कहाती हैं ॥३-४॥

पितामहस्य महतो वर्तमाने महामखे ।
वितते यज्ञवाटे च संसिद्धेषु द्विजातिषु ॥५॥
पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा ।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन्यज्ञविधौ तदा ॥६॥
तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे ।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥७॥
मनसा चिंतिताह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा ।
उपतिष्ठंति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ॥८॥
जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा ॥९॥

एक बार पितामह ब्रह्मा के जब महा यज्ञ का आरम्भ हुआ-तो यज्ञ स्थान का विस्तार किया गया-वहां बड़े, २ सिद्ध द्विजाति उपस्थित थे। वहां पर पुण्याहवाचन की वेद ध्वनि होरही थी। इस यज्ञ विधि में जब देवता व्याग्र होगए-और पितामह ब्रह्मायज्ञ दीक्षा में बैठे-तो हे महाराज ! सारी कामनाओंसे समृद्ध शाली उस यज्ञ द्वारा यजन करते हुए ब्रह्मा, के मन से चिन्तित अर्थ वहां उपस्थित होने लगे। हे राजेन्द्र ! धर्म और नीति कुशल व्यक्ति, ब्राह्मणों की सेवा में उपस्थित हुए। वहां गन्धर्व गाने और अप्सराएँ नांचने लगी तथा दिव्य बाजे बड़े वेग से बजने लगे॥

तस्य यज्ञस्य संपत्त्या तुतुषुर्देवता अपि ।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः ॥१०॥

इस यज्ञ की सम्पत्तियों को देखकर देवता सन्तुष्ट होगए-इन को भी बड़ा अचम्भा हुआ फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या थी ॥१०॥

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे ।
अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः ॥११॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।

हे राजन ! इस यज्ञ को पितामह ब्रह्मा पुष्कर में कर रहे थे । तब ऋषियों ने कहा-कि इस यज्ञ में अधिक गुण नहीं है, क्योंकि यहां पर सरस्वती श्रेष्ठ नदी नहीं है ॥११॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥१२॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्नातत्र सरस्वती ॥१३॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम् ।
पितामहं मानयंतीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥१४॥

इतना सुनकर भगवान् ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सरस्वती का स्मरण किया । यज्ञ दीक्षा में स्थित पितामह ने वहां सरस्वती का आह्वान किया । हे राजेन्द्र ! वहां सुप्रभा नाम की सरस्वती नदी है । उस शीघ्रता से बहने वाली सरस्वती को

देखकर मुनिगण बड़े प्रसन्न हुए। उसने पितामह ब्रह्मा का बड़ा आदर किया। मुनियों ने इस यज्ञ को बहुत माना ॥१२-१४॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती।
पितामहार्थं संभूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥१५॥

इस तरह यह नदी श्रेष्ठ सरस्वती पुष्कर में ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए और मुनियों के सन्तोष को उत्पन्न हुई ॥१५॥

नैमिषे मुनयो राजन्समागम्य समासते।
यत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर ॥१६॥

हे जनेश्वर! इस नैमिष क्षेत्र में आकर मुनि स्थित होते थे और विचित्र कर्म धर्म कथा करते तथा वेद का स्वाध्याय करते थे ॥१६॥

यत्र ते मुनयो ह्यासन्नानास्वाध्यायवेदिनः।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥१७॥

वहां अनेक वेदों के पढ़ने वाले मुनि थे। वे मुनि वहां आकर सरस्वती का स्मरण करने लगे ॥१७॥

सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः।
समागतानां राजेन्द्र सहायार्थं महात्मनाम् ॥१८॥
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती।
नैमिषे कांचनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् ॥१९॥
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता।

हे महाराज ! यज्ञ कर्ता मुनियों ने यज्ञ देखने आएहुए व्यक्तियों की सहायता के लिए फिर सरस्वती का ध्यान किया। वहां पर भी महाभागा पवित्र नदी सरस्वती चली आई। हे भारत ! नैमिषारण्य में जो यज्ञ कर्ता मुनियों ने सरस्वती का आह्वान किया-वह काञ्चनाक्षी कहलायी। हे भारत ! वहां पर भी इस श्रेष्ठ नदी की बड़ी उपासना हुई ॥१८-१९॥

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥२०॥
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥२१॥
सरित्सा हिमवत्पार्श्वात्प्रसुता शीघ्रगामिनी।

गय नामक यजमान् के गय नामक स्थान पर जब महायज्ञ हो रहा था। तो राजा गय के उस यज्ञ में भी सरस्वती का आह्वान किया गया, व्रतशील ऋषियों ने उस सरस्वती का नाम विशाला रक्खा। यह हिमालय के पार्श्व से निकल कर वहां पहुंची थी ॥२०-२१॥

औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत ॥२२॥
समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा।
उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन्महात्मनः ॥२३॥
उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ॥२४॥

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनवृतैः ।
मनोरमेऽति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ॥२५॥

हे भारत ! जब कोसल देश के उत्तर भाग में उद्दालक ऋषि के पुत्र यज्ञ करने लगे। उस यज्ञ में बहुत से मुनियों का मण्डल इकट्ठा हुआ। वहां पर उद्दालक मुनि ने यज्ञके समय सरस्वती का ध्यान किया-मुनि के कारण उसी स्थान पर सरस्वती नदी चली। वहां पर वल्कल मृगचर्मधारी मुनियों ने उनकी पूजा की। उद्दालक मुनि के चिन्तन से उसको प्राप्त किया-इससे उसका नाम मनोरमा हुआ ॥२१-२५॥

सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते ।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥२६॥
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती ।

राजर्षियोंसे सुसेवित पवित्र ऋषभ द्वीपमें सुरेणु वाली सरस्वती विख्यात हुई। यहां राजा कुरु यजमान बना। उस महावीर के यज्ञ स्थान कुरुक्षेत्र में यह महाभागा उत्तम नदी सरस्वती आई॥

ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना ॥२७॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती ।

हे राजेन्द्र ! महात्मा वसिष्ठ ने दिव्य जल वाली ओघवती नामक सरस्वती नदी भी कुरुक्षेत्र में ही आह्वानित की ॥२७॥

दक्षेण यजता चापि गंगाद्वारे सरस्वती ॥२८॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी ।

गया द्वार पर ब्रह्म ने यज्ञ का आरम्भ किया। वहां पर सुरेणु नामक शीघ्र गामिनी सरस्वती नदी वह निकली ॥२८॥

विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ॥२९॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ।
एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ॥३०॥
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि।
इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ॥३१॥
सप्तसारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम्।

ब्रह्मा ने जब यज्ञ किया-तो भगवती विमलोदका नदी वह निकली, जब इनका आह्वान किया-तो ये सात पुण्य युक्त नदियां हिमालय पर्वत पर चली गई। इकट्ठी होकर ये उस तीर्थ पर पहुंची जिससे इस तीर्थ का नाम पृथिवी पर सप्त सारस्वत तीर्थ होगया अर्थात सरस्वती के सात प्रवाह वहां पहुंचे इससे वह तीर्थ सप्त सारस्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२९-३१॥

शृणु मंकणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ॥३२॥
आपगामवगाढस्य राजन्प्रक्रीडितं महत्।
दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमंभसि भारत ॥३३॥
स्नायंतीं रुचिरापाङ्गीं दिग्वाससमनिंदिताम्।

हे राजन्! अब तुम मङ्कणक का वृत्तान्त सुनो! यह बालब्रह्मचारी था। एक दिन यह बहुत देर तक नदी में स्नान करता रहा हे भारत! वहां उसने जल में नहाती हुई अचानक एक स्त्री देखी

जिसके बड़े सुन्दर नेत्र प्रान्त थे। वह सुन्दरी इस समय नग्न होकर नहा रही थी ॥३२-३३॥

सरस्वत्यां महाराज चस्कंदे वीर्यमंभसि ॥३४॥
तद्रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ।

हे महाराज! उस नंगी स्त्री को देखकर उस महातपस्वी मंकणक का वीर्य सरस्वती नदी में निकल पड़ा। मुनि ने उस वीर्य को घड़े में रख लिया ॥३४॥

सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ॥३५॥
तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः ।
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ॥३६॥
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान् ।
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥३७॥

कलश में स्थित उस वीर्य के सात विभाग होगए जिससे सात ऋषि उत्पन्न हुए जिनको मरुत् गण भी कहते हैं। वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और वायुचक्र ये इनके नाम थे-इस प्रकार ये वायु के जनन करने वाले ऋषि उत्पन्न हुए ॥३५-३७॥

इदमत्यद्भुतं राजन् शृण्वाश्चर्यतरं भुवि ।
महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥३८॥

हे राजन्! अब तुम पृथिवी पर आश्चर्य जनक अत्यन्त अद्भुत महर्षि का चरित सुनो। इसका यह चरित तीनों लोक में विख्यात है ॥३८॥

पुरा मंकणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम्।
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ॥३९॥
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान्।
ततस्तस्मिन्प्रनृते वै स्थावरं जंगमं च यत् ॥४०॥
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम्।

हे राजन्! एक बार मङ्कणक सिद्ध के हाथ में कुशा का कांटा लग गया तो उस हाथ से शाक का रस टपकने लगा। महर्षि मङ्कणक, इस शाक रस को देखकर हर्षोन्मत्त होगया और वह नांचने लगा। हे वीर! जब यह मुनि नांचने लगा-तो उसके तेज से मोहित होकर स्थावर जंगम-दोनों प्रकार का जगत् नांच उठा ॥

ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ॥४१॥
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप।
नायं नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥४२॥

हे नराधिप! अब ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनियों ने ऋषि को शान्त करने को महादेव जी से प्रार्थना की। हे देव! यह मुनि जिस तरह अपना नांच बन्द करदे आप वही प्रयत्न करो॥

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह ।

सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ॥४३॥

महादेव ने जब हर्षोन्मत्त मुनि मङ्कणक को नांचते देखा-तो देवों के कार्य की सिद्धि के लिए उससे कहा ॥४३॥

भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।

हर्षस्थानं किमर्थं च तदेवमधिकं मुने ॥४४॥

तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ।

हे धर्मज्ञ ! ब्राह्मण ! आप किस लिए नांच रहे हो । हे मुने ! तुम्हें क्या हर्ष की बात दिखाई दे रही है । हे द्विज सत्तम ! तुम को तपस्वियों के धर्म पथ में स्थित हो ॥४४॥

ऋषिरुवाच—किं न पश्यसि मे ब्रह्मन्कराच्छाकरसं स्रुतम् ।

यं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो ।

ऋषि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! क्या आपको दिखाई नहीं देता, कि मेरे हाथ से शाकरस टपक रहा है । मैं तो इसी को देखकर हर्षोन्मत्त होकर नांच रहा हूँ ।.४५॥

तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥४६॥

अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम् ।

राग मोहित मुनि को देखकर भगवान शङ्कर ने हंसकर कहा—हे विप्र ! मुझे इसको देखकर कोई विस्मय नहीं होता है ॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता ॥४७॥
अंगुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वांगुष्ठस्ताडितोऽभवत् ।
ततो भस्म क्षताद्राजन्निर्गतं हिमसन्निभम् ॥४८॥
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो राजन्स मुनिः पादयोर्गतः ।
मेने देवं महादेवमिदं चोवाच विस्मितः ॥४९॥

हे राजेन्द्र ! मुनि श्रेष्ठ, मंकणक से इतना कहकर महाज्ञानी, महादेव ने अपनी अंगुलि के अग्रभाग से अपने अंगुष्ठ को रगड़ा । हे राजन ! उस क्षत से बर्फ के समान उज्ज्वल भस्म निकल पड़ी । उस भस्म को देखकर मुनि लज्जित होगया और महादेव जी के चरणों में गिर पड़ा । उसने सबसे बड़ा देव महादेव समझ लिया और वह चकित होकर कहने लगा ॥४७-४९॥

नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात्परतरं महत् ।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ॥५०॥

हे भगवन् ! अब मैं आप रुद्र से श्रेष्ठ, किसी अन्य देव को नहीं मानूंगा । तुम शूलधारी रुद्र ही सुर और असुर सबकी गति हो ॥५०॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः ।
त्वामेव सर्वं विशति पुनरेव युगक्षये ॥५१॥
देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ।
त्वयि सर्वे स्म दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिताः ॥

मनीषी लोग, इस संसार को तुमसे ही रचा हुआ मानते हैं जब युगक्षय होता है, तब सारे तुम में ही प्रवेश कर जाते हैं आपको देवता भी जानने में समर्थ नहीं है। जितने जगत् में भाव हैं वे सब आपके भीतर स्थित हैं ॥५१-५२॥

त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोऽनघ।
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह ॥५३॥
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः।

हे अनघ! आप वरदायी देव हैं। ब्रह्मादि देव आप की ही उपासना करते हैं। देवों के सारे कार्यों का कर्ता-धर्ता तू ही है। तुम्हारी कृपा से ही सारे देवता आनन्दित रहकर निडर घूमते हैं ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽभवत् ॥५४॥
यदिदं चापलं देव कृतमेतत्स्मयादिकम्।
ततः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति ॥५५॥

हे राजन्! इस प्रकार स्तुति करके वह ऋषि, शिव को झुकता चला गया। हे देव! मैंने जो चपलता या जो कुछ अहङ्कार दिखाया आप उसे क्षमा करो-अब मैं तुमको प्रसन्न करता हूँ-कि मेरा तप क्षीण न हो ॥५४-५५॥

ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत्।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥५६॥

महादेव प्रसन्न होगए और उस ऋषि से कहने लगे। हे विप्र! तेरे तप की वृद्धि मेरे अनुग्रह से सहस्रों प्रकार से होती रहे ॥५६॥

आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा।
सप्तसारस्वते चास्मिन्यो मामर्चिष्यते नरः ॥५७॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद्भवितेह परत्र वा।
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः ॥५८॥

हे ऋषे! अब मैं तुम्हारे साथ ही इस आश्रम में निवास करूंगा। इस सप्त सारस्वत नामक तीर्थ में जो मेरा पूजन करेगा, उसको इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। तथा वे सारस्वत नामक लोक को जावेंगे इसमें सन्देह न समझो ॥

एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः।
स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेव० सारस्वतोपाख्याने अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

यह अत्यन्त तेजस्वी मङ्कणक मुनि का चरित तुमको सुनाया इन मुनि का जन्म मातरिश्वा द्वारा सुकन्या में हुआ था ॥५६॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदा पर्व में सारस्वतोपाख्यान के वर्णन का अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ

उनतालीसवां अध्याय

वैशंपायन उवाच—उषित्वा तत्र रामस्तु सम्पूज्याश्रमवासिनः

तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! उस समय सारस्वत स्थान में बलराम ने निवास किया और आश्रम वासियों की पूजा की। हलधर बलराम नें मङ्कणक मुनि में बड़ी भक्ति दिखाई ॥१॥

दत्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च।

पूजितो मुनिसङ्घैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली ॥२॥

अनुज्ञाप्य मुनीन्सर्वान्स्पृष्ट्वा तोयं च भारत।

प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः ॥३॥

हे भारत ! बलराम ने द्विजातियों को दान दिया। मुनि संघों से आदर सत्कार पाकर एक रात उन्होंने वहां निवास किया। अब महाबली बलराम ने सारे मुनियों से आज्ञा ली और जल का आचमन करके तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से शीघ्रता के साथ गमन किया ॥२-३॥

ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः।

कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥४॥

महता शिरसा राजन्ग्रस्तजंघो महोदरः।

राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥५॥

इसके बाद बलराम उशना ऋषि के कपाल मोचन नामक तीर्थ पर पहुंचे जहां पर महोदर मुनि ने दुःख से मुक्ति प्राप्त की थी हे महाराज ! पूर्वकाल में रामचन्द्रजी ने इसी स्थान पर किसी राक्षस को मारा था। उसका विशाल शिर मुनि की जंघा में जुड़ गया ॥४-५॥

तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ॥६॥
यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम्।

महात्मा शुक्राचार्य के हृदय में सारी नीति का प्रादुर्भाव यहीं पर हुआ। शुक्राचार्य ने, दैत्य और दानवों से होने वाले युद्ध का सारा स्वरूप यहीं सोचा था ॥६॥

तत्प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम् ॥७॥
विधिवद्धै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम्।

हे राजन ! बलराम ने इस उत्तम तीर्थ पर पहुंच कर विधि पूर्वक महात्मा ब्राह्मणों को दान दिया ॥७॥

जनमेजय उवाच—कपालमोचनं ब्रह्मन्कथं यत्र महामुनिः ॥
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना।

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! कपाल मोचन नामक कौन सा तीर्थ है। यहां महोदर मुनि ने किस प्रकार दुःख से छुटकारा पाया इसकी जंघा में किस कारण से किसी का शिर लग गया ॥८॥

वैशम्पायन उवाच—पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना
वसता राजशार्दूल राक्षसान्शमयिष्यता ।
जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ॥१०॥
क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने ।
महोदरस्य तल्लग्नं जङ्घायां वै यदृच्छया ॥११॥
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वा स्फुरत्तदा ।

वैशम्पायन बोले—हे राजशार्दूल पूर्वकाल में महावीर रामचन्द्र जी ने राक्षसों का नाश करने के लिए दण्डकारण्य में वास किया था। उन्होंने जन स्थान में किसी दुरात्मा राक्षस का तीक्ष्ण धार वाले क्षुरसंज्ञक बाण से शिर काट डाला। हे राजन वह महोदर नामक मुनि वन में विचर रहा था, इससे अचानक वह शिर उसकी जंघा में लग गया। वह शिर जंघा की अस्थि को भेद कर वहीं जम गया ॥९-११॥

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ॥१२॥
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ।
स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः ॥१३॥

उस मस्तक के जंघा में लग जाने से महाबुद्धिमान् वह मुनि चलनेमें बड़ा क्लेश पानेलगा। वह तीर्थ और धर्म स्थानोंके जानने में बहुत ही असमर्थ होगया। इसकी जंघा में दुर्गन्ध युक्त पूय (मवाद) टपकने लगा जिससे उस महा मुनि को बड़ी वेदना हुई इसी क्लेश में भी वह पृथिवी पर सारे तीर्थों पर घूमता रहा ॥

जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां चेति नः श्रुतम् ।
स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः ॥१४॥
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान् ॥१५॥

महातपस्वी महोदर सारी नदी और समुद्रों पर पहुंचा। उसने सारे महात्मा मुनियों को वह सारी दुःख पूर्ण कथा सुनाई । वह सारे ही तीर्थों पर घूमा-परन्तु उसकी जंघा से वह मस्तक नहीं छूटा ॥१२-१५॥

स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत् ।
सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा ॥१६॥
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ।
स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः ॥१७॥
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा ।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा ॥१८॥
विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह ।

हे विप्रेन्द्र ! उस मुनि ने अन्य मुनियों से यह वचन सुना कि सरस्वती नदी पर औशनस नामक सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। उसपर सारे पाप छूट जाते हैं, यह बड़ा ही उत्तम सिद्धि क्षेत्र है। वह महा मुनि, उस औशनस तीर्थ पर पहुंचा। वहां उस औशनस तीर्थ पर महोदर मुनि ने, स्नान आचमन किया। अब वह शिर उस

उस चरण को छोड़कर जल के भीतर गिर गया। जब उसका वह शिर छुटकर गिर गया तो उसे बड़ा सुख की प्राप्ति हुई ॥१६-१७॥

स चाप्यन्तर्जले मूर्धा जगामादर्शनं विभो ॥१८॥
ततः स विशिरा राजन्पूतात्मा वीतकल्मषः।

हे विभो! वह मस्तक भी उस जल में चला गया और वहां वह अलक्षित हो गया। हे राजन्! उस शिर विहीन राक्षस के भी पाप नष्ट होगए और वह शुद्धात्मा बन गया ॥१९॥

आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः। २०॥
सोऽथ गत्वाऽऽश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः।
कथयामास तत्सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥२१॥

महातपस्वी महोदर मुनि भी कृत्य कृत्य होकर प्रसन्नता के साथ अपने आश्रम पर पहुंचा। उस शिर से छुटकारा पाकर पवित्र आश्रम में जाकर महोदर ने उस सारी कथा को बड़े २ मुनियों को सुनाई ॥२०-२१॥

ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥२२॥

हे मानद! उन मुनियों ने जब उस मुनि से यह कथा सुनी तो इस तीर्थ का नाम कपालमोचन रख दिया ॥२२॥

स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः।
पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमायात्तदा मुनिः ॥२३॥

इसके बाद महोदर मुनि फिर उसी तीर्थ पर गए और उसका स्नान जलपान करके सिद्धि को प्राप्त हुए ॥२३॥

तत्र दत्वा बहून्दायान्विप्रान्संपूज्य माधवः ।
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा ॥२४॥
यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत ।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥२५॥

वृष्णिवंशोद्भव बलराम ने वहां बहुतसा दान दिया और ब्राह्मणों की पूजा की। इसके अनन्तर बलराम, रुषङ्गु ऋषि के आश्रम पर पहुंचे। हे भारत यहीं पर ऋष्टिषेण के पुत्र ने घोरतप किया था। यहीं पर महामुनि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ॥२४-२५॥

सर्वकामसमृद्धं च तदाश्रमपदं महत् ।
मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो ॥२६॥

हे विभो! यह आश्रम सारी कामनाओं का दान देने वाला है। सदा मुनि और ब्राह्मण इसकी सेवा करते रहते हैं ॥२६॥

ततो हलधरः श्रीमान्ब्राह्मणैः परिवारितः ।
जगाम तत्र राजेन्द्र रुषंगुस्तनुमत्यजत ॥२७॥

हे राजेन्द्र! इसके बाद श्रीमान बलराम ब्राह्मणों से घिरे वहां पहुंचे, जहां पर रुषङ्गु मुनि ने प्राण छोड़े थे ॥२७॥

रुषंगुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनिष्ठश्च भारत ।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा ॥२८॥

हे भारत ! यह रुषङ्गु ब्राह्मण वृद्ध और तपोनिष्ठ थे। इन्होंने अपना देह के परित्याग के विषय में बहुतसा विचार किया॥

ततः सर्वानुपादाय तनयान्वै महातपाः।
रुषंगुरब्रवीत्तत्र नयध्वं मां पृथूदकम् ॥२९॥

महातपस्वी रुषङ्गु ने अपने सारे पुत्रों को बुलाकर कहा कि तुम लोग मुझे सरस्वती नदी के पृथूदक नामक तीर्थ पर पहुंचा दो।

विज्ञायातीतवयसं रुषंगुं ते तपोधनाः।
तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥३०॥

इन तपोधन मुनियों ने भी रुषङ्गु मुनि को वृद्ध समझ लिया था, इससे ये उस तपोधन मुनि को लेकर सरस्वती के तीर्थ पर पहुंच गए ॥३०॥

स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम्।
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसंघैर्निषेविताम् ॥३१॥
स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः ॥३२॥

हे राजन् ! जब वे पुत्र उन महात्मा मुनि को विप्रसमूह से सेवित सैकड़ों तीर्थों से युक्त पवित्र सरस्वती पर ले आए तो वहां उस महातपस्वी ने, विधिपूर्वक स्नान किया। इस महामुनि ने तीर्थ के गुणों को जानकर यह वचन कहा ॥३१-३२॥

सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान्पुत्रानुपासतः।
सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥३३॥
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वो मरणं तपेत्।

हे पुरुष व्याघ्र! उसने अपनी सेवा करते हुए अपने पुत्रों से प्रीतिपूर्वक कहा—जो सरस्वती नदी के उत्तर तीर पर अपना शरीर छोड़ेगा। तथा इस पृथूदक पर मरेगा-उसको दूसरे जन्म धारण करने का कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा ॥३३॥

तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः ॥३४॥
दत्त्वा चैव बहून्दायान्विप्राणां विप्रवत्सलः।

धर्मात्मा बलराम ने यहां स्नान करके आचमन किया। विप्र पूजक बलराम जी ने यहां ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया।

ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः ॥३५॥
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः।
तपसा महता राजन्प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥३६॥

भगवान् लोक पितामह ब्रह्मा ने यहां बैठकर सृष्टि उत्पन्न की थी। हे कौरव्य! राजन! ऋषिसत्तम व्रतशील आर्ष्टिषेण ने यहीं पर महान् तप करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ॥३५-३६॥

सिंधुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः।
ब्राह्मण्यं लब्धवान्यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥३७॥

राजर्षि सिन्धु द्वीप और महातपस्वी देवापि तथा महामुनि विश्वामित्र ने भी यहीं पर तप करके ब्राह्मण पदवी प्राप्त की ॥३७॥

महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महातपाः ।
तत्राजगाम बलवान्बलभद्रः प्रतापवान् ॥३८॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां
सारस्वतोपाख्याने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

महातपस्वी प्रतापवान् भगवान् बलभद्र जी बड़े तप करने वाले अत्यन्त तेजस्वी महानुभाव हैं। वे अब इस पृथूदक नामक तीर्थ पर आ पहुंचे ॥३८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तगत गदापर्व में बलदेव
तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में सारस्वतोपाख्यान का
उनतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



चालीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः
सिंधुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा ॥१॥
देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन्परं कौतूहलं हि मे ॥२॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! भगवान् आर्ष्टिषेण ने किस प्रकार यहां उग्रतप किया और सिन्धु द्वीप ने कैसे ब्राह्मण पदवी

प्राप्त की। हे द्विज सत्तम! देवापि तथा विश्वामित्र ने कैसे ब्राह्मण पद पाया-हे भगवन्! यह सब कुछ सुनाओ इसके सुनने की मेरे चित्त में बड़ी ही आकांक्षा है ॥१-२॥

वैशंपायन उवाच—पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः।

वसन्गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! पूर्वकाल में सतयुग में एक आर्ष्टिषेण नामक ब्राह्मण थे। वो गुरुकुल में वास करके नित्य वेदाध्ययन में परायण रहता था ॥३॥

तस्य राजन्गुरुकुले वसतो नित्यमेव च।

समाप्तिं नागमद्विद्या नापि वेदा विशाम्पते ॥४॥

हे विशाम्पते! वह गुरुकुल में बहुत दिन तक रहा, परन्तु उसको विद्या ही समाप्त न हो सकी। और न वेदाध्ययन ही पूरा हुआ ॥४॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः।

ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान् ॥५॥

हे राजन्! जब यह दशा होगई-तो वह महातपस्वी घबरा गया और तप करने लगा। उस तप के कारण उसको उत्तम वेदों की प्राप्ति हुई ॥५॥

स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः।

तत्र तीर्थे वरान्प्रादात्त्रीनेव सुमहातपाः ॥६॥

अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्य प्रभृति मानवः ।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥७॥

अब वह ऋषि, विद्वान्, वेदपाठी, सिद्ध होगया। उस महा-तपस्वी आर्ष्टिषेण ने तीन वरदान उस तीर्थ के विषय में दिए। कि जो मनुष्य, इस महा नदी के इस तीर्थ में आज से नहाया करेगा उसको महान् अश्वमेध यज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त होगा ॥६-७॥

अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद्भविष्यति ।
अपि चाल्पेन कालेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥८॥

अबसे आगे यहां पर कोई सर्प बाधा न होगी और यहां थोड़े दिन के निवास से ही महान् फल की प्राप्ति होगी ॥८॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः ।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥९॥

वह महातेजस्वी मुनि, इस प्रकार कहकर स्वर्ग चला गया। इस प्रकार प्रतापी भगवान् आर्ष्टिषेण सिद्ध होगए ॥९॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिंधुद्वीपः प्रतापवान् ।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत् ॥१०॥

हे महाराज! इसी तीर्थ पर स्नान करके प्रतापी सिन्धुद्वीप और देवापि ने ब्राह्मण पदवी प्राप्त की ॥१०॥

तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेन्द्रियः ।
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥११॥

हे तात ! कुशिक पुत्र जितेन्द्रिय महातपस्वी विश्वामित्र ने भी तप किया, उस उत्तम तप के कारण ही विश्वामित्र ने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया ॥११॥

गाधिर्नाम महानासीत्क्षत्रियः प्रथितो भुवि ।

तस्य पुत्रोऽभवद्राजन् विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥१२॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत्किल ।

गाधि नामक एक प्रसिद्ध पृथिवी पर क्षत्रिय हुआ है । उसी गाधि का पुत्र प्रतापी विश्वामित्र मुनि हुए हैं । हे तात ! यह कुशिक पुत्र विश्वामित्र बड़े महायोगी हुए हैं ॥१२॥

सपुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः ॥१३॥

देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः ।

न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान्महाभयात् ॥१४॥

महातपस्वी गाधि ने अपने पुत्र विश्वामित्र को राजसिंहासन पर बिठाकर अपने शरीर के त्यागने का विचार किया । उससे प्राण परायण प्रजा ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! तुम अपने शरीर का त्याग न करो । हमको इस महाभय से छुटकारा दो ॥१३-१४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः ।

विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम ॥१५॥

इतना कहने पर गाधि ने अपनी प्रजा से कहा—कि सारे जगत् की यह मेरा पुत्र रक्षा करेगा ॥१५॥

इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च ।
जगाम त्रिदिवं राजन्विश्वामित्रोऽभवन्नृपः ॥१६॥
न स शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम् ।
ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम् ॥१७॥
निर्ययौ नगराच्चापि चतुरंगबलान्वितः ।

हे राजन ! राजा गाधि इतना कहकर और विश्वामित्र को राज्य सिंहासन पर बैठा कर स्वर्ग को चला गया । इसके बाद विश्वामित्र राजा बना यह बड़ा प्रयत्न करता था, परन्तु पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो पाता था। राजा विश्वामित्र ने अपने राज्य में राक्षसों से महाभय की खबर सुनी वह चतुरङ्गिणी सेना लेकर नगर से चल दिया ॥१६-१७॥

स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात् ॥१८॥
तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान्बहून् ।
ततस्तु भगवान्विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात् ॥१९॥
ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं महावनम् ।

जब यह बहुत दूर निकल गया—तो वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचा । हे राजन ! वहां पर इसके सैनिकों ने बहुत से अन्याय किए। थोड़ी देर बाद भगवान् विश्वामित्र वहां आए। उसने आकर अपने सारे उपवन को उजड़ा हुआ देखा ॥१८-१९॥

तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥२०॥
सृजस्व शबरान्घोरानिति स्वां गामुवाच ह ।

हे महाराज ! इसपर मुनि सत्तम वसिष्ठ जी कुपित होगए। उसने अपनी गौ को आज्ञा दी, कि तुम भयङ्कर शबरों की रचना करो ॥२०॥

तथोक्ता साऽसृजद्धेनुः पुरुषान्घोरदर्शनान् ॥२१॥
ते तु तद्बलमासाद्य बभंजुः सर्वतो दिशम् ।

इतना सुनते ही गौ ने, भयानक आकार धारी पुरुष रच डाले उन्होंने विश्वामित्र की सेना को सब ओर से घेर कर छिन्न भिन्न कर दिया ॥२१॥

तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः ॥२२॥
तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे ।

गाधिपुत्र ने जब अपनी सेना को छिन्न भिन्न देखा—तो उस ने तप को श्रेष्ठ मानकर तप करना आरम्भ किया ॥२२॥

सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन्सरस्वत्याः समाहितः ॥२३॥
नियमैश्चोपवासैश्च कर्षयन्देहमात्मनः ।

हे राजन् ! उसने इसी सरस्वती नदी के तीर्थ पर समाहित होकर तप कर डाला। इसने नियम उपवासों से अपनी देह को सुखा डाला ॥२३॥

जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च सोऽभवत् ॥२४॥
तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक् ।

असकृत्तस्य देवास्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ॥२५॥
न चास्य नियमाद् बुद्धिरपयाति महात्मनः ।
ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः ॥२६॥
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत ।

अब यह केवल जलाहार, पर्णाहार और वायु का भक्षण करके रहने लगा। यह पृथिवी में सोने लगा। इसी तरह के अन्य भी बहुत से तप कर डाले। देवों ने लगातार प्रयत्न करके इसका तप भङ्ग करना चाहा, परन्तु इस महात्मा विश्वामित्र की बुद्धि जप नियम से पृथक् नहीं हुई। जब इसने परम यत्नवान् होकर बहुत प्रकार का तप किया-तो वह गाधिपुत्र विश्वामित्र तेज से सूर्य के समान चमक उठा ॥२४-२६॥

तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः ॥२७॥
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत् ।

जब पितामह ब्रह्मा ने, विश्वामित्र को तप से युक्त देखा-तो वरदायी महातेजस्वी ब्रह्मा ने इसको वरदान देना चाहा ॥२७॥

स तु वव्रे वरं राजन्स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति ॥२८॥
तथेति चाब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।

हे राजन्! उसने ब्रह्मा से वरदान मांगा, कि मैं ब्राह्मण होजाऊं तो सब लोक के पितामह ब्रह्माने, उसको कहा-अच्छी बात है ऐसा ही होगा ॥२८॥

स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ॥२९॥
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः ।

महायशस्वी विश्वामित्र अपने उग्रतप से ब्राह्मणत्व प्राप्त करके कृतार्थ हुआ। देवता की तरह सारी पृथिवी पर घूमने लगा ॥२९॥

तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ॥३०॥
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च ।

बलराम ने उस तीर्थ पर बहुत सा दान दिया । उसने दूध देने वाली गाय, था यान और शयनों का दान किया ॥३०॥

अथ वस्त्राण्यलंकारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम् ॥३१॥
अददन्मुदितो राजन्पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।

हे राजन् ! वहां ब्राह्मणों की पूजा करके बलराम जी ने उन को वस्त्रालङ्कार और सुन्दर २ भोजन पान का प्रसन्नता पूर्वक दान दिया ॥३१॥

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात् ॥३२॥
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वान्तर्गदापर्वणि बलदेवतीर्थ० सारस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

हे राजन ! इसके बाद बलराम जी बक नामक ऋषि के आश्रम के समीप पहुंचे। वहां पर दाल्भ्य पुत्र बक ने बहुत ही तीव्र तप किया था, यह सुना जाता है ॥३३॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलदेव तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में सारस्वतोपाख्यान का चालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



इकतालीसवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—ब्रह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः।

यत्र दाल्भ्यो बको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन अब ब्रह्मयोनि नामक तीर्थ के समीप अवाकीर्ण तीर्थ पर यदुनन्दन बलराम पहुंचे, जहां पर महातपस्वी दल्भ्य पुत्र बक ने आश्रम बनाकर तप किया था ॥१॥

जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः।

तपसा घोररूपेण कर्षयन्देहमात्मनः ॥२॥

क्रोधेन महताऽऽविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान्।

विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के राष्ट्र को घोर तप करके और अपनी देह को सुखा कर महाप्रतापी धर्मात्मा दाल्भ्य बक ने क्रोध की अग्नि में भस्म करदेना चाहा ॥२॥

पुरा हि नैमिषीयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥३॥
वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन् ।
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनस्विनः ॥४॥
बलान्वितान्वत्सतरान्निर्व्याधीनेकविंशतिम् ॥५॥
तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ।
पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम् ।

पूर्वकाल में नैमिषारण्य में बारह वर्ष तक का एक लम्बा यज्ञ छेड़ दिया जब यह विश्वजित् नामक यज्ञ सम्पूर्ण हुआ-तो ऋषि लोग, पञ्चाल देश में पहुंचे। उन मनस्वी ऋषियों ने अपने यज्ञ की समाप्ति की दक्षिणा वहां के राजा से मांगी। वहां से उनको बलवान् व्याधिरहित इक्कीस नौजवान बछड़े दान में मिले। उन ऋषियों से दाल्भ्य बक ने कहा—कि इनको तुम बांट लो। मैं इन पशुओं को छोड़कर किसी राजा से अन्य पशु मांगलूंगा ॥३-५॥

एवमुक्त्वा ततो राजनृषीन्सर्वान्प्रतापवान् ॥६॥
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः ।
स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥७॥
अयाचत पशून्दाल्भ्यः स चैनं रुषितोऽब्रवीत् ।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः ॥८॥
एतान्पशून्नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि ।

हे राजन्! महाप्रतापी ब्राह्मण श्रेष्ठ, दल्भ्य पुत्र बक सारे ऋषियों से इतना कहकर राजा धृतराष्ट्र के भवन पर पहुंचा।

उसने राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर पशुओं की याचना की-तो राजा धृतराष्ट्र क्रोध में भरकर बोला। इस समय इनके यहां अचानक कुछ बैल मर गए थे। यह नृपोत्तम उन मृत पशुओं को देखकर कहने लगा—हे ब्रह्म बन्धो यदि आपकी पशुओं की इच्छा है-तो आप इन पशुओं को लेजावें ॥६-८॥

ऋषिस्तथा वचः श्रुत्वा चिन्तयामास धर्मवित् ॥९॥
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि सांसदि ।

धर्मात्मा ऋषि ने जब यह वचन सुना तो विचार किया, कि इस दुष्ट ने मुझ से बड़ा अनुचित वचन कहा है ॥९॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तेन रोषाविष्टो द्विजोत्तमः ॥१०॥
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः ।

इतना सोचकर द्विज श्रेष्ठ, दाल्भ्य बक क्रोध में भर गया और इसने राजा धृतराष्ट्र के नाश करने का विचार किया ॥१०॥

स तूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः ॥११॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा ।
अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम् ॥१२॥
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमं स्थितः ।
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः ॥१३॥

उस मुनि श्रेष्ठ ने, उन मृत पशुओं की खाल उखाड़ी और राजा धृतराष्ट्र के राष्ट्र का हवन कर दिया। हे महाराज! दाल्भ्य

पुत्र बक ने परम नियम में स्थित होकर और अग्नि जला कर सरस्वती नदी के अवाकीर्ण तीर्थ पर यह सब कुछ किया । महा-तपस्वी बक ने, उस मांस के साथ २ राजा धृतराष्ट्र का राष्ट्र भस्म कर दिया ॥१२-१३॥

तस्मिंस्तु विधिवत्सत्रे सम्प्रवृत्ते सुदारुणे ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥१४॥

हे राजन् ! ज्योंही दल्भ्य पुत्र बक का यज्ञ सम्पूर्ण हुआ-त्योंही राजा धृतराष्ट्र का राष्ट्र क्षीण होने लगा ॥१४॥

ततः प्रक्षीयमाणं तद्राज्यं तस्य महीपतेः ।
छिद्यमानं यथाऽनन्तं वनं परशुना विभो ॥१५॥
बभूवापद्गतं तच्च व्यवकीर्णमचेतनम् ।
दृष्ट्वा तथावकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः ॥१६॥
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः ।

राजा धृतराष्ट्र का विशाल राज्य भी इस तरह क्षीण होने लगा जैसे- विस्तृत वन को कुल्हाड़े से काट फैंका जाता है । हे राजन् ! अब सारा राष्ट्र आपत्ति में फंस कर अचेतन होगया और बिखर गया । राजा धृतराष्ट्र, अपने राष्ट्र को इस प्रकार छिन्न भिन्न देख-कर बहुत उदास हुए और विचार करने लगे ॥१५-१६॥

मोक्षार्थमकरोद्यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा ॥१७॥
न च श्रेयोऽध्यगच्छत्तु क्षीयते राष्ट्रमेव च ।

राजा धृतराष्ट्र ने अपने राष्ट्र को क्षीण होने से बचाने के लिए प्रयत्न करना चाहा, परन्तु उसको कोई कल्याण का मार्ग न मिला और उसका राष्ट्र क्षीण ही होता चला गया ॥१७॥

यदा स पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदाऽनघ ॥१८॥
यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोक्षयितुं नृप ।
अथ वै प्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥१९॥
ततो वै प्राश्निकाः प्राहुः पशुं विप्रकृतस्त्वया ।
मांसैरभिजुहोतीति तव राष्ट्रं मुनिर्बकः ॥२०॥
तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान् ।
तस्यैतत्तपसः कर्म येन तेऽद्य लयो महान् ॥२१॥
अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव ।

हे अनघ ! जब राजा धृतराष्ट्र और सारे ब्राह्मण राष्ट्र की क्षीणता का उपाय करते २ थक गए-और राष्ट्र को उस संकट से बचाने में समर्थ नहीं होसके-तो उन्होंने ज्योतिषियों को बुलाया । हे जनमेजय, अब ज्योतिषियों ने कहा कि तुमने पशु मांगने को आए हुए किसी ब्राह्मण का अपराध किया है । बक नामक मुनि मांस का हवन करके तुम्हारे राष्ट्र का हवन कर रहा है । उसी बक मुनि के हवन करने से राष्ट्र का यह महान क्षय होरहा है । यह सब उसीके तप का काम है, जो यह क्षय होरहा है । हे राजन् ! तुम सरस्वती नदी के जल के समीप तट पर जाकर उस मुनि को प्रसन्न करो ॥१८-२१॥

सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत् ॥२२॥
निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ॥२३॥

राजा धृतराष्ट्र सरस्वती नदी के तट पर पहुंचे, और वहां बक मुनि से कहने लगे । हे भगवन्! आप अनुग्रह करके मेरे अपराध को क्षमा करें। मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ ॥२२-२३॥

मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः ।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥२४॥

मैं दीन लोभी और मूर्खता से मोहित होरहा हूं। तुमही मेरी गति और मेरे स्वामी हो-आप मेरे ऊपर कृपा करो ॥२४॥

तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम् ।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत् ॥२५॥

जब बक मुनि ने, शोक से व्याकुल होकर राजा धृतराष्ट्र को इस प्रकार रोते चिल्लाते देखा-तो उसपर अनुग्रह किया और उस के राष्ट्र को नष्ट होने से मुक्त कर दिया ॥२५॥

ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत्संरंभं च विहाय सः ।
मोक्षार्थं तस्य राज्यस्य जुहाव पुनराहुतिम् ॥२६॥

बक मुनि राजा पर प्रसन्न होगए और उसपर किये हुए क्रोध का उपसंहार कर लिया। मुनि ने उसके राष्ट्र को छोड़ देने को फिर अग्नि में आहुति डाली ॥२६॥

मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून्बहून् ।

हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः ॥२७॥

बक मुनि, राजा धृतराष्ट्र के राष्ट्र को छोड़कर और उससे बहुत से पशु लेकर बड़ी प्रसन्नता से नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुंचा ॥२७॥

धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः ।

स्वमेव नगरं राजन्प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥२८॥

हे राजन् ! महामनस्वी धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी बड़ा प्रसन्न हुआ और वह ऋद्धिशाली अपने नगर में लौटकर पहुंचा ॥२८॥

तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः ।

असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥२९॥

मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः ।

दैवतैरपिसम्भग्ना जितकाशिभिराहवे ३०॥

हे महाराज ! इसी तीर्थ पर महा बुद्धिमान बृहस्पति ने असुरों के नाश और देवों के विजय के लिए मांस से हवन किया इससे सारे दैत्यों का विनाश होगया और विजयाभिलाषी देवों ने रण में असुरों को मार भगाया ॥२९-३०॥

तत्रापि विधिवद्दत्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ।

वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥३१॥

रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम् ।

महायशस्वी बलराम ने वहां पर भी विधि-पूर्वक ब्राह्मणों को हाथी घोड़े, और घोड़ियों से युक्त रथ प्रदान किए। बड़े रत्न धन, और पुष्कल धान्य, भी दान में दिए ॥३१॥

ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥३२॥
तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥३३॥

हे पृथिवी पते! इसके अनन्तर महाबाहु बलराम, ययाति तीर्थ पर पहुंचे-हे महाराज! जहां पर महात्मा नहुष पुत्र ययाति के यज्ञ में सरस्वती नदी ने, घृत, दुग्ध का प्रवाह छोड़ाथा ॥३२-३३

तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः।
अक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान् ॥३४॥

पुरुष श्रेष्ठ राजा ययाति ने वहां यज्ञ किया और उन यज्ञों के प्रभाव से प्रसन्नता के साथ उत्तम उत्तम ऊर्ध्व लोकों को सदेह गमन किया ॥३४॥

पुनस्तत्र च राज्ञस्तु ययातेर्यजतः प्रभोः।
औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम् ॥३५॥
ददौ कामान्ब्राह्मणेभ्यो यान्यान्यो मनसेच्छति।
यो यत्र स्थित एवेह आहूतो यज्ञसंस्तरे ॥३६॥
तस्य तस्य सरिच्छेष्ठा गृहादि शयनादिकम्।
षड्रसं भोजनं चैव दानं नानाविधं तथा ॥३७॥

हे राजन्! शक्तिशाली राजा ययाति के यज्ञ करने पर उसने बहुत ही उदारता दिखाई। और आत्मा के विषय में भक्ति का निदर्शन किया। इस यज्ञ में जिस ब्राह्मण को बुला लिया और वह आकर स्थित होगया तथा उसने जो मन से कामना की-वे सारी कामना।ययाति ने पूर्ण की। इस सरस्वती नदी ने प्रत्येक ब्राह्मण को उसकी इच्छा के अनुकूल घर शय्या आदि क प्रदान की षड्रस भोजन और नाना प्रकार के दान दिए ॥२५-२७॥

ते मन्यमाना राज्ञस्तु सम्प्रदानमनुत्तमम् ।
राजानं तुष्टुवुः प्रीता दत्वा चैवाशिषः शुभाः ॥२८॥

उन ब्राह्मणों ने यह सारा दान उसी राजा ययाति का समझा। उन्होंने राजा की बड़ी प्रशंसा की और उसे बड़ी शुभ आशीषें प्रदान की ॥२८॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य सम्पदा ।
विस्मिता मानुषाश्चासन्दृष्ट्वा तां यज्ञसम्पदम् ॥२६॥

उस यज्ञ के ऐश्वर्य से देव और गन्धर्व प्रसन्न होगए। उस यज्ञ के वैभव को देखकर मनुष्य लोग, बड़े ही विस्मित हुए॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतुर्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः ।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थ० सारस्वतोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

इसके अनन्तर तालवृक्ष की ध्वजा वाले, बड़े धर्मात्मा, महात्मा, कृती, महादानी, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय, बलराम, बड़े वेग से वसिष्ठापवाह नामक तीर्थ पर पहुंचे ।।४०।।

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदा युद्ध पर्व में
बलदेव के तीर्थ यात्रा प्रसङ्ग में सरस्वती उपाख्यान
का इकतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



बयालीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ भीमवेगः कथं नु सः
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत् ।।१।।

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! वशिष्ठापवाहक तीर्थ कैसे बना। यह भीमवेग कैसे कहलाया। इस सरस्वती नदी ने वसिष्ठ किस कारण से बहाया, जिससे इस तीर्थ का नाम वसिष्ठापवाहक हुआ ।।१।।

कथमस्याऽभवद्वैरं कारणं किं च तत्प्रभो ।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि कथ्यति ।।२।।

हे प्रभो ! उस मुनि और सरस्वती नदी का क्या वैर उत्पन्न होगया । उसका क्या कारण था। हे महाप्राज्ञ ! मैं आपसे पूछ

रहा हूँ आप बतावें। आपकी इस कथा के सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥२॥

वैशंपायन उवाच—विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत ।

भृशं वैरमभूद्राजंस्तपः स्पर्धाकृतं महत् ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ का बहुत ही अधिक वैर बढ़ गया था। इनके तप के विषय में स्पर्धा चल पड़ी थी ॥३॥

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान् ।
पूर्वतः पार्श्वतश्चासीद्विश्वामित्रस्य धीमतः ॥४॥

वसिष्ठ ऋषि का महान् आश्रम स्थाणु तीर्थ के पूर्व की ओर बना हुआ था। और उसके पार्श्व में विश्वामित्र मुनि का आश्रम था ॥४॥

यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान्परमं तपः ।
तत्रास्य कर्म तद्घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५॥

यत्रेष्ट्वा भगवान्स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
स्थापयामास तत्तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो ॥६॥

हे महाराज! वहीं पर भगवान् शङ्कर ने परम तप किया। मनीषीगण, उनके घोर तप का वर्णन करते रहते हैं। भगवान् शङ्कर ने ही यहां पर यज्ञ किया और सरस्वती नदी की पूजा की। इन्होंने इस स्थाणु तीर्थ की स्थापना की तभी से यह तीर्थ स्थाणु तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है ॥५-६॥

तत्र तीर्थे सुराः स्कंदमभ्यषिंचन्नराधिप ।
सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम् ।।७।।

हे नराधिप ! उसी तीर्थ पर देवों ने स्कन्द की पूजा की। उनको सेनापति बनाया, जिससे देवों के शत्रु दानवों का पराजय किया जा सके ।।७।।

तस्मिन्सारस्वते तीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः ।
वसिष्ठं चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु ।।८।।

इसी सारस्वत तीर्थ पर महामुनि विश्वामित्र ने अपने उग्र तप से सञ्चालित कर दिया-तुमको मैं यह कथा सुनाता हूं। तुम ध्यान से सुनो ।।८।।

विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत ।
स्पर्धां तपः कृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ ।।९।।

हे भारत ! विश्वामित्र और वशिष्ठ ये दोनों महातपस्वी परस्पर स्पर्धा करके तीव्र तप करने लगे ।।९।।

तत्राप्यधिकसंतापो विश्वामित्रो महामुनिः ।
दृष्ट्वा तेजो वसिष्ठस्य चिन्तामभिजगामह ।।१०।।

इस समय महामुनि विश्वामित्र अधिक सन्तापित थे। वे वसिष्ठमुनि के तेज को देखते बड़ी ही चिन्ता को प्राप्त हुए ।।१०।।

तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद्धर्मनित्यस्य भारत ।
इयं सरस्वती तूर्णंमत्समीपं तपोधनम् ।।११।।

आनयिष्यति वेगेन वसिष्ठं तपतां वरम् ।
इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ॥१२॥

हे भारत ! धर्म परायण विश्वामित्र की यह बुद्धि हुई कि यह सरस्वती तपोधन वसिष्ठ को बहाकर मेरे पास वेग से ले आवे । यदि यह ले आवे-तो मैं यहां आने पर वसिष्ठ मुनि को मारे बिना न छोड़ूं ॥११-१२॥

एवं निश्चित्य भगवान्विश्वामित्रो महामुनिः ।
सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१३॥

महामुनि भगवान् विश्वामित्र ने जब यह विचार किया तो क्रोध में रक्त नेत्र करके विश्वामित्र ने सरस्वती नदी का स्मरण किया ॥१३॥

सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह ।
जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपं च भाविनी ॥१४॥

विश्वामित्र के स्मरण करते ही सरस्वती नदी व्याकुल हो उठी । इस महाभागा ने महाशक्तिशाली विश्वामित्र को अत्यन्त कुपित कर दिया ॥१४॥

तत एनं वेपमाना विवर्णा प्रांजलिस्तदा ।
उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती ॥१५॥
हतवीरा यथा नारी साऽभवद् दुःखिता भृशम् ।
ब्रूहि किं करवाणीति प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥१६॥

सरस्वती नदी के मुख का वर्ण फीका पड़ गया और कांपती हुई हाथ जोड़ कर विश्वामित्र मुनि के पास आई। यह इतनी दुःखी थी, जितनी दुःखी अपने पुत्र के मर जाने पर स्त्री होती है। उसने आकर मुनीश्वर विश्वामित्र से कहा-मुझे क्या करना है। आज्ञा दीजिये ॥१५-१६॥

तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय।
यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी ॥१७॥

क्रोध में भरे हुए मुनि विश्वामित्र ने कहा कि तुम शीघ्र वसिष्ठ मुनिको बहाकर लाओ, मैं उसे मार डालना चाहता हूं। यह सुनकर नदी बहुत ही क्लेशित हुई ॥१७॥

प्राञ्जलिं तु ततः कृत्वा पुंडरीकनिभेक्षणा।
प्राकम्पत भृशं भीता वायुनेवाहता लता ॥१८॥

कमल के समान नेत्रों वाली सरस्वती हाथ जोड़कर खड़ी होगई और वह अत्यन्त भयभीत होकर वायु से आहत लता की भांति कांपने लगी ॥१८॥

तथारूपां तु तां दृष्ट्वा मुनिराह महानदीम्।
अविचारं वसिष्ठं त्वमानयस्वान्तिकं मम ॥१६॥

इस प्रकार सरस्वती नदी को भयभीत देखकर भी महामुनि विश्वामित्र ने कहा, हे सरस्वती! तुम कुछ विचार न करो और वसिष्ठ को मेरे पास लेआओ ॥१६॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा पापं चिकीर्षितम् ।
वसिष्ठस्य प्रभावं च जानन्त्यप्रतिमं भुवि ॥२०॥
साऽभिगम्य वसिष्ठं च इदमर्थमचोदयत् !
यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता ॥२१॥
उभयोः शापयोर्भीता वेपमाना पुनः पुनः ।
चिन्तयित्वा महाशापमृषिवित्रासिता भृशम् ॥२२॥

सरस्वती ने विश्वामित्र के वचन सुने और उसकी पाप चेष्टा का पता लगा लिया। वह वसिष्ठ के पास पहुंची और उनसे यह भेद खोल दिया, क्योंकि यह वसिष्ठ के पृथिवी पर अद्भुत प्रभाव को जानती थी। महाशक्तिशाली विश्वामित्र ने सरस्वती नदी से जो कहा था, उसके कारण वह कांप रही थी, क्योंकि वह तो दोनों ओर के शाप से भयभीत थी। उसने दोनों के महा शाप का ध्यान किया-तो वह बहुत ही क्लेशित होउठी ॥२०-२२॥

तां कृशां च विवर्णां च दृष्ट्वा चिन्तासमन्विताम् ।
उवाच राजन्धर्मात्मा वसिष्ठो द्विपदां वरः ॥२३॥

हे राजन् ! उस सरस्वती नदी को कृशवर्ण हीन, चिन्ता युक्त देखकर मनुजश्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ उससे कहने लगे ॥२३॥

वसिष्ठ उवाच— पाह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे वह मां शीघ्रगामिनी
विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥

वसिष्ठ बोले—हे उत्तम नदी ! सरस्वती ! तुम अपनी रक्षा करो और मुझे बहा ले चलो अन्यथा विश्वामित्र तुमको शाप दे देगा। तुम मेरी कुछ चिन्ता न करो ॥२४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित्।
चिन्तयामास कौरव्य किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥२५॥
तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना वसिष्ठो मय्यतीव हि।
कृतवान्हि दयां नित्यं तस्य कार्यं हितं मया ॥२६॥

हे कौरव्य ! कृपाशील वसिष्ठ मुनि के वचन सुनकर वह नदी विचारने लगी, कि ऐसा कौनसा कर्म है, जिसके करनेसे मुझे पुण्य प्राप्त हो अर्थात वसिष्ठ की रक्षा हो। वसिष्ठ मुनि ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। यह विचार उसके हृदय में नित्य आता रहता था। अब मुझे इसका हित सम्पादन करना चाहिए ॥२५-२६॥

अथ कूले स्वके राजन्जपन्तमृषिसत्तमम्।
जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥२७॥
इदमन्तरमित्येवं ततः सा सरितां वरा।
कूलापहारमकरोत्स्वेन वेगेन सा सरित् ॥२८॥
तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत।
उह्यमानः स तुष्टाव तदा राजन्सरस्वतीम् ॥२९॥
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति।
व्याप्तं चेदं जगत्सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥३०॥

त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वाश्चापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहि ॥३१॥
पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा ।
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं तवायत्तमिदं जगत् ॥३२॥
त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ।

हे राजन्! अपने ही तट पर सरस्वती नदी ने जप और हवन करते हुए विश्वामित्र मुनि को देखा। तो उसने विचारा कि यह अच्छा अवसर है। इस समय उसने अपना तट तोड़ दिया और वेग से वह नदी, उस तट खण्ड पर मित्रावरुण पुत्र वसिष्ठ मुनि को बैठाकर चलदी। उस तट खण्ड पर बैठा हुआ वसिष्ठ मुनि, सरस्वती की स्तुति करने लगा। कि-हे सरस्वती! तुम पितामह ब्रह्मा के सरोवर से उत्पन्न हुई हो, तुम्हारे ही उत्तम जल से यह सारा जगत् व्याप्त होरहा है। हे देवि! तुम ही आकाश गामिनी होकर मेघों में जल भरती हो। सारे जल तुम्हारे ही रूप हैं हम लोग तुम्हारे ही तट पर वेदाध्ययन करते हैं। तुम ही पुष्टि, द्युति, कीर्ति सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी, और स्वाहा हो। तुम्हारे अधीन ही सारा जगत् है। तुमही चार प्रकार के सारे प्राणियों में चार प्रकार से निवास करती हो ॥२९-३२॥

एवं सरस्वती राजंस्तूयमाना महर्षिणा ॥३३॥
वेगेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥३४॥

हे राजन! जब इस प्रकार सरस्वती नदी की स्तुति की-तो सरस्वती नदी वेग से वसिष्ठ मुनि को विश्वामित्र के आश्रम की ओर लेचली। और वहां जाकर विश्वामित्र से कहा, कि मैं वसिष्ठ मुनि को ले आई हूँ ॥२३-२४॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः।
अथान्वेषत्प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥२५॥

सरस्वती द्वारा लाए हुए वसिष्ठ मुनि को देखकर कोप में भरे हुए विश्वामित्र मुनि, वसिष्ठ के अन्त करने वाले, किसी शस्त्र की खोज करने लगे ॥२५॥

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्मवध्याभयान्नदी।
अपोवाह वसिष्ठं तु प्राचीं दिशमतंद्रिता ॥२६॥
उभयोः कुर्वती वाक्यं वंचयित्वा च गाधिजम्।

जब सरस्वती ने विश्वामित्र को क्रोधातुर देखा-तो वह ब्रह्म-हत्या के भय से डर गई और वसिष्ठ मुनि को बड़ी सावधानी से पूर्व दिशा की ओर बहा लेचली उसने दोनों के वाक्य पूरे कर दिए और गाधि पुत्र विश्वामित्र को तो चकमा भी दे दिया ॥२६॥

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥२७॥
अब्रवीदुःखसंक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः।
यस्मान्मां त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वंचयित्वा पुनर्गता ॥२८॥
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसंमतम्।

जब क्रोध शील विश्वमित्र ने, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ को बह कर पूर्व दिशा को निकल जाते देखा-तो दुःख और क्रोध के साथ उसने कहा—हे कल्याणि ! सरस्वती ! तूने मुझे धोखा देकर वसिष्ठ को निकाल दिया, इससे अब तू रक्त समान जल को धारण कर जिसे राक्षस या गांव के आदमी ग्रहण किया करेंगे ॥३७-३८॥

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ॥३९॥
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ।

इस प्रकार शक्तिशाली विश्वामित्र ने सरस्वती नदी को शाप दिया, जिससे उसमें एक वर्ष तक रक्त मिश्रित जल बहता रहा॥३९॥

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ॥४०॥
सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ।

इसके बाद जब ऋषि देवता, गन्धर्व और अप्सराओं ने सरस्वती को इस तरह रक्त युक्त देखा-तो वे बड़े ही क्लेशित हुए ॥

एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप ।
आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा ॥४१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां
सारस्वतोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

हे जनाधिप! इस तरह यह वसिष्ठापवाहक नामक तीर्थ बन गया। सरस्वती नदी, फिर अपने मार्ग पर इसी तरह बहने लगी ॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलदेव तीर्थ यात्रा प्रसङ्ग में सरस्वती तीर्थ वर्णन का बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



तेतालीसवां अध्याय

वैशंपायन उवाच—सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वामित्रेण धीमता

तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥१॥

अथाजग्मुस्ततो राजन्राक्षसास्तत्र भारत।

तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥२॥

तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः।

नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥३॥

वैशम्पायन बोले—हे भारत! जब क्रोधातुर बुद्धिमान् विश्वामित्र ने सरस्वती को शाप देदिया तो सरस्वती जैसे उत्तम स्वच्छ तीर्थ में रक्त बहने लगा। हे राजन्! अब वहां राक्षस आने लगे वे वहां पर रक्त का पान करते और सुख प्राप्त करते थे। वे अत्यन्त तृप्त होते थे और सारी चिन्ताओं से छुटकारा पाकर आनन्द मनाते थे। वे राक्षस इस तरह नांचने हंसने लगे, जैसे उनको स्वर्ग प्राप्त होगया हो ॥१-३॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते ॥४॥

हे महीपते ! कुछ तपोवन ऋषि, तीर्थयात्रा करने चले और इन विद्वान् तपस्वी मुनि श्रेष्ठों ने प्रत्येक तीर्थ में स्नान किया और बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥४॥

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्वाप्लुत्य मुनिपुङ्गवाः ।
प्राप्य प्रीतिं परां चापि तपोलुब्धा विशारदाः ॥५॥
प्रययुर्हि ततो राजन्येन तीर्थमसृग्वहम् ।
अथागम्य महाभागास्तत्तीर्थं दारुणं तदा ॥६॥
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्याः शोणितेन परिप्लुतम् ।
पीयमानं च रक्षोभिर्बहुभिर्नृपसत्तम ॥७॥
तान्दृष्ट्वा राक्षसान्राजन्मुनयः संशितव्रताः ।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥८॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर ये मुनि, रक्तके बहाने वाले सरस्वती तीर्थ पर पहुंचे तो वहां उन्होंने सरस्वती का जल रक्त मिश्रित देखा। बहुत से राक्षस उस जल का पान कररहे थे। हे राजन ! जब उन व्रतशील मुनियों ने उन राक्षसों को उस स्थान पर रक्त पान करते देखा-तो वे सरस्वती तीर्थ के उद्धार में बड़ा प्रयत्न करने लगे ॥ -८॥

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥९॥

कारणं ब्रूहि कल्याणि कमर्थं ते ह्रदो ह्ययम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वाऽऽव्यास्यामहे वयम् ॥१०॥

इन महाभाग, महाव्रत शील मुनियों ने आकर और नदी श्रेष्ठ सरस्वती को बुलाकर यह वचन कहा-हे कल्याणि ! तुम यह बताओ कि तुम्हारी धारा रक्त कैसे होगई। इसका कारण जानकर इसके मिटाने का हम प्रयत्न करेंगे ॥९-१०॥

ततः सा सर्वमाचष्ट यथावृत्तं प्रवेपती ।
दुःखितामथ तां दृष्ट्वा ऊचुस्ते वै तपोधनाः ॥११॥
कारणं श्रुतमस्माभि शापश्चैव श्रुतोऽनघे ।
करिष्यन्ति तु यत्प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः ॥१२॥
एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेऽथ परस्परम् ।
विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम् ॥१३॥

इनके पूछने पर कांपती २ सरस्वती नदी ने सारा वृत्तान्त (विश्वामित्र का शाप) सुना दिया। इस प्रकार सरस्वती नदी को क्लेशित देखकर उन तपोधन मुनियों ने कहा-हे अनघे ! हमने कारण सुन लिया और विश्वामित्र का शाप भी जान लिया। अब हम तपस्वी लोग इस समय जो उचित होगा-वही करेंगे और इस शाप से हम सब लोग, तुम सरस्वती को छुड़ाकर रहेंगे। १-१३।

ते सर्वे ब्राह्मणा राजंस्तपोभिर्नियमैस्तथा ।
उपवासैश्च विविधैर्यमैः कष्टव्रतैस्तथा ॥१४॥

आराध्य पशुभर्तारं महादेवं जगत्पतिम् ।
मोक्षयामासुस्तां देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ॥१५॥
तेषां तु सा प्रभावेण प्रकृतिस्था सरस्वती ।
प्रसन्नसलिला जज्ञे यथापूर्वं तथैव हि ॥१६॥
निर्मुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा ।

हे राजन्! अब वे सारे ब्राह्मण, तप नियम, अनेक उपवास, यम कठिन व्रतों से सारे जगत् के पति पशुपति महादेव का आराधन करने लगे। उन्होंने उस उत्तम नदी सरस्वती को इस शाप से छुड़ा दिया। उन मुनियों के प्रभाव से वह नदी फिर पूर्ववत बहने लगी। उसका पूर्व के समान वैसा ही स्वच्छ सलिल बहने लगा। जब नदी शाप मुक्त होगई-तो पूर्ववत् सुशोभित होने लगी ॥

दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथाकृतम् ॥१७॥
तानेव शरणं जग्मू राक्षसाः क्षुधितास्तथा ।
कृत्वाञ्जलिं ततो राजन्राक्षसाः क्षुधयाऽर्दिताः ॥१८॥
ऊचुस्तान्वै मुनीन्सर्वान् कृपायुक्तान्पुनः पुनः ।
वयं च क्षुधिताश्चैव धर्माद्धीनाश्च शाश्वताद् ॥१९॥
न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः ।

हे राजन्! जब राक्षसों ने नदी का जल स्वच्छ देखा-तो भूख से व्याकुल होकर वे राक्षस, उनही कृपाशील मुनियों की शरण में

पहुंचे और बार २ कहने लगे, कि हम लोग सरस्वती के स्वच्छ करदेने से भूखे मरने लगे। हम लोग सनातनधर्म से भी भ्रष्ट हो चुके हैं। हम लोग जो पाप करते हैं, यह हमारी अभिलाषा नहीं है ॥१७-१६॥

युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ॥२०॥
यत्पापं वर्धतेऽस्माकं यतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः।
योषितां चैव पापेन योनिदोषकृतेन च ॥२१॥

तुम लोगोंके अनुग्रह नहीं करने और हमारे दुष्कर्मों से हमारे पाप बढ़ गए हैं। स्त्रियों के पाप तथा योनि दोष(व्यभिचार) के कारण हम लोग ब्रह्म राक्षस बन गए हैं ॥२०-२१॥

एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च।
ये ब्राह्मणान्प्रद्विषंति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥२२॥

जो वैश्य शूद्र और क्षत्रिय, ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, वे राक्षस होजाते हैं ॥२२॥

आचार्यमृत्विजं चैव गुरुं वृद्धजनं तथा।
प्राणिनो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः ॥२३॥

जो प्राणी, आचार्य, ऋत्विक्, गुरु और वृद्ध जनोंका अपमान करते हैं वे भी राक्षस बनते हैं ॥२३॥

तत्कुरुध्वमिहास्माकं तारणं द्विजसत्तमाः।
शक्ता भवंतः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ॥२४॥

हे द्विजोत्तमो ! अब आप हमारे उद्धार का उपाय करें आप लोग तो सारे लोकों के उद्धार में समर्थ हैं ॥२४॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः ॥२५॥

उन मुनियों ने जब उन ब्रह्मराक्षसों के वचन सुने-तो उस महा नदी सरस्वती की स्तुति करने लगे । उन्होंने उन राक्षसों की मुक्ति के लिए प्रयत्न शील होकर कहा ॥२५॥

क्षुतं कीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाचितं भवेत् ।
सकेशमवधूतं च रुदितोपहतं च यत् ॥२६॥
एभिः संसृष्टमन्नं च भागोऽसौ रक्षसामिह ।
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान्यत्नाद्विवर्जयेत् ॥२७॥
राक्षसान्नमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते ह्यन्नमीदृशम् ।

टूटे हुए, कीड़े खाए हुए, उच्छिष्ट [शेष] केश युक्त, दुर्गन्ध युक्त रोदन से प्राप्त (लूट आदि में प्राप्त) अन्न, राक्षसों का भाग होगा । विद्वान् को चाहिए कि ऐसे अन्न से यत्न पूर्वक बचता रहे जो मनुष्य, उपर्युक्त अन्न खाता है, वह राक्षसान्न खाता है २६-२७॥

शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ॥२८॥
मोक्षार्थं राक्षसानां च नदीं तां प्रत्यचोदयन् ।

उन तपोधन ऋषियों ने उस तीर्थ को शुद्ध कर दिया और फिर उन नदी को राक्षसों की मुक्ति के लिए प्रेरणा की ॥२८॥

महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरितां वरा ॥२६॥

अरुणामानयामास स्वां तनुं पुरुषर्षभ ।

तस्यां ते राक्षसाः स्नात्वा तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः ॥

हे पुरुषर्षभ ! वह उत्तम नदी सरस्वती महर्षियों की इच्छा को समझ गई और उसने उन राक्षसों की मुक्ति के निमित्त अरुणा नामक अपनी दूसरी धारा को प्रवाहित किया। उस धारा में राक्षसों ने स्नान किया और वे अपने राक्षसी शरीर को छोड़ कर स्वर्ग लोक चले गए ॥२६-३०॥

अरुणायां महाराज ब्रह्मवध्यापहा हि सा ।

एतमर्थमभिज्ञाय देवराजः शतक्रतुः ॥३१॥

तस्मिंस्तीर्थे वरे स्नात्वा विमुक्तः पाप्मना किल ।

हे महाराज ! अरुणा नामक सरस्वती की धारा ब्रह्महत्या के छुड़ाने वाली है। इस धारा के इस महत्व को जानकर देवराज इन्द्र ने उस उत्तम तीर्थ में स्नान करके अपने ब्रह्महत्या रूप पाप से मुक्ति प्राप्त की है ॥३१॥

जनमेजय उवाच—किमर्थं भगवान् शक्रो ब्रह्मवध्यामवाप्तवान्

कथमस्मिंश्च तीर्थे वै आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् ।

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान इन्द्र को किस कारण से ब्रह्महत्या प्राप्त हुई और किस तरह उसने इस तीर्थ में स्नान करके अपने पाप को धो डाला ॥३२॥

वैशंपायन उवाच—शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथा वृत्तं जनेश्वर ॥

यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ।

वैशम्पायन बोले—हे जनेश्वर ! अब तुम प्रथम इस उपाख्यान को सुनलो जिस तरह इन्द्र ने नमुचिदैत्य से अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग की ॥३३॥

नमुचिर्वासवाद्भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ॥३४॥

तेनेन्द्रः सख्यमकरोत्समयं चेदमब्रवीत् ।

एक बार नमुचि इन्द्र से डरकर सूर्य किरणों में घुस गया। इन्द्र ने उससे मित्रता करके यह प्रतिज्ञा की ॥३४॥

न चार्द्रेण न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि ॥३५॥

वधिष्याम्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे ।

हे असुर श्रेष्ठ ! सखे ! तुम मुझसे क्यों डर रहेहो, मैं तुमको आर्द्र (गीले) शुष्क, रात, दिन, ऐसे किसी भी समय में नहीं मारूंगा-यह मै सत्य की शपथ करके कहता हूं ॥३५॥

एवं स कृत्वा समयं दृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ॥३६॥

चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः ।

हे राजन ! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भी बलवान् इन्द्र ने कुहरा पड़ने के समय जलफेन से नमुचि का शिर काट गिराया ॥

तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वियात् ॥३७॥

भो भो मित्रहन् पापेति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात् ।

यद्यपि इन्द्र ने नमुचि का शिर काट डाला-तो भी वह कटा हुआ ही शिर, इन्द्र के पीछे २ फिरने लगा। और कहता रहता था, अरे मित्रहन ! पापी इन्द्र ! कहां जा रहा है ॥३७॥

एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ॥३८॥
पितामहाय संतप्त एतमर्थं न्यवेदयत् ।

जब उस नमुचि के शिर ने बार २ इन्द्र को इसतरह कलङ्कित किया-तो उसने दुःखी होकर पितामह ब्रह्मा से यह बात कही ॥३८॥

तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि ॥३९॥
इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र तीर्थे पापभयापहे ।
एषा पुण्यजला शक्र कृता मुनिभिरेव तु ॥४०॥
निगूढमस्यागमनमिहासीत्पूर्वमेव तु ।

लोकपूज्य ब्रह्मा ने, उससे कहा—हे देवेन्द्र ! तुम अरुणा नदी के पाप नाशक तीर्थ पर यज्ञ करके उसमें स्नान करो। हे इन्द्र ! इस अरुणा धारा को मुनियों ने पुण्यजल नदी बना दी है । पूर्वकाल में इसका आगमन बड़ी गुप्त रीति से हुआ था ॥३९-४०॥

ततोऽभ्येत्यारुणां देवीं प्लावयामास वारिणा ॥४१॥
सरस्वत्याऽरुणायाश्च पुण्योऽयं संगमो महान् ।

इसके अनन्तर अरुण नदी पर पहुंच कर इन्द्र ने उसके जल से अपना प्रक्षालन किया। सरस्वती और अरुणा नदी का यह संगम स्थान बड़ा ही पवित्र है ॥४१॥

इह त्वं यज देवेन्द्र दद दानान्यनेकशः ॥४२॥
अत्राप्लुत्य सुघोरात्त्वं पातकाद्विप्रमोच्यसे ।

हे इन्द्र ! तुम यहां भजन करो और अनेक प्रकार के दान दो इसमें स्नान करने से तुम घोर पातक से छुटकारा पाजाओगे ॥४२॥

इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय ॥४३॥
इष्ट्वा यथावद्बलभिदरुणायामुपास्पृशत् ।
समुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्मवध्याकृतेन च ॥४४॥
जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदशेश्वरः ।

हे जनमेजय ! जब ब्रह्माजी ने इतना कहा—तो इन्द्र सरस्वती के कुञ्ज पर पहुंचे, बलासुर के नाशक इन्द्र ने वहां विधि पूर्वक यज्ञ किया और अरुणा नदी में स्नान और आचमन भी किया उस आचमन से इन्द्र, उस ब्रह्महत्या रूप पाप से छुटकारा पागया। इसके बाद त्रिदशेश्वर इन्द्र, प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग को चलागया ॥

शिरस्तच्चापि नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
लोकान्कामदुघान्प्राप्तमक्षयान् राजसत्तम ॥४५॥

हे भारत ! नमुचि दैत्य के मस्तक ने भी उसी धारा में स्नान किया। हे राजसत्तम ! उस स्नान के पुण्य से उस दैत्य ने भी अक्षय कामना के देने वाले, अक्षय लोकों को प्राप्त किया ॥४५॥

वैशंपायन उवाच—

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा दत्वा च दानानि पृथग्विधानि ।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा जगाम सोमस्य महत्सुतीर्थम् ॥४६॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! परमार्थ कर्मकर्ता महात्मा बलराम ने वहां भी स्नान आचमन किया और अनेक प्रकार के दान दिए। वहां के पुण्य फल को प्राप्त करके फिर हलधर सोम नामक उत्तम तीर्थ पर पहुंचे ॥४६॥

यत्रायजद्राजसूयेन सोमः साक्षात्पुरा विधिवत्पार्थिवेन्द्र ।
अत्रिर्धीमान्विप्रमुख्यो बभूव होता यस्मिन्क्रतुमुख्ये महात्मा

हे राजेन्द्र ! इस स्थान पर पूर्वकाल में सोम ने विधि पूर्वक भजन किया था। इस मुख्य यज्ञ में महात्मा, बुद्धिमान् ब्रह्मर्षि अत्रिमुनि, होता बना था ॥४७॥

यस्यान्तेऽभूत्सुमहद्दानवानां दैतेयानां राक्षसानां च देवैः ।
यस्मिन्युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं यत्र स्कंदस्तारकाख्यं जघान

इसी स्थान के समीप दानव, दैत्य और राक्षसों का देवों के साथ युद्ध हुआ था किसी युद्ध में तारकासुर बड़ा भयानक राक्षस दैत्यों का नेता था। उसी तारकासुर को स्कन्द ने नष्ट किया ॥४८॥

सैनापत्यं लब्धवान्देवतानां महासेनो यत्र दैत्यांतकर्त्ता ।
साक्षाच्चैवं न्यवसत्कार्त्तिकेयः सदा कुमारो यत्र स प्लक्षराजः

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां
सारस्वतोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

दैत्यों के अन्त करने वाले, स्कन्द ने, देवताओं का सेनापति पद स्वीकार किया। प्लक्ष वृक्ष का अधिपति बनकर स्वामी कार्तिकेय, अपने साक्षात् रूप से यहां निवास करते रहते हैं ॥४६॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलराम
तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में सरस्वती तीर्थ के वर्णन का
तेतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



चवालीसवां अध्याय

जनमेजय उवाच—सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम
कुमारस्याभिषेकं तु ब्रह्मन्व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
यस्मिन्देशे च काले च यथा च वदतां वर ।
यैश्चाभिषिक्तो भगवान्विधिना येन च प्रभुः ॥२॥
स्कंदो यथा च दैत्यानामकरोत्कदनं महत् ।
तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥३॥

जनमेजय ने कहा—हे द्विजसत्तम ! आपने सरस्वती नदी के प्रभाव का वर्णन कर दिया। हे ब्रह्मन् ! अब आप स्वामि कार्तिकेय, के सेनापति पद के अभिषेक का वर्णन करो। हे वाग्मिन् ! किस देश और किस काल में किन लोगों ने भगवान् स्कन्द को सेनापति पद पर किस विधि से अभिषिक्त किया। स्कन्द ने फिर

किस तरह दैत्यों का विध्वंस उड़ा दिया यह सब कुछ मुझे सुनाओ मुझे इसके सुनने की बड़ी ही इच्छा है ॥१-३॥

वैशंपायन उवाच—कुरुवंशस्य सदृशं कौतूहलमिदं तव।

हर्षमुत्पादयत्येव वचो मे जनमेजय ॥४॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन! यह वृत्तान्त सुनने की जो तुम्हारी इच्छा है-यह उत्तम कुरुवंश के योग्य ही है। हे जनमेजय मेरे ये वचन तुम्हारे हृदय में हर्ष उत्पन्न कर रहे होंगे ॥४॥

हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य नराधिप।

अभिषेकं कुमारस्य प्रभावं च महात्मनः ॥५॥

हे नराधिप! आपने अब पूछ लिया है, तो मैं तुमको कुमार [स्कन्द] का अभिषेक और उन महात्मा का प्रभाव सुनाता हूं। तुम सुनते चलो ॥५॥

तेजो माहेश्वरं स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा।

तत्सर्वभक्षो भगवान्नाशकद्दग्धुमक्षयम् ॥६॥

एक बार महादेव जी का वीर्य स्खलित होगया और वह अग्नि में गिर गया। यद्यपि तेजोयुक्त अग्नि सब कुछ खाजाते हैं तो भी वे उस वीर्य के दग्ध करने में समर्थ नहीं हुए ॥६॥

तेनासीदति तेजस्वी दीप्तिमान्हव्यवाहनः।

न चैव धारयामास गर्भं तेजोमय तदा ॥७॥

उस वीर्य के तेज से हव्य वाहन प्रदीप्त, तेजस्वी अग्नि, क्लेशित हो उठी और उस तेजोमय गर्भ के धारण करनेमें समर्थ नहीं होसका ॥७॥

स गङ्गामभिसङ्गम्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभुः ।
गर्भमाहितवान् दिव्यं भास्करोपमतेजसम् ॥८॥
अथ गङ्गाऽपि तं गर्भमसहन्ती विधारणे ।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते ॥९॥

अब दीप्तिमान् अग्नि ब्रह्मा की आज्ञा से गङ्गा तट पर पहुंचे और सूर्योपम तेजस्वी उस गर्भ को गङ्गाजी में डाल दिया, परन्तु गङ्गाजी भी जब उस गर्भ के धारण करने में समर्थ नहीं हुई तो उसने उस गर्भ को देवों से पूजित रमणीक हिमालय पर्वत पर डाल दिया ॥९॥

स तत्र ववृधे लोकानावृत्य ज्वलनात्मजः ।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः ॥१०॥

अग्नि के द्वारा प्राप्त हुआ वह तेज, हिमालय पर्वत पर लोकों को दबाकर बढ़ने लगा। इस समय अग्नि सदृश प्रकाशमान उस गर्भ को कृतिका [नक्षत्र] ने देखा ॥१०॥

शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् ।
ममायमिति ताः सर्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचुक्रुशुः ॥११॥

शक्तिशाली अग्नि के इस महात्मा पुत्र को शरस्तम्ब में देख कर पुत्र चाहने वाली कृतिकाओं ने कहा-कि यह तो हमारा पुत्र है ॥१३॥

तासां विदित्वा भावं तं मातृणां भगवान्प्रभुः ।
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत्तदा ॥१२॥

इन माताओं के भाव को जानकर भगवान् कुमार इन छःओं माताओं के दूध को छः मुख बनाकर पीने लगे। जिनका दूध इस पुत्र को देखकर टपकने लग गया ॥१२॥

तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥१३॥

दिव्य शरीर धारिणी देवी कृतिका उस बालक का यह प्रभाव देखकर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुई ॥१३॥

यत्रोत्सृष्टः स भगवान्गङ्गया गिरिमूर्द्धनि ।
स शैलकाञ्चनः सर्वः सम्बभौ कुरुसत्तम ॥१४॥

हे कुरुसत्तम! गङ्गा ने जिस हिमालय के शिखर पर भगवान कुमार को डाला, वह सारा पर्वत शिखर सुवर्ण की भांति चमक उठा ॥१४॥

वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता ।
अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥१५॥

उस बढ़ते हुये गर्भ से सारी पृथिवी सुशोभित हो गई, तथा ये पर्वत के भाग भी सारे सुवर्णाकार हो गए ॥१५॥

कुमारः सुमहावीर्यः कार्तिकेय इति स्मृतः ।
गाङ्गेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥१६॥

शमेन तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः ।
ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥१७॥

इन कुमार का नाम कार्तिकेय प्रसिद्ध हुआ। महा योग और बल से समन्वित यह बालक प्रथम गाङ्गेय था। हे राजेन्द्र! शान्ति तप, तथा पराक्रम से युक्त होकर यह बालक बढ़ने लगा-जो चन्द्रमा की भांति सुन्दर दिखाई देता था ॥१६-१७॥

स तस्मिन्काञ्चने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः ।
स्तूयमानः सदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥१८॥

यहां कुमार, उस काञ्चन-शिखर के शरस्तम्ब में कान्ति से युक्त होकर सर्वदा सोता रहता है और गन्धर्व तथा मुनि गण इनकी स्तुति करते रहते हैं ॥१८॥

तथैनमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः ।
दिव्यवादित्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥१९॥

सहस्रों देव कन्या इनके सन्मुख नाचती रहती हैं, जो गाने बजाने और नाचने में कुशल हैं। वे बड़ी सुन्दर देव कन्या इन को बार २ स्तुति करती जाती हैं ॥१९॥

अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरितां वरा ।
दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२०॥

इन देव कार्तिकेय के समीप नदी श्रेष्ठ गङ्गा भी पहुंच गई। पृथिवी ने भी अद्भुत रूप को धारण करके इस अद्भुत कुमार को धारण किया ॥२०॥

जातकर्मादिकास्तत्र क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः ।
वेदश्चैनं चतुर्मूर्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥२१॥

बृहस्पति देवाचार्य ने कुमार के जात कर्म आदि संस्कार किए चारों वेद भी मूर्ति धारण करके उनके सन्मुख हाथ जोड़ कर आ खड़े हुए ॥२१॥

धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः ।
तत्रैनं समुपातिष्ठत्साक्षाद्वाणी च केवला ॥२२॥

चारों पादों के सहित धनुर्वेद, सामग्री सहित शस्त्र समूह तथा साक्षात् सरस्वती देवी भी कुमार के सन्मुख आकर उपस्थित हो गई ॥२२॥

स ददर्श महावीर्यं देवदेवमुमापतिम् ।
शैलपुत्र्यासमासीनं भूतसङ्घशतैर्वृतम् ॥२३॥

उस कुमार ने शैल पुत्री पार्वती के साथ बैठे हुए सैंकड़ों भूत गणों से आवृत, महापराक्रमी, देवों के देव, उमापति शङ्कर को देखा ॥२३॥

निकाया भूतसङ्घानां परमाद्भुतदर्शनाः ।
विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः ॥२४॥
व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः ।
वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥२५॥
उलूकवदनाः केचिद्गृध्रगोमायुदर्शनाः ।

क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनैराङ्कवैरपि ॥२६॥

श्वाविच्छल्यकगोधानामजैडकगवां तथा।

सदृशानि वपूंष्यन्ये तत्र तत्र व्यधारयन् ॥२७॥

शिव के भूतगणों के समूहों के आकार बड़े ही अद्भुत दिखाई देते थे। उन्होंने बड़े ही विकृत आकार के आभूषण और ध्वजा धारण कर रखी थी। इनके बड़े विकृत आकार और वे स्वयं भी बड़े बेढ़ंगे थे। इनके मुख, व्याघ्र, सिंह, रीछ, वन बिलाव, मकर, वृष दंश (बिलाव) हाथी, ऊंट, उल्लू, गीध, गीदड़ क्रौंच, पारावत (कबूतर) हिरन, श्वावित और शल्यय (सेहजन्तुभेद) गोधा, भेड़, बकरी और गौओं के सदृश थे। इन जन्तुओं के समान बहुतों के शरीर भी थे ॥२४-२७॥

केचिच्छैलाम्बुदप्रख्याश्चक्रोद्यतगदायुधाः।

केचिदञ्जनपुञ्जाभाः केचिच्छ्वेताचलप्रभाः ॥२८॥

कोई भूत, पर्वत और कोई मेघ के तुल्य ऊंचे थे। उन्होंने चक्र गदा आदि उठा रखे थे किसी की कान्ति अञ्जन पर्वताकार और किसी की श्वेत पर्वत तुल्य थी ॥२८॥

सप्त मातृगणाश्चैव समाजग्मुर्विशाम्पते।

साध्या विश्वेऽथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥२९॥

रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा भुजगा दानवाः खगाः।

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्सपुत्रः सह विष्णुना ॥३०॥

शक्रस्तथाऽभ्ययाद्द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।
नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥३१॥
देवर्षयश्च सिद्धाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ।
पितरो जगतः श्रेष्ठा देवानामपि देवताः ॥३२॥
तेऽपि तत्र समाजग्मुर्यामाधामाश्च सर्वशः ।

हे विशाम्पते ! अब वहां सप्त, मातृगण आए। साध्य विश्वे देवा, मरुत, वसु, पितर, रुद्र, आदित्य, सिद्ध, भुजग, दानव, पक्षी भी आकर उपस्थित हो गए। भगवान स्वयम्भू ब्रह्मा भी अपने पुत्र के सहित आए। भगवान् विष्णु भी वहां पधारे, इस कान्ति मान् कुमार को देखने इन्द्र भी वहां चले आए। नारद आदि देवर्षि, देव गन्धर्व, बृहस्पति आदि सिद्ध, जगत में श्रेष्ठ, पितर, देवों के देव तथा याम आधाम आदि देव भी उपस्थित हुए ॥२८॥

स तु बालोऽपि बलवान्महायोगबलान्वितः ॥३३॥
अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं पिनाकिनम् ।
तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ॥३४॥
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाः पावकस्य च ।
कं नु पूर्वमयम्बालो गौरवादभ्युपैष्यति ॥३५॥
अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोगतम् ।

यह बालक, कार्तिकेय भी, बड़ा बलवान् और महायोग से समन्वित था, यह बालक, शूलधारी पिनाक पाणि, देवेश शंकर के पास पहुंचे। इस बालक को अपने पास आते देखकर शिव

के मन में यह विचार हुआ, कि शैल पुत्री पार्वती, गङ्गा और अग्नि यहां उपस्थित हैं। यह बालक किसका गौरव करेगा और सब से प्रथम किसके पास आवेगा। इन सब के मन में यही भावना थी, कि यह सब से प्रथम मेरे पास आवेगा ॥२३-२५॥

तेषामेतमभिप्रायश्चतुर्णामुपलक्ष्य सः ॥२६॥
युगपद्योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनूः ।

इस बालक ने भी इन चारों का अभिप्राय जान लिया और एकदम योग धारण करके अनेक शरीर धारण कर लिए ॥२६॥

ततोऽभवच्चतुर्मूर्तिः क्षणेन भगवान्प्रभुः ॥२७॥
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।
एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान्प्रभुः ॥२८॥
यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः ।
विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा ॥२६॥
शाखो ययौ स भगवान्वायुमूर्तिर्विभावसुम् ।
नैगमेयोऽगमद्गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥४०॥
सर्वे भासुरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः ।
तान्समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥४१॥

इस के बाद क्षणभर में भगवान् कार्तिकेय की चार मूर्ति बन गईं। उस स्कन्द के शाख, विशाख और नैगमेय ये चार रूप हो गए। भगवान स्कन्द ने इस तरह अपने को चार मूर्तियों में

विभक्त कर दिया। अद्‌भुत रूप धारी स्कन्द की मूर्ति, भगवान् रुद्र के समीप पहुंची। वायु मूर्ति धारी तेजस्वी शाख, अग्नि के पास गया और नैगमेय नामक अग्नि के तुल्य रूप धारी कुमार गङ्गा के पास गया। इन चारों मूर्तियों के समान आकार थे और वे समान ही देदीप्यमान हो रहे थे। ये चारों रूप उन चारों व्यक्तियों के पास पहुंचे, जो बड़ा ही अद्‌भुत दृश्य था ॥३७-४१॥

हाहाकारो महानासीद्देवदानवरक्षसाम् ।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥४२॥
ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम् ।
गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ॥४३॥

अब देव, दानव, राक्षस इन सबमें हाहाकार मच गया। इस अद्‌भुत लोमहर्षण महान आश्चर्य को देख कर रुद्र, रुद्राणी, अग्नि और गङ्गा ने एक दम जगत्पति पितामह ब्रह्मा को प्रणाम् किया। ॥४२-४३॥

प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद्राजपुङ्गव ।
इदमूचुर्वचो राजन्कार्तिकेयप्रियेप्सया ॥४४॥

हे राजपुङ्गव ! जब उन्होंने विधिपूर्वक प्रणाम कर लिया तो वे लोग कार्तिकेय के प्रिय करने की अभिलाषा से यह वचन बोले ॥४४॥

अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम् ।
अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥४५॥

ततः स भगवान्धीमान्सर्वलोकपितामहः।
मनसा चिन्तयामास किमयं लभतामिति ॥४६॥
ऐश्वर्याणि च सर्वाणि देवगंधर्वरक्षसाम्।
भूतयक्षविहंगानां पन्नगानां च सर्वशः ॥४७॥
पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम्।
समर्थं च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥४८॥

हे भगवन्! देवेश! आप इस बालक को इसके योग्य अपनी इच्छा से सोचकर अधिकार प्रदान कीजिए, जिससे हमारा कल्याण होवे। महाज्ञानी! सब लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा ने विचार किया, कि इस कुमार को क्या अधिकार देना चाहिए। सारे ऐश्वर्य तो देव, गन्धर्व, राक्षस, भूत पक्षी, पन्नग आदि महात्माओं को पूर्व में ही प्रदान कर दिए। महामति ब्रह्मा ने, उसको सारे ऐश्वर्यों के योग्य समझा ॥४५-४८॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः।
सैनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥४६॥

हे भारत! थोड़ा देर तक देवों के कल्याण की कामना करके ब्रह्मा ने, सोचा, और फिर स्कन्द को सेनापति बनादिया ॥

सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुता।
तान्सर्वान्व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः ॥५०॥

सबके पितामह ब्रह्माने, सारे देवों के समूहों के जो राजा थे उन सब को इस आज्ञा की सूचना दी ॥५०॥

ततः कुमारमादय देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
अभिषेकार्थमाजग्मुः शैलेन्द्रसहितास्ततः ॥५१॥
पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम्।
समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥५२॥

इसके बाद ब्रह्मादिदेव, उस कुमार को लेकर चले। इसके साथ पर्वतराज-हिमालय भी थे। ये सब कुमारके अभिषेक के लिए चल पड़े थे। ये सारे देव, हिमालय से निकली हुई सर्वोत्तम नदी सरस्वती के तटवर्ती समन्त पञ्चक तीर्थ पर पहुंचे। यहां का सरस्वती तट सब लोकों में प्रसिद्ध था ॥५१-५२॥

तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते।
निषेदुर्देवगंधर्वाः सर्वे सम्पूर्णमानसाः ॥५३॥

इति श्रीमहाभारत शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थ० सारस्वतोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

इस सरस्वती के सर्वगुण समन्वित तट पर प्रसन्न मन से युक्त होकर सारे देव और गन्धर्व बैठ गए ॥५३॥

इति श्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलदेव तीर्थ यात्रा प्रसङ्ग में सरस्वती तीरवर्ती समन्त पञ्चकतीर्थ पर स्कन्द के अभिषेक वर्णन का चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

पैंतालीसवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच-ततोऽभिषेकसम्भारान् सर्वान् सम्भृत्य शास्त्रतः
बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर शास्त्र विधि के अनुसार सारी अभिषेक की सामग्री जुटाई गई। बृहस्पति ने विधिपूर्वक प्रज्वलित अग्नि में हवन किया ॥१॥

ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते ।
दिव्यरत्नाचिते पुण्ये निषण्णं परमासने ॥२॥
सर्वमङ्गलसंभारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।

अब हिमालय पर्वत ने मणि जटित, दिव्य रत्नों से सुशोभित, उत्तम सिंहासन प्रदान किया, सारी मङ्गलजनक सामग्रियों के साथ, विधि पूर्वक मन्त्र बोलकर उस सिंहासन पर कुमार को बैठाया गया ॥२॥

आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥३॥
इन्द्राविष्णू महावीर्यौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥४॥
पूष्णा भगेनार्यम्णा च अंशेन च विवस्वता ।
रुद्रश्च सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च ॥५॥

अभिषेक की सामग्री लेकर देवगण उपस्थित थे। महापराक्रमी इन्द्र, विष्णु, सूर्य, चन्द्र, धाता, विधाता, अनिल और अनल

पूषा, भग, अर्यमा, अंश, विवस्वान, मित्र और वरुण के साथ भगवान रुद्र भी वहीं उपस्थित थे ॥३-५॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः ।
विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥६॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।

रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, विश्वेदेवा, मरुद्गण, साध्य, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, और पन्नग आदि देव योनियों से भी शक्तिशाली कुमार घिरे हुए थे ॥६॥

देवर्षिभिरसंख्यातैस्तथा ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥७॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः ।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ॥८॥
सर्पैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथावृतः ।

अगणित देवर्षि, ब्रह्मर्षि, वैखानस, वालखिल्य, वाय्वाहारी, किरण भक्षी मुनि, भृगु, अङ्गिरा, यति, महात्मा, सर्प, विद्याधर पुण्यात्मा योगी सिद्ध, आदि महाभागों ने कार्तिकेय को घेर रखा था ॥७-८॥

पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥९॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च ।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥१०॥
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशाम्पते ।

मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ॥११॥

समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।

हे विशाम्पते! पितामह ब्रह्मा, पुलस्त्य, पुलह, महातपस्वी, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योति, मूर्तिमान्, नदी, सनातनवेद, समुद्र, ह्रद, अनेक तीर्थ, भी इस कुमार के अभिषेक में सम्मिलित हुए॥६-११॥

पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप ॥१२॥

अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती ।

उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥१३॥

राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम् ।

हे जनाधिप! पृथिवी, द्यौ, दिशा, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली अनुमति, कुहू राका धिषणा तथा देवों की पत्नियां भी इस अभिषेकोत्सव में सुशोभित थी ॥१२-१३॥

हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥१४॥

ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च ।

मासार्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी नृप ॥१५॥

उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वासुकिः ।

अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥१६॥

धर्मश्च भगवान्देवः समाजग्मुर्हि सङ्गताः ।

हे नृप ! हिमवान्, विन्ध्य अनेक शिखरधारी मेरु, ऐरावत, तथा उनके साथी, पर्वत, कला काष्ठा, मास, अर्धमास, ऋतु, रात, दिन, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, नागराज वासुकि, अरुण गरुड़, वृक्ष औषधि, और भगवान् धर्म भी इकट्ठे ही वहां उपस्थित होगए ॥

कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥१७॥
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः ।
ते कुमाराभिषेकार्थं समाजग्मुस्ततस्ततः ॥१८॥

काल, यम, मृत्यु, यम के अनुचर तथा बहुत संख्या में होने के कारण जिनके नाम भी नहीं गिनाए वे सब देव, इस कुमार के सेनापति पद के अभिषेक में इधर उधर से आकर उपस्थित होगए ॥१७-१८॥

जगृहुस्ते तदा राजन्सर्व एव दिवौकसः ।
अभिषेचनिकं भाण्डम्मङ्गलानि च सर्वशः ॥१९॥

हे राजन ! इन सारे देवों ने वहां आकर अभिषेक पात्र और बहुत सी मङ्गलमय सामग्री ग्रहण की ॥१९॥

दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनर्नृप ।
सरस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव तु ॥२०॥
अभ्यषिञ्चन्कुमारं वै सम्प्रहृष्टा दिवौकसः ।
सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयङ्करम् ॥२१॥

हे नृप ! इस समय अभिषेक दिव्य सामग्री और सुवर्ण के कलश थे, जिनमें पवित्र सरस्वती नदी का जल भरा था । देवता-

ओं ने प्रसन्न होकर कुमार का अभिषेक करना आरम्भ किया जो देवों का सेनापति बनकर असुरों को भयङ्कर होगा ॥२०-२१॥

पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् ।
तथाऽभ्यषिञ्चद्भगवान्सर्वलोकपितामहः ॥२२॥
कश्यपश्च महातेजा ये चान्ये लोकर्कीर्तिताः ।

हे महाराज ! पूर्वकाल में जिस तरह सब लोक के पितामह भगवान ब्रह्मा ने जलेश्वर वरुण का अभिषेक किया था, उसी तरह आज उन्होंने कुमार का यह अभिषेक किया। महातेजस्वी कश्यप तथा अन्य लोक प्रसिद्ध मुनियों ने भी इसके अभिषेक में सहयोग दिया ॥२२॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः ॥२३॥
कामवीर्यधरान्सिद्धान्महापारिषदान्प्रभुः ।
नन्दिसेनं लोहिताक्षं घंटाकर्णं च सम्मतम् ॥२४॥
चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् ।

अब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर बड़े बलवान वायु के समान वेग-शाली, कामना के अनुसार पराक्रमधारी, महागण दिए, जिनके नन्दिसेन, लोहिताक्ष, घंटाकर्ण, तथा चतुर्थ अनुचर का नाम कुमुद माली था ॥२३-२४॥

तत्र स्थाणुर्महातेजा महापारिषदं प्रभुः ॥२५॥
मायाशतधरं कामं कामवीर्यबलान्वितम् ।
ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिबर्हणम् ॥२६॥

स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥२७॥

महातेजस्वी भगवान शङ्कर ने कामना के अनुसार पराक्रम दिखाने वाले, महाबली सैंकड़ों मायाधारी, दानवों के नाश करने वाले किसी महागण को स्कन्द के अर्पित किया। इस महापारिषद ने देवासुर संग्राम में भयानक कर्मकर्ता चौदह प्रयुत (कई लाख) दैत्यों को अपनी दोनों भुजाओं से क्रोध के साथ मार गिराया ॥

तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् ।
देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विष्णुरूपिणीम् ॥२८॥

देवों ने स्कन्द के लिए विष्णुरूप धारिणी असुरों के नाश करने वाली अजेय नैऋतों (देवों) से व्याप्त सेना प्रदान की ॥

जय शब्दं तथा चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः ।
गन्धर्वा यक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा ॥२९॥

अब इन्द्र सहित देव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मुनि और पितर सब ने जय शब्द का उच्चारण किया ॥२९॥

ततः प्रादादनुचरौ यमकालोपमावुभौ ।
उन्माथश्च प्रमाथश्च महावीर्यौ महाद्युती ॥३०॥

फिर महाद्युतिमान् और महापराक्रमी यम और काल के समान भीषण उन्माथ और प्रमाथ नामक दो अनुचर स्कन्द को ब्रह्मा ने प्रदान किए ॥३०॥

सुभ्राजो भास्वरश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान् ॥३१॥

सूर्य के अनुयायी सुभ्राज और भास्वर दो अनुचर थे, उनको प्रतापी सूर्य ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कार्तिकेयको प्रदान किए ।३१॥

कैलासशृङ्गसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ।
सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च ॥३२॥

कैलास के शिखर के समान श्वेत, श्वेत माला और चन्दन धारी, मणि, सुमणि नामक दो अनुचरों को चन्द्रमा ने, स्कन्द को प्रदान किया ॥३२॥

ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुताशनः ।
ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥३३॥

अग्नि ने अपने पुत्र स्कन्द को ज्वालाजिह्व और ज्योति, नामक दो शूरवीर अनुचर प्रदान किए जो शत्रु सेना के मन्थन कर देने वाले थे ॥३३॥

परिघं चवटं चैव भीमं च सुमहाबलम् ।
दहतिं दहनं चैव प्रचंडौ वीर्यसंमतौ ॥३४॥
अंशोऽप्यनुचरान्पंच ददौ स्कंदाय धीमते ।

अंश नामक देवता ने, परिघ, चवट, महाबली भीम, दहति और दहन नामक पांच अनुचर बुद्धिमान स्कन्द को प्रदान किए। इन में दहति और दहन अनुचर बड़े ही प्रचण्ड पराक्रमी थे ॥३४॥

उत्क्रोशं पंचकं चैव वज्रदंडधरावुभौ ॥३५॥
ददावनलपुत्राय वासवः परवीरहा ।
तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ॥३६॥

उत्क्रोश और पञ्चक नामक दो वीर अनुचर वज्र और दण्ड धारी थे। शत्रु नाशक इन्द्र ने, अनलपुत्र स्कन्द को ये गण प्रदान किए। इन अनुचरों ने रण में इन्द्र के शत्रु बहुत से दैत्यों को मार डाला ॥३५-३६॥

चक्रं विक्रमकं चैव संक्रमं च महाबलम् ।
स्कंदाय त्रीननुचरान् ददौ विष्णुर्महायशाः ॥३७॥

चक्र, विक्रमक, महाबली संक्रम, ये तीन अनुचर महायशस्वी विष्णु ने स्कन्द को प्रदान किए ॥३७॥

वर्धनं नंदनं चैव सर्वविद्याविशारदौ ।
स्कंदाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भिषजां वरौ ॥३८॥

वर्धन और नन्दन, ये दोनों सर्व विद्या विशारद अनुचर थे। देववैद्य अश्विनीकुमारों ने प्रीति पूर्वक स्कन्द के लिए इन गणों को प्रदान किया ॥३८॥

कुंदं च कुसुमं चैव कुमुदं च महायशाः ।
डंबराडंबरौ चैव ददौ धाता महात्मने ॥३९॥

महायशस्वी धाता ने महात्मा स्कन्द को कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर, नामक पांच पारिषद् प्रदान किए ॥३९॥

चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलोत्कटौ ।
ददौ त्वष्टा महामायौ स्कंदायानुचरावुभौ ॥४०॥

विश्वकर्मा ने, चक्र और अनुचक्र नामक महाबली, महा-मायावी बलोद्धत दो अनुचर स्कन्द के लिए प्रदान किए जो मेघ की भांति चक्कर लगाते थे ॥४०॥

सुव्रतं सत्यसंधं च ददौ मित्रो महात्मने ।
कुमाराय महात्मानौ तपोविद्याधरौ प्रभुः ॥४१॥
सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।

शक्तिशाली मित्र नामक देव ने महात्मा स्कन्द के लिए तप और विद्याधर, दो महावीर सुव्रत और सत्यसन्ध नामक गण प्रदान किए। ये बड़े सुन्दर, वरदायी और तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे ॥४१॥

सुव्रतं च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ॥४२॥
कार्तिकेयाय संप्रादाद्विधाता लोकविश्रुतौ ।

महात्मा सुव्रत, और शुभकर्मा नामक लोक प्रसिद्ध अनुचरों को स्कन्द के लिए विधाता ने प्रदान किए ॥४२॥

पाणीतकं कालिकं च महामायाविनावुभौ ॥४३॥
पूषा च पार्षदौ प्रादात्कार्तिकेयाय भारत ।

हे भारत ! पाणीतक और कालिक नामक महामायावी दो पारिषद् थे, पूषादेव ने उन्हें कार्तिकेय को प्रदान किया ॥४३॥

बलं चातिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ ॥४४॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम ।

हे भरतसत्तम ! बल और अतिबल नामक महाबली और विशाल मुखधारी दो गण थे, वायु ने इनको स्कन्द के लिए प्रदान किया ॥४४॥

यमं चातियमं चैव तिमिवक्त्रौ महाबलौ ॥४५॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वरुणः सत्यसंगरः ।

सत्य प्रतिज्ञा धारी वरुण ने जलचर जन्तु के समान मुख वाले, महाबली यम और अतियम नामक गणों को स्कन्द को सौंपा ॥४५॥

सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ॥४६॥
हिमवान्प्रददौ राजन् हुताशनसुताय वै ।

हे राजन् ! अग्नि पुत्र. स्कन्द के लिए महावीर सुवर्चस: और अतिवर्चा नामक पारिषद् हिमवान ने प्रदान किए ॥४६॥

कांचनं च महात्मानं मेघमालिनमेव च ॥४७॥
ददावनुचरौ मेरुरग्निपुत्राय भारत ।

हे भारत ! महाबली काञ्चन और मेघ माली अनुचरों को अग्नि पुत्र स्कन्द के लिए मेरु पर्वत ने प्रदान किया ॥४७॥

स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ ॥४८॥
महात्मा त्वग्निपुत्राय महाबलपराक्रमौ ।

महात्मा मेरु ने फिर स्थिर और अतिस्थिर नामक अन्य दो महाबली और महापराक्रमी गण स्कन्द को प्रदान किए ॥४८॥

उच्छृंगं चातिशृंगं च महापाषाणयोधिनौ ॥४९॥
प्रददावग्निपुत्राय विंध्यः पारिषदावुभौ ।

उच्छृङ्ग और अतिशृङ्ग नामक दो अनुचर पाषाणों से युद्ध करना जानते थे। इन दोनों पारिषदों को अग्नि पुत्र स्कन्द को विन्ध्याचल ने प्रदान किया ॥४९॥

संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ ॥५०॥
प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदावुभौ ।

गदाधारी संग्रह और विग्रह नामक दो गण, अग्नि पुत्र को समुद्र ने दान में दिए ॥५०॥

उन्मादं शंकुकर्णं च पुष्पदंतं तथैव च ॥५१॥
प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ।

सुन्दरी पार्वती ने उन्माद शंकु कर्ण, पुष्प दन्त नामक अनुचर अग्नि सुत कुमार को समर्पित किए ॥५१॥

जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे ॥५२॥
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः ।

हे पुरुष व्याघ्र ! जय और महाजय नामक दो नाग, अग्नि पुत्र स्कन्द को सर्पराज वासुकि ने प्रदान किए ॥५२॥

एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा ॥५३॥
सागराः सरितश्चैव गिरयश्च महाबलाः ।
ददुः सेना गणाध्यक्षान् शूलपट्टिशधारिणः ॥५४॥
दिव्यप्रहरणोपेतान्नानावेषविभूषितान् ।

हे राजन ! इस प्रकार महाबलवान, साध्य, रुद्र, वसु, पितर, सागर, सरित, गिरि आदि ने शूल पट्टिशधारी गणाध्यक्षों की सेना, स्कन्द को प्रदान की। ये गण, दिव्य शस्त्र धारी और नाना वेषों से विभूषित थे ॥५३-५४॥

शृणु नामानि चाप्येषां येऽन्ये स्कंदस्य सैनिकाः ॥
विविधायुधसंपन्नाश्चित्राभरणभूषिताः ।
शंकुकर्णो निकुंभश्च पद्मः कुमुद एव च ॥५६॥
अनंतो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ।
घ्राणश्रवाः कपिस्कंधः कांचनाक्षो जलंधमः ॥५७॥
अक्षः संतर्जनो राजन् कुनदीकस्तमान्तकृत् ।
एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ॥५८॥
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकंपनः ।
पुण्यनामा सुनामा च सुचक्रः प्रियदर्शनः ॥५९॥
परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ।
अजो दरो गजशिराः स्कंधाक्षः शतलोचनः ॥६०॥
ज्वलाजिह्वः करालाक्षः शितिकेशो जटी हरिः ।
परिश्रुतः कोकनदः कृष्णकेशो जटाधरः ॥६१॥

चतुर्दंष्ट्रोऽष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः।
विद्युताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥६२॥
उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः।
समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकंपी तथैव च ॥६३॥

हे राजन्! अब तुम स्कन्द के सैनिकों के नाम सुनो जो अनेक शस्त्रों से सम्पन्न और विचित्र आयुधधारी थे। हे राजन्! शंकु कर्ण निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्णक, घ्राण श्रवा, कपिस्कन्ध, काञ्चनाक्ष, जलन्धम, अक्ष, संतर्जन, कुनदीक, तमान्तकृत एकाक्ष, द्वादशाक्ष, शक्तिशाली एक जटा, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, सुचक्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत, कोकनद, प्रियमाली, प्रियानुलेपन, अज, दर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, करालाक्ष, शितिकेश, जटी, हरि, परिश्रुत, कोकनद, कृष्णकेश, जटाधर, चतुर्दंष्ट्र, अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन, उदाराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभु, समुद्रवेग, और शैलकम्पी, ये इनके नाम हैं ॥५५-६३॥

वृषो मेषः प्रवाहश्च तथा नंदोपनंदकौ।
धूम्रः श्वेतः कलिंगश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥६४॥
प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान्।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥६५॥

क्षेमवाहः सुवाहश्च सिद्धपात्रश्च भारत।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥६६॥
गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान्।
वैताली गतितालौ च कथकवातिकौ ॥६७॥
हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह।
रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतसिद्धश्च नन्दनः ॥६८॥
कालकंठः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोदरः।
कालकक्षः सितश्चैव भूतानां मथनस्तथा ॥६९॥
यज्ञवाहः सुवाहश्च देवयाजी च सोमपः।
मज्जनश्च महातेजाः क्रथक्राथौ च भारत ॥७०॥

हे भारत! वृष, मेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद, प्रियक, नन्द, प्रतापी, गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमवाह, सुवाह, सिद्ध-पात्र, गोव्रज, कनकापीड, महापारिषदेश्वर, गायन, हसन, बाण, वीर्यवान खड्ग, वैताली, गतितालो, कथक, वातिक, हंसज, पङ्क-दिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतसिद्ध, नन्दन, काल-कण्ठ, प्रभास, कुम्भाण्डोदर, कालकक्ष, सित, भूतमथन, यज्ञवाह, सुवाह, देवयाजी, सोमपा, मज्जन, महातेजा, क्रथ और क्राथ ये स्कन्द के महावीरों के नाम गिनाए गए हैं ॥६४-७०॥

तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।
मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ॥७१॥
वत्सलो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।
धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥७२॥
श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ॥७३॥
अचलः कनकाक्षश्च बालानामपि यः प्रभुः ।

हे भारत ! तुहर, तुहार, वीर्यवान, चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, महाबली अर्जुन, वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, वीर्यवान् सूचीवक्त्र, पाण्डुर, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, सुबाहु, चारुवक्त्र, दण्डबाहु सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कनकाक्ष, ये स्कन्द के वीर सैनिक थे। इनमें कनकाक्ष बालकों का प्रभु माना गया है ॥

सञ्चारकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ॥७४॥
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।
स्वर्णग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभः ॥७५॥
पाणिकूर्चाश्च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः ।
चाषवक्त्रश्च जम्बूकः शाकवक्त्रश्च कुण्डलः ॥७६॥
योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः ।

सञ्चारक, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बुक, लोहाज वक्त्र, जवन, कुम्भवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभ, पाणि-

कूर्च, शम्बूक, पद्मवक्त्र, शित्तक, चापवक्त्र, जम्बूक, शाक वक्त्र, कुञ्जल, आदि सैनिक वीर बड़े पुरुषार्थी वीर और ब्राह्मण प्रिय थे ॥७४-७६॥

पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ये ॥७७॥

यौवनस्थाश्च बालाश्च वृद्धाश्च जनमेजय ।

हे जनमेजय ! इनमें जो ब्रह्मा से सम्बन्ध रखने वाले महावीर पारिषद् थे वे बालक युवा और वृद्ध-सभी ढ़ंग के थे ॥७७॥

सहस्रशः पारिषदाः कुमारमुपतस्थिरे ॥७८॥

वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु तान्जनमेजय ।

हे जनमेजय ! इस प्रकार सैकड़ों पारिषद, कुमार के पास चले आए, जिनके अनेक प्रकार के मुख थे । मैं तुमको बताता हूँ तुम ध्यान से सुनो ॥७८॥

कूर्मकुक्कुटवक्त्रश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥७९॥

खरोष्ट्रवदनाश्चान्ये वराहवदनास्तथा ।

मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत ॥८०॥

नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथाऽपरे ।

आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥८१॥

मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ।

ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥८२॥

हे भारत ! कूर्म, कुक्कुट, शशक, उलूक, खर, ऊँट, वराह, मार्जार, हिरन, आदि जन्तुओं के मुख वाले अनेक गण थे बहुतों के बड़े दीर्घ मुख थे। नकुल उलूक काक, मूषक, वभ्रुक मयूर, मत्स्य, मेष, बकरी, भेड़, महिष, रीछ, शार्दूल, चीता सिंह आदि जन्तुओं के सदृश बहुत से स्कन्द के गणों के मुख थे ॥७६-८२॥

भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखाश्च ये ।
गरुडाननाः कङ्कमुखा वृककाकमुखास्तथा ॥८३॥
गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।
महाजठरपादाङ्गास्तारकाक्षाश्च भारत ॥८४॥
पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ।
कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ॥८५॥
कृकलासमुखाश्चैव विरजोम्बरधारिणः ।
व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्डवक्त्राः शुभाननाः ॥८६॥
आशीविषाश्चीरधरा गोनासावदनास्तथा ।
स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ॥८७॥
ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः ।
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥८८॥

हे भारत ! भयानक मुख वाले बहुत से गणों के गज और नाकों के समान मुख दिखाई देते थे। गौ, खर, ऊँट, बिलाव, गरुड़, कङ्क, वृक, काक आदि के मुख के समान बहुत गणों के

मुख थे। इनके बड़े २ पेट, पाद, और इतर अङ्ग थे। बहुतों की तारक जैसी आंखें थी। किसी का पारावत के समान मुख था। किसी के वृष का सा मुंह था। किसीके कोकिल, श्येन और तीतर की सी चौंच थी। किसीके कृकलास का सा मुख देखा गया। इन्होंने शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे। कोई व्याल मुख कोई शूल मुख, कोई चण्ड वक्त्र और कोई शुभानन थे। किसी ने सर्प धारण कर रखे थे, किसी ने चीर वस्त्र पहन रखे थे। किसीके गौ, की सी नाक और मुख था। किसी गण का स्थूल उदर, किसी का कृश शरीर किसीका स्थूल शरीर और कोई कृशोदर थे। किसी की छोटी गर्दन किसीके लम्बे कान और अनेक सर्पों के आभूषण पहने हुए थे। किसीने हाथी की खाल ओढ़ रखी थी और किसीने काले मृग की चर्म धारण कर रखी थी ॥८१-८८॥

स्कन्धेमुखा महाराज तथाऽप्युदरतो मुखाः।
पृष्ठे मुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखाअपि ॥८९॥
पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा।
तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या गणेश्वराः ॥९०॥

हे महाराज! इन गणों में बहुतों के स्कन्ध उदर, पीठ, ठोडी, जंघा, पार्श्व आदि में मुख थे और बहुतों के शरीर में इधर उधर सर्वत्र मुख ही मुख दिखाई देते थे। कुछ गणेश्वरों के तो कीट पतङ्गों के सदृश मुख थे ॥८९-९०॥

नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः ।
नानावृक्षभुजाः केचित्कटिशीर्षास्तथाऽपरे ।९१॥
भुजङ्गभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः ।
चीरसंवृतगात्राश्च नानाकनकवाससः ॥९२॥
नानावेषधराश्चैव नानामाल्यानुलेपनाः ।
नानावस्त्रधराश्चैव चर्मवासस एव च ॥९३॥
उष्णीषिणो मुकुटिनः सुग्रीवाश्च सुवर्चसः ।
किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा काञ्चनमूर्धजाः ॥९४॥
त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाः परे ।
शिखण्डिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा ।९५॥

बहुतों के अनेक सर्पों के समान मुख और बहुतों के बहुत से बाहु और कण्ठ थे। बहुतों की भुजाओं में वृक्ष निकले हुए थे, और बहुतों की कमर में शिर निकले थे। सर्प के फन के समान मुख वाले अनेक झाड़ियों के निवासी भी बहुत से गणव्रात होते थे। बहुत गणों के पास फटे वस्त्र और बहुत से गण सुवर्ण के आभूषण पहने हुए थे। अनेक वेषधारी, अनेक प्रकार भी माला चन्दन धारी थे। बहुतों के पास अनेक वस्त्र और बहुतों ने चर्म वस्त्र पहन रखे थे। किसीने पगड़ी मुकुट धारण कर रखे थे और बहुतों की ग्रीवासुन्दर और बहुत से तो बड़े ही तेजस्वी थे। कोई किरीटधारी, पञ्च शिखा वाला, सुवर्ण जैसे बालधारी था। किसी के तीन किसीके दो और किसीके सात शिखा थी। किसीने

शिखण्ड (पट्टे) धारण कर रखे थे, किसी के शिर पर मुकट था किसीने मूंड मुंडा रखा था और कोई जटाधारी था ॥९१-९५॥

चित्रमालाधराः केचित् केचिद्रोमाननास्तथा ।
विग्रहैकरसा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ॥९६॥
कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठास्तनूदराः ।
स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥९७॥
महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः ।
कुब्जाश्च ह्रस्वजंघाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥९८॥
हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथाऽपरे ।
दीर्घोच्छ्वासा दीर्घजंघा विकराला ह्यधोमुखाः ॥९९॥
महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथाऽपरे ।
वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन्सहस्रशः ॥१००॥

किसीने विचित्र माला धारण कर रखी थी और किसीके मुख पर रोम थे। इनको युद्ध बड़ा प्रिय था। ये गण बड़े २ देवों से भी अजेय थे। इनका कृष्ण वर्ण था, और मुख का मांस सूखा पड़ा था। इनकी पींठ लम्बी और पेट पतला था। किसी स्थूल और किसी की छोटी पींठ थी। इनके पेट और पुरुषाकार लम्बे २ थे किसीकी लम्बी और किसीकी छोटी भुजा थी किसी के छोटे शरीर और किसीके वामन शरीर थे। कुबड़े छोटी जंघा वाले, बहुत से गण थे और बहुत से कुमार के ये गण, हाथी कान के

समान ग्रीवा वाले थे। किसी की नांक हाथी की सूंड जैसी लम्बी किसीकी कछुवे जैसी चौड़ी और किसीकी भेड़िए जैसी भीषण थी। किसी स्कन्द के गण के बड़े लम्बे श्वास थे, किसी की दीर्घ जंघा और किसीका नीचे की ओर मुख था, जिससे वे बड़े ही भयङ्कर दिखाई देते थे। किसीके छोटी २ किसी के बड़ी २ और किसी के चार दाढ़े ऊपर नीचे थीं। हे राजन ! इन कुमार के सैनिकों में सहस्रों वीर गजराज की भांति भयानक थे ॥९६-१००॥

सुविभक्तशरीराश्च दीप्तमंतः स्वलंकृताः ।
पिंगाक्षा शंकुकर्णाश्च रक्तनासाश्च भारत ॥१०१॥
पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरिमूर्धजाः ।
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥१०२॥
नानाचर्मभिराच्छन्ना नानाभाषाश्च भारत ।
कुशला देशभाषासु जल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः ॥१०३॥
हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापारिषदास्तथा ।
दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ॥१०४॥
पिंगाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत ।
वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसन्निभाः ॥१०५॥
श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिंगाक्षाश्च तथा परे ।
कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत ॥१०६॥
चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः ।
नानावर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥१०७॥

बहुतों के शरीर चूड़ी उतार उत्तम, तेजस्वी और अलङ्कारों से अलंकृत था। हे भारत ! बहुतों की पीली आंखें शंकु के समान कर्ण और लाल नासिका थीं। बड़ी २ मोटी दाढ़, मोटे होठ, और भूरे २ बाल थे। बहुत से गणों के अनेक चरण आष्ठ और चरण थे। बहुतोंके अनेक हाथ और ग्रीवाएँ थो। हे भारत ! ये गण, अनेक प्रकार की चर्मों से आच्छन्न और अनेक प्रकार की वाणी बोलने वाले थे। देश भाषा बोलने में कुशल वे एक दूसरे से बात कर रहे थे। ये बहुत बड़ी शक्ति वाले थे। ये महा पारिषद् कुमार के अनुचर, वड़े उल्लास में भरे हुए उछट रहे थे। किसी की दीर्घ-ग्रीवा दीर्घ नाक, लम्बे चरण शिर, और भुजाएँ थीं। हे भारत ! बहुत से अनुचर पीली आंखों वाले, नीलकण्ठ धारी और लम्बे २ कानों वाले थे किसीका पेट भेड़िया के समान था और किसी का अञ्जन पर्वताकार था। बहुतों को आंखें सफेद, लालग्रीवा, और कोई पीली २ आंखों वाले थे। हे राजन् ! किसी का तीतर जैसा और किसी का रङ्ग चित्र विचित्र था। बहुत से गण, चामर और माला जैसे श्वेत वर्णधारी, श्वेत लाल पंक्ति समन्वित थे। किसी के अनेक वर्ण किसी के एक वर्ण और किसी की मयूर जैसी कान्ति थी ॥१०१-१०७॥

पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु ।
शेषैः कृतः पारिषदैरायुधानां परिग्रहः ॥१०८॥
पाशोद्यतकराः केचिद्व्यादितास्याः खराननाः ।
पृष्ठाचा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥१०९॥

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥११०॥
गदाभुशुंडिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।
आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ॥१११॥
महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा ।
अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ॥११२॥
घंटाजालपिनद्धांगा ननृतुस्ते महौजसः ।

हे राजन् ! अब तुम इन गणों के शस्त्रों की गणना सुनो। इनमें बहुत से गणों ने तो आयुध धारण कररखे थे-मैं वे सुनाता हूँ। बहुतों के हाथ में फांसी थी। और बहुतों के मुख फटे हुए और गर्दभ के तुल्य थे। बहुतों के पीठोंमें आंख. नीलकण्ठ और परिघ के समान बाहु थे। इन्होंने हाथों में शतघ्नी, चक्र और मुसल थे। हे भारत ! बहुतों के हाथ में खड्ग मुद्गर और दण्ड विद्यमान थे। गदा, भुशुण्डी, तोमर आदि शस्त्र भी बहुत से अनुचरों ने हाथों में ले रखे थे। ये महावेग शाली महावीर इस प्रकार के अनेक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होरहे थे। महाबली महावेग वाले, बड़े २ स्कन्द के पारिषद्, रण के लिए उद्धत होरहे थे। ये कुमार के इस सेनापति पद के अभिषेक को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। ये महाओजस्वी छटा जालसे अपनेको सुसज्जित करके नांचने कूदने लगे ॥१०८-११२॥

एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ॥११३॥
उपतस्थुर्महात्मानं कार्तिकेयं यशस्विनम् ।

हे नृप ! इस प्रकार के तथा अन्य ढंग के बहुत से बड़े २ गण महाबली महायशस्वी कार्तिकेय की सेवा में उपस्थित हुए ॥११३॥

दिव्याश्चाप्यांतरिक्षाश्च पार्थिवाश्चानिलोपमाः ॥११४॥
व्यादिष्टा देवतैः शूराः स्कंदस्यानुचरा भवन् ।
तादृशानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥
अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥११५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने स्कन्दाभिषेके पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

बहुत से दिव्य गण आकाश में स्थित हुए बहुतसे वायुरूप होकर पृथिवी में विचरने लगे। देवताओं ने जिन २ शूरवीर गणों को स्कन्द के अनुचर होने की आज्ञा दी, वे स्कन्द के अनुचर होगए। इस प्रकार के हजारों लाखों और अरबों की संख्या में गण महाबली कुमार के अभिषेकोत्सव को घेर कर उपस्थित हुए॥११४-११५

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में बलदेव तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में सरस्वतोपाख्यान में स्कन्द के अभिषेकका पैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ



छियालीसवाँ अध्याय

वैशंपायन उवाच—शृणु मातृगणान् राजन्कुमारानुचरानिमान्

कीर्त्यमानान्मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन ! अब तुम कुमार के साथ रहने वाली, शत्रुगण नाशक मातृगणों का वर्णन सुनो। हे वीर ! मैं तुम को उनका वर्णन सुनाता हूं ॥१॥

यशस्विनीनां मातृणां शृणु नामानि भारत।

याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्च भागशः ॥२॥

हे भारत ! तुम प्रथम यशोयुक्त मातृकाओं के नाम सुनों। जिन कल्याण करने वाली मातृकाओं ने अपने भाग से तीनों लोकों को व्याप्त कर रखा था ॥२॥

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोस्तनी तथा।

श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥३॥

अप्सु जाता च गोपाली बृहदंबालिका तथा।

जयावती मालतिका ध्रुवरत्नाऽभयंकरी ॥४॥

वसुदामा च दामा च विशोकानन्दिनी तथा।

एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥५॥

उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना।

शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥६॥

माधवी शुभवक्त्रा च तीर्थसेनिश्च भारत ।
गीतप्रिया च कल्याणी रुद्ररोमाऽमिताशना ॥७॥
मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ॥८॥
पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना ।
सन्तानिका च कौरव्य कमला च महाबला ॥९॥
सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला ॥१०॥
शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भाविनी ।
वपुष्मती चन्द्रशीता भद्रकाली च भारत ॥११॥
ऋक्षाम्बिका निष्कुटिका वामा चत्वरवासिनी ।
सुमंगला स्वस्तिमती वृद्धिकामा जयप्रिया ॥१२॥
धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥१३॥
कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत ।
वसुश्रीः कोटरा चैव चित्रसेना तथाऽचला ॥१४॥
कुक्कुटिका शङ्खलिका तथा शकुनिका नृप ।
कुण्डारिका कौकुलिका कुम्भिकाऽथ शतोदरी ॥१५॥
उत्क्राथिनी जलेला च महावेगा च कङ्कणा ।
मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा ॥१६॥

केशयंत्री त्रुटिर्वामा क्रोशनाथऽतडित्प्रभा ।
मन्दोदरी च मुण्डी च कोटरा मेघवाहिनी ॥१७॥
सुभगा लम्बिनी लम्बा ताम्रचूडा विकाशिनी ।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥१८॥
पृथुवक्त्रा मधुलिका मधुकुम्भा तथैव च ।
पक्षालिका मत्कुलिका जरायुर्जर्जराननो ॥१९॥
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप ।
खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुट्टिका ॥२०॥
अमोघा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा ।
वेणुवीणाधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥२१॥
शशोलूकमुखी कृष्णा खरजङ्घा महाजवा ।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ॥२२॥
जटीलिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा ।
कालेहिका वामनिका मुकुटा चैव भारत ॥२३॥
लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डा च भूमिप ।
एकत्वचा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत ॥२४॥
क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ॥२५॥
खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।
शङ्खकुम्भश्रवाश्चैव भगदा च महाबला ॥२६॥

गणा च सुगणा चैव तथाऽभीत्यथ कामदा ।
चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थाऽन्यगोचरी ॥२७॥
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला च भारत ॥२८॥
प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुरोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च शिशिरा मन्थिनी तथा ॥२९॥
एकचन्द्रा मेघकर्णा मेघमाला विरोचना ।
एताश्चान्याश्च बहवो मातरो भरतर्षभ ॥३०॥
कार्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सहस्रशः ।

हे भारत! प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोस्तनी, श्रीमती बहुला, बहुपुत्रिका, जलजात, गोपाली, बृहदम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, अभयङ्करी, वसुदामा, दामा, विशोका, आनन्दिनी एकचूड़ा, महाचूड़ा, चक्रनेमि, उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभनी, शत्रुञ्जया, क्रोधना, शलभी, खरी, माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थसेनि, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना, मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती, विद्युज्जिह्वा, पद्मावती, सुनक्षत्र, कन्दरा, बहुयोजना, सन्तानिका, कमला, शतोमहाबला, सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखल मेखला, शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भाविनी, वपुष्मती चन्द्रशीता, भद्रकाली, ऋक्षा, अम्बिका, निष्कुटिका, वामा, चत्वर

वासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, बुद्धिकामा, जयप्रिया, धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, कण्डूति, कालिका, देवमित्र, वसुश्री, कोटरा, चित्रसेना, अचला, कुक्कुटिका शङ्खलिका, शकुनिका, कुण्डारिका, कौकुलिका, कुम्भिका, शतोदरी उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कङ्कणा, मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, पूतना, केशयन्त्री, त्रुटिर्वामा, क्रोशना तडित्प्रभा, मन्दोदरी, मुण्डी, कोटरा, मेघवाहिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, ताम्रचूडा, विकाशिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, पृथुवस्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, पक्षालिका, मत्कुलिका, जरायु जर्जरानना, दहदहा, धमधमा, खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुट्टिका, अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, शशोलूकमुखी, कृष्णा, खरजङ्घा, महाजवा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटीलिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा, कालेहिका, वामनिका, मुकुटा, लोहिताक्षी, महाकाया, हरिपिण्डा, एकत्वचा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणा, चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वना, महास्वना, शङ्खकुम्भश्रवा, भगदा, महाबला, गणा, सुगणा, अभीति, कामदा, चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरी, पशुदा, वित्तदा सुखदा, पयोदा, महायशा, गोमहिषदा, सुविशाला, प्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचना, नौकर्णी मुखकर्णी विशिरा, मन्थिनी, एकचन्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला, विरोचना—ये उन मातृकाओं के नाम हैं। हे भरतर्षभ ! ये उपर्युक्त तथा अन्य बहुत सी मातृका

हैं। जो नाना रूप धारण करके कार्तिकेय के पीछे २ चलती रहती हैं ॥३-२०॥

दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्ड्यश्च भारत ॥२१॥
सबला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः।
माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ॥२२॥
निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसन्निभाः।
कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ ॥२३॥
अरुणाभा महाभोगा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः।
ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिङ्गाक्ष्यो लम्बमेखलाः ॥२४॥
लम्बोदर्यो लम्बकर्णास्तथा लम्बपयोधराः।
ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथाऽपराः ॥२५॥
वरदाः कामचारिण्यो नित्यं प्रमुदितास्तथा।

हे भारत! इन मातृकाओं के लम्बे २ नख, दांत और नाक विद्यमान हैं। ये बड़ी बलवती सुन्दर युवति और अलङ्कारों से युक्त हैं। इनका बड़ा महत्व और ये कामना के अनुसार रूप धारण करने वाली हैं! बहुतों के शरीर में मांस ही नहीं है। कोई गौरवर्ण है और किसी का सुवर्ण का सा वर्ण माना गया है। हे भरतर्षभ! बहुत सी मातृकाओं की भांति कृष्णमेघ सदृश और बहुत सी धुम्र वर्ण वाली हैं। इनकी अरुण कान्ति, महान भोगों से युक्त लम्बे २ बालों वाली, श्वेत वस्त्र धारिणी हैं: बहुतों की वेणी ऊपर की ओर और बहुतों की मेखला (तगड़ी)

लटक रही है। बहुत सी मातृकाओं की पीली आंखें लम्बे २ पेट कान और स्तन हैं। कुछ की लाल आंख, लाल वर्ण और कुछ की भूरी आंखें हैं। ये वरदायिनी कामचारिणी, नित्य आनन्दित रहती हैं ॥३१-३५॥

यास्या रौद्रास्तथा सौम्याः कौवेर्योऽथ महाबलाः ॥
वारुण्योऽथ च माहेन्द्र्यस्तथाऽऽग्नेय्यः परन्तप ।
वायव्यश्चाथ कौमार्यो ब्राह्मयश्च भरतर्षभ ॥३७॥
वैष्णव्यश्च तथा सौर्यो वाराह्यश्च महाबलाः ।
रूपेणाप्सरसां तुल्या मनोहार्यो मनोरमाः ॥३८॥
परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्ध्या धनदोपमाः ।
शक्रवीर्योपमा युद्धे दीप्त्या वह्निसमास्तथा ॥३९॥

हे परन्तप! यम, रुद्र, सोम, कुवेर, वरुण, महेन्द्र, अग्नि, वायु, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, वराह, इनकी शक्तियों ने भी भिन्न २ रूप धारण कर रखे हैं। ये सारी याम्या आदि मातृका बड़ी बलवती मानी गई हैं। ये रूप में अप्सराओं के तुल्य हैं। जो बड़ी मनोहर और मनोरम हैं। ये बोलने में कोमल ऋद्धि में कुवेर युद्ध में इन्द्र, तेज में अग्नि मानी जाती हैं ॥३६-३९॥

शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवन्त्युत ।
कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥४०॥
अचिन्त्यबलवीर्याश्च तथाऽचिन्त्यपराक्रमाः ।
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिकेतनाः ॥४१॥

गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ।
नानाभरणधारिण्यो नानामाल्याम्बरास्तथा ॥४२॥
नानाविचित्रवेषाश्च नानाभाषास्तथैव च ।

ये शत्रुओं के शरीरों में बड़ा भय उत्पन्न करती हैं। ये कामना के समान रूपधारण करने वाली और वेग में वायु के समान मानी गई हैं। इनके पराक्रम और बल-वीर्य की कुछ भी थाह नहीं लगाई जा सकती है। ये मातृका वृक्ष, चत्वर और चतुष्पथों पर निवास करने वाली होती हैं। ये गुहा, श्मशान, पर्वत और झरनोंके तटोंपर निवास करता हैं। इन्होंने अनेक आभूषण और अनेक प्रकार की माला धारण की हुई हैं। इनके वेष भी बड़े विचित्र और इनकी भाषा भी बड़ी अद्भुत है ॥४०-४२॥

एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयङ्कराः ॥४३॥
अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य संमते ।

हे भरतर्षभ ! देवेश्वर इन्द्र की इच्छा के अनुकूल शत्रुओं को भयङ्कर बहुत से गण और मातृका महावीर कुमार के पीछे २ चलीं ॥४३॥

ततः शक्त्यस्त्रमददद्भगवान्पाकशासनः ॥४४॥
गुहाय राजशार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् ।
महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम् ॥४५॥
अरुणादित्यवर्णां च पताकां भरतर्षभ ।

हे राजशार्दूल ! देवों के द्वेष करने वाले राक्षसों के विनाश के लिए भगवान् इन्द्र ने स्कन्द को शक्ति नामक अस्त्र प्रदान किया। हे भरतर्षभ ! बड़ा शब्द करने वाला महाघण्टा तथा चमकीली, श्वेत कान्तिधारिणी, अरुण और सूर्यवत प्रकाशवान ध्वजा भी इन्द्र ने ही प्रदान की ॥४४-४५॥

ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥४६॥
उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् ।
अजेयां स्वगणैर्युक्तां नाम्ना सेनां धनंजयाम् ॥४७॥
रुद्रतुल्यबलैर्युक्तां योधानामयुतैस्त्रिभिः ।
न सा विजानाति रणात्कदाचिद्विनिवर्तितुम् ॥४८॥

इसके अनन्तर स्कन्द को भगवान् शङ्कर ने सारे भूतों से युक्त, अत्यन्त उग्र, अनेक शस्त्रों वाली, तप और वीर्य से समन्वित, अजेय, अपने गणों से युक्त, धनञ्जय नामी महासेना स्वामी कार्तिकेय को प्रदान की। यह रुद्र के समान बल से समन्वित तीस हजार योद्धाओं की बड़ी भीषण सेना थी। यह सेना कभी पीछे हटना नहीं जानती थी ॥४६-४८॥

विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम् ।
उमा ददौ विरजसी वाससी रविसप्रभे ॥४९॥
गंगा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ।
ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डं चैव बृहस्पतिः ॥५०॥

गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रवर्हिणम् ।
अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥५१॥
नागं तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् ।
कृष्णाजिनं ततो ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः ॥५२॥
समरेषु जयं चैव प्रददौ लोकभावनः ।

भगवान् विष्णु ने बल बढ़ाने वाली वैजयन्ती माला प्रदान की। पार्वती ने सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्र दिए। गङ्गा ने अमृत से भरा हुआ दिव्य कमण्डल प्रदान किया। बृहस्पति ने कुमार को प्रीति पूवक दण्ड दिया। गरुड़ ने अपने प्रियपुत्र विचित्र पंख वाले मयूर को प्रदान किया। अरुण ने चरण से आयुध का काम लेने वाले ताम्रचूड़ (मुर्गे) को प्रदान किया। बल वीर्य से समन्वित हाथी को वरुण, और सर्वशक्ति शाली ब्रह्मा ने ब्राह्मण रक्षक स्कन्द को कृष्णाजिन प्रदान की। लोक पूज्य ब्रह्मा ने युद्धों में विजय प्राप्त करने का उसे वरदान भी दिया ॥

सैनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ॥५३॥
शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान् द्वितीय इव पावकः ।

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार स्कन्द ने देवों का सेनापति पद प्राप्त करके वह द्वितीय, जाज्वल्यमान, ज्वालाधारी अग्नि की भांति चमक उठा ॥५३॥

ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्वितः ॥५४॥
ययौ दैत्यविनाशाय ह्लादयन्सुरपुङ्गवान् ।

इसके अनन्तर अपने गण और मातृकाओं के साथ दैत्यों के विनाश के लिए सेनापति स्कन्द चल दिए, जिनको देखकर देवता बड़े ही प्रसन्न हुए ॥५४॥

सा सेना नैर्ऋती भीमा सघण्टोच्छ्रितकेतना ॥५५॥
सभेरीशङ्खमुरजा सायुधा सपताकिनी ।
शारदी द्यौरिवाभाति ज्योतिर्भिरिव शोभिता ॥५६॥

यह देवों की सेना बड़ी भयङ्कर थी। उसमें घण्टा बज रहा था और पताकाएँ उड़ रही थीं। शङ्ख भेरी, मुरज, पताका, और दिव्य आयुधों से कुमार की सेना सुशोभित थी। इसका रूप शरद् ऋतु की चांदनी के समान उज्ज्वल और सूर्य ज्योतिः के तुल्य चमकीला था ॥५५-५६॥

ततो देवनिकायास्ते नानाभूतगणास्तथा ।
वादयामासुरव्यग्रा भेरीः शङ्खांश्च पुष्कलान् ॥५७॥
पटहान् झर्झरांश्चैव क्रकचान् गोविषाणिकान् ।
आडम्बरान् गोमुखांश्च डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥५८॥

इसके अनन्तर अनेक भूत गणों से युक्त हुई, यह देव सेना लगातार भेरी, बहुत से शङ्ख पट्ह, झर्झर, क्रकच, गो विषाण, आडम्बर, गोमुख, डिण्डिम आदि बाजे बजाने लगी ॥५७-५८॥

तुष्टुवुस्ते कुमारं तु सर्वे देवाः सवासवाः ।
जगुश्च देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरो गणाः ॥५९॥

इन्द्र आदि सारे देव, अब कुमार की स्तुति करने लगे। गन्धर्व जाति के देव गाने, और अप्सराएँ नांचने लगी ॥५९॥

ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ ।
रिपून् हन्ताऽस्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः ॥६०॥

इसके अनन्तर स्कन्द ने देवों को प्रसन्नता पूर्वक वरदान दिया कि तुम्हारे वध की अभिलाषा करने वाले शत्रुओं को तुम मार डालोगे ॥६०॥

प्रतिगृह्य वरं देवास्तस्माद्विबुधसत्तमात् ।
प्रीतात्मानो महात्मानो मेनिरे निहतान् रिपून् ॥६१॥

उस उत्तम देव कार्तिकेय से देवता वरदान पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन महात्माओं ने अपने शत्रुओं को नष्ट ही समझा ॥

सर्वेषां भूतसङ्घानां हर्षान्नादः समुत्थितः ।
अपूरयत लोकांस्त्रीन् वरे दत्ते महात्मना ॥६२॥

इस समय सारे प्राणियों में हर्ष नाद होने लगा। महात्मा कार्तिकेय के वरदान देते हीं यह हर्षनाद त्रिलोकी में व्याप्त होगया ॥६२॥

स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः ।
वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थं च दिवौकसाम् ॥६३॥

इसके बाद उस बड़ी भारी सेना को लेकर कुमार युद्ध में दैत्यों के वध और देवों की रक्षा के निमित्त चल पड़े ॥६३॥

व्यवसायो जयो धर्मः सिद्धिर्लक्ष्मीधृ तिः स्मृतिः ।
महासेनस्य सैन्यानामग्रे जग्मुर्नराधिप ॥६४॥
स तया भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया ।
ज्वलितालातधारिण्या चित्राभरणवर्मया ॥६५॥
गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया ।
दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥६६॥

हे नराधिप ! उद्योग, विजय, धर्म सिद्धि, लक्ष्मी, धृति, स्तुति आदि गुण, महासेना धारी स्कन्द के आगे २ चलने लगे । सारे देवों में श्रेष्ठ स्वामि कार्तिकेय, शूलमुद्गर, हाथों में धारण करने वाली, जलती हुई अलातों (मशाल) से समन्वित विचित्र आभरण और कवचों से युक्त गदा, मुसल, नाराच, शक्ति, तोमर हाथ में लिए हुए, मदोद्धत सिंह के तुल्य गर्जना में तत्पर, भीषण सेना के साथ युद्ध यात्रा के लिए धौंसा बजा कर चल दिए ॥६४-६६॥

तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा ।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः ॥६७॥

हे राजन् ! कुमार को देखकर सारे दैत्य, राक्षस और दानव, भय से उद्विग्न होकर सब ओर सारी दिशाओं को भाग निकले ॥

अभ्यद्रवन्त देवास्तान् विविधायुधपाणयः ।
दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः ॥६८॥
शक्त्यस्त्रं भगवान् भीमं पुनः पुनरवाकिरत ।
आदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध इवानलः ॥६९॥

देवों ने अनेक प्रकार के शस्त्र हाथ में लेकर उनका पीछा किया। उन राक्षसों को भागते देखकर महातेज और बल से सम्पन्न, भगवान स्कन्द क्रुद्ध हो उठे और इन्होंने शक्ति आदि भयङ्कर अस्त्र बार २ उनके ऊपर छोड़े। कुमार ने हवि से प्रदीप्त अग्नि के सदृश अपना महान् तेज प्राप्त किया ॥६८-६९॥

अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा ।
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले ॥७०॥

हे महाराज ! जब महा तेजस्वी कुमार ने शक्ति नामक अस्त्र छोड़ा-तो पृथिवी पर उल्का के समान ज्वाला फैलने लगी ॥७०॥

संह्लादयन्तश्च तथा निर्घाताश्चापतन् क्षितौ ।
यथान्तकालसमये सुघोराः स्युस्तथा नृप ॥७१॥

हे नृप ! इस समय मेघ में गर्जना होकर पृथिवी पर तारे से टूट २ कर गिरने लगे, जैसे प्रलय काल में महाघोर बिजली कड़कती है ॥७१॥

क्षिप्ताह्येका यदा शक्तिः सुघोराऽनलसूनुना ।
ततः कोट्यो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ ॥७२॥

हे भरतर्षभ ! जब अग्निपुत्र स्कन्द ने महाघोर एक शक्ति फैंकी-तो उस शक्ति में से करोड़ों शक्ति निकल पड़ी ॥७२॥

ततः प्रीतो महासेनो जघान भगवान्प्रभुः ।
दैत्येन्द्रं तारकं नाम महाबलपराक्रमम् ॥७३॥
वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप ।
महिषं चाष्टभिः पद्मैर्वृतं सङ्ख्ये निजघ्निवान् ॥७४॥
त्रिपादं चायुतशतैर्जघान दशभिर्वृतम् ।
हृदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः ॥७५॥
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः ।

इस समय में वीरता में भरे हुए महासेन कुमार ने महाबली महापराक्रमी दैत्यराज तारकासुर को मार गिराया, हे नृप ! इस तारकासुर के साथ एक लाख बलवान् दैत्यों की सेना थी आठ-पद्म सेना के साथ महिषासुर चल रहा था। उसे भी कुमार ने मार गिराया। त्रिपाद नामक दैत्य को भी एक करोड़ सेना सहित मार डाला। ह्रदोदर राक्षस को दश निखर्व दैत्यों के साथ मार डाला, जो अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किए हुए थे ॥७३-७५॥

तथाऽकुर्वन्त विपुलं नादं वध्यत्सु शत्रुषु ॥७६॥
कुमारानुचरा राजन्पूरयन्तो दिशो दश ।
ननृतुश्च ववल्गुश्च जहसुश्च मुदाऽन्विताः ॥७७॥

हे राजन्! जब इस प्रकार शत्रुओं का वध हो रहा था। तो बड़ा भारी कोलाहल मचा। हे राजन्! कुमारों के अनुचरों ने दशों दिशाओं को भर दिया। ये मोह में भरकर नांचने, इतराने और हंसने लगे ॥७६-७७॥

शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र ततोऽर्चिर्भिः समन्ततः।
त्रैलोक्यं त्रासितं सर्वं जृम्भमाणाभिरेव च ॥७८॥

हे राजेन्द्र! शक्ति नामक अस्त्र की लपटें सब ओर छा गई। इन बढ़ती हुई ज्वालाओं से त्रिलोकी त्रासित हो उठी ॥७८॥

दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे।
पताकयाऽवधूताश्च हताः केचित्सुरद्विषः ॥७९॥

स्कन्द के नाद से सहस्रों दैत्य दग्ध होगए और बहुत से दानव तो पताका की फटकार से ही नष्ट होगए ॥७९॥

केचिद्घण्टारवत्रस्ता निषेदुर्वसुधातले।
केचित्प्रहरणैश्छिन्ना विनिष्पेतुर्गतायुषः ॥८०॥

कुछ दानव कुमार के घण्टे की ध्वनि से व्याकुल होकर पृथिवी में बैठ गये। और बहुत से दैत्य वीर शस्त्रों से छिन्न भिन्न होकर प्राण विहीन हुए पृथिवी में गिर गए ॥८०॥

एवं सुरद्विषोऽनेकान् बलवानाततायिनः।
जघान समरे वीरः कार्तिकेयो महाबलः ॥८१॥

हे राजन् ! इस प्रकार महाबली वीर कार्तिकेय ने रणक्षेत्र में बहुत से सुरद्वेषी घातक बलवान् दैत्यों को मार भगाया ॥८१॥

बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः ।
क्रौञ्चं पर्वतमाश्रित्य देवसङ्घानबाधत ॥८२॥

एक महाबली बलिपुत्र बाणासुर दैत्य था, उसने क्रौञ्चपर्वत पर जाकर देव सेना का नाश कर दिया ॥८२॥

तमभ्ययान्महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः ।
स कार्तिकेयस्य भयात्क्रौञ्चं शरणमीयिवान् ॥८३॥

उस देवशत्रु बाणासुर पर उदारबुद्धि वाले स्कन्द ने आक्रमण किया। बाणासुर भी कार्तिकेय के भय से क्रौञ्चपर्वत की शरण में जा छुपा ॥८३॥

ततः क्रौञ्चं महामन्युः क्रौञ्चनादनिनादितम् ।
शक्त्या बिभेद भगवान् कार्तिकेयोऽग्निदत्तया ॥८४॥
स शालस्कन्धशबलं त्रस्तवानरवारणम् ।
प्रोड्डीनोद्भ्रान्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम् ॥८५॥
गोलांगूलर्क्षसङ्घैश्च द्रवद्भिरनुनादितम् ।
कुरङ्गमविनिर्घोषनिनादितवनान्तरम् ॥८६॥
विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः ।
शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजेव सपर्वतः ॥८७॥

अब क्रौञ्च नामक पक्षियों के शब्दों से गूंजते हुए क्रौञ्चपर्वत को महाक्रोधातुर भगवान् स्कन्द ने अपने शक्ति नामक शस्त्र से भेद डाला। यह पर्वत में बड़े २ शाल वृक्षों से विचित्र होरहा था कुमार के भेदन करते ही इसमें रहने वाले वानर हाथी आदि जन्तु कांप उठे। सारे पक्षी घबरा कर भाग गए बहुत से सर्प कुचल डाले गए। यह लगूंर रीछ आदि घनैले भागते हुए जन्तुओं से शब्दायमान होगया। हिरन आदि जन्तुओं के चीत्कार से इस पर्वत का भीतर का भाग गूंज उठा। शरभ जन्तु भागे सिंह भी एक दम भाग निकले। यद्यपि इस समय उसकी शोचनीय दशा होरही थी-तो भी वह पर्वतराज सुशोभित ही दिखाई दिया ॥८४-८७

विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृङ्गनिवासिनः।
किन्नराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः ॥८८॥

इस पर्वत के शिखर पर रहने वाले विद्याधर भाग निकले। शक्ति के प्रहार से उद्धत भीषण शब्द से घबरा कर किन्नर, उद्विग्न होगए ॥८८॥

ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोऽथ सहस्रशः।
प्रदीप्तात्पर्वतश्रेष्ठाद्विचित्राभरणस्रजः ॥८६॥
तान्निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे।

अब उस जलते हुए पर्वत से विचित्र माला आभरण धारी दैत्य निकल पड़े। कुमार के अनुचर गणों ने उन पर आक्रमण करके उनको वहीं मार गिराया ॥८६॥

स चैव भगवान् क्रुद्धो दैत्येन्द्रस्य सुतं तदा ॥९०॥
सहानुजं जघानाशु वृत्रं देवपतिर्यथा ।
बिभेद क्रौञ्चं शक्त्या च पावकिः परवीरहा ॥९१॥

भगवान् स्कन्द बड़े कुपित होरहे थे-उन्होंने दैत्येन्द्र बलि के पुत्र बाणासुर पर आक्रमण किया। वृत्रासुर को इन्द्र के समान कुमार ने भी बाणासुर को उसके छोटे भाई के साथ मार गिराया शत्रुनाशक अग्निपुत्र स्कन्द ने अपने शक्ति शस्त्र से उस सारे क्रौञ्चपर्वत के टुकड़े २ कर दिए ॥९०-९१॥

बहुधा चैकधा चैव कृत्वाऽऽत्मानं महाबलः ।
शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः ॥९२॥

महाबली कुमार ने अपने बहुत से रूप बना लिए। यह शक्ति को जब फैंकता था, तो शत्रु का घात करके फिर बार २ उसी के हाथ में आजाती थी ॥९२॥

एवं प्रभावो भगवांस्ततो भूयश्च पावकिः ।
शौर्याद्विगुणयोगेन तेजसा यशसा श्रिया ॥९३॥
क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः ।
ततः स भगवान्देवो निहत्य विबुधद्विषः ॥९४॥
स भज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवापह ।

हे राजन्! भगवान स्कन्द का इतना प्रभाव था। इसके अनन्तर अग्निपुत्र स्कन्द फिर शौर्य, गुण, तेज, यश और श्री के साथ

समुज्ज्वल हो उठे । उन्होंने क्रौञ्चपर्वत को भेद डाला और सैंकड़ों दैत्य मार लिए । भगवान् स्कन्द ने देवद्वेषी राक्षस मार डाले, इस से देवों ने उनकी बड़ी स्तुति की जिससे कुमार ने बड़ा आनन्द प्राप्त किया ॥६३-६४॥

ततो दुन्दुभयो राजन्नेदुः शङ्खाश्च भारत ॥६५॥
मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥६६॥

हे राजन् ! अब दुन्दुभि और शङ्ख बजने लगे, लाखों देवाङ्गना, उत्तम पुष्प उन योगीश्वर देव स्कन्द पर बरसाने लगी ॥६५-६६॥

दिव्यगन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च मारुतः ।
गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चनं यज्वानश्च महर्षयः ॥६७॥

हे राजन् ! वायु दिव्य गन्ध लेकर चलने लगा तथा गन्धर्व, यज्वा, महर्षि, उनकी स्तुति में परायण हुए ॥६७॥

केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् ।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ॥६८॥
केचिन्महेश्वरसुतं केचित्पुत्रं विभावसोः ।
उमायाः कृत्तिकानां च गङ्गायाश्च वदन्त्युत ॥६९॥
एकधा च द्विधा चैव चतुर्धा च महाबलम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१००॥

हे राजन् ! इन शक्तिशाली कुमार को कोई तो ब्रह्मपुत्र, कोई ब्रह्मा के सब से बड़े पुत्र सनत्कुमार, कोई शिवपुत्र, कोई अग्नि पुत्र, उमापुत्र, कृतिकापुत्र या गङ्गापुत्र कहते रहते हैं । महाबली योगीश्वर स्कन्द ने एक, दो, चार इस प्रकार सैंकड़ों हजारों रूप धारण कररखे हैं ॥९८-१००॥

एतत्ते कथितं राजन् कार्तिकेयाभिषेचनम् ।

शृणु चैव सरस्वत्यास्तीर्थवर्यस्य पुण्यताम् ॥१०१॥

हे राजन ! इस प्रकार हमने तुमको कार्तिकेय के अभिषेक की कहानी सुनाई । अब तुम सरस्वती के तीर्थ की पवित्रता सुनो ॥

बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुरशत्रुषु ।

कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् ॥१०२॥

ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक् पृथक् ।

ददौ नैर्ऋतमुख्येभ्यस्त्रैलोक्यं पावकात्मजः ॥१०३॥

हे महाराज ! जब सुरशत्रु मारे गए तो कुमार के प्रभाव से यह स्थान द्वितीय स्वर्ग के समान उत्तम तीर्थ बन गया । भगवान् स्कन्दने वहां स्थित होकर भक्तों को पृथक् ऐश्वर्य प्रदान किए हैं । अग्निपुत्र स्कन्द ने इस तरह दैत्यों को त्रिलोकी का राज्य प्रदान किया ॥१०२-१०३॥

एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः ।

अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः ॥१०४॥

हे महाराज ! दैत्य कुल के अन्त करने वाले भगवान् कार्तिकेय को देवों ने इस तरह देवों का सेनापति बनाया ॥१०४॥

तैजसं नाम तत्तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः ।
अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥१०५॥
अस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा स्कन्दं चाभ्यर्च्य लांगली ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं वासांस्याभरणानि च ॥१०६॥

हे भरतर्षभ ! जिस स्थान पर जलपति वरुण का देवों ने अभिषेक किया था, उस तीर्थ का नाम तैजस है । इस तीर्थ पर स्नान करके और स्कन्द की पूजा करके हलधर बलराम ने, ब्राह्मणों को सुवर्ण, वस्त्र और आभरण दान में दिए ॥१०५-१०६॥

उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा ।
पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा तोयं च लांगली ॥१०७॥
हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः ।

शत्रुवीर नाशक, बलराम, एक रात भर वहां ठहरे । उस तीर्थ श्रेष्ठ की पूजा और तीर्थ जल का आचमन करके वृष्णिवंश श्रेष्ठ बलराम बड़े प्रसन्न और हर्षित हुए ॥१०७॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यथाभिषिक्तो भगवान् स्कंदो देवैः समागतैः ॥१०८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने तारकवधे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

हे राजन् ! जिस तरह भगवान् स्कन्द का देवों ने आकर सेनापति पद पर अभिषेक किया-उसको मैंने तुम्हारे प्रश्न के अनुसार सब कुछ बता दिया है ॥१०८॥

इतिश्री महाभारत शल्यपर्वान्तर्गत गदापर्व में श्रीबलदेव जी की तीर्थ-यात्रा के प्रसङ्ग में तारक वध की कथा का छियालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

[१४ वां भाग समाप्त]

